इहक़ाक ए
हक़ प्रकाश

अर्थात् प्रकाश अथवा सत्य की स्थापना



कुरआन ए करीम पर

सत्यार्थ प्रकाश के आपत्तियों का उत्तर

अब्दुल रहमान

जा अलहक्कु वजाहका अलबातिलु इन्ना अलबातिला काना जाहूका

सत्य आया और झूठ नष्ट हो गया, निश्चय ही झूठ को नष्ट होना ही था।

इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश

अर्थात

प्रकाश अथवा सत्य की स्थापना

क़ुरआन-ए करीम पर 'सत्यार्थ प्रकाश' के आपत्तियों का उत्तर।

पुस्तक नाम	:	इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश
पृष्ट	:	283
प्रथम संस्करण	:	जुलाई 2026 ई०
मूल्य	:	मुफ़्त

इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश सूचीपत्र

सूरह इमरान

बिस्मिल्लाह हिर्रहमा निर्रहीम

नहमदहु व नुसल्ली अला रसूलिहिल करीम

पुस्तक का परिचय

इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश" एक ऐसी पुस्तक है जो ज्ञान और बुद्धिमत्ता से परिपूरित है। अतीत में हमारे प्रमुख इस्लामी विद्वानों ने पंडित दयानन्द सरस्वती की प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के उत्तर में पुस्तके लिखी थी, यह पुस्तक (इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश) उन्हीं पुस्तकों के संयुक्त शोध और तर्कों पर आधारित है, जिसमें इस्लामी सिद्धान्तों की रोशनी में सत्यार्थप्रकाश में प्रस्तुत आलोचनाओं और दावों के विस्तृत प्रतिवाद किया गया है। इसी तरह क्योंकि हमने इन पुस्तकों की सहायता से इस पुस्तक को रचा है इसलिए इस पुस्तक का नाम भी इन्हीं पुस्तकों के नामों पर इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश रखा है।

मुख्य बिंदु:

1. प्रतिक्रिया का संदर्भ:

सत्यार्थ प्रकाश (1875) में पंडित दयानन्द ने इस्लाम के संदर्भ में क़ुरआन, पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ, और इस्लामी प्रथाओं के बारे में कई तीखे दावे किए थे। "इहक़ाक़-ए-हक़-प्रकाश" इन्हीं दावों के खंडन और इस्लामी सच्चाइयों को प्रमाणों के साथ स्थापित करने का प्रयास है।

2. पुस्तक का उद्देश्य:

सत्यार्थ प्रकाश में इस्लाम के बारे में प्रस्तुत "गलतफहमियों" को दूर करना हैं।

3. पाठकों से स्पष्टीकरण एवं आग्रह:

यह पुस्तक तैयार करते समय हर संभव सावधानी बरती गई है। फिर भी, यदि इसमें किसी प्रकार की त्रुटि, अशुद्धि, या भूल दिखाई दे, तो निवेदन है कि ऐसी त्रुटियों का कारण केवल **अब्दुल रहमान** की अपनी समझ की सीमा या दूरदर्शिता का अभाव है, न कि इस पुस्तक में योगदान देने वाले विद्वानों या सहयोगियों का। साथ ही, इस पुस्तक में अनेक तर्क और विश्लेषण **अब्दुल रहमान** ने अपनी स्वयं के शोध, अध्ययन, और मंथन के आधार पर प्रस्तुत किए हैं। यदि कोई विवादास्पद या असंगत प्रमाण दिखे, तो वह **अब्दुल रहमान** के निजी विवेक का परिणाम है।

पाठकगण से विनम्र अनुरोध है कि ऐसी किसी भी त्रुटि की ओर सूचित करने का कष्ट करें, ताकि नये संस्करण (Edition) में उसे सुधार कर पुस्तक को और अधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी बनाया जा सके। आपके सुझाव और समालोचना इस कार्य को निरंतर बेहतर बनाने में सहायक होंगे।

—अब्दुल रहमान....

भूमिका

जिस प्रकार संसार में प्रत्येक गुणवान व्यक्ति के विरोधी और ईर्ष्यालु अवश्य हुआ करते हैं, और जिस प्रकार प्रत्येक युग के अनोखे व्यक्ति को ईर्ष्या-द्वेष के बाणों और भालों का निशाना बनना पड़ता है, तथा जिस प्रकार ईर्ष्यालुओं की ईर्ष्या और विरोधियों के विरोध से ही गुणवानों की प्रसिद्धिता एवं उनकी उत्कृष्टता (प्रमुखता, श्रेष्ठता) का प्रदर्शन और अधिक बढ़ जाया करता है — ठीक उसी प्रकार पवित्र इस्लाम को भी ईर्ष्यालुओं और विरोधियों का सामना करना पड़ा और पड़ता रहता है। जितना अधिक इसके साथ ईर्ष्या और द्वेष का व्यवहार किया गया, इसे मिटाने और नष्ट करने के लिए असत्य के अनुयायियों ने अपनी सारी शक्तियाँ एकत्रित कीं, और अपने प्रयासों में कोई कसर नहीं छोड़ा — उतना ही इस्लाम के गुण और महानता का प्रताप दुगुनी होते और बढ़ती चली गई।

वर्तमान युग में जहाँ सैकड़ों मशीने और कारखाने तथा अनेक प्रकार की अद्भुत वस्तुएँ आविष्कृत हो रही हैं, वहाँ "तथाकथित धर्म-निर्माण" का उद्योग भी अपने चरम पर पहुँच गया है। प्रतिदिन नए-नए मत-मतांतर गढ़े जाते रहते हैं, इन्हीं में से एक पाखंडी मत जो स्वयं को 'आर्य' कहलाता है; भी है, जो कुछ समय पूर्व दयानन्द द्वारा उत्पन्न हुआ। इसने धार्मिक जगत में अपने हृदय-द्रावक (दिल-शिकन) आचरण से संसार को कष्ट पहुँचाया है। कटु वचन और अपशब्दों का प्रयोग तो मानो इन्होंने अपने मत का अंग ही बना लिया है। इनके मत की प्रामाणिक पुस्तक पंडित दयानन्द की रचना 'सत्यार्थ प्रकाश' तो अपमानजनक भाषा और गाली-गलौज का भंडार है। इस पुस्तक का चौदहवाँ अध्याय पवित्र क़ुरआन पर आपत्ति करने के लिए विशेष रूप से समर्पित किया गया है। इसमें यह प्रयास किया गया है कि क़ुरआन की हर एक सूरह को अलग-अलग शीर्षक देकर, मुसलमानों के दिलों को ठेस पहुँचाई जाए। इन आपत्तियों की वास्तिविकता और पण्डित जी के ज्ञान-योग्यता की सीमा उनके इन्हीं आक्षेपों से स्वयं स्पष्ट हो जाएगी, जिससे उनकी ईमानदारी और सद्भावना का भी पता चल सकेगा। अब मैं पंडित दयानन्द सरस्वती जी की आपत्तियों को यथावत् उद्धृत करके उत्तर प्रस्तुत करता हूँ।

"मौलाना सैयद मुहम्मद नईमुद्दीन मुरादआबादी"

सूरह फातिहा

1. आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु। क़ुरआन.

समीक्षक:- मुसलमान लोग ऐसा कहते है कि यह क़ुरआन ख़ुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसको बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता किन्तु "आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्य के" ऐसा कहता। यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम भी ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं। क्योंकि इस से पाप का आरम्भ भी ख़ुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित हो जाएगा।

जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिला कर, मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं है? और यह भी कहना था कि "परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरम्भ" बुरी बातों का नहीं। इस कथन में गोलमाल है। क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि अधर्म का आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर किया जाये? इसी से देख लो कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी बिस्मिल्लाह इस वचन को पढ़ते हैं। जो यही इसका पूर्वोक़्त अर्थ है तो बुराइयों के आरम्भ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते है और मुसलमान का ख़ुदा दयालु भी न रहेगा क्योंकि उस की दया उन पशुओं पर न रही। और जो मुसलमान इसका अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है। यदि मुसलमान लोग इस का अर्थ और करते है तो सूधा अर्थ क्या है?

उत्तर:

क़ुरआन का आरंभ 'ईश्वर के नाम से'

पंडित दयानन्द सरस्वती जी का आक्षेप है कि क़ुरआन का आरंभ "बिस्मिल्लाह" (ईश्वर के नाम) से होने से यह सिद्ध होता है कि यह किसी अन्य की रचना है, क्योंकि यदि यह सीधे ईश्वर का वचन होता, तो वह स्वयं को तीसरे व्यक्ति में संबोधित नहीं करता। इस आपत्ति की असल वजह ईश्वरीय ग्रंथों की संरचना से अनभिज्ञ होना है, क्योंकि ईश्वरीय ग्रंथों का उद्देश्य मनुष्यों को मार्गदर्शन करना व देना है। यदि क़ुरआन का आरंभ "मैं ईश्वर हूँ..." से होता, तो यह एक "आत्म-घोषणा" होती, जो प्रार्थना या उपदेश के संदर्भ में असंगत होती।

सूरह फातिहा एक प्रार्थना है

क़ुरआन की पहली सूरह "अल-फातिहा" एक प्रार्थना (दुआ) है, जिसमें भक्त अपने ईश्वर से सीधे संवाद करता है। प्रार्थना का स्वभाव ही यह होता है कि भक्त ईश्वर की स्तुति करे, उसके गुणों का वर्णन करे, और फिर अपनी मनोकामना व्यक्त करे। जैसे —

"सभी प्रशंसा ईश्वर के लिए है, जो सारे जगत का पालनहार है..." (सूरह 1:2)।

यहाँ "ईश्वर" तीसरे व्यक्ति में आया है, क्योंकि प्रार्थना में भक्त ईश्वर को संबोधित करते हुए उसके गुणों का बखान करता है, तो ईश्वर तीसरे व्यक्ति में भक्तों को उपदेश करता है कि उसकी स्तुति और अपनी मनोकामना को किस प्रकार से व्यक्त

करें।

स्तुति का उद्देश्य ईश्वर के गुणों को याद करना और उसकी महिमा का बखान करना है। जब कोई भक्त कहता है —"हे ईश्वर! तू क्षमाशील और दयालु है..."— तो यहाँ ईश्वर "तू" (द्वितीय व्यक्ति) और "वह" (तृतीय व्यक्ति) दोनों रूपों में आ सकता है। क़ुरआन में "बिस्मिल्लाह" एक समर्पण-वाक्य है, जो हर अच्छे कार्य को अल्लाह के नाम से शुरू करने का संकेत देता है।

ईश्वरीय ग्रंथों की संरचना

ईश्वरीय ग्रंथों की भाषा-शैली बहुआयामी होती है। इनमें ईश्वर कभी स्वयं को प्रथम व्यक्ति में व्यक्त करता है, तो कभी तीसरे व्यक्ति में अपनी महिमा का वर्णन करता है। कभी यह भक्तों को प्रार्थना या विनती का स्वरूप सिखाने के लिए उनकी ज़ुबान से बोलता है। "सूरह फातिहा" या "बिस्मिल्लाह" इसी प्रकार की शैली का उदाहरण हैं, जहाँ ईश्वर ने मनुष्यों को यह शिक्षा दी है कि वे हर अच्छे कार्य का आरंभ उसके नाम से करें।

वैदिक स्तुतियों में समान स्वरूप

ऋग्वेद (1.1.1) पंडित दयानन्द सरस्वती, पुस्तक आर्याभिविनयः, पृष्ठ 8.

"हे अग्ने! आपकी मैं स्तुति करता हूँ। सब जगत के हितसाधक, सब ऋतु-वसन्त आदि के रचक।"

ऋग्वेद मण्डल (1.1.3) पंडित दयानन्द सरस्वती, पुस्तक आर्याभिविनयः, पृष्ठ 9.

"हे ईश्वराग्ने! आपकी कृपा से विद्या आदि धन तथा सोना (सुवर्ण) कीमती पत्थर (रत्न) तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञान रूप धन प्राप्त होता है।"

ऋग्वेद मण्डल (1.1.5) पंडित दयानन्द सरस्वती, पुस्तक आर्याभिविनयः, पृष्ठ 13.

"हे जगदीश! सब जगत की उत्पत्ति-प्रलय करने वाले, सबको देखने वाले, सब जगत के जनक।"

इसी तरह के स्तुति और प्रशंसा के मन्त्र और भी हैं देखें;

यजुर्वेद अध्याय 32, मन्त्र 14: (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास, पृष्ट 151)

यजुर्वेद अध्याय 40, मन्त्र 16: (सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास, पृष्ट 152)

सामवेद मन्त्र 1-2 (भाष्य जयदेव शर्मा)

यदि पंडित के अनुसार "बिस्मिल्लाह" से क़ुरआन की ईश्वरीयता संदिग्ध होती है, तो वेदों के लिए भी यही सिद्धांत लागू होगा। क्योंकि वेदों में भी "अग्नि" अर्थात ईश्वर की स्तुति अंकित है। यदि वेदों को भी "ईश्वर द्वारा प्रकाशित" माना जाता है, तो यहाँ "अग्नि" किसके द्वारा स्तुत हैं? क्या इन मंत्रों में "अग्नि" स्वयं अपनी ही प्रशंसा कर रहा है?

वेदों में भी ईश्वर की स्तुति तीसरे व्यक्ति (वक़्ता) के रूप में की गई है। यदि पंडित की दृष्टि में देखा जाए तो यह दोष फिर वेदों पर भी लागू होती है। क्या पंडित जी इसका अर्थ यह करना पसंद करेंगे कि वेदों की रचना भी "किसी अन्य" द्वारा है? यदि नहीं, तो क़ुरआन पर यह आक्षेप निराधार है।

*उपरुक्त सभी मंत्रों में "अग्नि" से तात्पर्य ईश्वर है।

ईश्वर का नाम बोलकर पाप का आरंभ नहीं हो सकता

"बिस्मिल्लाह" (ईश्वर के नाम से आरंभ) एक पवित्र वाक्य है, जो मनुष्य को यह सिखाता है कि हर शुभ, नेक और धर्मसम्मत कार्य ईश्वर के नाम और उसकी अनुमति से ही करो। यह शिक्षा मनुष्य के भीतर जिम्मेदारी और नैतिकता का भाव को जगाती है।

जैसे —

भोजन से पहले 'बिस्मिल्लाह' कहना इस विश्वास का प्रतीक है कि यह आहार मुझे ईश्वर की दी हुई रोज़ी के रूप में प्राप्त हुआ है।

ज्ञान अर्जित करने से पहले 'बिस्मिल्लाह' कहना इस भावना का संकेत है कि मैं यह ज्ञान ईश्वर की सहायता और मार्गदर्शन से प्राप्त करूँगा।

इसका उद्देश्य केवल ईश्वर-केंद्रित जीवनशैली स्थापित करना है, न कि किसी भी प्रकार के पाप या अनैतिकता को बढ़ावा देना।

पंडित जी का यह आक्षेप अज्ञान और पूर्वाग्रह पर आधारित है, क्योंकि यह न केवल इस्लामी शिक्षाओं बल्कि क़ुरआन के स्पष्ट संदेशों को भी अनदेखा करना है।

दयानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' का आरंभ इन शब्दों से किया है —

"ॐ सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः"

अब यदि पंडित का कोई भक्त यह पढ़कर शराब पिए, भांग का सेवन करे, व्यभिचार और चोरी जैसे कर्म करे, और फिर प्रमाण स्वरूप यह कहे कि — "देखो, महर्षि दयानन्द ने भी अपनी पुस्तक लिखने का कार्य इसी पाठ से किया है, इसलिए मैं भी अपने प्रत्येक कार्य को इसी पाठ से करता हूँ", तो क्या उसका यह निष्कर्ष उचित होगा? निःसन्देह नहीं। उस स्थिति में आवश्यक होगा कि हम पंडित के पूरे दृष्टिकोण और संदर्भ को देखें और समझें, न कि वाक्य के गलत अर्थ निकालकर उसका दुरुपयोग करें।

किसी भी ग्रंथ की शिक्षाओं को समझने के लिए उसका संदर्भ, उद्देश्य और वास्तविक आशय जानना आवश्यक है। 'बिस्मिल्लाह' का आदेश मनुष्य को नैतिक जिम्मेदार बनाने के लिए है, न कि पाप को बढ़ावा देने के लिए। अतः 'बिस्मिल्लाह' पर उठाई गई आपत्ति केवल अर्धज्ञान और पूर्वाग्रह का परिणाम है, न कि सही समझ का।

मांसभक्षण और जीव-हत्या

पंडित जी का कहना है कि — "यदि परमेश्वर दयालु है तो उसने अपनी ही सृष्टि में अन्य प्राणियों को दारुण पीड़ा देकर मरवाकर मांस खाने की अनुमति क्यों दी?" — वास्तव में यह प्रश्न एक संकीर्ण दृष्टिकोण से पूछा गया है। और यह प्रश्न, परमेश्वर की सृष्टि की व्यापकता और उसमें निहित प्रत्येक जीव की भूमिका को अनदेखा करता है।

परमेश्वर ने मनुष्य के सुख, स्वास्थ्य और जीवन-रक्षा के लिए असंख्य जीवों का अंत सुनिश्चित किया है और अनेक परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक भी है। उदाहरण के तौर पर, मलेरिया का इलाज करने के लिए कुनैन की एक खुराक

से ही करोड़ों-अरबों की संख्या में मलेरिया के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। खेती-बाड़ी के कार्य — जुताई, सिंचाई, दवा छिड़काव — सबमें असंख्य सूक्ष्मजीव और कीट मर जाते हैं।

इसी प्रकार, टीबी, इन्फ्लुएंज़ा, टाइफाइड, जुकाम जैसी बीमारियों का इलाज ढूंढने और उनकी दवा बनाने में भी असंख्य जीवाणु तथा छोटे प्राणी बलि चढ़ जाते हैं। मकान को साफ-सुथरा रखने, सब्जी पकाने, पानी पीने और सांस लेने तक में असंख्य सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर दिया जाता हैं।

सिर्फ मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों की जीवन-प्रणाली भी यही दर्शाती है। शेर, बाघ, चीते, बिल्ली, भेड़िये, उल्लू, कौआ और अन्य मांसाहारी प्राणी रोज़ाना लाखों जीवों को मारकर खाते हैं। क्या वे छोटे प्राणी, कीड़े-मकोड़े परमेश्वर की ही सृष्टि नहीं हैं? तो फिर उनके प्रति ऐसा व्यवहार क्यों? क्या मांसाहारी पशुओं और पक्षियों की यह प्रवृत्ति भी; ईश्वर की ही बनाई हुई प्रकृति नहीं है? बिल्ली जिस निर्दयता से चूहे को पकड़कर तड़पा-तड़पाकर खा जाती है, उसे देखकर मनुष्य को तो दया आ जाती है, लेकिन क्या दयालु परमात्मा को यह नहीं दिखता? यदि मुसलमान द्वारा गौ-मांस का सेवन आपको क्रोध दिलाता है, तो फिर परमात्मा द्वारा रचित इन प्राकृतिक घटनाओं पर आपकों आक्रोश क्यों नहीं होता?

वास्तव में, वेद स्वयं इस सत्य को स्वीकारते हैं कि मनुष्य-सुखार्थ के लिए जीवों का नाश आवश्यक है।

अथर्ववेद (6.50.1 से 3 — भाष्यकार पंडित जयदेव शर्मा) में चूहे, सूअर, साँप, टिड्डी आदि जीवों को मारने की अनुमति दी गई है।

पंडित दयानन्द स्वयं यजुर्वेद (13.48 से 51) के मंत्रों का भावार्थ करते हुए लिखते हैं कि — "जो जंगली हानिकारक पशु हैं, उनको मारना चाहिए।"

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि मनुष्य की भलाई के लिए जीवों की हत्या परमेश्वर की दया के विपरीत मानी जाए, तो फिर वेदों में इसका आदेश क्यों दिया गया? क्या यह परमेश्वर के समस्त सृष्टि के प्रति दयालुता को नकारता नहीं है?

पंडित जी, निःसन्देह, मुसलमान पशुओं का वध (ज़बह) ईश्वर के नाम पर और धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप करते हैं — क्योंकि हमारा मानना है कि यही ईश्वर का आदेश है। और धर्म के मामले में, जो कुछ ईश्वर ने आदेश दिया है, वही धर्मसम्मत माना जाता है। अतः जो भी कृतिय ईश्वर के आदेशानुसार किया जाए, वह धर्मविरुद्ध और हिंसा नहीं कहलाता। यही मनुस्मृति (5.39) में भी कहा गया है कि शास्त्रों के अनुसार पशु-वध हिंसा की श्रेणी में नहीं आता। खाद्य प्रयोजनों के लिए पालित पशुओं का वध करना और उन्हें भोजन के रूप में उपयोग करना, ईश्वर के आदेश का पालन करना है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदि मानवता ने कभी मांसाहार बंद कर दिया, तो संभव है कि पृथ्वी पर संतुलन बिगड़ने से अनेक आर्थिक और पारिस्थितिक समस्याएँ उभरेंगी, जिससे मानव जीवन प्रभावित होगा।

प्रकृति के संदर्भ में भी देखें तो शेर जैसे मांसाहारी जीव भी जान-बूझकर अपनी मर्ज़ी से तो मांस नहीं खाते बल्कि ईश्वर ने जो उसे प्रवृत्ति दिया है उसके अनुसार ही वह आहार ग्रहण करता हैं। संसार के अधिकांश जीव दूसरे जीवों पर निर्भर हैं। अतः यह आरोप निराधार है कि ईश्वर ने मांसाहार का आदेश देकर दयालुता का परिचय नहीं दिया।

पंडित जी को मुसलमानों के मांसाहार पर क्रोध आता हैं, और पशुओं के प्रति एक प्रकार की कृत्रिम (नकली) सहानुभूति

दिखाते हैं। किंतु क्या अथर्ववेद (6:50:1-3) के मंत्रों को पढ़कर पंडित को प्राणियों पर दया नहीं आता? इस्लाम में तो कसाई के लिए स्पष्ट निर्देश है कि पशु को इस प्रकार वध (ज़बह) किया जाए कि उसे न्यूनतम से न्यूनतम पीड़ा हो। ऐसे में पंडित जी आपसे प्रश्न यह बनता है कि वेद ने जिस प्रकार से प्राणियों को मारने की अनुमति दी है उसमें प्राणियों को अत्यधिक पीड़ा नहीं होती होगी? क्या उसमें दया और करुणा का भाव वास्तव में मौजूद माना जा सकता है?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

2. सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते हैं जो परवरदिगार अर्थात पालन करनेहारा है सब संसार का। क्षमा करने वाला दयालु है। 1:1-2 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो क़ुरआन का ख़ुदा संसार का पालन करनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मत वाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता। जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि "काफिरों को क़त्ल करो" अर्थात जो क़ुरआन और पैगम्बर को न मानें वो काफ़िर हैं ऐसा क्यों कहता है? इसलिए क़ुरआन ईश्वरकृत नहीं दिखता।

उत्तर:

इस्लाम मे दया और कृपा का सार्वभौमिक स्वरूप

निःसन्देह, क़ुरआन में ईश्वर को "रब्बुल आलमीन" अर्थात् समस्त ब्रह्मांड का पालनहार कहा गया है। सूरह फातिहा में यह स्पष्ट किया गया है कि ईश्वर की दया किसी विशेष राष्ट्र या समुदाय यानी धरती के विशेष भू-भाग के लोगों तक सीमित नहीं है। चूंकि वह समस्त जगत का पालनहार है, अतः उसकी दया और कृपा का विस्तार समस्त मानवजाति के लिए है।

ईश्वरीय व्यवस्था में ईश्वर का क्षमाशील और दयावान होने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह प्रत्येक मनुष्य को बिना किसी भेद के क्षमा कर देगा। दया की यह वास्तविक परिभाषा नहीं है। बल्कि इस्लामी दृष्टिकोण से दया का स्वरूप यह है कि यदि कोई व्यक्ति सच्चे हृदय से ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखता है, उसके निर्देशित मार्ग पर चलने का प्रयत्नशील रहता है, उसकी आज्ञाओं का पालन करता है तथा पापों से बचने का सतत प्रयास करता है, तो उससे होने वाली अनजाने या लघु पापों को ईश्वर अपनी असीम दया से क्षमा कर सकता है।

इसके विपरीत, जो व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, उसके बताए मार्ग का अनुसरण नहीं करता, उसकी आज्ञाओं का स्पष्ट रूप से उल्लंघन करता है और अपनी इस अवज्ञा पर दृढ़ रहता है, तो ऐसे व्यक्ति के लिए क्षमा का प्रावधान नहीं है। न्याय का सिद्धांत यह माँग करता है कि जो सत्य का इनकार करे, उसे दंड मिलना न्यायसंगत है; अन्यथा यह विश्वासियों के साथ अन्याय होगा।

न्याय का एक मूलभूत सिद्धांत यह भी है कि यदि कोई व्यक्ति सच्चे मन से अपनी गलती स्वीकारे, और भविष्य में सुधार का दृढ़ संकल्प ले, धर्म के मार्ग पर अटल रहने का पूर्ण प्रयास करे, तो ऐसे व्यक्ति को भी क्षमा कर देना ही दयालुता की सही परिभाषा है।

इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार, ईश्वर के बताए मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति — चाहे वह किसी भी राष्ट्र या समुदाय से संबंध

रखता हो — 'मुसलमान' (अर्थात् आज्ञाकारी) कहलाता है, जबकि इस मार्ग को स्वीकार न करने वाला और ईश्वर की अवज्ञा करने वाला 'काफिर' (अर्थात अविश्वासी) कहा जाता है। यह वर्गीकरण किसी राष्ट्र या समुदाय पर आधारित न होकर, केवल आस्था और आचरण के आधार पर है।

आचरण बनाम भूगोल — इस्लामी दृष्टिकोण में जहाँ 'मुसलमान' और 'काफिर' शब्द आस्था और आचरण के आधार पर प्रयुक्त हुए हैं, वहीं पंडित दयानन्द के मत में 'आर्य' (श्रेष्ठ और धार्मिक) और 'दस्यु', 'म्लेच्छ', 'राक्षस' (निकृष्ट और अधर्मी) जैसे शब्द स्थान के आधार पर कहे गए हैं (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास, पृष्ठ 186), जो पूर्णतः अन्याय और पक्षपात पर आधारित है।

अन्य मत वालों के संबंध में क़ुरआन और वेद का आदेश

पवित्र क़ुरआन किसी भी निर्दोष व्यक्ति की हत्या को घोर पाप मानता है (5:32)। यह किसी ऐसे ईश्वर का चित्रण नहीं करता जो अपने अनुयायियों के व्यक्तिगत द्वेष के आधार पर दूसरे समुदायों के दमन का आदेश दे, जैसा कि यजुर्वेद (15.17-18) में वर्णित है, "हम जिससे द्वेष करें, और जो हमसे द्वेष करें सिन्हादि (मांसभक्षी जीवों) के मुख में धरे, वैसे तुमलोग भी वर्तो।" क़ुरआन तो स्पष्ट रूप से निर्देश देता है कि "लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते है" (2:190)। क़ुरआन युद्ध की अनुमति कुछ विशेष परिस्थितियों में ही देता है, जैसे आत्मरक्षा, धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा और अत्याचारियों के विरुद्ध। अतः यह दावा कि "क़ुरआन अपने अनुयायियों को दूसरे मत के निर्दोष लोगों की हत्या का आदेश देता है", एक निराधार एवं मिथ्या आरोप है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

3. मालिक दिन न्याय का। तुझी को हम भक्ति करते हैं और तुझी से सहाय चाहते हैं। दिखा हमको सीधा रास्ता। 1: 3-4-5 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या ख़ुदा नित्य न्याय नहीं करता? किसी एक दिन न्याय करता है? इस से तो अन्धेर विदित होता है! उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरों का भी? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों ग्रहण करते? क्या सुधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते? यदि भलाई सब की एक है तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरों में भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं।

उत्तर:

ईश्वर हमेशा न्याय करता है, और अरबी व्याकरण की स्पष्टीकरण

यदि पंडित जी की आपत्ति का मूल कारण यह है कि उन्होंने क़ुरआन की आयत को ठीक से समझा नहीं है, तो इस अज्ञानता को दूर किया जा सकता है। परंतु यदि यह केवल जिद और हठ है, तो इस रोग का कोई उपचार नहीं!

अब इस पर ध्यान दीजिए कि यह कितना बड़ा दोष है कि पवित्र क़ुरआन में जिस बात का कोई आभास तक नहीं है, उसे अशोभनीय ढंग से क़ुरआन का संदर्भ देकर प्रस्तुत करना और फिर उसी पर आपत्ति करना... क्या किसी विद्वान के लिए अत्यंत शर्म की बात नहीं है?

क़ुरआन में कहीं भी उल्लेख नहीं है कि ईश्वर केवल किसी विशेष दिन ही न्याय करता है। फिर इस मिथ्या को क़ुरआन से

जोड़कर आपत्ति व्यक्त करना और ईश्वरीय वाणी को कलंकित करना — यह किस नीच स्तर की कार्यवाही है?

पंडित जी अरबी व्याकरण में मुरक्कबे इज़ाफ़ी (P o s s e s s i v e F o r m/ स्वत्वबोधक विभक्ति) होता है। और मुरक्कबे इज़ाफ़ी में एक होता है मुज़ाफ़ इलैहि (P o s s e s s o r /स्वामी/मालिक) दूसरा होता है मुज़ाफ़ (P o s s e s s e d/अधीन)।

यानी "न्याय" है मुज़ाफ़ इलैहि (P o s s e s s o r /स्वामी/मालिक) और "दिन" है मुज़ाफ़ (P o s s e s s e d /अधीन)।

मुरक्कबे इज़ाफ़ी (P o s s e s s i v e F o r m/ स्वत्वबोधक विभक्ति) में मुज़ाफ़ (P o s s e s s e d /अधीन) तख़्सिस (S p e c i f i c a t i o n/ ख़ास) होती है न कि मुज़ाफ़ इलैहि (P o s s e s s o r /स्वामी/मालिक)।

पंडित जी ने किया क्या है कि "न्याय का दिन" देखा और उसपर ही आपत्ति गढ़ दिया कि ईश्वर किसी विशेष दिन ही न्याय करता है अन्य दिन नहीं। मानों "न्याय", जो कि मुज़ाफ़ इलैहि (Possessor/स्वामी/मालिक) है उसे उसी दिन के लिए विशेष कर दिया के न्याय केवल उसी दिन है अन्य दिन नहीं, ये है पंडित की अज्ञानता। पंडित जी "न्याय" मुज़ाफ़ इलैहि (Possessor/स्वामी/मालिक) है इसकी तख़्सिस (specification/ख़ास) नहीं, बल्कि दिन तख़्सिस (Specification/ख़ास) है। मिसाल के तौर पर "दयानन्द का घोड़ा" और "दयानन्द की किताब" तो इसमें "घोड़ा" और "किताब" की तख़्सिस (Specification/ख़ास) है जो कि मुज़ाफ़ (Possessed/अधीन) है, न कि "दयानन्द" की तख़्सिस (Specification/ख़ास)। इसे एक और उदाहरण से समझे , "दयानन्द आर्य के पंडित है" इसका ये अर्थ करोगे के आर्य में दूसरा कोई पंडित है ही नहीं?

ईश्वर बुरें कामों का आदेश नहीं देता

बहुत से लोगों में एक प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अपनी मनगढ़त एवं भ्रांतिपूर्ण धारणाओं को क़ुरआन का जामा पहनाकर पेश करते हैं, जबकि पवित्र क़ुरआन में उन बातों का कोई आधार नहीं होता। उदहारण के तौर पर, पंडित जी प्रश्न करते हैं:

"क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना ठीक है?"

"क्या सीधा रास्ता बुराई का तो नहीं चाहते?"

जबकि ईश्वर क़ुरआन में स्पष्ट रूप से कहता है — "निःसन्देह ईश्वर बुरें कामों का आदेश नहीं देता।" (सूरह आराफ, 7:28) ऐसे में, इस तरह का प्रश्न उठाना कितना उचित है? निश्चय ही यह एक पूर्वाग्रह पर आधारित एक निराधार आरोप मात्र है, जिसका उद्देश्य सत्य को विकृत करना है।

सीधा रास्ता क़ुरआन की शिक्षा और इस्लाम में है

सिराते मुस्तक़ीम अर्थात सीधा रास्ता — निःसन्देह, सभी नबियों और ईश्वरीय दूतों का मार्ग रहा है। लेकिन कालांतर में उनके अनुयायियों ने अपने महान मार्गदर्शकों द्वारा बताए गए उस सच्चे ईश्वरीय पथ को छोड़कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते अपना लिए। पवित्र क़ुरआन का आगमन मानवता को इसी मूल और शुद्ध मार्ग पर पुनः लौटाने के लिए हुआ है।

असल में, मूल रूप से सभी ईश्वरीय धर्मों में अच्छाइयाँ और सत्य के सिद्धांत समान थे, परंतु समय के साथ मानवीय हस्तक्षेप ने उन्हें विकृत कर दिया। इन्हीं शाश्वत सच्चाइयों और सत्य (एकेश्वरवाद) को क़ुरआन में एक बार फिर एकत्रित कर दिया गया, और सदैव के लिए उनकी सुरक्षा का प्रबंध कर दिया गया। यही क़ुरआन की वह अनूठी विशेषता है जो उसे समस्त मानवजाति के लिए एक स्थायी मार्गदर्शक बनाती है।

इसी प्रकार, धर्म के प्रति हमारा दायित्व है कि हम धर्म को वैसा का वैसा प्रस्तुत करें, चाहे वह लोगों को उनकी अज्ञानता के कारण कितना भी अप्रिय क्यों न लगे। किंतु हमारे पंडित जी, सत्यार्थप्रकाश में शंकराचार्य के संदर्भ में एक चौंकाने वाला मंतव्य दिया है। वे लिखते हैं कि "अनुमान है कि शंकराचार्य आदि ने तो जैनियों के मत के खण्डन करने ही के लिए यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने मत को सिद्ध करने के लिए बहुत से स्वार्थी विद्वान अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं।" (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृष्ठ 241)

बताइए! जिनका सिद्धांत ही धर्म के नाम पर झूठ को ठीक ठहराना हो — वह धर्म ही क्या जिसे देश-काल के अनुकूल अपने मत को सिद्ध करने के लिए झूठ का सहारा लेना पड़े — उनसे न्याय और सच्चाई की अपेक्षा करना कितना संभव है?

सभी ईश्वरीय धर्मों में अपने पति के अलावा दूसरे पराए पति के साथ संबंध बनाना व्यभिचार की श्रेणी में आता है और निंदनीय है। किंतु सत्यार्थ प्रकाश के चौथे समुल्लास में नियोग के नाम पर, वेद के हवाले से स्त्री को ग्यारह पुरुषों के साथ तक संबंध बनाने को वैध (धर्म) ठहराया गया है। इसी क्रम में एक और उदहारण यह है कि यदि किसी स्त्री का पति दुराचारी हो, तो कोई धर्म उस स्त्री को दुराचार की अनुमति नहीं देता। लेकिन पंडित जी के बारे में लेखराम द्वारा लिखित जीवनी में एक चौंकाने वाली रिवायत मिलती है। लिखा है: "किसी व्यक्ति ने मकान की छत से पूछा कि जिस स्त्री का पति कंजरी (वैश्या) के पास जाए, तो उसकी स्त्री क्या करे? उन्होंने कहा — उसकी स्त्री भी एक मजबूत आदमी रख ले।" (स्वामी दयानन्द जीवन चरित्र, पंडित लेखराम, उर्दू संस्करण, पृष्ठ 355)। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह प्रसंग हिंदी संस्करणों — पृष्ठ 370 — में परिवर्तित शब्दों में प्रस्तुत किया गया है, जो अत्यंत निंदनीय कार्य है। पाठकों को चाहिए कि वो पंडित लेखराम द्वारा लिखी उर्दू संस्करण से ही इसे पढ़े, क्योंकि पंडित लेखराम ने यह जीवनचरित्र उर्दू में ही लिखा है।

जब धर्म के मूल सिद्धांत इस प्रकार की विकृतियों का शिकार हो जाएँ, तो क्या मानवता के लिए एक ऐसे स्पष्ट पवित्र और सीधे मार्ग की आवश्यकता नहीं रह जाती, जो निःसन्देह नैतिकता और स्पष्टवादिता का पाठ पढ़ाए? क़ुरआन द्वारा प्रस्तुत 'सिरात-ए-मुस्तकीम' ऐसा ही एक अटल, सुरक्षित और सार्वभौमिक मार्गदर्शन है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

4. दिखा उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने निआमत की। और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तू ने गजब अर्थात अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा। 1: 6-7 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब मुसलमान पुवर्जन्म और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं पर निआमत अर्थात फजल वा दया करने और किन्हीं पर न करने से ख़ुदा पक्षपाती हो जाएगा। क्योंकि विना पाप-पुण्य सुख-दुःख देना केवल अन्याय की बात है। और बिना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है क्योंकि बिना भलाई बुराई के वह दया

अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संचित पुण्य पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता। और इस सूरत की टिप्पन पर यह "सूरह अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें" जो यह बात है तो "अलिफ-बे" आदि अक्षर भी ख़ुदा ही ने पढाये होंगे, जो कहों कि नहीं तो विना अक्षर ज्ञान के इस सूरह को कैसे पढ़ सके? क्या कंठ ही से ही बुलाये और बोलते गए? जो ऐसा है तो सब क़ुरआन ही कंठ से पढ़ाया होगा। इस से ऐसा समझना चाहिए के जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जाए वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता। जैसा कि अरबी भाषा में उतारने से अरब वालों को इस का पढ़ना सुगम, अन्य भाषा बोलने वालों को कठिन होता है। इसी से ख़ुदा में पक्षपात आता है। और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्यायदृष्टि से सब देशभाषाओं से विलक्षण संस्कृत भाषा कि जो सब देशवालों के लिए एक से परिश्रम से विदित होती है उसी में वेदों का प्रकाश किया है, यह करता तो कुछ भी दोष नहीं होता।

उत्तर:

अन्'अम्ता अलैहिम और मग़ज़ूबि अलैहिम, निष्कारण नहीं

यह आयत बिना कारण किसी पर दया करने या न करने की बात ही नहीं करता। अन्'अम्ता अलैहिम, अर्थात "जिन पर अनुग्रह किया गया" — वे लोग हैं जो अपनी अच्छे स्वभाव और सत्कर्मों के कारण अनुग्रह के पात्र हुए। "जिन पर ईश्वर का क्रोध (ग़ज़ब) हुआ" — वे लोग हैं जो सत्पुरुषों के शत्रु बने और बुरें कर्मों में लिप्त रहें। और "पथभ्रष्ट" वे हैं जो ईश्वर के निर्देशित मार्ग से विचलित होकर अधर्म के पथ पर चल पड़े।

अब, यह अजीब बात है कि आप बिना किसी पूर्वकर्म के किसी पर की गई दया या कृपा को अन्याय और पक्षपात मानते हैं। किसी से द्वेष रखना या बिना कारण दुःख (पीड़ा) देना निश्चित रूप से अन्याय है, परंतु बिना कारण किसी पर कृपा करना अन्याय नहीं कहा जा सकता। मान लीजिए (उदारहण स्वरूप) यदि आप किसी गलत रास्ते पर जा रहे हैं या किसी कुएँ की ओर बढ़ रहे हैं, और कोई व्यक्ति — बिना आपके किसी उपकार के — आपको सही रास्ता बता दे या उस कुएँ से सावधान कर दे, तो क्या आप उसे अन्यायी कहेंगे या उस व्यक्ति के प्रति आभार व्यक्त करेंगे ?

इसी प्रकार, ईश्वर ने भी हम पर बिना हमारे कर्मों के असंख्य अनुग्रह (कृपाएँ, उपकार) किए हैं। हम उन्हीं उपकारों के लिए उसके कृतज्ञ (शुक्रगुज़ार) हैं — और यही उससे प्रेम (इश्क) करने का आधार भी हैं। किंतु यदि वह ईश्वर हमें बिना हमारे कर्मों के कुछ भी प्रदान नहीं करता, तो वह एक बनिया मात्र है, जिससे प्रेम करने का कोई कारण नहीं रह जाता। वह तो केवल अपनी सत्ता (खुदाई) बनाए रखने के लिए मनुष्यों पर ज़बरदस्ती हावी हो गया है। ऐसे ईश्वर से मुक्त होकर स्वराज्य प्राप्त करना ही श्रेष्ठ है, ताकि मनुष्य इस आवागमन (जन्म-मरण के चक्र) से मुक्त हो सके।

आवागमन पर चर्चा आगे अपने समय पर विस्तार से की जाएगी — इंशाअल्लाह।

ईश्वर की महिमा भक्त के मुख से

हमने पूर्व में भी बताया है कि सूरह फातिहा ईश्वर वाणी की उस क्षेणी में आती है, जहाँ ईश्वर चाहता है कि उसके भक्त स्वयं अपने मुख से उसकी महिमा का वर्णन करें। इसी प्रकार का उदाहरण वेदों में भी मिलता है —

यजुर्वेद (31.18) "मैं उस परमेश्वर को (जो) सूर्य के समान तेजस्वी है, जानता हूँ। उसको ही जानकर जीव मृत्यु को पार कर जाता है। दूसरा कोई मार्ग अभीष्ट मोक्ष प्राप्ति के लिये नहीं है। भाष्य — पंडित जयदेव शर्मा

आर्य समाज के अनुसार, यह मंत्र निस्संदेह ईश्वरीय वाणी है, और इस मंत्र में ईश्वर ने अपनी महिमा मनुष्य के रूप में व्यक्त की है, अर्थात वह चाहता है कि मनुष्य इन शब्दों के द्वारा उसकी स्तुति करे। पंडित का यह तर्क स्वयं उनके ही गले की हड्डी है। जिस प्रकार क़ुरआन का यह वचन मनुष्य के मुख से कहलवाया गया है उसी प्रकार ईश्वर ने भी वेदों में यह वचन मनुष्य के मुख से कहलाई है। खेद की बात यह है कि क़ुरआन पर आपत्ति करते हुए वेदों की ही भाषा-शैली और भाव-परंपरा को भुला दिया गया, और इस्लाम पर प्रहार करते-करते वेदों की जड़ों पर ही आघात किया गया।

अरबी या संस्कृत में ईश्वरीय ज्ञान और पक्षपात

यह दावा भी जाँच के योग्य है कि वेदों की भाषा संस्कृत का संबंध समस्त मानवजाति से समान रूप से है। सबसे पहले तो ऐसी भाषा में होना, जो किसी देश में बोली नही जाती और किसी समुदाय की जीवित भाषा न हो, एक मसखरा (मज़ाक) है। क्योंकि मनुष्यों की शिक्षा के लिए जो भी पुस्तक होगी, उसका किसी-न-किसी मानवीय भाषा में होना आवश्यक है, न कि ऐसी भाषा में जिसका संबंध मनुष्यों से ही न हो।

इन सभी बातों को एक ओर रख दें, तो मैं पूछता हूँ कि जिन ऋषियों के विषय में आर्यों का यह विश्वास है कि उन्हें वेदों का दिव्य ज्ञान (प्रकाशन) प्राप्त हुआ, क्या वे वेदों की भाषा को समझते थे या नहीं? यदि समझते थे, तो किस प्रकार? क्या वह उनकी मातृभाषा थी? यदि यह मान लिया जाए कि वह उनकी मातृभाषा थी, तो वह भाषा सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से कठिन नहीं रही। और यदि संस्कृत ऋषियों की मातृभाषा नहीं थी तथा उनके लिए भी उतनी ही कठिन थी जितनी अन्य मनुष्यों के लिए, तो प्रश्न यह उठता है कि उन्होंने वेदों को कैसे समझा? यदि ईश्वर ने वेदों को समझने में उनकी सहायता की, जिससे उनके लिए वेदों का अर्थ समझना संभव हुआ, तो क्या वही सहायता अन्य लोगों को भी प्रदान की गई थी? यदि नहीं, तो वेदों का ईश्वर स्वयं पक्षपाती ठहरता है और पंडित के सिद्धांत के अनुसार उसका न्याय भी संदिग्ध दिखाई पड़ता है।

इसी प्रकार यह दावा कि वेदों की भाषा सृष्टि के आरंभ में ईश्वर द्वारा ऋषियों को सिखाई गई थी और संस्कृत ही एकमात्र भाषा थी, अथर्ववेद के मंत्र (12.1.45 — हरिशरण सिद्धान्तालंकार) के अनुसार पूर्णतः प्रमाणहीन, निराधार और कपोल-कल्पित प्रतीत होता है। क्योंकि यदि वेदों के प्रकाशन से पूर्व कोई भाषा अस्तित्व में ही नहीं थी, तो अथर्ववेद किन भाषाओं और धर्मों के लोगों के अस्तित्व की बात कर रहा है? (मंत्र के शब्द वर्तमान काल को सूचित करते हैं, न कि भविष्य या भूतकाल को।) संभव है कि संस्कृत भी उन्हीं प्राचीन भाषाओं में से किसी एक के क्रमिक विकास का परिणाम हो। पुरातात्त्विक साक्ष्य, जैसे सिंधु घाटी सभ्यता, एक ऐसी प्राचीन सभ्यता की ओर संकेत करते हैं, जिसकी लिपि और भाषा आज तक पूरी तरह पढ़ी नहीं जा सकी है। आश्चर्य की बात यह है कि इस सभ्यता के अस्तित्व के बावजूद उसकी लिपि का संस्कृत भाषा से कोई स्पष्ट मेल नहीं पाया गया है।

यह भी विचारणीय है कि संस्कृत एक अत्यंत जटिल भाषा है, जिसके माध्यम से वेदों की गहन समझ प्राप्त करने के लिए वर्षों के कठोर अध्ययन और परिश्रम की आवश्यकता होती है। यदि ईश्वरीय संदेश का उद्देश्य समस्त मानवजाति का मार्गदर्शन

करना है, तो वह किसी सरल और सर्वसुलभ भाषा में होना चाहिए था, न कि ऐसी जटिल भाषा में, जिसे समझने के लिए विशेष प्रशिक्षण आवश्यक हो। इस दृष्टि से अरबी जैसी भाषाएँ (जिनमें क़ुरआन अवतरित हुआ) अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा व्यापक रूप से समझी जाती हैं। इसी प्रकार यह कहना कि संस्कृत सीखना सभी के लिए समान रूप से सुगम है, एक भ्रम मात्र है। निश्चित रूप से उसका उच्चारण और व्याकरण आर्यों के लिए अपेक्षाकृत सरल है, किन्तु अन्य भाषा-समूहों के लोगों के लिए उसे सीखना अत्यंत कठिन।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह बकरा

5. यह पुस्तक की जिस में सन्देह नहीं; परहेज़गारों को मार्ग दिखलाती है। जो कि ईमान लाते हैं साथ ग़ैब (परोक्ष) के, नमाज़ पढ़ते, और उस वस्तु से जो हम ने दी खर्च करते हैं। और वे लोग जो इस किताब पर ईमान लाते हैं जो रखते है तेरी ओर वा तुझ से पहले उतारी गई, और विश्वास क़यामत पर रखते हैं। ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पाने वाले हैं। निश्चय जो काफिर हूए उन पर तेरा डराना न डरना समान है। वे ईमान न लावेंगे। अल्लाह ने उनके दिलों, कानों पर मोहर कर दी और उनकी आंखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है। 2: 2-3-4-5-6-7 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या अपने ही मुख से अपनी किताब की प्रशंसा करना ख़ुदा की दम्भ की बात नहीं? जब परहेज़गार अर्थात धार्मिक लोग है वे तो स्वतः सच्चे मार्ग पर है और जो झूठे मार्ग पर हैं उनको यह क़ुरआन मार्ग ही नहीं दिखला सकता, फिर किस काम का रहा? क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थ के बिना खुदा अपने ही ख़ज़ाने से खर्च करने देता है? जो देता है तो सब को क्यों नहीं देता? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते है? और जो बाइबिल इन्जील आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इन्जील आदि पर ईमान जैसा कुरान पर है वैसा क्यों नहीं लाते? और जो लाते हैं तो कुरान का होना किसलिए? जो कहें कि कुरान में अधिक बातें है तो पहिली किताब में लिखना खुदा भूल गया होगा! और जो नहीं भूला तो कुरान का बनाना निष्प्रोयजन है। और हम देखते है तो बाइबल और कुरान की बातें कोई-कोई न मिलती होंगी नहीं तो सब मिलती हैं। एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है क्यों नहीं बनाया? क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिए; अन्य पर नहीं? क्या जो ईसाई और मुसलमान ही खुदा की शिक्षा पर हैं। उनमें कोई पापी नहीं है? क्या ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें तो बड़े अन्याय और अन्धेर की बात नहीं हैं? और क्या जो मुसलमान मत को न मानें उन्हीं को काफ़िर कहना एकतरफा डिग्री नहीं है? जो परमेश्वर ही ने उनके अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं तो उनका कुछ भी दोष नहीं। यह दोष खुदा ही का है फिर उनपर सुख-दुःख व पाप-पुण्य नहीं हो सकता पुनः उनको सज़ा जज़ा क्यों करता है? क्योंकि उन्होंने पाप और पुण्य स्वतंत्रता से नहीं किया।

उत्तर:

ईश्वर का अपनी किताब की प्रशंसा दम्भ नहीं है

दम्भ की यह विचित्र परिभाषा केवल वही व्यक्ति दे सकता है जो बुद्धि और विवेक से खाली हो। किसी वास्तविक तथ्य के व्यक्त को दम्भ नहीं कहा जाता। उदहारण के तौर पर, यदि इनलैंड की महारानी यह कहें कि "हम भारत के सम्राट हैं और

हमारे साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता," तो क्या कोई व्यक्ति इसे दम्भ कहेगा? नहीं, क्योंकि वास्तविकता का प्रकट या वर्णन करना दम्भ नहीं।

दम्भ तो वास्तव में तब होता है जब कोई 'मूलशंकर तिवारी' नामक व्यक्ति स्वयं को 'दयानद सरस्वती' कहलाने लगे। इसी प्रकार, जिस ग्रंथ (वेद) ने स्वयं को "विद्या का खज़ाना" नहीं कहा, उसे विद्या का खज़ाना बताना ही दम्भ कहलाता है — (पंचमहायज्ञ विधि, पृष्ठ 113)।

पवित्र क़ुरआन का अवतरण ऐसे युग में हुआ जब समाज मूर्ति-पूजा और मानव-पूजा जैसी विकृतियों से ग्रस्त था। ऐसे संकटकाल में उसका कर्तव्य था कि वह अपनी ईश्वरीय विशिष्टता और संदेश की सच्चाई को स्पष्ट रूप से लोगों के सामने रखे। इस तथ्य को एक सरल उदहारण से समझें — कल्पना कीजिए, किसी महामारी-ग्रस्त क्षेत्र में एक कुशल चिकित्सक उपचार के लिए भेजा जाए, तो उसका पहला कर्तव्य होगा कि वह लोगों को अपनी चिकित्सकीय योग्यता से लोगों को अवगत कराए, ताकि रोगी उसकी शरण में आकर स्वस्थ हो सकें। किंतु, यदि वही चिकित्सक अपनी पहचान छिपाए, अपनी विशेषज्ञता गुप्त रखे और समाज को अपने उपचार से वंचित कर दे, तो यह उसकी कर्तव्यहीनता और लापरवाही मानी जाएगी। पंडित जैसे संकुचित दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति भी ऐसे चिकित्सक के इस व्यवहार को उचित नहीं ठहराएँगे। ठीक इसी प्रकार, जब क़ुरआन ने अपने ईश्वरीय संदेश को मानवता के सम्मुख प्रकट किया, तो उसका नैतिक दायित्व था — न कि दम्भ या अहंकार।

इस पर पंडित जी का दम्भ का आरोप वैसे ही तर्कहीन है, जैसे कोई व्यक्ति उस रोग-निवारक डॉक्टर की उपचारात्मक भूमिका को दम्भ बताए।

परहेज़गारों को मार्गदर्शन

पवित्र क़ुरआन कहता है — "हुदन लिन्नास" (सूरह बकरा, 2:185) यानी यह समस्त मानवजाति के लिए मार्गदर्शन है। किंतु इस मार्गदर्शन से वास्तविक लाभ वही व्यक्ति उठा पाता है जो सच्चे मन से सत्य को स्वीकार करने और उसे अपने आचरण में ढालने का प्रयास करता है। जो व्यक्ति अपने मन और कर्म — दोनों से इस मार्गदर्शन को ग्रहण करने के लिए तत्पर नहीं है, उसके लिए क़ुरआन का होना या न होना समान है। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे सूर्य का प्रकाश सब पर समान रूप से पड़ती है — वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करती — किंतु उसका सदुपयोग केवल वही कर पाता है जो अपनी आँखें खोलता है और उसकी रोशनी में पथ देखता है।

पवित्र क़ुरआन ने मार्गदर्शन को सामान्यतः दो स्तरों से व्यक्त किया है: पहला, पथ का निर्देशन — इसमें केवल सही मार्ग बताया जाता है, जैसे कोई कहे, इस रास्ते पर चलो, तुम अपनी मंज़िल तक पहुँच जाओगे। दूसरा, लक्ष्य तक पहुँचाना — इसमें केवल दिशा का निर्देश ही नहीं दिए जाते, बल्कि यात्री को उसके लक्ष्य तक साथ-साथ ले जाया जाता है।

पवित्र क़ुरआन एक ऐसी ही ईश्वरीय वाणी है जो न सिर्फ़ सत्य के मार्ग का नक्शा दिखाती है, बल्कि उस पर चलने वाले को हर मोड़ (नजात) पर उसकी सहायता करती है। यह एक सजीव मार्गदर्शक की तरह भूमिका निभाती है, न कि केवल एक नक्शा थमा कर छोड़ देती है।

क़ुरआन की एक और अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषिक सौंदर्यता है — जिसे बलाग़त और फ़साहत कहा जाता है। जो लोग भाषा के ज्ञाता हैं, वे इस विशेषता को भली-भाँति समझते हैं। सामान्य समझ और पाठकों के लिए इसे एक उदाहरण से समझे। जब किसी व्यक्ति को मार्गदर्शन दिया जा रहा है और जिसे मंज़िल तक पहुँचाना उद्देश्य है, उसके दो चरण होते हैं — एक मार्गदर्शन से पहले का, जब वह पथभ्रष्ट था; और दूसरा मार्गदर्शन के बाद का, जब उसे सत्य का पथ मिल गया। भाषा की सुंदरता यही है कि वह उसे उसके नए स्थिति के अनुरूप ही संबोधित करे। यदि पंडित जी रात-दिन के मुहावरों पर थोड़ा विचार करते, तो उन्हें शायद यह भाषाई रहस्य समझ में आ सकती थी। उदारहण के तौर पर, जब किसी शिक्षक या विद्वान की प्रशंसा में कहा जाता है कि "इस शिक्षक को अमुक व्यक्ति ने पढ़ाया है, उसी ने इसका मार्गदर्शन किया है" — अब भाषा के सतही जानकार यह कह सकते हैं कि — "शिक्षक को पढ़ाने की क्या आवश्यकता? पढ़ाया तो अज्ञानी को जाता है।" परंतु यह समझना चाहिए कि यह वाक्य भाषा की भाव-सौंदर्यता के अनुसार है, जहाँ आशय है — उस व्यक्ति ने इस शिक्षक को वह मार्ग दिखाया जिससे वह शिक्षक बन सका। इसी प्रकार, यह भी कहने में कोई आपत्ति की जा सकती है कि "यह पुस्तक दयानन्द ने लिखी" — अब यदि कोई यह कहे कि "पुस्तक तो तब कहलाती है जब वह लिखी जा चुकी हो, तो दयानन्द ने 'पुस्तक' कैसे लिखी?" — तो यह भाषा की आत्मा को न समझने के समान है।

ईश्वरीय संसाधनों (ख़ज़ाने) का उपयोग वैध (हलाल) तरीके से

आयत का साफ और सीधा अर्थ यह है कि मनुष्य ईश्वर द्वारा दिए गए संसाधनों को वैध तरीके से कमाएँ और खर्च करें। यह आयत समाज के चलने का एक मूलभूत सिद्धांत बताती है। इस आयत में न तो पाप-पुण्य का उल्लेख है, न ही बिना प्रयास के किसी को देने की बात है, और न ही किसी को न देने का वर्णन है। इस आयत का केवल इतना ही अर्थ है कि ईश्वर द्वारा दिए गए संसाधनों को वैध कमाई से ईश्वर के मार्ग में खर्च करों या ईश्वर की राह में दान दो। और आयत का उद्देश्य यह है कि व्यर्थ और दिखावे से बचो, बल्कि ईश्वर के संसाधनों का सही और उचित तरीके से उपयोग करो।

यहाँ केवल मानव समाज की एक सच्चाई को उजागर किया जा रहा है — जिस प्रकार पेड़ पानी से बढ़ते हैं, उसी प्रकार समाज अच्छाई और नेकी से फलता-फूलता है।

पूर्ववर्ती ग्रंथों के होते क़ुरआन की आवश्यकता

पंडित जी! तौरात, इंजील, ज़बूर और कुरआन — ये सभी ग्रंथ ईश्वरीय हैं। मुसलमान इन सभी पर विश्वास करते हैं और इन्हें ईश्वर का वचन मानते हैं। किंतु, यह अजीब बात है कि यदि एक ग्रंथ को मान लिया जाए, तो क्या दूसरे का अवतरण व्यर्थ हो जाता है?

इस बात को समझने के लिए हमें कुछ सरल उदाहरणों पर विचार करना चाहिए — कल्पना कीजिए एक व्यक्ति यह मानता है कि गेहूँ ईश्वर की रचना है, और साथ ही यह भी मानता है कि चावल भी उसी ईश्वर की बनाई हुई वस्तु है। क्या उसे यह भय होगा कि चावल को ईश्वर-कृत मानने से गेहूँ का अस्तित्व निरर्थक हो जाएगा? यही प्रश्न पंडित जी से पूछा जा सकता है कि वेद चार क्यों हैं? केवल एक ही पूर्ण ग्रंथ क्यों नहीं बनाया गया? और क्या उनमें से एक को पूर्ण मान लेने से शेष तीन निष्प्रयोजन हो जाते हैं? ईश्वर का भिन्न-भिन्न काल में ज्ञान देना, इस बात का प्रतीक नहीं है कि वह कुछ भूल गया था।

पंडित जी, यदि हम प्रकृति की रचना पर ही गंभीरता से विचार करें, तो हमें स्पष्ट हो जाएगा कि समय और आवश्यकतानुसार ही ज्ञान प्रदान किए गए। जिस प्रकार बालक के दाँत और दाढ़ी क्रमशः आते हैं, उसी प्रकार जब-जब जिस शिक्षा या धर्म की आवश्यकता हुई, तब-तब नए ग्रंथ का अवतरण हुआ। जिस प्रकार एक बालक को उसकी आयु और आवश्यकता के अनुसार शिक्षा दी जाती है (जैसे पहले अक्षर, फिर शब्द, फिर गणित), उसी प्रकार ईश्वर ने मानव जाति के विकासक्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न समय पर ग्रंथ भेजे। यह कोई भूल नहीं, बल्कि ईश्वर की बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था (बुद्धि से किया गया कार्य) थी।

कुरआन की आवश्यकता क्यों पड़ी? यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि पूर्ववर्ती ग्रंथों; जैसे तौरात, इंजील और ज़बूर जैसे पवित्र ग्रंथों में मनुष्यों ने छेड़-छाड़ किए, इसलिए उनके सुधार की तथा ईश्वरीय संदेश की मूल शुद्धता एवं स्पष्टता को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता थी। ठीक उसी प्रकार, ईश्वर कभी नहीं भूलता और न भूल सकता है, परंतु मनुष्य धर्म की शिक्षाओं को भूल सकते हैं अथवा उनहें विकृत कर सकते हैं। इसलिए, उन्हें पुनः मार्गदर्शन देने के लिए ईश्वर ने कुरआन को अंतिम और अपरिवर्तनीय ग्रंथ के रूप में अवतरित किया, जो पूर्व ग्रंथों के सार को सुरक्षित रखते हुए मानवजाति के लिए पूर्ण आदर्श प्रस्तुत करता है।

संक्षेप में, इन्हें उदाहरणों से समझें: मूर्तिपूजा, अवतारवाद, त्रित्ववाद का सिद्धांत, पुनर्जन्म का सिद्धांत — जैसी मानव-निर्मित त्रुटियों को कुरआन दूर करता है और धर्म की मूल शिक्षा को पुनः स्थापित करता है। कुरआन उन विकृतियों को सुधारकर ईश्वरीय संदेश की शाश्वतता को सिद्ध करता है।

क़यामत (प्रलय) पर विश्वास

कहीं और नहीं, बल्कि इसी स्थान पर क़ुरआन ने स्पष्ट कहा है, — " जो लोग ग़ैब (अदृश्य) और नबियों पर उतरी प्रकाशना पर विश्वास रखते हैं...।" फिर यदि कोई यह आपत्ति करें कि "क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिए, अन्य पर नहीं?" — स्पष्ट रूप से दिखता है कि ज्ञान का प्रदर्शन की जल्दबाजी में पंडित ने अपनी अक़्ल को ताला लगा लिया है।

ईसाई और मुसलमान जैसे अप्रासंगिक आपत्ति और इस्लामिक दृष्टिकोण

हालाँकि, आयत में ऐसा कोई मर्म या संकेत नहीं है जिसके बिना पर यह प्रश्न या आपत्ति उठाई गई है, लेकिन फिर भी सुने! पंडित जी, इस्लाम के अनुसार ईश्वर ने इस ब्रह्माण्ड को एक सुनियोजित व्यवस्था और सिद्धांतों के साथ रचा है। इन्हीं नियमों के तहत वह समस्त मानवजाति के मार्गदर्शन हेतु सन्देशवाहक — नबी और रसूल — भेजता रहा है। प्रारंभिक काल में समस्त मानवता एक ही आध्यात्मिक विचारधारा, अर्थात तौहीद (ईश्वर की एकता) पर केंद्रित थी। सभी लोग एक परिवार की भाँति एकजुट थे और सरल, एकीकृत जीवन व्यतीत करते थे। किंतु समय के साथ जनसंख्या में वृद्धि हुई, भौगोलिक क्षेत्र फैले, और मानसिक तथा सामाजिक विकास के परिणामस्वरूप मनुष्यों के रहन-सहन, संस्कृति और चिंतन में विविधता उत्पन्न हुई। चूंकि ईश्वर ने मनुष्य को स्वतंत्र इच्छाशक्ति और बुद्धि प्रदान की थी, ताकि वह सत्य और असत्य के बीच चयन कर सके। परंतु जहाँ कुछ लोगों ने इस वरदान का सदुपयोग किया, वहीं कुछ भटक गए। परिणामस्वरूप मतभेद और विभाजन उत्पन्न हुए — जो ऐतिहासिक दृष्टि से निर्विवाद सत्य है।

नबियों की भूमिका और ईश्वरीय संदेश — इन मतभेदों को दूर करने तथा मानवता को पुनः सत्य मार्ग पर लाने के लिए ईश्वर ने नबियों को भेजा। वे दो प्रकार के संदेश लेकर आए —

1. आध्यात्मिक सिद्धांत — तौहीद (ईश्वर की एकता) और रिसालत (ईश्वरीय दूतों पर विश्वास) की शिक्षा, जो सभी युगों में अपरिवर्तनीय रही।

2. व्यावहारिक निर्देश — समाज की आवश्यकताओं और समय की परिस्थितियों के अनुसार जीवन के नियम और व्यवस्थाएँ, जैसे नैतिक, सामाजिक और कानूनी प्रावधान।

नबियों का उद्देश्य था कि भटके हुए लोगों को सावधान करना, सदाचारियों को प्रेरित करना, और मानव समाज के विवादों को ईश्वरीय वाणी (प्रकाशना) के माध्यम से सुलझाना और सत्य (धर्म) को प्रस्तुत तथा स्थापित करना। इन्हीं वाणियों को कालांतर में विभिन्न धर्मग्रंथों — तौरात, ज़बूर, इंजील और क़ुरआन आदि — के रूप में जाना गया। वास्तव में, मूल रूप से यह सभी ग्रंथ एक ही है, परंतु विभिन्न युगों में अवतरण होने के कारण उन्हें भिन्न पहचान मिली। जिन लोगों ने नबियों के संदेश को स्वीकार कर ईश्वर के प्रति समर्पित हुए, वे 'मुसलमान' कहलाए; और जिन्होंने सत्य का अस्वीकार किया, उन्हें 'काफिर' कहा गया।

इस्लामी दृष्टिकोण से, सभी नबियों का मूल संदेश एक ही था — ईश्वर की प्रभुता को स्वीकार करना और मानवता की सेवा करना। समय, स्थान और मानवीय सीमाओं के कारण, साथ ही ग्रंथों में हुए हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप, धार्मिक प्रथाओं और नियमों में भिन्नताएँ आ गईं। इसी कारण इस्लाम यह मानता है कि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ सत्य विद्यमान है, क्योंकि वह ईश्वरीय मार्गदर्शन का अंश है। क़ुरआन को इसी श्रृंखला का अंतिम संदेश माना जाता है, जो पूर्ववर्ती शिक्षाओं में आई विकृतियों को सुधारता है तथा उन्हें पूर्णता प्रदान करता है।

इसी प्रकार, इस्लामी मान्यता कहती है कि मनुष्यो की फ़लाह (पारलौकिक सफलता) दो मूल स्तंभों पर निर्भर करती है —

1. ईमान — ईश्वर की एकता, उसके समस्त नबियों पर अटूट विश्वास तथा प्रलय के दिन पर दृढ़ आस्था रखना।

2. अमल-ए-सालेह — सदाचार, न्याय, दया और शरीअत के अनुसार जीवन-यापन करना।

इस्लाम स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि जो भी व्यक्ति ईश्वर, उसके नबियों और परलोक पर विश्वास रखता है एवं लाता है, और साथ ही बाकी सद्कर्म करता है तो उसके लिए उसके पालनहार के पास अनंत प्रतिफल है। ऐसे लोगों पर न तो किसी प्रकार का भय छाएगा और न ही वे किसी प्रकार के दुःख से ग्रस्त होंगे।

इस्लाम ने पाप को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया है —

1. गुनाह-ए-कबीरा (गंभीर पाप) — इसमें ईश्वर के साथ किसी को साझी ठहराना (शिर्क) अथवा धर्म का इनकार (कुफ़्र) जैसे पाप सम्मिलित हैं। इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार, यदि इन पापों से अंतिम समय तक तौबा (पश्चाताप) न किया जाए, तो इनकी क्षमा नहीं है।

2. गुनाह-ए-सगीरा (लघु पाप) — इसमें झूठ बोलना, किसी का अपमान करना या दिल दुखाने जैसे पाप आते हैं। व्यक्ति

इनके लिए ईश्वरीय दण्ड भोगकर; ईश्वर की दया से छुटकारा पा सकता है।

क्योंकि जो व्यक्ति अपने पापों का दंड भुग चुका है, उसे उसके ईमान के प्रतिफल से वंचित कर देना न्याय के विरुद्ध होगा।

वेदों की एकतरफा डिग्री

वाह जी! चमगादड़ को दिन का अंधा कहने पर उसकी शिकायत, और झूठे को कज़्ज़ाब कहने पर उसका विरोध।

पंडित जी यह आपत्ति तो खुद आपके अपने गले है, क्योंकि आप ने खुद वेद को न मानने वाले को नास्तिक कहा है — देखों, "नास्तिको वेदनिन्दकः" वेदों को न मानने वाला नास्तिक कहाता है। (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 67)

और देखिए आपने क्या-क्या डिग्रियां दे रखी है: "आर्य नाम धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु, डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान है।" (अष्टम समुल्लास, पृष्ठ 186)

ईश्वर का दिल पर मोहर लगाना

पंडित की चालाकी देखिए! उन्होंने कुरआन की एक आयत के संदर्भ और क्रम को ही पलटकर रख दिया। आयत का मर्म यह है कि, "हे नबी, जब आपने उन्हें समझाने का प्रयास किया और उन्होंने स्पष्ट रूप से मानने से इनकार कर दिया, तो आप स्वयं को कष्ट में न डालें। जब उन्होंने न मानने का दृढ़ निर्णय ले ही लिया है, तो आपका समझाना या न समझाना, दोनों ही उनके लिए एक समान है; वे स्वीकार करने वाले नहीं हैं। (इसके बाद मोहर की बात कही) ईश्वर ने इनके दिलों पर और कानों पर मोहर कर दी, और इनकी आँखों पर पर्दा है, और इनके लिए दुःख देने वाली यातना है"

लेकिन पंडित ने यहाँ मक्कारी यह दिखाई कि इस पूरे बयान को उलट दिया और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि 'ईश्वर ने तो पहले ही उनके दिलों और कानों पर मोहर लगा रखी है, इसलिए वे पाप करते हैं।' जबकि पवित्र कुरआन का वास्तविक मंतव्य उनके कुफ़्र (अस्वीकार) के परिणाम का वर्णन करना है, न कि उस कुफ़्र के कारण की व्याख्या करना।

सीधी बात यह है कि पंडित ने अपराध की सजा को ही अपराध का कारण बता दिया।

इसे एक सरल उदाहरण से समझिए —

मान लीजिए, ज़ैद का हाथ सड़न की वजह से पूरी तरह खराब हो गया था, जिसके कारण डॉक्टर ने उसे काटने का निर्णय लिया। अब, पंडित की तरह सोचने वाला एक व्यक्ति लोगों से कहने लगा, "देखो इस बेचारे के हाथ का क्या कसूर? असली गुनहगार तो वह डॉक्टर है जिसने इस मासूम का हाथ काट दिया!"

"मोहर लगना" कब और क्यों होता है, इसका स्पष्ट वर्णन स्वयं कुरआन में ही मिलता है। जैसे सूरह निसा (4:155) में स्पष्ट कहा गया है — "फिर उनके कुफ़्र (अस्वीकार) के कारण, ईश्वर ने उनके दिलों पर मोहर लगा दी।" यानी स्पष्ट है कि यह मोहर उनके अपने ही कुफ़्र का परिणाम है, न कि बिना किसी कारण ईश्वर की ओर से लगाई गई कोई मनमानी पाबंदी।

ईश्वर किसी को जन्म से ही भटका हुआ नहीं बनाता, इसी सत्य को पैगंबर मुहम्मद ﷺ की एक हदीस (तिर्मिज़ी: 3334) बहुत ही सुंदर ढंग से समझाती है। आप ﷺ फरमाते हैं — "जब बंदा कोई पाप करता है, तो उसके दिल पर एक काला निशान पड़ जाता है। फिर अगर वह तौबा (पश्चाताप) कर ले और माफी मांग ले, तो उसका दिल फिर से चमक उठता है। लेकिन अगर वह (तौबा न करके) पाप पर ही डटा रहे और उसे बढ़ाता रहे, तो वह काला निशान और फैलता जाता है, यहाँ तक कि

पूरे दिल को ढँक लेता है।"

स्पष्ट है कि ईश्वर बिना किसी कारण किसी के दिल पर मोहर नहीं लगाता। यह मनुष्य के अपने ही कर्मों का दुष्परिणाम है। "मोहर लगना" एक सजा है, सजा का कारण नहीं। और इस हदीस से एक और महत्वपूर्ण बात पता चलती है कि यह मोहर स्थायी नहीं है; यदि मनुष्य सच्चे दिल से पलटे और पश्चाताप करे, तो यह टूट सकती है।

यहाँ आर्यों के लिए एक महत्वपूर्ण बात गौर करने की यह है कि आर्य ईश्वर द्वारा लगाया गया "मोहर" का सिद्धांत बिल्कुल ही निराशाजनक है। पूर्वजन्म सिद्धांत के अनुसार — जो लोग पूर्वजन्म में पाप (जैसे चोरी, झूठ, नशा या बुजुर्गों का अपमान आदि) करते हैं, उन्हें ईश्वर सजा के तौर पर गाय, भैंस, कुत्ता या कीट-पतंग बना देता है। फिर कथित तौर पर उनके दिल, दिमाग, कान और आँखों पर ऐसी मोहर लग जाती है कि कोई पंडित उन्हें वेद-उपनिषद का ज्ञान भी नहीं दे सकता। यह मोहर उनके पूरे इस जन्म में नहीं टूटती। यह सजा एक ऐसा अभिशाप है उनके लिए इस जन्म में जिससे छुटकारा संभव ही नहीं है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

6. उनके दिल में रोग है, अल्लाह ने उन का रोग बढ़ा दिया। 2: 10 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला विना अपराध खुदा ने उनका रोग बढाया, दया न आई, उन बेचारों को दुःख हुआ होगा! क्या यह शैतान से बढ़कर शैतानपन का काम नहीं है? किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी का रोग बढ़ाना, यह खुदा का काम नहीं हो सकता क्योंकि रोग का बढ़ना अपने पापों से है।

उत्तर:

ईश्वर का रोग बढाना

यह कितनी बड़ी शैतानी हरकत है कि आयत के पहले और अंतिम अंश को जानबूझकर छोड़ दिया गया! ऐसा इसलिए किया गया ताकि यह स्पष्ट ही न हो सके कि पंडित का आरोप कितना निराधार और झूठा है।

"बिना किसी अपराध के ईश्वर ने उनका रोग बढ़ाया" — यह कथन सरासर झूठ पर आधारित है। वास्तविकता को समझने के लिए पूरी आयत और उसके प्रसंग एवं संदर्भ को देखना होगा। पूर्व की आयतों में स्पष्ट किया गया है कि मुनाफिक (कपटी) दिखावे के लिए सत्य का समर्थन करते हैं, किंतु उनके हृदयों में अविश्वास, पाखंड और शिर्क का रोग छिपा है। ये लोग मुसलमानों को धोखा देने, सत्य के मार्ग को कमजोर करने, समाज में फूट डालने और लोगों को सत्य अपनाने से रोकने का षड्यंत्र रचते हैं। कुरआन बताता है कि ये लोग समझते हैं कि ऐसा करके वे मुसलमानों को धोखा दे देंगे, जबकि वास्तव में वे स्वयं को धोखा दे रहे हैं।

इसके बाद आयत कहती है कि "उनके दिलों में रोग है, तो ईश्वर ने उनके रोग में बढ़ोतरी कर दी।" यहाँ "रोग में बढ़ोतरी" का अर्थ क्या है? इसका सीधा-सा मतलब यह है कि जब-जब ईश्वर मुसलमानों को सफलता, प्रगति और खुशहाली प्रदान करता है, तो कपटियों के हृदय में छिपी ईर्ष्या, द्वेष और हीनभावना और भी अधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के तौर पर, यदि दो व्यक्तियों में शत्रुता हो और उनमें से एक को असाधारण सफलता मिल जाए, तो स्वाभाविक है कि दूसरे की जलन,

हताशा और कुंठा बढ़ जाएगी। ठीक इसी प्रकार, मुसलमानों की तरक्की कपटियों के आंतरिक रोग को हवा देती है। यह उनकी अपनी दुष्टता और अज्ञानता से किए गए फैसलों का ही परिणाम है कि सत्य की सफलता उनके लिए पीड़ा का कारण बनती है।

ईश्वर को पहले से ही ज्ञात था कि पंडित जैसे लोग यह आपत्ति उठाएंगे कि "ईश्वर ने निर्दोषों का रोग क्यों बढ़ाया?" इसलिए आयत के आरंभ में ही "इनके दिलों में रोग है" का उल्लेख करके अंत में स्पष्ट कर दिया कि यह बढ़ोतरी उनके अपने झूठ के कारण हुई। हर व्यक्ति जानता है कि एक झूठ को छिपाने के लिए सैकड़ों झूठ बोलने पड़ते हैं, और यही झूठ की परतें व्यक्ति के आंतरिक संघर्ष और दुख को बढ़ाती चली जाती हैं। ईश्वर द्वारा 'रोग बढ़ाने' का तात्पर्य उनकी आंतरिक विकृति को बढ़ावा देना नहीं, बल्कि बाहरी परिस्थितियाँ ऐसी बना देना है कि उनका छिपा हुआ रोग स्वयं बढ़ जाता है।

जो लोग इन झूठे, कपटियों और धोखेबाजों की पक्षधरता करते हैं, वे निश्चय ही शैतानों से भी बढ़कर शैतानियत का कार्य करते हैं।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

7. जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी बिछौना और आसमान की छत को बनाया।। 2: 22 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला आसमान छत किसी की हो सकती है? यह अविद्या की बात है। आकाश को छत के समान मानना हँसी की बात है। यदि किसी प्रकार की पृथ्वी को छत मानते हों तो उनकी घर की बात है।

उत्तर:

आसमान को छत बनाया

इस आयत (2:22) में बल "जअला लकुमु" — अर्थात 'तुम्हारे लिए बनाया' — पर है। और आयत (2:21) "या अय्युहन्नास" से शुरू होती है, जिसमें समस्त मानवता को संबोधित किया गया है। इस प्रकार आयत का सार यह हुआ कि — "हे मानवों! हमने तुम्हारे लिए धरती को बिछौना और आसमान को छत बनाया है।" अर्थात यह संसार तुम्हारे लिए एक घर के समान है, और तुम सब उस घर के निवासी हो। ईश्वर ने तुम्हें वर्ण — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य — और राष्ट्र — शुद्र, म्लेच्छ, असुर, राक्षस आदि का भेद कर के अलग-अलग नहीं बाँटा। क़ुरआन का संदेश है कि तुम सब एक ही परिवार के सदस्य हो; तुम सब आपस में एक दूसरे के भाई की तरह हो। ईश्वर ने यह धरती तुम सभी के लिए बनाई है, और तुम सबका इसपर बराबर अधिकार है। आकाश का यह सूर्य, चाँद, तारे और वायु तुम सबके लिए हैं। अतः विभिन्न देवी-देवताओं या मानवनिर्मित मूर्तियों को ईश्वर का नाम देकर पूजना सत्य के विपरीत है। सच्ची उपासना उसी एकमात्र परमेश्वर की होनी चाहिए, जो समस्त सृष्टि का सर्जक है, अतः तुम उसी की उपासना करो।

इस आयत का उद्देश्य खगोल-विद्या या विज्ञान सिखाना नहीं, बल्कि ईश्वर की एकता (तौहीद) और मानवजाति की समानता को स्थापित करना है।

अब यदि कोई "आसमान को छत" कहने पर हँसे, तो उसे वेदों की वाणी भी सुन्नी चाहिए —

अथर्ववेद (11.3.11): भाष्य, डॉ तुलसी राम

"इयम् एव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्य ओदनस्य द्यौ: अपि धानम्-

This earth is the pan for the boiling of rice, and the heaven is its cover.

यह पृथिवी चावल पकाने का हांडी है और आकाश उसका ढकना।

अथर्ववेद (10.7.32): भाष्य, वैद्यनाथ शास्त्री

"यस्य भूमि: प्रमा अन्तरिक्षम् उत उदरम् दिवम् य: चक्रे मूर्धानम् तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नम:

Our homage to that eternal Supreme Being whose base is this earth and bally this air and who made this sky for His head.

उस शास्वत सर्वोच्च परमात्मा को हम नमस्कार करते है जिसका पैर यह पृथिवी है और जिसका पेट यह वायु है और जिसने इस आसमान को अपना मस्तक बनाया।

यजुर्वेद (31.13): भाष्य, अच्युतानन्द सरस्वती

"नाभ्याः आसीत् अन्तरिक्षम् शीर्ष्णः द्यौः सम् अवर्त्तत पद्भ्यामिति पत् भ्याम् दिशः श्रोत्रात् तथा लोकान् अकल्पयन्

उस विराट की अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्युलोक है, भूमि पैर हैं, कान दिशा तथा लोक हैं।

आकाश को छत के समान मानना हंसी की बात है, परंतु ढक्कन मानना, धरती को चावल पकाने की हांडी कहना, इसी प्रकार माथा, मुख, द्योलोक, नाभि कहना खगोल विद्या।

अरबी शब्दकोश में "सक़्फ़" हर उस चीज़ को कहा जाता है जो ऊपर घेरी और फैली हुई (स्थान) हो। जैसे उर्दू शायरी में कहा जाता है, "ख़ुदा दराज़ करे उम्र-चर्ख-ए-नीली की, कि बेकसों के मज़ारों का शामियाना (तंबू) बना हुआ है।"

यहाँ "नीला जैसा दिखने वाला आसमान" को तंबू या छत कहा गया है — जो रूपक के रूप में है।

भाषा की यह खूबसूरती है कि वह भाव को प्रतीकों में ढाल कर कम से कम शब्दों में लोगों को बड़ा संदेश देती है। क़ुरआन की शैली भी ऐसा ही है — वह मनुष्यों को उनकी अपनी समझ और अनुभव की भाषा में संबोधित करता है, और उससे एक गहरा संदेश देता है । जो लोग भाषा, साहित्य और भाव की गहराई को समझते हैं वो इस शैली की सौंदर्य का आनंद लेते है; पर जिनकी दृष्टि केवल शब्दिक अर्थों तक ही सीमित है वे "आकाश छत" कैसे हुआ? जैसे प्रश्नों में उलझे रहते है और उसकी गहराई को देख नहीं पाते।

टिप्पणी: "आधुनिक विज्ञान के अनुसार, पृथ्वी को चारों ओर से घेरने वाला वायुमंडल एक सुरक्षा कवच की भाँति कार्य करता है। यह अनेक बाहरी खतरों, जैसे सूर्य की हानिकारक विकिरण और अंतरिक्ष से आने वाले उल्कापिंडों, से हमारी रक्षा करता है; ठीक उसी प्रकार जैसे किसी घर की छत सर्दी-गर्मी और वर्षा से सुरक्षा प्रदान करती है। इस प्रकार धरती के संदर्भ में क़ुरआन द्वारा आसमान को छत की संज्ञा देना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी पूर्णतः तर्कसंगत है।"

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

8. जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हम ने अपने पैगम्बर के ऊपर उतारी तो उस कैसी एक सूरत ले आओ और अपने साक्षी अपने लोगों को पुकारो अल्लाह के विना जो तुम सच्चे हो।। जो तुम और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है, और काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गए हैं।। 2:23-24 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला यह कोई बात है कि उस के सदृश कोई सूरत न बने? क्या अकबर बादशाह के समय मौलवी फ़ैज़ी ने बिना नुकते का कुरान नहीं बना लिया था? वह कौन सी दोज़ख की आग है? क्या इस आग से न डरना चाहिए? इस का भी इन्धन जो कुछ पड़े सब है। जैसा क़ुरआन में लिखा है कि काफिरों के वास्ते दोज़ख की आग तैयार की गई है तो वैसे पुराणों में लिखा है कि म्लेच्छों के लिए घोर नरक बना है! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय? अपने-अपने वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं। इसलिए इन सब का झगड़ा झूठा है किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतो में दुःख पावेंगे।

उत्तर:

क़ुरआन का बेमिसाल साहित्यिक शैली

यह एक मौलिक सत्य है कि ईश्वर की रचना की समानता कोई नहीं बना सकता; यदि ऐसा होता तो ईश्वर और मनुष्य में अंतर ही क्या रह जाता? जिस प्रकार ईश्वर की बनाई हुई किसी भी चीज़ की तुलना असंभव है, ठीक उसी प्रकार ईश्वरीय वाणी भी अपनी श्रेष्ठ साहित्यिक शैली (फसाहत व बलाग़त), अपने तर्कसंगत प्रमाणों और अपनी आध्यात्मिक प्रभावशीलता की दृष्टि से अद्वितीय (बेमिसाल) होनी चाहिए। अफसोस की बात है कि वेदों में इस स्तर की कोई विशेषता नज़र नहीं आती, और संभवतः यही कारण है कि आपको इस तथ्य से भी इनकार करना पड़ रहा है।

अब मूल मुद्दे पर आते हैं। पंडित जी का मुख्य तर्क यह है कि कुरआन का यह दावा निराधार है, क्योंकि मुग़लकालीन विद्वान फ़ैज़ी ने एक 'बिना नुक़्ते' (बिना बिन्दी वाला) कुरआन लिखा था। किंतु यह तर्क ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतः गलत है। वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य यह है कि शेख़ फ़ैज़ी (1551–1602 ईस्वी) ने एक 'बिना नुक़्ते' वाली तफ़्सीर (कुरआन की व्याख्या) लिखी थी, जो निस्संदेह एक भाषाई कौशल और तकनीकी उपलब्धि थी।

प्रश्न यह उठता है — यदि फ़ैज़ी की यह 'बिना नुक़्ते' वाली रचना स्वयं में कुरआन जैसी अतुलनीय होती, तो क्या फ़ैज़ी स्वयं इस बात की घोषणा नहीं करता? क्या वो इसे कुरआन की चुनौती के रूप में प्रस्तुत नहीं करता? परंतु ऐतिहासिक अभिलेखों में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत, फ़ैज़ी द्वारा लिखित इसी टीका में हमें स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि वे स्वयं कुरआन की अतुलनीयता के दावे और उसके चमत्कार को पूर्ण रूप से स्वीकार करते थे।

उदाहरण के तौर पर, इसी सूरह अल-बक़रह की आयत 23 पर टिप्पणी करते हुए फ़ैज़ी अपनी तफ़्सीर 'सवाते-उल-इल्हाम' के पृष्ठ 27–28 में लिखते हैं —

"कुरआन के किसी सूरत की समानता नहीं लाई जा सकती, क्योंकि ये सूरतें उच्चस्तरीय भाषा और उत्कृष्ट विषय-वस्तु से युक्त हैं, और यह एक ऐसा दावा है जो सदैव अटल रहेगा।" इस प्रकार, फ़ैज़ी की उपलब्धि कुरआन के दावे को कमज़ोर

करने के बजाय, उनकी स्वयं की इस धारणा को और दृढ़ता से प्रमाणित करती है कि कुरआन का काव्यात्मक और दिव्य स्तर मानव-रचना की पहुँच से परे है।

भौतिक अग्नि और नर्क की आग के अंतर को समझें

पंडित जी का भ्रम इस्लामी शिक्षाओं के प्रति उनकी गहन अज्ञानता को प्रकट करता है। वे एक पूर्णतः भौतिकवादी दृष्टिकोण से आध्यात्मिक अवधारणाओं को परखने का प्रयास करते हैं। जिस प्रकार एक नेत्रहीन व्यक्ति रंगों का वर्णन नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार जो स्वयं ईमान और परलोक के प्रकाश से वंचित हैं, वे नर्क जैसी आध्यात्मिक सच्चाइयों का सार कैसे समझ सकते हैं?

धरती का आग हमारे वश में है। हम उसे अपनी आवश्यकतानुसार नियंत्रित कर सकते हैं — भोजन पकाने के लिए उसे शांत कर सकते हैं, जल गर्म करने के लिए प्रचंड कर सकते हैं, या आवश्यकता समाप्त होने पर उसे बुझा सकते हैं। उसका ताप, प्रकाश और अस्तित्व हमारी सुविधा का भी साधन है।

जबकि नर्क का आग ईश्वरीय दंड है, जो अवज्ञा और पाप में लिप्त रहने वालों के लिए नियत है। यह मानवीय नियंत्रण या बुद्धि की सीमाओं से परे है। न उसे बुझाया जा सकता है, न उसकी तीव्रता कम की जा सकती है और न ही वह किसी सांसारिक उपयोगिता (जैसे प्रकाश या ऊर्जा) का स्रोत है। उसका एकमात्र प्रयोजन ईश्वरीय न्याय की अभिव्यक्ति के रूप में दुःख देना है।

इस प्रकार, दोनों की प्रकृति, उद्देश्य और अस्तित्व में मूलभूत अंतर है। एक सांसारिक साधन भी है, तो दूसरी केवल परलौकिक न्याय की अभिव्यक्ति।

दावों की सत्यता जाँच का विषय

पंडित जी, क्या केवल किसी एक व्यक्ति के दावा कर देने मात्र से दूसरे व्यक्ति का दावा या मुकदमा स्वतः निराधार हो जाता है? उदाहरण के तौर पर, यदि किसी भूमि के संबंध में एक व्यक्ति रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज़ प्रस्तुत कर यह कहे कि वह उस भूमि का विधिसम्मत मालिक है, और दूसरा व्यक्ति बिना किसी प्रमाण के केवल मौखिक रूप से मिल्कियत का दावा करने लगे — तो क्या मात्र इतना कहने भर से दस्तावेज़धारी के दावे को खोटा सिद्ध कर देगा?

और इससे आगे बढ़कर विचार करें — यदि एक पक्ष अपने दावे के समर्थन में कोई प्रमाण प्रस्तुत न करे, और दूसरा पक्ष भी उसी प्रकार निराधार दावा करे, तो क्या वैदिक दर्शन बिना तर्क, परीक्षण या विवेचना के दोनों को ही मिथ्या घोषित कर देगा? ऐसा प्रतीत होता है कि यदि पंडित जी न्यायालयीन प्रक्रिया और तर्क-शास्त्र से कुछ परिचित होते, तो संभवतः ऐसे भ्रमपूर्ण निष्कर्षों से वे स्वयं को बचा पाते।

धर्म और कर्म के महत्व पर विचार

पंडित जी कहते है — "जो धार्मिक हैं, वे सुख पाएँगे और जो पापी हैं, वे सभी मतों में दुःख भोगेंगे।" इसका स्पष्ट अर्थ यह निकलता है कि सुख-दुःख का निर्धारण केवल मनुष्य के "कर्म" से होता है, न कि उसके मत-विशेष से। उनके मतानुसार, सत्कर्मी व्यक्ति चाहे किसी भी मत का अनुयायी हो, सुख का भागी होगा; उसे दुःख प्राप्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार

दुष्कर्मी चाहे किसी भी मत को मानने वाला हो, दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता।

यदि यह सिद्धांत मान लिया जाए, तो फिर प्रश्न उठता है — धर्म की आवश्यकता ही क्या है? यदि धर्म न तो दुःख से छुटकारा दिला सकता है, न ही सुख दे सकता है, तो फिर इसका प्रयोजन क्या रह जाता है? आर्यसमाज किस आधार पर वैदिक धर्म के प्रचार का साहस करते हैं, जबकि उनके अपने सिद्धांत के अनुसार उनका मत व्यक्ति के भाग्य को प्रभावित नहीं करता? यदि पंडित दयानन्द के अनुसार एक दुष्कर्मी आर्य भी दुःख से मुक्त नहीं हो सकता और एक सदाचारी मुसलमान मुक्ति प्राप्त कर सकता है, तो फिर वैदिक मत अपनाने का प्रलोभन क्यों दिया जाता है? क्या यह आर्यसमाज के स्वयं के सिद्धांतों का विरोधाभास नहीं है?

हे दयानन्दियों! तुम्हारे ऋषि ने तो धर्म की प्रासंगिकता ही समाप्त कर दी है। यदि वैदिक मार्ग मुक्ति दिलाने में असमर्थ है, तो तुम्हारा "आर्य" कहलाना निरर्थक है। बुद्धि का प्रयोग करो और उस सनातन सत्य को स्वीकार करो, जो तुम्हें परम मोक्ष का पक्का विश्वास दिलाता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

9. और आनन्द का सन्देशा दे उनलोगों को कि ईमान लाए और काम किए अच्छे। यह कि उन के वास्ते बहिश्तें हैं जिन के नीचे से चलती है नहरें। जब उन में से मेवें के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि यह वो वस्तु हैं जो हम पहिले इस से दिये गये थे। और उनके लिये पवित्र बीवियाँ सदैव वहां रहने वाली हैं। 2:25 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला! यह कुरान का बहिश्त संसार से कौन सी उत्तम बात वाला है? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं और इतना विशेष हैं कि यहाँ जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं। किन्तु यहाँ की स्त्रियां सदा नहीं रहती और वहां बीवियाँ अर्थात उत्तम स्त्रियां सदा काल रहती हैं तो जबतक क़यामत की रात न आवेगी तब उन बिचारियों के दिन कैसे कटते होंगे? हाँ जो खुदा की उनपर कृपा होती होगी! और खुदा ही के आश्रय समय काटती होंगी तो ठीक है। क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलियें गुसाँईयों के गोलोक और मन्दिर के सदृश दिखता है क्योंकि वहां स्त्रियों का मान्य बहुत, पुरुषों का नहीं। वैसे ही खुदा के घर में स्त्रियों का मान्य अधिक और उन पर खुदा का प्रेम भी बहुत है उन पुरुषों पर नहीं। क्योंकि बीवियों को खुदा ने बहिश्त में सदा रखा और पुरुषों को नहीं। वे बीवियाँ बिना खुदा की मर्ज़ी स्वर्ग में कैसे ठहर सकती? जो यह बात ऐसी ही हो तो खुदा स्त्रियों में फस जाय!

उत्तर:

स्वर्ग की नेमतें इस संसार से भिन्न एवं बेहतर

पवित्र क़ुरआन द्वारा वर्णित स्वर्ग की वस्तुएँ इस सांसारिक जीवन की उपलब्ध सुख-सुविधाओं से बिल्कुल भिन्न एवं बेहतर है। पंडित दयानन्द का यह कहना कि "स्वर्ग में वही सब पदार्थ है, जो इस संसार में भी उपलब्ध हैं," एक गहन भ्रम पर आधारित है।

'स्वर्ग' शब्द, अरबी भाषा में "छिपा हुआ बाग़" को कहते है, अर्थात ऐसा बाग़ जो हमारी आँखों से अदृश्य है। स्वयं पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ ने भी इस बात को स्पष्ट किया है, वे कहते है: (स्वर्ग में) सदाचारियों के लिए जो कुछ तैयार किया गया है, उसे न

किसी आँख ने देखा है, न किसी कान ने सुना है और न ही किसी मनुष्य के हृदय में उसकी कल्पना आ सकती है (बुख़ारी-7498)।

स्वयं, कुरआन ने भी इस तथ्य की ओर संकेत कर रखा है (सूरह सजदा, 32:17)। हाँ! यह अवश्य है कि कुरआन में स्वर्ग की वस्तुओं के नाम इस संसार की वस्तुओं — जैसे बाग़, नहरें, शहद, दूध — आदि से मिलते-जुलते हैं। किंतु, इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि उनका स्वरूप, सार या गुणवत्ता भी वैसी ही है। स्वर्ग का प्रत्येक पदार्थ अपनी सारभूत प्रकृति, सुंदरता और गुण में इस सृष्टि की किसी भी वस्तु से बिल्कुल भिन्न एवं अतुलनीय है। उनकी वास्तविक स्थिति और महिमा को समझ पाना हमारी सीमित बुद्धि और कल्पना-शक्ति के बाहर की बात है। सच तो यह है कि जिस वस्तु को किसी ने कभी देखा ही नहीं, उसका बोध कराने के लिए उदाहरण देना पड़ता है, भले ही वह उदाहरण पूरी तरह सटीक न हो। जैसे, यदि कोई बच्चा विवाहित जीवन के सुख के बारे पूछे, तो उसे समझाने के लिए मिस्री की डली जैसी मिठाई का उदाहरण दिया जाता है। स्पष्ट है कि वैवाहिक सुख का मिठाई से कोई वास्तविक समानता नहीं। किंतु, बालबुद्धि में एक आधारभूत समझ विकसित करने का यही एकमात्र उपाय है। इसी प्रकार, जिसने कभी रेलगाड़ी न देखी हो, उसे किसी संकल्पना कराने के लिए किसी ज्ञात वस्तु का उदाहरण देना पड़ेगा।

ठीक इसी प्रकार, पवित्र क़ुरआन में स्वर्ग की अगाध एवं अदृश्य नेमतों का वर्णन करने के लिए परिचित शब्दों और उपमाओं का प्रयोग किया गया है। ये उपमाएँ मात्र समझाने का माध्यम है न कि स्वर्ग का वास्तविक चित्रण। अतः, स्वर्ग की नेमतें इस सांसारिक जगत की किसी भी वस्तु से सर्वथा भिन्न, अद्भुत और अतुलनीय है। उनकी वास्तविक अनुभति और समझ केवल उनको होगा जो उसे प्राप्त करेगा।

सन्यासी की अश्लीलता एवं झूठे आरोप

पवित्र क़ुरआन में समय के चक्र को दर्शाने के लिए या रात के दिन में प्रवेश होने के लिये जिस शब्द का प्रयोग हुआ है वह "नहार" और "लैल" (दिन और रात) हैं, जो समय के बदलते हुए स्वरूप को दर्शाता हैं।

उदहारण के लिए, सूरह अल-इमरान (3:27) —

"ईश्वर रात को दिन में प्रवेश कराता है और दिन को रात में प्रवेश कराता है।"

यहाँ "लैल" (रात) और "नहार" (दिन) शब्दों का उपयोग किया गया है, जो समय के चक्र को दर्शाते हैं।

इसी तरह, सूरह यूनुस (10:6) —

"निश्चय ही रात और दिन के आने-जाने में और उस चीज़ में जो ईश्वर ने आकाशों और धरती में पैदा की है, समझदार लोगों के लिये निशानियाँ हैं।"

यहाँ भी "लैल" और "नहार" शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो समय के बदलते हुए स्वरूप को दर्शाते है।

जबकि पवित्र क़ुरआन में "यौम" शब्द का प्रयोग विशेष रूप से ऐसे महत्वपूर्ण घटनाक्रमों या दिवसों के लिए किया गया है, जो ईश्वर की योजना के लिए निर्णायक हैं, जैसे "यौमुल-क़ियामा" (प्रलय का दिन)। यह शब्द सामान्य "दिन" (नहार) से अलग है और अक्सर ऐसे विशिष्ट, ईश्वरीय घटनाओं को दर्शाता है जो समय की साधारण अवधारणा से परे हैं। पंडित दयानन्द ने

स्वयं अपनी समीक्षा संख्या 3 पर भी प्रलय (क़यामत) पर चर्चा करते हुए "दिन" ही अनुवाद किया है।
किंतु यहाँ वे अचानक "क़यामत की रात" कहकर विरोधाभासी व्याख्या क्यों प्रस्तुत कर रहे हैं? क्या यह किसी सन्यासी की बौद्धिक ईमानदारी को दर्शाता है? जो व्यक्ति स्पष्ट शब्दों के अर्थ को तोड़-मरोड़कर "दिन" को "रात" बताने लगे, उसके दार्शनिक विश्लेषण या शिक्षाओं में कितनी सत्यनिष्ठा हो सकती है? क्या ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करने वाले सन्मार्ग प्राप्त कर सकता हैं? उन अनुयायियों पर तो दया आती है, जो एक हठधर्मी और ईर्ष्यालु व्यक्ति के पक्षपातपूर्ण विचारों में अपना कीमती जीवन व्यर्थ कर रहे हैं। इसी प्रकार, पंडित का यह कथन — "उन बेचारियों के दिन कैसे कटते होंगे?" — यह केवल अशोभनीय या अभद्र टिप्पणी नहीं बल्कि ईशनिंदा है। सामान्य बाज़ारू लफंगे भी ऐसी असंवेदनशील भाषा का प्रयोग करने से हिचकिचाएँगे, जबकि पंडित जो कि सन्यासी होते हुए भी इन जैसी शब्दों का प्रयोग कर रहा है। क्या पंडित के अनुयायी इसी "सभ्यता" को सीखने के लिए उनका अनुसरण करते हैं?
हम मुसलमानों की दृष्टि में तो यह भी उचित नहीं कि पंडित जी की भाँति अमर्यादित भाषा में उत्तर दें। हम यह कहने में भी संकोच करते हैं कि "आपकी स्त्रियों के दिन पति के पास जाने से पहले कैसे गुज़रते होंगे?" हमारी शिक्षा तो हमें सत्य के प्रति सम्मान और विवाद में सभ्यता बनाए रखने का आदेश देता है।
इसी प्रकार, पंडित द्वारा यह कहना कि "स्वर्ग (जन्नत) में स्त्रियों का मान्य अधिकार और ईश्वर का प्रेम पुरुषों की तुलना में अधिक है, और पत्नियों को ही बहिश्त में सदैव रखा जाएगा, पुरुषों को नहीं, पूर्ण रूप से निराधार, ग़लत, और क़ुरआन के विरुद्ध झूठा आरोप है। यह दावा न तो क़ुरआन में कहीं मिलता है, न ही इस्लामी धर्मशास्त्रों में इसका कोई आधार है।
पंडित दयानन्द का यह कथन जानबूझकर ग़लत व्याख्या पर आधारित है। क़ुरआन जैसे पवित्र ग्रंथ के बारे में ऐसी अशोभनीय और झूठे दावे धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिये किये गए है।
इस्लाम मे स्वर्ग की नेमतें स्त्री और पुरुष दोनों के लिए है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

10. आदम को सारे नाम सिखाये। फिर फरिश्तों के सामने करके कहा जो तुम सच्चे हो मुझे उन के नाम बताओ। कहा हे आदम! उन को उन के नाम बता दे। तब उसने बता दिये तो खुदा ने फरिश्तों से कहा कि क्या मैंने तुम से नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथ्वी और आसमान की छिपी वस्तुओं को और प्रकट छिपे कर्मों को जानता हूँ। 2: 30-31 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला ऐसे फरिश्तों को धोखा देकर अपनी बड़ाई करना खुदा का काम हो सकता है? यह तो एक दम्भ की बात है। इसको कोई विद्वान नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता। क्या ऐसी बातों से ही खुदा अपनी सिद्धाई जमाना चाहता है? हाँ! जंगली लोगों में कोई ऐसा ही पाखण्ड चला लेवे चल सकता है; सभ्य जनों में नहीं।

उत्तर:

मनुष्य की श्रेष्ठता फ़रिश्तों और जिन्नों पर

पंडित की त्रुटि यह है कि उन्होंने क़ुरआन की आयत को अधूरा प्रस्तुत कर के लोगों को भ्रमित करने का प्रयास किया है।
घटना के केवल एक-एक अंश को प्रस्तुत करके पूरे संदर्भ को ही विकृत कर दिया।

क़ुरआन की आयत संख्या 30 से 33 में ईश्वर द्वारा हज़रत आदम की सृष्टि और उन्हें पृथ्वी पर 'खलीफ़ा' (प्रतिनिधि) नियुक्त करने की घोषणा का वर्णन मिलता है। पंडित ने इस पूरे घटना को एक अधूरे रूप में प्रस्तुत किया है। आयत 30 में, जब ईश्वर फ़रिश्तों को अपने इस निर्णय से अवगत कराता है, तो वह आश्चर्यचकित होते हैं। उनके मन में यह गुप्त धारणा बन जाती है कि वे ही ज्ञान और ईश्वर की सेवा में सर्वश्रेष्ठ हैं, और उनके पहले सृजित होने के कारण कोई भी नई सृष्टि उनसे अधिक ज्ञानवान नहीं हो सकती। इसी अहंकार के भाव से वे प्रश्न करते हैं — " क्या तू उसे (मनुष्य को) धरती में नियुक्त करेगा जो अराजकता फैलाएगा और रक्तपात करेगा? जबकि हम तो तेरी प्रशंसा के साथ तस्बीह करते हैं और तेरी पवित्रता का बखान करते रहते हैं।"

यह प्रश्न उनके मन में छिपे विशेषाधिकार-बोध को उजागर करता है। ईश्वर ने उनकी इस भ्रांति को तोड़ने के लिए एक प्रयोग किया। उन्होंने हज़रत आदम को ज्ञान प्रदान किया — वह ज्ञान जो केवल मनुष्य की प्रकृति में निहित था। इसके बाद, ईश्वर ने फ़रिश्तों से उन नामों के बारे में पूछा, जो केवल मनुष्यों के प्रकृति में ही डाली गई थी। जब वह उत्तर देने में असफल रहे, तो ईश्वर ने हज़रत आदम से वे सारे नाम बताने को कहा, और आदम ने उन्हें सहजता से बता दिया। यह वह क्षण था जब फ़रिश्तों का अहंकार चूर-चूर हो गया, और उन्हें अपनी सीमाओं का बोध हुआ, तब उन्होंने विन्रम होकर कहा — "हमारा ज्ञान तो केवल वही है जो तूने हमें सिखाया है।" निश्चय ही तू ही सर्वज्ञ और तत्वदर्शी है (आयत 32)।

इस पूरे प्रसंग का सार यह है कि फ़रिश्ते इस बात से अनजान थे कि ईश्वर ने मनुष्य को एक विशेष बौद्धिक क्षमता प्रदान की है जो उसे अन्य बहुत से प्राणियों से श्रेष्ठ बनाती है। साथ ही, यह सिद्ध किया कि केवल 'उतपत्ति में पहले होना' श्रेष्ठता का आधार नहीं है। इन आयतों के सही संदर्भ को समझने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ मनुष्य की बौद्धिक श्रेष्ठता और फ़रिश्तों की भ्रांति के निवारण के वर्णन है — न कि किसी प्रकार की 'धोखाधड़ी' का, जैसा कि पंडित ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

ईश्वर की स्व-घोषणा और दम्भ

जैसा कि हम पूर्व में भी (क्रमांक 5) यह स्पष्ट कर चुके हैं कि सत्य को प्रकट करना कभी भी दम्भ नहीं होता। दम्भ की यह विचित्र परिभाषा केवल एक अज्ञानी व्यक्ति ही दे सकता है। ईश्वर की घोषणाएँ मनुष्यों की तरह किसी कमी को छिपाने या कृत्रिम प्रतिष्ठा पाने के लिए नहीं, बल्कि ज्ञान और मार्गदर्शन देने के उद्देश्य से होती हैं। दम्भ तब होता है जब कोई व्यक्ति असत्य के साथ अपनी प्रशंसा करे या जानबूझकर वास्तविकता से अलग एक छवि बनाए। उदाहरण के तौर पर, वैदिक ईश्वर आर्यों के मत के अनुसार पापों को क्षमा नहीं करता, लेकिन फिर भी वह स्वयं को दयालु कहें, तो यह दम्भ है।

इस्लाम में ईश्वर की परिभाषा ही यह है कि वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। अपने गुणों और स्वभाव का स्पष्ट घोषणा करना उसके लिए दम्भ नहीं, बल्कि ज्ञान और सत्य का प्रसार है। जो लोग ईश्वर की इस स्व-घोषणा को दम्भ समझते हैं, वे अक्सर दार्शनिक गहराई और ईश्वर की पूर्ण अवधारणा को नहीं समझ पाते।

इसलिए, इस प्रकार के तर्क केवल समाज मंदिर में ही चलते हैं; विद्वानों और गंभीर अध्येताओं के समक्ष इनकी कोई

प्रासंगिकता या मान्यता नहीं है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

11. जब हमने फरिश्तों से कहा बाबा आदम को दण्डवत करो, देखा सभों ने दण्डवत किया परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफिर था। 2: 34 क़ुरआन.

समीक्षक:- इस से खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात भूत-भविष्य-वर्तमान की पूरी बाते नहीं जानता। जो जानता हो तो शैतान को पैदा ही क्यों किया? और खुदा में कुछ तेज भी नहीं है क्योंकि शैतान ने खुदा का हुक्म ही नहीं माना और खुदा उसका कुछ भी न कर सका। और देखिए! एक शैतान काफ़िर ने खुदा का भी छक्का छुड़ा दिया तो मुसलमान के कथनानुसार भिन्न जहां करोड़ो काफ़िर है वहां मुसलमानों के खुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है? कभी-कभी खुदा भी किसी का रोग बड़ा देता है, किसी को गुमराह कर देता है। खुदा ने ये बाते शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने खुदा से। क्योंकि बिना खुदा के शैतान का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता।

उत्तर:

ईश्वर सर्वज्ञ है तो गुमराह करने वाला शैतान को क्यों पैदा किया

यदि शैतान के सृजन से ईश्वर की सर्वज्ञता पर प्रश्नचिह्न लगता है, तो फिर उन करोड़ों मनुष्यों के विषय में क्या कहोगे, जो वेद और आर्यों के ईश्वर की सत्ता को नकारते हुए सदियों से उसकी अवज्ञा करते आ रहे हैं? यही म्लेच्छ शक्तियाँ सैकड़ों वर्षों तक आर्यावर्त के गर्दन पर सवार रहीं, और आज भी गौमाता का, सारे विश्व में रात-दिन भक्षण कर स्पष्ट रूप से वेद-विरुद्ध आचरण कर रही हैं। किंतु, हे गोपाल, सर्वज्ञानी आर्यों के परमेश्वर! आज तक तुम उन अवज्ञाकारियों का एक बाल भी बाँका नहीं कर सके। वेद-निहित धर्म की इस प्रकार की अवहलना और गौमाता की दुर्दशा देखकर तो यही प्रतीत होता है कि संसार भर के शक्तिशाली अधर्मियों के समक्ष आर्यों के ईश्वर के छक्के छूट गए, और वह मानो भयभीत होकर दुम दबाए कहीं छिप गया हैं।

इसी प्रकार, यह लोगों की सबसे बड़ी भ्रांति है कि ईश्वर ने शैतान को मनुष्यों को बहकाने या गुमराह करने के लिए उत्पन्न किया। वास्तव में ऐसा नहीं है। शैतान भी अन्य प्राणियों की भाँति ईश्वर की सृष्टि है — एक ऐसी रचना जिसे मनुष्यों की तरह स्वतंत्र इच्छा (स्वेच्छा) प्रदान की गई है, ताकि वह अपने विवेक से अच्छे और बुरे का चयन स्वयं कर सके।

जैसे मनुष्यों को ईश्वर के आदेशों का पालन करने या न करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है, वैसे ही शैतान अथवा जिन्न समुदाय को भी यह स्वतंत्रता प्राप्त है। यह उनकी स्वेच्छा का परिणाम है, न कि ईश्वर की कोई योजना कि वे किसी को भटकाएँ या गुमराह करें। शैतान किसी का हाथ पकड़कर उसे जबरन पथभ्रष्ट नहीं करता, बल्कि वह मात्र एक बुरे सलाहकार की भाँति है — जो मनुष्य को कुकर्मों की ओर आकर्षित करता है, प्रलोभन देता है। यह स्थिति वैसी ही है जैसे संसार में बुरी संगतियों के प्रभाव से उत्पन्न होती है, जहाँ निर्णय अंततः व्यक्ति के अपने विवेक और चयन पर निर्भर करता है।

शैतान का अस्तित्व: नेकी के सच्चे मूल्य की कसौटी

शैतान (बुराई) का अस्तित्व, नेकी के मूल्य और उसके महत्व को उजागर करने के लिए एक आवश्यक पृष्ठभूमि प्रदान करता

है। जिस प्रकार अंधकार के बिना प्रकाश की सार्थकता नहीं समझी जा सकती, ठीक उसी प्रकार बुराई के विपरीत खड़े होकर ही भलाई की वास्तविक शक्ति का सही अर्थों में बोध होता है।

शैतान की चुनौती मनुष्य के लिए एक अवसर है — आत्म-निरीक्षण का, अपनी नैतिक शक्ति को मजबूत करने का और सचेत रूप से धर्म के मार्ग का चयन करने का। यह तथ्य ठीक उसी सिद्धांत पर आधारित है, जैसे एक ऐसा मनुष्य जिसका कोई प्रतिद्वंद्वी न हो, अक्सर सुस्त, आलसी और कमजोर बना रहता है। जबकि वह व्यक्ति जो अपने सामने एक चुनौती को पहचानता है, स्वयं को उसका मुकाबला करने के लिए तैयार करता है और आंतरिक शक्ति का विकास करता है।

संसार में अनेक प्रकार की बुराईयाँ और नकारात्मक प्रभाव मौजूद हैं, जिनमें शैतानी प्रवृत्ति भी एक है। जिस प्रकार किसी भी बुरे प्रेरक को पराजित करके नेकी का मार्ग अपनाना ही सच्ची साहस और बहादुरी का काम है, ठीक उसी प्रकार शैतान जैसी बुरी शक्ति के प्रलोभनों का विरोध करना भी मनुष्य की नैतिक जीत है।

शैतान (बुरी संगति) का प्रभाव किस पर होता है?

इस्लाम की शिक्षा के अनुसार, अल्लाह और इब्लीस (शैतान) के बीच कोई मुकाबला नहीं है। मुकाबला तो मनुष्य और शैतान के बीच है। अल्लाह के नेक बंदों ने हर ज़माने में शैतान को परास्त किया है। इसी सत्य को उजागर करते हुए पवित्र क़ुरआन कहता है —

"निस्संदेह मेरे (सच्चे) बंदों पर तेरा कोई अधिकार नहीं चलेगा।" (सूरह हिज्र, 15:42)

एक अन्य स्थान पर इसी तथ्य को और स्पष्ट किया गया है —

"निश्चय ही उन लोगों पर तेरा कोई अधिकार नहीं है, जो ईमान लाए और अपने रब पर भरोसा रखते हैं।" (सूरह नहल, 16:99)

इसी प्रकार, एक और महत्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश करता है —

"वास्तव में शैतान तो बस अपने मित्रों को नेकी से डराता है।" (सूरह इमरान, 3:175)

लेकिन पंडित साहब यह दावा करते हैं कि "शैतान काफिर ने ईश्वर के छक्के छुड़ा दिए" (नाउज़ुबिल्लाह)। जबकि शैतान मलऊन कहता है —

"और मेरा तुम पर कोई ज़ोर (अधिकार) नहीं था, बल्कि मैंने तुम्हें बुलाया और तुमने मेरी बात मान ली।" (सूरह इब्राहीम, 14:22)

पाठकगण! क़ुरआन ने दो प्रकार के शैतान का वर्णन किया है "मानव रूपी शैतान" और "लानतित इब्लीस" की, अब आप स्वयं निर्णय करें...।

रोग बड़ा देने का उत्तर क्रमांक 6 पर आ चुकी है, और गुमराह करने का उत्तर क्रमांक 59 पर आगे अपने समय पर आएगी इंशाअल्लाह...

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

12. हमने कहा कि ओ आदम! तू और तेरी जोरू बहिश्त में रहकर आनन्द में जहाँ चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के कि पापी हो जाओगे। शैतान ने उनको डिगाया और उनको बहिश्त के आनन्द से खो दिया। तब हम ने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु है। तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है। आदम अपने मालिक की कुछ बाते सिखकर पृथिवी पर आ गया। 2: 35-36-37-38 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिए खुदा की अल्पज्ञता! अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देर में कहा कि निकलो। जो भविष्यत् बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता? और बहकाने वाले शैतान को दण्ड देने से असमर्थ भी दिख पड़ता है। और वह वृक्ष किसके लिए उतपन्न किया था? क्या अपने लिए वा दूसरों के लिये? जो अपने लिये किया तो उस को क्या जरूरत थी? और जो दूसरो के लिये तो क्यों रोका? इसलिए ऐसी बातें न खुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं। आदम साहब खुदा से कितनी बातें सिख आये? और जब पृथिवी पर आदम साहब आये तब किस प्रकार आये? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर? उस से कैसे उतर आये? अथवा पक्षी के तुल्य आये अथवा जैसे ऊपर से पत्थर गिर पड़े?

इस से यह विदित होता है कि जब आदम साहब मट्टी से बनाये गये तो इनके स्वर्ग में भी मट्टी होगी। और जितने वहां और हैं वे भी वहां वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे, क्योंकि मट्टी के शरीर बिना इन्द्रिय भोग नहीं हो सकता। जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये। यदि मृत्यु होता है तो वे वहां से कहाँ जाते है? और मृत्यु नहीं होता तो उनका जन्म भी नहीं हुआ। जब जन्म है तो मृत्यु अवश्य ही है। यदि ऐसा है तो कुरान में लिखा है कि बीवियाँ सदैव बहिश्त में रहती हैं सो झूठा हो जाएगा क्योंकि उन का भी मृत्यु अवश्य होगा। जब ऐसा है तो बहिश्त में जाने वालों का भी मृत्यु अवश्य ही होगा।

उत्तर:

आदम को बहिश्त से तुरंत निकाल दिया

यह कहना कि हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) को "फौरन निकाल दिया गया" — एक स्पष्ट झूठ है। पंडित जी ने "आश्रीवाद देने के थोड़ी देर बाद कहा निकलो" जैसे मनगढ़ंत शब्द गढ़कर पवित्र क़ुरआन पर झूठा आरोप लगाया है। वास्तव में, क़ुरआन में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि ईश्वर ने आदम (अलैहिस्सलाम) को जन्नत में रहने का आदेश दिया था — यह आशीर्वाद नहीं बल्कि आज्ञा थी। पंडित जी को शायद आदेश (Command) और आशीर्वाद (Blessing) का अंतर ही ज्ञात नहीं।

अब यदि इस विषय को पंडित जी के अपने ही तर्क से परखा जाए, तो उनसे एक सरल प्रश्न है — क्या उन्होंने कभी नहीं सुना या अपनी आँखों से देखा कि एक नवजात शिशु जन्म लेता है, और आँखे भी नहीं खोल पाता, और क्षणभर में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है? क्या यह घटनाक्रम उनकी दृष्टि में यह नहीं दर्शाता कि ईश्वर ने एक जीव को जीवन का आशीर्वाद देकर कुछ ही पलों बाद उसे इस संसार से वापस बुलाने का आदेश दे दिया?

क्या पंडित जी के मापदंडों के अनुसार, यह ईश्वर की "अल्पज्ञता" का प्रमाण माना जायेगा? अर्थात, यदि किसी प्राणी को इतनी शीघ्र मृत्यु करनी थी, तो उसे जीवन दिया ही क्यों?

यह तो एक सूक्ष्म उदहारण है। प्रतिदिन लाखों जीव-जंतु जन्म लेते हैं और कुछ ही क्षणों में उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। करोडों पौधे अंकुरित होते हैं और तुरंत ही मुरझा जाते हैं। यह सब, पंडित के तर्क के अनुसार ईश्वर के अल्पज्ञता का सबूत है। और वह यह भी कहने से संकोच नहीं करेंगे कि यदि उनके ईश्वर को यह सब पहले से ज्ञात होता तो उसे वह उत्पन्न ही नहीं करता।

परन्तु, सत्य तो यह है कि ईश्वर अल-हकीम (सर्वज्ञ और तत्वदर्शी) है। उसके प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई ज्ञानपूर्ण उद्देश्य होता है — भले ही वह उद्देश्य मानव की सीमित बुद्धि से परे क्यों न हो। मनुष्य का किसी घटना का कारण न समझ पाना, ईश्वर की अज्ञानता नहीं बल्कि मनुष्य की सीमित समझ का प्रमाण है। "ईश्वर को पता था तो उसने ऐसा क्यों किया?" — इस प्रकार के प्रश्न वास्तव में, ईश्वर को मनुष्य के स्तर पर लाने का प्रयास हैं, जबकि यह स्वयं एक गहन भ्रांति है। ईश्वर की सत्ता, उसका ज्ञान और उद्देश्य मनुष्य की कल्पना और अनुभव के सभी सीमाओं से कहीं ऊपर हैं।

शैतान को दंड देने में ईश्वर असमर्थ

पंडित जी का यह कहना कि "बहकाने वाले शैतान को दंड देने में ईश्वर असमर्थ हैं," एक मनगढ़त आरोप एवं मिथ्या धारणा पर आधरित है। संभवतः यह धारणा इस अवलोकन से उत्पन्न हुई है कि शैतान को तत्काल कोई दंड नहीं मिली। किंतु, यह दृष्टिकोण न्याय प्रक्रिया की गहन समझ के अभाव को दर्शाता है। वास्तविकता यह है कि शैतान को उसके दंभ और अवज्ञा के अपराध की सजा पहले ही प्रदान की जा चुकी है। ईश्वर ने उसे उसके पद और प्राप्त नेमतों से निष्कासित कर के, जो स्वयं में एक गहरी दंड है। और न्याय का सिद्धांत यह माँग करता है कि किसी को भी उसके भविष्य में किए जाने वाले अपराधों के लिए पहले से दंडित नहीं किया जा सकता। शैतान द्वारा अभी तक जो अपराध किए ही नहीं गए हैं, उनके लिए उसे अभी दंड देना न्याय के मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध होगा। अतः, दंड का विलंब ईश्वर की असमर्थता का नहीं, बल्कि उसके न्याय की पूर्णता एवं समयबद्धता को दर्शाता है।

इसी तर्क को आर्य समाज के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। यदि पंडित दयानन्द के दृष्टिकोण से देखें, तो प्रश्न उठता है कि मुसलमान, ईसाई, यहूदी, हिन्दू, बौद्ध, जैनी, नास्तिक — अर्थात आर्य समाज के अतिरिक्त अन्य सभी समुदाय एवं विचारधाराएँ, जो वेद और वेद के ईश्वर को नहीं मानते, और उनकी अवहेलना करते है — क्या ईश्वर के समक्ष दोषी नहीं हैं? यदि उत्तर नहीं है, तो यह आर्यों के उस दावे को ही असंगत सिद्ध कर देगा जो इसे एकमात्र सत्य मानता है। यदि अन्य मार्गों पर चलने वाले दोषी नहीं हैं, तो फिर आर्य धर्म की मान्यताएँ स्वतः ही प्रश्नों के घेरे में आ जाती है। और यदि उत्तर हाँ है कि वे दोषी हैं, तो फिर प्रश्न यह उठता है कि ईश्वर उन्हें अवसर क्यों प्रदान कर रहा है? वह उन समुदायों का विनाश कर के दण्डित क्यों नहीं करता?

इस्लाम के अनुसार, ईश्वर का न्याय तत्काल प्रतिक्रिया का नहीं, बल्कि एक सुनियोजित प्रक्रिया का नाम है। मनुष्य को बुद्धि, विवेक और चुनाव की स्वतंत्रता दी गई है। इस स्वतंत्र इच्छा के दुरुपयोग के लिए तत्क्षण दंड देना, उस परीक्षा और अवसर की व्यवस्था को नष्ट कर देगा जो मानव जीवन का आधार है। अतः, दंड का तुरंत न मिलना ईश्वर की शक्तिहीनता नहीं, बल्कि उसकी असीम धैर्य, दया और न्याय के पूर्ण रूप में लागू करने का लक्षण है।

वृक्ष की ईश्वर को क्या आवश्यकता

ऐसी निरर्थक आपत्तियाँ इतनी तुच्छ होती हैं कि उन पर ध्यान देना भी समय की बर्बादी है। किंतु चूँकि आर्य समाज के लोग इन आपत्तियों पर अत्यधिक गर्व करते हैं, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम इनका उत्तर दें, ताकि उन्हें यह कहने का अवसर न मिले कि इन आपत्तियों का जवाब ही नहीं दिया गया।

पहली बात तो यह है कि ईश्वर को मानने वाले के मुख से यह बात निकल ही नहीं सकती कि ईश्वर ने वह वृक्ष अपने लिए उत्पन्न किया है। इससे स्पष्ट होता है कि पंडित को धर्म का सही ज्ञान नहीं था; यदि उन्हें कुछ ज्ञान होता, तो वे ऐसे शब्दों का प्रयोग कभी न करते।

दूसरी बात यह है कि जो वस्तु अपने लिए नहीं है, उससे किसी को रोकना — यह आपत्ति मूर्खों में तो प्रसिद्ध हो सकती है, परंतु विद्वानों और बुद्धिमान लोगों के बीच इसकी कोई महत्ता नहीं है। क्या आर्य धर्म में कोई वस्तु निषिद्ध नहीं है? यदि कोई वस्तु वर्जित है, तो क्या ईश्वर ने उसे अपने लिए बनाया है या दूसरों के लिए? यदि दूसरों के लिए बनाया है, तो उससे रोका क्यों? और यदि अपने लिए, तो उसे उसकी क्या आवश्यकता थी?

आदम ने कितनी बाते अपने रब से सीखी

पंडित जी यह ग्रंथ लिखते समय किस नशे में थे, यह समझना मुश्किल है। महज़ दो आयतों के अंतराल में ही वे अपनी ही लिखी हुई बात भूल गए। सूरह बकरा (2:31) में स्पष्ट उल्लेख मिलता है — “व-अल्लमा आदमल-अस्मा कुल्लहा” अर्थात् ईश्वर ने आदम को सभी वस्तुओं के नाम सिखाए।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मानव जाति के लिए आवश्यक समस्त मूलभूत ज्ञान एक वृक्ष के बीज के रूप में आदम को प्रदान किया गया था — ऐसे स्पष्ट उल्लेख के पश्चात भी पंडित का यह प्रश्न न केवल अनावश्यक है, बल्कि बौद्धिक दिवालियापन का परिचायक है।

टिप्पणी: सूरह अल-बक़ारह (2:37) में हज़रत आदम द्वारा कुछ विशेष कलिमात सीखने का उल्लेख है। ये शब्द वास्तव में पश्चाताप की प्रार्थना पर आधारित हैं, जिनका उल्लेख सूरह अल-आराफ़ (7:23) में स्पष्ट रूप से हुआ है: "रब्बना ज़लमना अनफुसना व इल्लम तग़फिर लना व तरहमना लनकूनन्ना मिनल ख़ासिरीन।"

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि पंडित दयानन्द द्वारा जो आपत्ति व्यक्त की गई है, वह फरिश्तों के संदर्भ में है, जहाँ आदम को संसार की विभिन्न वस्तुओं के नाम सिखाए जाने का वर्णन है। इस्लाम के अनुसार, यह ज्ञान ईश्वर द्वारा मनुष्य की प्रकृति में बीज रूप में ही निहित कर दिया गया था। जबकि वर्तमान आयत (2:37) में पश्चाताप और क्षमा-याचना के शब्दों का उल्लेख करती है, न कि वस्तुओं के नामों की।

इस प्रकार दोनों संदर्भों के उद्देश्य और विषय-वस्तु में स्पष्ट अंतर है।

आदम धरती पर कैसे उतरे

एक पंडित जो बेचारा एक साधारण देहाती व्यक्ति था। और उस समय के अधिकांश ग्रामीणों की तरह, उसकी समझ भी अपने आस-पास के परिचित संसार तक ही सीमित थी। जब उसने पहली बार रेलगाड़ी के बारे में सुना, तो चकित रह गया।

उसके लिए यह समझ पाना कठिन था कि बिना घोड़े-बैल के कोई वाहन कैसे चल सकती है। उसका मानना था कि किसी भी वाहन को चलने के लिए पशु-शक्ति का होना आवश्यक है। गाँव की सीमित परिवेश और अनुभवहीनता के कारण उसकी बुद्धि भी संकुचित थी, किंतु इसके बावजूद उसे अपने इसी सीमित ज्ञान पर गर्व था!

वे रेलगाड़ी की अविश्वसनीय गति, उसके बिना जानवरों के चलने और रात-दिन लगातार यात्रा करने की बातों को एकदम झूठ मानता था। जो कोई भी ऐसी अकल्पनीय बातें उसके सामने करता, उसका वह उपहास उड़ाता। किंतु, वस्तुतः यह मज़ाक उसकी अपनी मूढ़ता, अल्पबुद्धि और संकीर्ण मानसिकता का ही प्रमाण है। किसी बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह उनका सहज अज्ञान मात्र है।

वह पंडित जिसने अपना अधिकांश जीवन वनों और एकांत स्थानों में बिताया था। सन्यासी जीवन की सादगी और एकांत रहने के कारण कभी आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के चमत्कार को देखने का उसे अवसर ही नहीं मिला। इसलिए, जब पंडित ने सुना कि हज़रत आदम (अलैहिस्सलाम) स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारे गए, तो वे सोच में पड़ गए। और उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि बिना रस्सी या सीढ़ी के कोई व्यक्ति आकाश से कैसे उतर सकता है? उनके पास तो पक्षियों की भाँति पंख भी नहीं थे! वे हैरानी से पूछते है: क्या स्वर्ग कही पहाड़ पर है, या कही आकाश में है? संभवतः वे सोच रहे होंगे यदि स्वर्ग किसी पहाड़ पर है, तो किसी प्रकार चढ़ने का उपाय किया जा सकता है; किंतु यदि वह आकाश में कही हो, तो फिर हमारी सारी बुद्धि व्यर्थ है!

स्वप्न में भी पंडित जी ने कभी आकाश में उड़ने की कल्पना नहीं कि होगी। यदि किसी ने उन्हें हवाई जहाज के बारे में बताने का प्रयास किया होता, तो उनकी बुद्धि भ्रमित हो जाती। वे अवश्य ही पूछते, क्या यह कोई पक्षी या जानवर है? आकाश में यह टिका किस पर है? क्या यह सीढ़ी से उतरता है या पंख फड़फड़ाता है? अथवा पत्थर की भाँति सीधा गिरता है? लेकिन जब कोई उन्हें समझाता, नहीं पंडित जी, यह एक मानव-निर्मित यान है, जिसमें सैकड़ों लोग बैठ सकते हैं। यह बिना पंख फड़फड़ाए हवा में सरलता से उड़ता है और धरती पर सहजता से उतर जाता है, तो पंडित जी विचिलित हो उठते और चिल्ला पड़ते, झूठ! यह सब झूठ है! ऐसी बातें कहने वालों पर कभी विश्वास मत करो।

इस सबका मूल कारण यही था कि पंडित ने ऐसी अद्भुत घटनाएँ या अविष्कार कभी नहीं देखे थे। जिसे मानवीय उपकरणों का ज्ञान न हो और जिसकी बुद्धि नई बातें सुनते ही अस्वीकार करने पर उतारू हो जाए, वह इनकार के अलावा और कर भी क्या सकता है? यदि वह ईश्वर की सृष्टि के अगाध और चमत्कारिक रहस्यों से अनभिज्ञ है, तो आश्चर्य की बात क्या है? परंतु, जो व्यक्ति ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे सर्वशक्तिमान मानता है, भले ही उसका जीवन कितना ही साधारण क्यों न हो, वह ईश्वर की शक्ति पर कभी संदेह नहीं करता। वह पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता है कि क्या स्वर्ग से पृथ्वी पर सुरक्षित उतारना सर्वशक्तिमान ईश्वर के लिए असंभव है? क्या पंडित दयानन्द के धर्म में उनका ईश्वर इतना दुर्बल है कि वह किसी प्राणी को आकाश से सुरक्षित तक नहीं उतार सकता?

"व-मा क़दरुल्लाहा हक्का कद्रिहि — 39:67 क़ुरआन..."

फ़रिश्तों में कामवासना या भौतिक इच्छाएँ नहीं

पंडित जी की बुद्धिमत्ता और तार्किक दृष्टि ने दार्शनिकों एवं विचारकों को भी पीछे छोड़ दिया है! उनका यह कथन तो अद्भुत है: "जब आदम साहब मिट्टी से बने हैं, तो स्वर्ग की प्रत्येक वस्तु भी मिट्टी की ही होगी। वहाँ उपस्थित सभी फ़रिश्ते और प्राणी मिट्टी के ही होंगे!" क्या यदि किसी स्थान पर कोई एक पदार्थ पाया जाए, तो उस स्थान की समस्त वस्तुएँ उसी से निर्मित होंगी? संसार भले ही इसे मूर्खतापूर्ण माने, पर पंडित जी की प्रतिभा इसे 'सत्य' मानती है! उदाहरण के लिए, यदि उन्हें यह ज्ञात हो कि जापान में लकड़ी के घर हैं, तो वे अपने 'तर्क' द्वारा यह सिद्ध कर देंगे कि वहाँ के पत्थर, नदियाँ, मनुष्य, यहाँ तक कि जल भी लकड़ी के हैं! ऐसी विलक्षण तर्क-शैली वाले शायद पंडित जी ही इस धरती पर एकमात्र व्यक्ति हैं।
दयानन्दी समाज को बधाई हो कि उनका विद्वान बुद्धि-विवेक में अद्वितीय है। पंडित के अनुसार, यदि किसी स्थान के किसी एक निवासी में कोई विशेषता है, तो वहाँ के सभी प्राणियों में वही विशेषता होनी चाहिए! उनके इस 'सिद्धांत' के अनुसार:
· जिस देश में गाय-भैंसों के सींग और पूँछ होती हैं, वहाँ के मनुष्य और पक्षी भी सींग-पूँछ वाले होंगे!
· जहाँ कोई पंखदार पक्षी रहता है, वहाँ की प्रत्येक वस्तु और प्राणी के पंख होंगे!
किंतु पंडित का यह 'दर्शन' शिक्षित आर्य समाजियों को भी हास्यास्पद लगता होगा।
पंडित ने अपने इस काल्पनिक तर्क को सत्य सिद्ध करने के लिए एक 'प्रमाण' दिया है: "मिट्टी के शरीर के बिना इंद्रिय-सुख संभव नहीं है।" किंतु फ़रिश्तों को मनुष्यों जैसी कामनाएँ और गुण देना पंडित की स्वयं की कल्पना है। क़ुरआन या हदीस में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता कि फ़रिश्तों में कामवासना या भौतिक इच्छाएँ होती हैं।

मृत्यु मिट्टी का अभिन्न अंग नहीं

हे शिक्षित आर्य! तुम्हारे ऋषि ने यह दावा किया है कि "जो भी पार्थिव (मिट्टी का) शरीर है, उसे मृत्यु अवश्य आएगी।" यानी, मिट्टी से बने शरीर की मृत्यु निश्चित है। पर प्रश्न यह है —

1. यदि मिट्टी के शरीर को मरना अनिवार्य है, तो क्या मृत्यु मिट्टी का अभिन्न अंग है?
2. यदि ऐसा है, तो मिट्टी के शरीर वालों का जीवित रहना असंभव होगा। क्योंकि, यदि मृत्यु मिट्टी का हिस्सा है, तो कोई भी शरीर कैसे जीवित बच सकता है?
3. यदि मृत्यु उसका अभिन्न अंग नहीं, तो इसकी कोई वजह (कारण) होगी। यह वजह या तो मिट्टी स्वयं है, या फिर कोई बाहरी कारक (जैसे ईश्वर)।

• यदि वजह मिट्टी है, तो वही दोष लागू होता है जो ऊपर बताया गया। क्योंकि, यदि कारण मौजूद है, तो उसका प्रभाव तुरंत दिखना चाहिए। जबकि हकीकत यह है कि हम मिट्टी के बने होने के बावजूद जीवित हैं!

• यदि वजह ईश्वर है, तो मृत्यु उसकी इच्छा है। या फिर, ईश्वर की इच्छा के पीछे कोई अन्य कारण है?

यदि आप कहें कि "कोई अन्य कारण है", तो यह दोषपूर्ण है। क्यों?

• मृत्यु देना ईश्वर की कुदरत (शक्ति) है। यदि यह शक्ति किसी अन्य (गैर-ईश्वरीय) कारण से सिद्ध होती है, तो इसमें शिर्क का दोष आता है।

• यदि मृत्यु ईश्वर की इच्छा से है, तो वह मिट्टी के शरीर को अनंत जीवन क्यों नहीं दे सकता? अर्थात, मृत्यु का मिट्टी से कोई संबंध नहीं। ईश्वर जब चाहे, जिसे चाहे, जीवन-मृत्यु दे सकता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

13. उस दिन से डरो जब कोई जीव किसी जीव से कुछ भरोसा न रखेगा। न उस की सिफ़ारिश स्वीकार की जावेगी, न उससे बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे। 2: 48 कुरआन.

समीक्षक:- क्या वर्त्तमान दिनों में न डरें? बुराई करने में सब दिन डरना चाहिये। जब सिफ़ारिश न मानी जावेगी तो फिर पैग़म्बर की गवाही वा सिफ़ारिश से खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी? क्या खुदा बहिश्त वालों ही का सहायक है; दोज़ख वालों का नहीं? यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है।

उत्तर:

परलोक का भय और सिफ़ारिश

पंडित जी, क्षमा करें, आपकी बुद्धि इस पुस्तक को लिखते समय, अंधकार में फंसकर नष्ट हो चुकी थी — (स.प. भूमिका, पृष्ठ 16)।

क़ुरआन की आयत का आशय है कि मनुष्य को उस दिन (प्रलय) से डरना चाहिए, जब उसे अपने आज के कर्मों का हिसाब देना होगा। जब कोई यह सोचे कि प्रत्येक कर्म के लिए उसे जवाबदेह ठहराया जाएगा, तो स्वाभाविक रूप से उसके मन में भय उत्पन्न होगा और वह सावधानीपूर्वक कार्य करेगा। इसीलिए कहा — "उस दिन से डरो और आज के कर्मों को सुधारो।"
अब प्रश्न यह उठता है कि क्या क़ुरआन की किसी आयत में "आज के दिन से मत डरो" जैसा कोई उपदेश मिलता है?
क़ुरआन के अनेक स्थानों पर ईश्वर से डरने (तक़्वा) की शिक्षा दी गई है। उदाहरण के तौर पर, सूरह हश्र (59:18) "ऐ ईमान वालों! ईश्वर से डरते रहो, और हर व्यक्ति यह देखे कि उसने आने वाले कल (परलोक) के लिए पहले से क्या भेजा है। ईश्वर से डरते रहो, निःसन्देह वह तुम्हारे कर्मों से पूरी तरह अवगत है।" जब पवित्र क़ुरआन में वर्तमान जीवन के कर्मों से सचेत रहने और ईश्वरीय दंड से डरने का स्पष्ट निर्देश है, तो फिर इस प्रकार की आपत्ति करने का क्या आधार रह जाता है?
यह आपत्ति भी निराधार और अज्ञानतापूर्ण है। पवित्र क़ुरआन में स्पष्ट रूप से वर्णित है (सूरह बकरा, 2:255) "ईश्वर के सामने सिफ़ारिश केवल उसी की स्वीकार होगी, जिसे वह स्वयं अनुमति दे..."
इस आयात का आशय यह है — जिस पर पंडित ने अनुचित आपत्ति की है — कि काफिर जिन मूर्तियों और तागुतों (झूठे देवताओं) को अपना सहायक मानते थे, और यह समझते थे कि ये उनकी ओर से सिफ़ारिश करेंगे, क़ुरआन ने उस मिथ्या धारणा का पूर्णतः खंडन किया है। ईश्वर पर किसी का कोई बल या दबाव नहीं चल सकता कि कोई व्यक्ति अपने कर्मों का ढेर लगाकर ईश्वर को सिफ़ारिश के लिए विवश कर देगा। बल्कि, सच्चाई यह है कि ईश्वर अपने चुनिंदा और विशेष बंदों में से जिसे चाहेगा, उसे ही यह सिफ़ारिश का अनुमति देगा।

निःसन्देह, ईश्वर बहिश्तवालों का सहायक

यह कैसी मूर्खों वाली आपत्ति है कि "ईश्वर स्वर्गवासियों (बहिश्त वालों) का सहायक है, नरकवासियों (दोज़ख वालों) का नहीं"?

निःसंदेह, ईश्वर तो उन्हीं का सहायक होता है जो धर्ममय, सदाचारी और सत्य को स्वीकारने वाले और सत्य मार्ग पर चलने वाले होते हैं। अब क्या पंडित जी यह चाहते हैं कि पापी और अधर्मी व्यक्तियों के साथ धर्मी और सदाचारी लोगों का समान व्यवहार किया जाए?

यदि ऐसा ही है, तो फिर वे यह भी बताएं कि उनका ईश्वर केवल धर्मपरायणों को ही आशीर्वाद क्यों देता है, अधर्मियों को क्यों नहीं? ऋग्वेद (1.39.2) भाष्य दयानन्द सरस्वती। इसी प्रकार ऋग्वेद (9.11.7) में आर्यमुनि के भाष्य के अनुसार ईश्वर नास्तिकों और अधर्मियों का नाश करने वाला तथा सद्गुणी भक्तों की कामनाएँ पूर्ण करने वाला है। यदि ईश्वर पक्षपाती नहीं है तो फिर सद्गुणी लोगों की कामनाएं पूरी करने वाला क्यों? नास्तिकों अधर्मियों की कामनाएं पूरी करने वाला क्यों नहीं? और केवल नास्तिकों का नाश करने वाला क्यों है? धर्मी और सदाचारियों का नाश करने वाला क्यों नहीं?

इस प्रकार की आपत्तियाँ वस्तुतः मूर्खता की पराकाष्ठा हैं — क्योंकि जो ईश्वर न्यायकारी है, वह अधर्मी और धर्मी को समान नहीं ठहरा सकता।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

14. हमने मूसा को किताब और मौज़िजे दिये। 2: 53 कुरआन.

समीक्षक:- जो मूसा को किताब दी तो कुरान का होना निर्थक है। और उस को आश्चर्यशक्ति दी यह बाइबल और कुरान में भी लिखा है परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं। क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता, जो अब नहीं तो पहिले भी न था। जैसे स्वार्थी लोग आज कल भी अविद्वानों के सामने विद्वान बन जाते हैं वैसे उस समय भी कपट किया होगा। क्योंकि खुदा और उस के सेवक अब भी विद्यमान हैं पुनः इस समय खुदा आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता? और नहीं कर सकते? जो मूसा को किताब दी थी तो पुनः कुरान का देना क्या आवश्यक था? क्योंकि जो भलाई बुराई करने न करने का उपदेश सर्वत्र एक सा हो तो पुनः भिन्न भिन्न पुस्तक करने से पुनरूक्त दोष होता है। क्या मूसा जी आदि को दी हुई पुस्तकों में खुदा भूल गया था?

उत्तर:

ईश्वर समस्त वेद एक ऋषि को देना भूल गया था

पूर्वग्रंथो के बाद क़ुरआन की आवश्यकता क्यों? का उत्तर क्रमांक 5 में विस्तार से देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदि पंडित के कथनानुसार अग्नि ऋषि को ऋग्वेद प्रदान किया गया, तो फिर आदित्य को सामवेद देने का क्या तुक है? सामवेद में तो अधिकांश मंत्र ऋग्वेद से ही लिए गए हैं — कुल लगभग 1875 मंत्रों में से केवल 250 से 300 मंत्र ही नए हैं, शेष सभी ऋग्वेद से लिये गए हैं। ऐसे में तो ये मंत्र अग्नि ऋषि को ही क्यों नही दे दिए गए?

यदि यह कहा जाए कि सामवेद के मंत्र गाने के लिए निर्धारित हैं, तो फिर ऋग्वेद में ही निर्देश दिया जा सकता था कि 'अमुक मंडलों एवं मंत्रों को गाने के लिए भी उपयोग कर लिया करो।' इसी प्रकार, यजुर्वेद और अथर्ववेद का अधिकांश हिस्सा

ऋग्वेद से और एक-दूसरे से लिया गया है। हे पंडित जी, यदि अग्नि ऋषि को वेद दिया गया था, तो बाकियों को अलग-अलग से वेद देने की आवश्कयता क्या थी? क्या एक ही ऋषि को एक ही वेद में समस्त ज्ञान नहीं दिया जा सकता था? या फिर ईश्वर ऐसा करना भूल गया था?

मौजिज़ा के ऊपर दयानन्द जी का अद्‌भुत तर्क

पंडित जी की बुद्धि पर आखिर कितना दुःख और अफ़सोस किया जाए! इन्हें इस बात का भी मौलिक ज्ञान नहीं कि किसी घटना को सिद्ध करने के लिए किन साक्ष्यों की आवश्यकता होती है अथवा उसके अस्वीकार करने के लिए किन तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है। यदि दुर्भाग्यवश पंडित किसी समुदाय का न्यायाधीश या मजिस्ट्रेट बन जाते और उसके समक्ष कोई चोर प्रस्तुत किया जाता, जिसके अपराध को प्रमाणित करने के लिए सुबूत और गवाह उपस्थित किए जाते, तो पंडित के लिए उस घटना को निराधर ठहराने के लिए बस यही तर्क पर्याप्त होता कि "यदि इसने पहले चोरी की थी, तो अब क्यों नहीं करता? यदि अब नहीं करता, तो सिद्ध हुआ इसने पहले भी नहीं कि थी।" और यदि पंडित का न्यायाधीश काल-सदियों तक चलता, तो पुलिस की छानबीन और गवाहों के बयानों के बावजूद किसी एक अपराधी को भी दोषी सिद्ध नहीं किया जा सकता था — क्योंकि पंडित जी का यह अनोखा तर्क हर मामले पर भारी पड़ जाता।

पंडित जी! किसी भी घटना की सत्यता का निर्धारण विश्वनीय सूचना, सुबूतों और प्रमाणों पर आधारित होता है। उसे झूठलाने के लिए केवल झूठ बोल देने से काम नहीं चलता — इसे सिद्ध करने के लिए किसी न किसी दृश्य या परिस्थितिजन्य कमी की आवश्यकता होती है — जैसे कि स्मरणशक्ति की कमज़ोरी, दृश्य की अस्पष्टता, गवाहों की ईमानदारी पर संदेह, या बयान में स्पष्ट विरोधाभास। तभी जाकर किसी घटना को झूठा ठहराया जा सकता है।

यह बात तो किसी बुद्धिमान व्यक्ति को समझाने के लिए है, किंतु हमारे पंडित जी और उनके अंधभक्तों के लिए मैं इसे और सरल कर देता हूँ — इसी मापदंड को अपने घर की बातों पर तोलकर देखों, फिर स्वयं निर्णय करो कि क्या यह तर्क योग्य है?

आर्य समाज के आस्था के अनुसार, ईश्वर ने चार ऋषियों पर वेदों का प्रकाशना किया था। तो हे समाजियों! स्पष्ट करो — ईश्वर अब क्यों नहीं वेदों की प्रकाशना करता? यदि अब नहीं करता, तो पहले भी नहीं करता था — क्योंकि यदि वह ऐसा करता, तो अवश्य ही अब भी करता। पंडित दयानन्द के अपने कथन के अनुसार यह स्वार्थी लोगों का कपट होगा। और सुनो! स.प., अष्टम समुल्लास, पृष्ठ 184 में लिखा है कि आदि सृष्टि में सैकड़ो लोग जवान अवस्था में बिना माता-पिता के उत्पन्न हुए। यदि यह बात सत्य है, तो अब ऐसे मनुष्य क्यों नहीं जन्म लेते? यदि अब नहीं लेते, तो पहले भी नहीं लिए। आर्य सिद्धांत के अनुसार, यह भी स्वार्थी लोगो का कपट होगा।

पाठकों! अब आप ही निर्णय करें कि वह तराज़ू, जिसपर पंडित दयानन्द ने क़ुरआन और बाइबिल को तोला था, उसी तराज़ू पर जब वेद और उनके दावे रखे जाते हैं, तो उनका क्या हाल होता है — आप स्वयं देख लीजिए।

15. और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करने वालों के। 2: 58 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला यह खुदा का उपदेश सब को पापी बनाने वाला है वा नहीं? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्य को मिलता है तब पापों से कोई नहीं डरता। इसलिये ऐसा कहने वाला खुदा और खुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह न्यायकारी है, अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो जाता है किन्तु यथापराध दण्ड ही देने में न्यायकारी हो सकता है।

उत्तर:

पापों के क्षमा करने का उद्देश्य

निःसन्देह, संसार में पाप की सज़ा का उद्देश्य पापी या अपराधी का सुधार होता है, न कि न्यायाधीश के क्रोध की तुष्टि। यदि यह उद्देश्य बिना दंड दिए ही प्राप्त हो सकता है — जैसे हम अपने बीवी-बच्चों की अक्सर गलतियों को क्षमा कर देते है — तो दंड देना निरर्थक सिद्ध हो जाता है। अक्सर देखा गया है कि जब अपराधी को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि उसे उसके पापों की सज़ा निश्चित रूप से मिलेगी, तो वह यह सोचकर और भी कठोर बन जाता है। उसका तर्क होता है — "अब जब मुझे दंड मिलना ही है, तो क्यों न अपने शत्रुओं का भी नाश कर दूँ?" ऐसी स्थिति में केवल क्षमा की संभावना ही उसे आगे के अपराधों से रोक सकती है — सूरह ज़ुमर (39:53)। परंतु, पंडित जी इस सत्य तक नहीं पहुँच पाए। इसका कारण उनके मत की वह सीमा है, जो ईश्वर को क्षमाशीलता के गुण से विहीन मानती है। जबकि पापियों का क्षमा किया जाना सभी धर्मों में मान्य है, और सनातन धर्म में भी इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। स्वयं आर्य समाज द्वारा किये गए वेद के भाष्य में भी पाप-क्षमा के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है। उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (8.6.12) — भाष्यकार शिव शंकर शर्मा

"हे भगवन्! अज्ञानी जन आपकी स्तुति नहीं करते, ज्ञानी पुरुष आपके गुणों का गान सदा करते ही रहते हैं। हे भगवन्! मैं भी आपकी स्तुति करता हूँ। सबका अपराध क्षमा करके सबके कल्याण की वृद्धि कीजिये।"

ऋग्वेद (8.45.34-35) — भाष्यकार शिव शंकर शर्मा

"हे न्यायी महावीर परेश! हम दुर्बल जनों को एक अपराध होने पर मत दण्डित करें। दो अपराध हो जाने पर हमको दण्ड न देवें, तीन अपराध होने पर भी हमको दण्ड न देवें। बहुत अपराध होने पर भी हमको दण्ड न देवें। आपके समान न्यायवान् से मैं सदा डरता रहता हूँ। हे भगवन्! जिस कारण आप पापियों के प्रति महा भयङ्कर हैं, चारों तरफ से दुष्टों को भग्न करनेवाले हैं, पापियों को दूर फेंकनेवाले हैं, अतः मैं डरता हूँ।"

भाष्यकार शिव शंकर शर्मा जी इन मंत्रों का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं — "इसमें प्रार्थना की गई है कि अपराध होने पर भी आप हमको दण्ड न देवें। इस पर उपासक मन में कहता है कि — हे ईश! मैं जानकर अपराध न करूँगा। आपको मैं जानता हूँ, आप न्यायाधीश हैं। पापी आपके निकट नहीं रह सकता, अतः आपसे मैं सदा डरता हूँ, आपके नियम पर चलता हूँ; तथापि यदि अपराध हो जाए, तो कृपा कर क्षमा करें।"

आर्य समाज एक ओर ईश्वर से नम्र प्रार्थना का उपदेश देता है, पर दूसरी ओर यह भी कहता है — "पाप की सज़ा भोगे बिना

न्याय संभव नहीं," (सप्तम समुल्लास, पृष्ठ 148) अर्थात, मात्र प्रार्थना करने से क्षमा नहीं मिलती। अब विचार कीजिए — यदि सच्चे पश्चाताप और प्रायश्चित के बाद, ऐसी नम्र और विनम्र प्रार्थना का उत्तर यही हो कि — "तुझे अपने अपराधों की सज़ा अवश्य मिलेगी, क्योंकि बिना दंड के न्याय संभव नहीं," तो फिर ऐसी प्रार्थना का क्या अर्थ रह जाता है? एक साधारण दुकानदार या बनिया भी अपने नौकर की सच्चे मन से की गई क्षमायाचना पर उसे माफ कर देता है। परंतु, आर्यों का ईश्वर — जो सर्वज्ञ, दयालु और क्षमाशील कहा जाता है — अपने भक्तों की हृदय से निकली प्रार्थना सुनकर भी दया नहीं करता! पंडित दयानन्द का यह दृष्टिकोण ईश्वर को एक लेन-देन के व्यापारी तक सीमित कर देता है मानो वह कोई साधारण सौदागर हो, जो "कर्म" के बदले "सुख" और "दुःख" देता है।

इसके विपरीत, पवित्र क़ुरआन केवल दावे नहीं करता, बल्कि उस सच्चे और जीवंत ईश्वर से परिचित कराता है जो उपर्युक्त सभी गुणों पर पूर्णतः खरा उतरता है। क़ुरआन का ईश्वर वह सत्ता है जो सर्वज्ञ है — अर्थात अपने भक्तों के हृदय की गहराई को जानने वाला है। वह सर्वक्षमाशील है — अर्थात अपने भक्तों के पापों को क्षमा कर देने वाला है। वह सर्वदयालु है — अर्थात अपने भक्तों के सद्कर्मों पर बड़ा कृपा करने वाला है। और वह सर्वशक्तिमान भी है — अर्थात उसके हाथों में सम्पूर्ण न्याय और दया दोनों का नियंत्रण है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

16. जब मूसा ने अपनी क़ौम के लिये पानी मांगा, हम ने कहा कि अपना असा (दण्ड) पत्थर पर मार। उस में से बारह चश्मे बह निकले। 2:60 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये! इन असम्भव बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा? एक पत्थर की शिला में डण्डा मारने से बारह झरनों का निकलना सर्वथा असम्भव है। हाँ! उस पत्थर को भीतर से पोलाकर उस में पानी भर बारह छिद्र करने से सम्भव है; अन्यथा नहीं।

उत्तर:

मौजिज़े की प्रकृति

यह बड़ी हैरानी की बात है कि ईश्वर के किसी कार्य को एक समय पर संभव माना जाए और दूसरे समय पर उसी को असंभव करार दिया जाए। यदि सृष्टि के प्रारंभ में ईश्वर पृथ्वी के गर्भ से हज़ारों पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न कर सकता है — और केवल मनुष्यों को ही नहीं, बल्कि समस्त प्राणियों के जोड़े को भी युवा अवस्था में वृक्षों की भाँति धरती से उत्पन्न कर सकता है (ऋ.10.18.10) — तो फिर वही ईश्वर यदि पत्थर या पहाड़ में से बारह झरने प्रवाहित कर दे, तो यह कैसे असंभव या अतर्कसंगत हो जाता है? जब प्रारंभ सृष्टि में ईश्वर ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिससे समस्त प्राणी युवा अवस्था में वृक्षों की भाँति धरती से उत्पन्न हो गए, तो क्या वही सर्वशक्तिमान ईश्वर ऐसी स्थिति उत्पन्न करने में असमर्थ है कि पहाड़ भाँति पत्थर से जल की धाराएँ बहा दें? इसी प्रकार क्या वह उसी संसार के किसी भाग में अपने सामर्थ्य का प्रकाश पुनः प्रकट नहीं कर सकता?

वास्तव में, ऐसी आपत्तियों का मूल कारण यह है कि कुछ घटनाएँ हमें प्रकृति के स्थापित नियमों के विपरीत प्रतीत होती हैं।

सामान्य रूप में ऐसी घटनाओं को "अतिप्राकृतिक" या "अलौकिक" कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर, पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहना है; यदि वह ऊपर की ओर बहे तो यह नियम-विरुद्ध लगेगा। इसी प्रकार, अग्नि का स्वभाव जलाना है; यदि वह किसी को न जलाए, तो यह एक असाधारण घटना मानी जाएगी। किंतु प्रश्न यह है — क्या यही एकमात्र नियम ईश्वर के हैं? निश्चित रूप से नहीं। ईश्वर के सभी कार्य किसी-न-किसी कारण सूत्र से बँधे हैं, परंतु हमारी सीमित बुद्धि उन सभी कारणों को समझ नहीं पाती। उदाहरण के तौर पर, जन्म का सामान्य नियम कहता है कि एक बकरी का बच्चा चार पैर, दो सींग और दो आँखों वाला होगा। किंतु यदि किसी बकरी के बच्चे की एक ही आँख माथे पर हो, और हमें केवल सामान्य नियम की ही जानकारी हो, तो क्या यह घटना प्रकृति के विरुद्ध कहलाएगी? नहीं। इसका अर्थ केवल इतना है कि इसके पीछे भी कोई विशेष जैविक नियम कार्य कर रहा है, जिसका हमें अभी ज्ञान नहीं है। हमारी अज्ञानता किसी घटना को अप्राकृतिक सिद्ध नहीं करती।

चन्द्रमा, सूर्य और अन्य ग्रहों के अपने-अपने विशिष्ट नियम हैं — कुछ का हमें ज्ञान है, तो अनेकों का नहीं। जिन नियमों से हम अनभिज्ञ हैं, उनके अस्तित्व को नकार देना उचित नहीं। ठीक इसी प्रकार, पैग़म्बरों द्वारा प्रदर्शित मौजिज़े — अर्थात वे घटनाएँ जो सामान्य प्राकृतिक नियमों के विपरीत प्रतीत होती हैं — वास्तव में ईश्वर के ही किसी गहरे और हमारी समझ से परे नियम के अंतर्गत घटित होती हैं। ये घटनाएँ ईश्वर के उस विशिष्ट नियम-तंत्र (व्यवस्था) का ही परिणाम हैं, किंतु मनुष्य की सीमित बुद्धि उन्हें "अतिप्राकृतिक" कह देती है। जब कि ईश्वर के लिए "अतिप्राकृतिक" या "अलौकिक" जैसी कोई चीज़ नहीं होती। ईश्वर हर घटना को अपने ही किसी नियम के अनुसार घटित करता है — चाहे वह नियम मनुष्य की समझ में आए या नहीं आए। यही मौजिज़े की वास्तविक परिभाषा है। इसलिए, यदि कोई विश्वनीय स्रोत किसी ऐसी घटना की प्रामाणिक सूचना दे, तो उसे केवल असमान्य कहकर अस्वीकार कर देना तर्कसंगत नहीं है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

17. हम ने उन को कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उन को शिक्षा ईमानदारों को। 2:65-66 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो खुदा ने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय देने के लिए कहा था तो उसका कहना मिथ्या हुआ व छल किया। जो ऐसी बाते करता और जिस मे ऐसी बाते हैं वह न खुदा और न यह पुस्तक खुदा का बनाया हो सकता है।

उत्तर:

बनी-इस्राइल का बंदर बनना

पंडित का यह कथन कि — "यदि ईश्वर ने केवल भय देने के लिए कहा था, तो वह 'मिथ्या' और 'छल' हुआ," — यह भी एक विचित्र तर्क है। यदि किसी व्यक्ति के पास अपने नौकर को नौकरी से निकाल देने का अधिकार है, और वह उसे स्पष्ट चेतावनी देता है कि "यदि तुम अपना कार्य ठीक ढंग से नहीं करोगे, तो तुम्हें नौकरी से निकाल दिया जाएगा," तो क्या ऐसी चेतावनी देना उसे झूठा या धोखेबाज़ बना देता है?

पंडित जी के इस प्रकार के अजीबोगरीब तर्क केवल अज्ञानी या सतही सोच वाले लोगों को ही भ्रमित कर सकते हैं।

अब जहाँ तक "बंदर बनाए जाने" की बात है, तो यह तो पहली कक्षा के विद्यार्थी को भी समझ में आने वाली बात है कि यदि वे बंदर न बनाए जाते, तो दूसरों के लिए "इबरत" (शिक्षा/उदारहण) कैसे बनती?

इतनी सरल बात को जो व्यक्ति न समझ सके और फिर भी स्वयं को "समीक्षक" कहे, वह न केवल बुद्धिहीन है, बल्कि अपनी मनमानी व्याख्याओं से लोगों का मात्र मनोरंजक है।

ऐसा व्यक्ति न तो स्वयं ईश्वर को समझ पाया है, न ही वाणी की गहराई को। जिस धर्म के विद्वान ऐसे हों, उस धर्म के अनुयायी किस दिशा में अग्रसर होंगे और उनका अंत क्या होगा — यह सोचकर ही मन सिहर उठता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

18. इस तरह खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुमको अपनी निशानियाँ दिखलाता है कि तुम समझों। 2: 73 कुरआन.

समीक्षक:- क्या मुर्दों को खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता? क्या कयामत की रात तक कबरों में पड़े रहेंगे? आजकल दौड़ासुपुर्द हैं? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियाँ है? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियाँ नहीं हैं? क्या संसार में जो विविध रचना विशेष प्रत्यक्ष दिखती हैं ये निशानियाँ कम है?

उत्तर:

मुर्दों को जीवित करना

इस आयत का अनुवाद है — "इसी प्रकार ईश्वर मुर्दों को जीवित करता है।" पंडित ने इस आयत के माध्यम से यह भ्रम उत्पन्न करने का प्रयास किया है कि प्राचीन काल में मुर्दों को जीवित करना एक सामान्य और प्रचलित बात थी। जबकि वास्तव में, यह आयत किसी सामान्य नियम का नहीं, बल्कि एक विशिष्ट घटना का उल्लेख करती है।

इस आयत का आशय यह है कि एक निश्चित समुदाय के समक्ष ईश्वर ने अपनी शक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किया — ताकि लोग यह समझ सकें कि ईश्वर के लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं है। इस घटना के माध्यम से यह संदेश दिया गया कि जैसे ईश्वर ने एक मृत व्यक्ति को पुनः जीवन प्रदान किया, वैसे ही प्रलय के दिन वह संपूर्ण मानवजाति को पुनर्जीवित करने में भी पूर्णतः सक्षम है। अर्थात, यह घटना इस सत्य का प्रतीक है कि मृतकों को जीवन देना ईश्वर के लिए अत्यंत सहज कार्य है। (सूरह बकरा, 2:259-260)

रहा यह आपत्ति की "अब क्यों नहीं जिलाता?" — तो यह अत्यंत बालसुलभ और अपरिपक्व तर्क है। ऐसी आपत्ति पहले भी उठाई जा चुकी है, जिसका उत्तर क्रमांक 14 में दिया गया है।

एक मृत व्यक्ति का पुनर्जीवित उस काल के लोगों के लिए ईश्वर की शक्ति और सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण था। यह घटना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर अपनी असीम सामर्थ्य से न केवल एक व्यक्ति को, बल्कि प्रलय के दिन समस्त मानवता को पुनर्जीवित करने की पूर्ण क्षमता रखता है। यह उसकी महानतम निशानियों में से एक है — जो मनुष्य के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न करती है कि ईश्वर की शक्ति न सीमित है, न बंधन में।

जहाँ तक अन्य निशानियों का प्रश्न है, स्वयं कुरआन कहता है — "निश्चय ही धरती और आकाश में ईश्वर की निशानियाँ हैं, और स्वयं तुम्हारे अस्तित्व में तथा तुम्हारे चारों ओर फैले प्राणियों में भी। फिर क्या तुम सत्य को देख-समझते नहीं?" —

(सूरह ज़ारियात, 51:20-22)

ईश्वर हर युग के मनुष्य से उसके बौद्धिक स्तर और समझ के अनुरुप संवाद करता है। हज़रत मूसा (अ.) का समय ऐसा था जब न तो अधिक वैज्ञानिक साधन उपलब्ध थे, न ही ज्ञान के आधुनिक स्रोत। उस युग में प्रलय और पुनरुत्थान जैसे सिद्धांतों को लोगों के लिए स्पष्ट रूप से समझ पाना सरल नहीं था। यदि पंडित दयानन्द थोड़ी भी विवेकपूर्ण दृष्टि से विचार करें, तो उन्हें यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि मुर्दे को जीवित करने की घटना का उद्देश्य केवल यह सिद्ध करना था कि ईश्वर पुनरुत्थान की शक्ति रखता है। यह उदाहरण उस समय के लोगों की समझ के अनुसार अत्यंत उपयुक्त, सरल और प्रभावशाली था, जिससे सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी ईश्वर की असीम शक्ति और सामर्थ्य को अनुभव कर सकता था।

प्रलय तक क़ब्रों में पड़े रहना

पंडित जी को लगता है कि बस कुछ-न-कुछ बोल देना ही आपत्ति होती है। वे कहते हैं — "प्रलय की रात तक क़ब्रों में पड़े रहेंगे?" — क्या यह कोई आपत्ति है? अगर कोई आपसे कहे कि "आप रोज़ रात भर बिस्तर पर पड़े रहते हैं, नींद का गहरी चादर आप को ढँक लेती है", तो क्या उस दौरान आप का "दौरासुपुर्द" हैं? एक बच्चा यौवनावस्था तक पूर्ण शक्ति से वंचित रहता है — तो क्या इस अवधि में वह भी "दौरासुपुर्द" है? या फिर पंडित की नज़र में सृष्टिकर्ता की यह व्यवस्था आपत्ति के योग्य है?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

19. वे सदैव काल बहिश्त अर्थात वैकुण्ठ में वास करने वाले है। 2: 82 कुरआन.

समीक्षक:- कोई जीव अनन्त पाप-पुण्य करने का सामार्थ्य नहीं रखता इसलिए सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते। और जो खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान हो जावे। कयामत की रात न्याय होगा तो मनुष्यों के पाप-पुण्य बराबर होना उचित है। जो अनन्त नहीं है तो उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है? और सृष्टि हुए सात-आठ हजार वर्षों से इधर ही बतलाते है। क्या इस के पूर्व खुदा निकम्मा बैठा था? और कयामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा? ये बाते सब लड़को के समान हैं क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्त्तमान रहते हैं और जितने जिस के पाप-पूण्य हैं उतना ही उसको फल देता है इसलिए कुरान की यह बात सच्ची नहीं।

उत्तर:

अनन्त कर्म बनाम फल

यदि कोई सामान्य व्यक्ति अपने नौकर को मासिक वेतन के अतिरिक्त हज़ार रुपये इनाम में दे दे, तो कोई यह नहीं कहता कि उसने अन्याय किया है। परंतु पंडित दयानन्द के अनुसार, ईश्वर को ऐसा करने का अधिकार नहीं है — अर्थात वह अपने भक्त को उसके कर्म से अधिक फल नहीं दे सकता। यदि यह तर्क सही माना जाए, तो वह व्यक्ति जो अपने नौकर को वेतन के अतिरिक्त इनाम देता है, वह भी अन्यायी कहलाएगा। इसी प्रकार, वे सभी सरकारी कर्मचारी, जिन्हें वेतन के अलावा पेंशन, बोनस या अन्य पुरस्कार मिलते हैं, अन्याय के भागीदार ठहरेंगे।

आज हज़ारों सरकारी कर्मचारी सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन लेते हैं — जिनमें अनेक पंडित दयानन्द के अनुयायी भी हैं। यदि वे

सचमुच दयानन्द के विचारों में आस्था रखते हैं, तो उन्हें यह अन्याय स्वीकार नहीं करना चाहिए। बल्कि उन्हें चाहिए कि वे पेंशन और पुरस्कार छोड़कर केवल अपने किए हुए श्रम का ही उचित प्रतिफल लें। अन्यथा यह दोहरी नीति होगी — एक ओर वैदिक शिक्षाओं का सम्मान और दूसरी ओर उनके विपरीत आचरण। यदि पंडित जी का यह न्याय-सिद्धांत पूर्ण रूप से लागू कर दिया जाए, तो बेचारे दयानन्दियों की आर्थिक स्थिति तो संकट में पड़ जाएगी। बीस-पच्चीस वर्ष नौकरी करने के बाद जीवनभर पेंशन लेना निश्चित ही कार्य से अधिक फल पाना है — जो वेदों के सिद्धांतों के विपरीत और अनुचित है। फिर दयानन्दी इस अन्याय में सहभागी क्यों बने हुए हैं? पंडित जी को चाहिए था कि वे पहले अपने अनुयायियों को यह वैदिक शिक्षा सही रूप में सिखाते।

'सत्यार्थप्रकाश' के षष्ठ समुल्लास, पृष्ठ 142 में पंडित जी लिखते हैं — "चोर के उन सभी अंगों को काट देना चाहिए जिनसे उसने चोरी की चेष्टा की।" अब यदि कोई व्यक्ति किसी खाली घर में रखी शर्ट की जेब से हज़ार रुपये चुरा ले, तो इस सिद्धांत के अनुसार उसके हाथ-पाँव आदि, जो इस चोरी में प्रयुक्त हुए, काट देने होंगे। क्या पंडित जी के मतानुसार इतनी कठोर सज़ा न्यायसंगत है? कुछ मिनटों के अपराध के लिए किसी व्यक्ति को जीवनभर के लिए अपंग बना देना क्या उचित दंड कहलाएगा? न्याय का तकाज़ा तो यही है कि चोरी का धन वापस लिया जाए और अपराधी को अस्थायी सज़ा दी जाए — न कि उसे स्थायी रूप से विकलांग बना दिया जाए।

इसी प्रकार, पंडित जी कहते हैं कि यदि राजा अपराध करे, तो उसे सामान्य व्यक्ति से हज़ार गुना अधिक दंड मिलना चाहिए। किंतु सोचिए — यदि किसी व्यक्ति की हत्या के लिए दंड मृत्यु है, तो राजा को हज़ार गुना मृत्यु कैसे दी जा सकती है? क्या उसके पूरे परिवार या राज्य को उसके अपराध का दंड भुगतना होगा? यह न तो व्यावहारिक है और न ही न्यायसंगत।

हे पंडित जी, पाप और पुण्य का मूल्यांकन कालावधि से नहीं, अपितु उसके परिणामों से होता है। आर्य समाज में "अनन्त कर्म" का अर्थ अक्सर यह लगाया जाता है कि वह अनन्त समय या युगों में किया जाए — परंतु यह धारणा भ्रांत और दोषपूर्ण है। तर्क और प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि पाप और पुण्य की गंभीरता उनके परिणामों पर निर्भर करती है, न कि उनके होने की अवधि पर। जो व्यक्ति इस सरल सत्य को नहीं समझता, वह शुभ-अशुभ कर्मों का सच्चा शिक्षक कैसे हो सकता है?

कर्म की गंभीरता केवल उसके परिणामों से मापी जाती है — परिणाम जितना भयावह या कल्याणकारी होगा, कर्म उतना ही गंभीर या महान माना जाएगा, चाहे वह क्षणभर में क्यों न संपन्न हुआ हो। इसी प्रकार, जो व्यक्ति सृष्टिकर्ता के अनन्त अस्तित्व, अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति में विश्वास रखता है, उसकी इस श्रद्धा को सीमित दृष्टि से आंकना वास्तविकता से अनभिज्ञता है। उसने जब अनन्त सत्ता को स्वीकार किया है, तो उसके कर्मफल का परिणाम भी अनन्त होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार, जो ईश्वर के अस्तित्व और उसकी अनन्त शक्तियों को नकारता है, उसका यह पाप भी अनन्त है। अतः कर्म के अनन्त फल पर आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं।

सृष्टि से पूर्व और बाद प्रलय ईश्वर निकम्मा होता है

पंडित जी की आपत्तियाँ वास्तव में उनके दृष्टिकोण की सीमाओं को उजागर करती हैं। कोई भी विवेकशील व्यक्ति इन पर विचार करके सहज ही अनुभव कर सकता है कि इस व्यक्ति ने ईश्वर के सच्चे स्वरूप का स्पर्श तक नहीं किया है। उनके "निक्कमा बैठे रहने" जैसे शब्दों का क्या तात्पर्य है? क्या पंडित जी की दृष्टि में ईश्वर का एकमात्र कार्य केवल सृष्टि की रचना करना है, और जब यह कार्य नहीं हो रहा होता तो परमेश्वर निष्क्रिय हो जाता है?

यदि यह मान्यता स्वीकार कर ली जाए, तो प्रलय के समय में उनके ही सिद्धांत के अनुसार उनका ईश्वर निक्कमा रहता है। मनुस्मृति (1.52 और 54) के अनुसार — "उस सर्वव्यापक परमात्मा के आश्रय में जब सभी प्राणी एक साथ चेष्टाहीन होकर लीन हो जाते हैं, तब यह समस्त प्राणियों का आश्रयस्थान परमात्मा सृष्टि-संचालन के कार्यों से निवृत्त होकर सुखपूर्वक विश्राम करता है" — यह अवधि लगभग चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष की बताई गई है। क्या इतने दीर्घकाल तक ईश्वर निष्क्रिय और निक्कमा सोया रहता है?

यदि यह एक दोष माना जाए, तो फिर उसकी कोई भी विशेषता सक्रिय या क्रियाशील शेष नहीं रह जाती। सृष्टि के प्रारंभ में वेदों का ऋषियों को प्रदान करना, उन पर ज्ञान का प्रकाश डालना, बिना माता-पिता के सीधे युवा रूप में प्राणियों की उत्पत्ति करना — ये सारी शक्तियाँ निष्क्रिय हो गईं! क्योंकि एक बार ऐसी घटनाएँ घटित हो जाने के पश्चात् ईश्वर की ये शक्तियाँ सुप्त हो गईं, अथवा पंडित जी के कथनानुसार बेकार और निक्कमा हो गईं।

क्या ईश्वर किसी कार्य को करने के लिए बाध्य है? यदि बाध्य है, तो फिर वह सर्वशक्तिमान नहीं। उसे बाध्य करने वाला कौन है? क्या उसका कोई अधिपति है? और क्या सृष्टि की रचना करने में ईश्वर को रात-दिन परिश्रम करना पड़ता है, सदैव एक मजदूर की भाँति लगे रहना पड़ता है? क्या यही उसकी सर्वशक्तिमत्ता है?

इस्लाम के अनुसार ईश्वर पर किसी प्रकार का कोई बल नहीं है। इसी प्रकार, ईश्वर को अपने ऊपर कल्पना करना चरम मूर्खता है। हमारे मत में ईश्वर पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता; वह समय से परे है। अतः उसे समय की सीमाओं में बाँधना अत्यधिक मूर्खतापूर्ण है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

20. जब हम ने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू अपने आपस के और किसी अपने आपस को घरों से न निकालना, फिर प्रतिज्ञा की तुम ने, इस के तुम ही साक्षी हो। फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस को मार डालते हो, एक फिरके को आप में से घरों उन के से निकाल देते हो। 2: 84-85 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला! प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्मा की, जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसी कड़ाकूट संसारी मनुष्य के समान क्यों करेगा? भला यह कौन सी भली बात है कि आपस का लोहू न बहाना, अपने मत वालों को घर से न निकालना, अर्थात दूसरे मत वालों का लोहू बहाना, और घर से निकाल देना? यह मिथ्या मूर्खता और पक्षपात की बात है। क्या परमेश्वर प्रथम ही से नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञा से विरुद्ध करेंगे? इससे विदित होता है कि मुसलमानों का खुदा भी

ईसाइयों की बहुत सी उपमा रखता है। और यह कुरान स्वतन्त्र नहीं बन सकता क्योंकि इसमें से थोड़ी सी बातों को छोड़कर बाकी सब बातें बायबिल की हैं।

उत्तर:

ईश्वर का प्रतिज्ञा लेना

वेदों में अग्नि को "व्रतपते" — अर्थात व्रतों का स्वामी कहा गया है। "व्रत" शब्द का अर्थ है — शपथ, प्रतिज्ञा, संकल्प या धर्मपालन का दृढ़ निश्चय।

यह आश्चर्य की बात है कि पंडित को क़ुरआन पर आपत्ति करने की इतनी जल्दी क्या थी कि उन्हें अपने ही वेदों में ईश्वर द्वारा प्रकाशित बात याद नहीं रही?

यजुर्वेद, (4.11) — भाष्यकार पंडित जयदेव शर्मा

"हे पुरषों! आप लोग व्रत करो, धर्माचरण पालन करने का दृढ़ संकल्प धारण करो। ब्रह्म, वेदज्ञान और वह ज्ञानमय परमेश्वर ही महान अग्नि, मार्गप्रदशक विश्वप्रकाशक, ज्ञानप्रदाता तुम्हारा अग्रणी आचार्य है। वही सब का पूजनीय अग्नि है। वही सब देव पूजाओं के योग्य स्वयं वन, आत्माओं जीवों का परिपालक प्रभु है।"

इस मंत्र में ईश्वर ने मनुष्यों को दो प्रतिज्ञाएँ लेने का आदेश दिया है —

1. सदैव धर्म का पालन करने की प्रतिज्ञा।
2. अग्नि (अर्थात ब्रह्म, ज्ञानमय परमात्मा) को ही सर्वोच्च स्वामी मानने की प्रतिज्ञा।

यजुर्वेद, (1.5) — भाष्यकार पंडित जयदेव शर्मा

"हे ज्ञानोत्पादक अग्रणी! सब के नेता परमेश्वर, सब व्रतों के शुभकर्मों के स्वामी। मैं व्रत पवित्र कर्म का आचरण करूँगा। उसको पालन करने में मैं समर्थ हो जाऊं। मेरा वह सब व्रताचरण पूर्ण हो, सफल हो। मैं यह व्रत धारण करता हूँ कि मैं असत्य, मिथ्याभाषण, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण से और ऋत अर्थात सत्यमय वेद के विपरीत अनृत से दूर रह कर सत्य को प्राप्त हो जाऊं।"

ऋग्वेद (10.25.3) — भाष्यकार-ब्रह्ममुनि परिव्राजक

"हे परमात्मन्! अवश्य तेरे नियमों आदेशों का मैं उपासक, विपक्क प्रज्ञा से प्रकृष्ट रूप में प्राप्त होता हूँ, पालन करता हूँ।"

पंडित जी को तो चाहिए था कि इन मंत्रों के आगे लिख देते — प्रतिज्ञा करानी और करनी दोनों ही अल्पज्ञों की बात हैं।

पंडित को समझना चाहिए कि लोगों को संकल्प दिलाने का उद्देश्य केवल उन्हें धर्म के पालन के लिए दृढ़ निश्चय कराना है — अर्थात, उन्हें पाप और पुण्य का अंतर समझाना, उनकी बुद्धि को स्पष्ट करना, और विवाद को समाप्त कर — सत्य को स्वीकार करने के योग्य बनाना। इसी उद्देश्य को पवित्र क़ुरआन ने 'ख़त्मतुल-हुज्जा' कहा गया है — अर्थात सत्य को इस प्रकार स्पष्ट कर दो कि किसी प्रकार का बहाना न रह जाए।

पवित्र क़ुरआन (7:172) ने इसी सत्य को यों प्रस्तुत किया है: "जब ईश्वर ने मनुष्यों से पूछा — 'क्या मैं तुम्हारा रब (पालनहार) नहीं हूँ?'

सभी ने कहा — 'हाँ! हम इस बात को स्वीकारते है और गवाह हैं।' यह संकल्प इसलिए था ताकि प्रलय के दिन कोई यह न कह सकें कि 'हमें तो पता ही नहीं था, इसलिए हमने गलत रास्ता पकड़ लिया।"
इसी चेतावनी को पवित्र क़ुरआन (67:9-11) में दोहराया गया है। वहाँ न मानने वाले कबूल करेंगे: "हमने सच सुनने से ही मुँह मोड़ लिया था... और अब हम अंधे और बहरों जैसे हो गए हैं।"

दूसरे को घरों से निकालने और लहू बहाने का वर्णन क़ुरआन में नहीं

पंडित के अंधभक्तों को यह स्पष्ट करना चाहिए कि "दूसरे मत के लोगों का खून बहाने या उन्हें घर से निकालने का आदेश" क़ुरआन की किस आयत में कहाँ गया है?
क़ुरआन में तो इसके ठीक विपरीत, मानवता और न्याय की बात कही गई है।
देखों! "जिस किसी ने भी बिना किसी की हत्या के किसी की जान ली या धरती पर अत्याचार फैलाया, तो मानो उसने पूरी मानवता की हत्या कर दी।" (सूरह मायदा, 5:32)
इसी प्रकार, एक और जगह कहा —
"ईश्वर तुम्हें उन लोगों के साथ नेकी और न्याय करने से नहीं रोकता, जो तुमसे धर्म के नाम पर नहीं लड़े और न ही तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला। निस्संदेह, ईश्वर न्यायप्रिय और अच्छे व्यवहार करने वालों से प्रेम करता है।" (सूरह मुम्तहना, 60:8)
अब, जब क़ुरआन स्वयं स्पष्ट रूप से मानवता, न्याय और सद्भाव की शिक्षा देता है लोगों के साथ, तो पंडित द्वारा क़ुरआन पर झूठा आरोप लगाना हठधर्मिता और पूर्वाग्रह का परिचायक नहीं?
पंडित ने अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में स्वयं लिखा है — "बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते है जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते है, विशेष कर मत वाले लोग क्योंकि मत के आग्रह से उसकी बुद्धि अंधकार में फंस कर नष्ट हो जाती है।"
अब प्रश्न यह है कि क्या यह नियम केवल दूसरों पर लागू होता है, या स्वयं उन पर भी?
जब बात वेदों और अपनी धर्मग्रंथों की आती है, तो वे यह मानते हैं कि — "किसी को पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर ग्रंथों का अध्ययन नहीं करना चाहिए।" परंतु, जब क़ुरआन की बात आती है, तो वही सिद्धांत मानने से स्वयं इनकार कर देते हैं। यह स्पष्ट विरोधाभास उनके पूर्वाग्रह और पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण को उजागर करता है।

निःसन्देह ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वज्ञानी है

(प्रतिज्ञा का इस्लामी परिपेक्ष्य ऊपर आ चुका है) निःसन्देह ईश्वर प्रत्येक गुप्त एवं प्रकट चीज़ों का जानने वाला, उसका ज्ञान अनादि और अनन्त है, और वह सदैव से हर बात को जानता है। किंतु, यदि वह भक्तों से प्रतिज्ञा लेता है, तो इसे उसकी सर्वज्ञता के विरुद्ध कैसे माना जा सकता है? इसके पीछे का तर्क भी स्पष्ट रूप से समझाना चाहिए।
पंडित जी, दंड या सज़ा के लिए यह आवश्यक है कि अपराधी को अपने किए का ज्ञान और बोध हो। एक समय तक यहूदियों ने इस प्रतिज्ञा का पालन किया, किंतु बाद कि पीढ़ियों ने इसे त्याग दिया। इसी प्रकार, यदि आर्य समाजियों ने किसी समय वेदों का पालन करना छोड़ दिया, तो क्या इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाए कि वेदों में भक्तों से संकल्प लेना

व्यर्थ है अथवा ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है? यदि दयानन्द के विचार में यह प्रश्न आपत्तिजनक था, तो उन्हें सर्वप्रथम वेदों पर ही यह आपत्ति उठानी चाहिए थी — क्या ईश्वर यह पहले से नहीं जानता था कि भक्त उसकी अवज्ञा करेंगे, उसके बताए मार्ग पर नहीं चलेंगे, उसके निर्देशों का उल्लंघन करेंगे, वेद की शिक्षाओं की उपेक्षा करेंगे, युगों तक वेद ब्राह्मणों की झोलियों में पड़े रहेंगे और सदियों तक उन पर अमल तो दूर, उनका एक शब्द भी संसार के सामने प्रकट नहीं होगा? यदि वह यह सब नहीं जानता था, तो फिर ईश्वर कैसा? और यदि वह जानता था, तो पंडित जी के अनुसार उसने यह निरर्थक एवं व्यर्थ कार्य क्यों किया? पंडित जी को यह भी विचार करना चाहिए — जो व्यक्ति संसार में जन्म लेकर पापकर्म करता है और अपना सम्पूर्ण जीवन इसी में व्यतीत कर देता है, तथा पंडित के मान्यतानुसार, अपने कर्मों के कारण नीच योनि प्राप्त करेगा — यदि ईश्वर को पहले से यह ज्ञात नहीं था कि वह मनुष्य योनि में ऐसे कर्म करेगा, तो फिर ईश्वर की सर्वज्ञता कैसी? और यदि ज्ञात था, तो उसे उत्पन्न ही क्यों किया?

वेद एक-दूसरे की नकल है, न कि क़ुरआन

पंडित जी, अल-फ़ुरक़ान बाइबल की नकल नहीं, बल्कि उसमें आई विकृतियों का संशोधन है। यदि पंडित और आर्य समाज नकल देखना चाहते है, तो उन्हें सामवेद का अवलोकन करना चाहिए — जिसमें कुछ ही मंत्रों को छोड़कर लगभग 1600 से अधिक मंत्र सीधे ऋग्वेद से लिये गए हैं। (शेष उत्तर क्रमांक 5 में पहले दिया जा चुका है)

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

21. ये वो लोग हैं कि जिन्होंने आखरत के बदले जिन्दगी यहाँ की मोल ले ली। उन से पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उनको सहायता दी जावेगी। 2: 86 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला ऐसी ईर्ष्या द्वेष की बातें कभी ईश्वर की ओर से हो सकती हैं? जिन लोगों के पाप हलके किये जायेंगे वा जिनको सहायता दी जावेगी वे कौन हैं? यदि वे पापी हैं और पापी के दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा। जो सजा देकर हलके किये जावेंगे तो जिन का बयान इस आयत में है ये भी सजा पा के हलके हो सकते हैं। और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे तो भी अन्याय होगा। जो पापों से हलके किये जाने वालों से प्रयोजन धर्मात्माओं का है तो उन के पाप तो आप ही हलके हैं; खुदा क्या करेगा? इस से यह लेख विद्वान का नहीं। और वास्तव में धर्मात्माओं को सुख और अधर्मियों को दुःख उनके कर्मों के अनुसार सदैव देना चाहिए।

उत्तर:

दण्ड का हल्का और भारी होना

इस आयत का प्रसंग और तात्पर्य यह है कि यहूदी ऐसे मूर्ख, निर्बुद्धि, अल्पज्ञानी और लोभी लोग है जिन्होंने क्षणिक सांसारिक सुख के लोभ में पड़कर ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन किया और शाश्वत आनन्द को ठुकरा दिया। ऐसे लोगों के लिए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उनके दंड में न कोई कमी की जाएगी और न ही उन्हें ऐसा कोई सहायक मिलेगा जो उन्हें उस दंड से बचा सके या मुक्ति दिला सके।

मुख्य आपत्ति इस बात पर की जा रही है कि — "कुछ लोगों की सजा कम कर दी जाएगी या उन्हें सहायता मिलेगी।" किंतु

प्रश्न यह है कि ऐसी बात आयत में कहाँ लिखी है? पंडित जी से पूछा जाए कि क्या यह उन्होंने किसी स्वप्न में देखा या भावावेश में कल्पना से गढ़ लिया? ऐसी असंगत बातें केवल वही स्वीकार कर सकते हैं जिनकी विवेकशीलता और तर्क-क्षमता समाप्त हो चुकी है।

भावावेश का परिणाम देखिए — कैसी-कैसी ऊल-जलूल बातें लिख दीं! पहले तो उन्होंने अनुवाद ही गलत किया। उन्होंने लिखा, "पाप हल्का नहीं किया जाएगा", जबकि आयत में कहा गया है "दंड हल्का नहीं किया जाएगा।" दुनिया के किसी भी क़ुरआन के अनुवाद में "पाप हल्का नहीं किया जाएगा" जैसी अनुवाद नहीं मिलती। पंडित जी; पाप और दंड के बीच का अंतर ही नहीं समझ पाए। जिन लोगों को यह मूलभूत अंतर ज्ञात नहीं, वे आलोचक और समीक्षक बन बैठे हैं — यह हास्यास्पद है!

इसी प्रकार, पंडित जी उस पवित्र शिक्षा को "ईर्ष्या" कह रहे हैं जो अत्याचार से लोगों को रोकती है और अपराधियों को उनके कुकर्मों के प्रति सचेत करती है। यदि यह शिक्षा ईर्ष्या कहलाए, तो संसार के सभी न्याय-प्रणालियाँ — जिनमें अपराधियों के दंड का प्रावधान है — उन्हें भी ईर्ष्या कहना होगा। और यदि पंडित जी का यह तर्क स्वीकार कर लिया जाए, तो उन्हें अपने धर्म की दंड-संबंधी शिक्षाओं को भी "ईर्ष्या" मानना पड़ेगा।

पंडित का एक और भ्रम यह है कि वे सभी अपराधों को एक ही श्रेणी में रखते हैं, चाहे उनमें गंभीरता का अंतर कितना भी क्यों न हो। उनके अनुसार यदि किसी गंभीर अपराध (जैसे हत्या) का दंड कम नहीं किया जा सकता, तो मामूली अपराध (जैसे किसी को थप्पड़ मारना) का दंड भी समान होना चाहिए! क्या यह तर्कसंगत है? संसार के सभी न्यायिक तंत्रों में अपराध की गंभीरता के अनुसार दंड निर्धारित किया जाता है — गंभीर अपराधों के लिए आजीवन कारावास या मृत्युदंड और छोटे अपराधों के लिए सीमित अवधि की सजा। किंतु पंडित इसे "ईर्ष्या" बताते हैं!

उनकी दलील का अर्थ यह हुआ कि यदि हत्यारे को आजीवन कारावास मिले, तो थप्पड़ मारने वाले को भी वही दंड मिलना चाहिए — अन्यथा यह "ईर्ष्या" होगी! यही उनकी तथाकथित बौद्धिकता है। क्या ईश्वर की अवज्ञा करने और उसके अनंत अस्तित्व को नकारने वालों का अपराध एक साधारण शारीरिक आक्रोश के बराबर हो सकता है? किंतु आलोचना की ललक में पंडित ने अपनी समझ और तर्कशीलता दोनों को एक ओर रख दिया है।

ईर्ष्या और द्वेष का बीज वेदों की उपज

ईर्ष्या और द्वेष की बात तो यह है पंडित जी कि जब किसी व्यक्ति को केवल विदेश में रहने के कारण "म्लेच्छ" कहा जाए, किसी समुदाय को "दस्यु" या "असुर" की संज्ञा दिया जाए, अथवा बिना किसी ठोस आधार के किसी को "राक्षस" या "हबशी" जैसे अपमानजनक शब्दों से संबोधित किया जाए — "संसार में ईर्ष्या और द्वेष का बीज तो वेदों ने बोया है।" (स.प.-अष्टम समुल्लास, पृष्ठ 185–186)

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

22. निश्चय हम ने मूसा को किताब दी और उसके पीछे हम पैग़म्बर को लाये और मरियम के पुत्र ईसा को प्रकट मौज़िजे अर्थात दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उस को साथ रूहलकुद्स के। जब तुम्हारे पास उस वस्तु सहित पैग़म्बर आया कि जिस

का तुम्हारा जी चाहता नहीं; फिर तुम ने अभिमान किया। एक मत को झुठलाया और एक को मार डालते हो। 2: 87 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब कुरान के साक्षी है कि मूसा को किताब दी तो उस का मानना मुसलमानों को आवश्यक हुआ और जो-जो उस पुस्तक में दोष हैं वे भी मुसलमानों के मत में आ गिरे और मौज़िजे अर्थात दैवीशक्ति की बातें सब अन्यथा हैं भोले भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये झुंठ-मूंठ चला ली हैं क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूंठी ही होती हैं जो उस समय मौज़िजे थे तो इस समय क्यों नहीं। जो इस समय भी नहीं तो उस समय भी न थे इस मे कुछ भी सन्देह नहीं।

उत्तर:

पूर्वग्रन्थों पर ईमान और इनकी विकृतियाँ

निःसन्देह, अल-फ़ुरक़ान स्वयं इस बात का साक्षी है कि हज़रत मूसा (अ.) को ईश्वर की ओर से एक पुस्तक प्रदान की गई थी। उसी प्रकार, फ़ुरक़ान यह भी कहता है कि यहूदियों ने उस पुस्तक में परिवर्तन और उसे विकृत कर दिया। इस प्रकार, यह बात फ़ुरक़ान से ही सिद्ध होती है कि यहूदियों या ईसाइयों द्वारा जो बातें बाद में जोड़ी या बदली गईं, वे ईश्वरीय नहीं हो सकतीं। ईश्वरीय वही शिक्षाएँ होती हैं जो ईश्वर ने अपने नबियों पर प्रकाशना या वह्यी के रूप में अवतरित कीं। मुसलमानों ने कभी यह दावा नहीं किया कि वर्तमान में उपलब्ध बाइबिल की सभी बातें ईश्वरीय हैं, या वह आज के रूप में वैसे ही है जैसी नबियों द्वारा मानवजाति को प्रदान की गई थी।

पूर्वग्रन्थों को साक्षी या साक्ष्य मानने का अर्थ यह नहीं है कि उनकी हर पंक्ति को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया जाए, बल्कि यह कि वे ग्रंथ वास्तव में ईश्वर द्वारा नबियों पर अवतरित किए गए थे। उन पुस्तकों में जो बातें मानवों ने बाद में बदल दीं, उन्हें मुसलमानों या इस्लाम पर थोपना अत्यंत अनुचित है। यह बौद्धिक और नैतिक दोनों ही दृष्टियों से नीचता का परिचायक है। यह बात वैसी ही है जैसे कोई यह कहे कि मनुस्मृति की सभी बातें आर्यों के मत्थे मढ़ दी जानी चाहिए, क्योंकि दयानन्द ने सत्यार्थरपकाश में मनुस्मृति को प्रमाणिक शास्त्र माना है।

मौजिज़ा और आर्य धर्म की बुद्धि-विरोधी बातें

पंडित जी ने पुनः मौजिज़े पर आपत्ति की है, जिसका विस्तृत उत्तर हम क्रमांक 14 और 16 में पहले ही दे चुके हैं। अतः एक ही बात को बार-बार दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है। रही बात इसके सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने की — तो यह तर्क और भी निराधार है। क्या दयानन्द या कोई समाजी यह बता सकता है कि ऐसी कौन-सी सृष्टिक्रम की प्रमाणिक पुस्तक है, जिसमें ईश्वर के सामर्थ्य की सीमाएँ निर्धारित की गई हों? या फिर उसे अपने ही बनाये नियम का पालन के लिए बाध्य किया गया हों?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

23. और इस से पहिले काफिरों पर विजय चाहते थे जो कुछ पहिचाना था जब उन के पास वह आया झट काफिर हो गये। काफिरों पर लानत है अल्लाह की। 2: 89 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या जैसे तुम अन्य मत वालों को काफिर कहते हो वैसे वे तुम को काफिर नहीं कहते हैं? और उनके मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार देते हैं फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा? जो विचार कर देखते हैं तो सब मत वालों में झूठ पाया जाता है जो सच है सो सब मे एक सा है, ये सब लड़ाइयां मूर्खता की हैं।

उत्तर:

काफ़िर कोई गाली नही

इस्लाम की दृष्टि में काफ़िर शब्द का अर्थ — उस व्यक्ति से है जो इस्लाम (धर्म या सत्य के मार्ग) का इनकार करता है। जब कोई व्यक्ति स्वयं यह कहता है कि वह धर्म या सत्य को नहीं मानता, तो क़ुरआन की भाषा में उसे काफ़िर कहा जाता है। यह शब्द किसी प्रकार का गाली या अपमान नहीं है, बल्कि केवल उसकी स्थिति का वर्णन है — अर्थात, वह व्यक्ति जो सत्य का इनकार करने वाला है। यदि किसी को इस शब्द से आपत्ति है, तो उसका समाधान यही है कि वह कुफ़्र (असत्य के मार्ग) को त्यागकर इस्लाम स्वीकार करे। मुसलमानों को इससे कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि इस्लाम का संदेश सबके लिए खुला है — सत्य को पहचानने और अपनाने के लिए।

वेदों में दूसरे राष्ट्र के समुदायों को गालियाँ

इसके विपरीत, जो धर्म किसी देश या राष्ट्र में रहने के आधार पर लोगों को म्लेच्छ, राक्षस या दस्यु जैसे शब्दों से संबोधित करें, उनके देश को दुष्टों का देश कहें, दूसरों को असुर या राक्षस तथा स्वयं को आर्य (श्रेष्ठ) और दूसरों को अनार्य (दुराचारी) बताएँ — यह सब अत्याधिक आशिष्टता, असंवेदनशील, अन्यायपूर्ण और पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण है। ऐसा धर्म; समानता और मानवता के लिए खतरा है।

वैदिक मत के झूठा होने की पुष्टि

पंडित जी का यह कहना कि "दो विरोधी पक्षों का एक-दूसरे को झुठलाना, स्वयं उन दोनों के झूठे होने का प्रमाण है," एक मौलिक रूप से त्रुटिपूर्ण तर्क है। क्योंकि सत्य का आधार परस्परिक आरोप नहीं, बल्कि तथ्यों और प्रमाणों की तर्कसंगत समीक्षा। मान लीजिए, यदि दो पक्ष किसी भूमि के स्वामित्व को लेकर विवाद में हैं। ऐसे में न्यायाधीश का यह कहना कि "चूंकि दोनों एक-दूसरे का खंडन कर रहे हैं, अतः दोनों ही झूठे हैं," यह न्याय के मूल सिद्धांत के विपरीत होगा। न्याय की माँग यह है कि साक्ष्यों, दस्तावेजों और तथ्यों के आधार पर वास्तविक अधिकारी का निर्धारण किया जाए, न कि दोनों पक्षों को बिना जाँच-पड़ताल के दोषी ठहरा दिया जाए। एक और स्पष्ट उदाहरण से इसे समझे, यदि एक नेत्रहीन व्यक्ति को कोई सामान्य दृष्टि वाला व्यक्ति अंधा कहे, और नेत्रहीन व्यक्ति जवाब में उसे भी अंधा कह दे, तो पंडित जी के तर्क के अनुसार दोनों झूठे सिद्ध होंगे। किंतु, वास्तविकता स्पष्ट है — नेत्रहीन होना एक स्थापित तथ्य है, जबकि दृष्टि संपन्न व्यक्ति को अंधा कहना एक मिथ्या है। इससे सिद्ध होता है कि आरोप-प्रत्यारोप की सतही बहस से सत्य का निर्धारण नहीं हो सकता; उसके तथ्यों के गहन विश्लेषण की आवश्यकता होती है।

इसी तरह पंडित का यह कथन कि "सभी मतों में झूठ पाया जाता है और जो सत्य है वह सबमें समान है," एक स्पष्ट कुतर्क एवं स्व-विरोधभास से ग्रस्त है। क्योंकि, यदि सचमुच सभी मतों में झूठ है, तो फिर पंडित जी अपने वैदिक मत को इस झूठ

से अलग कैसे रखते हैं? यह दृष्टिकोण अपने ही लिए एक अपवाद की माँग करता है, जो तार्किक दृष्टि से अनुचित है। पंडित जी ने लगभग सभी मतों का खंडन तो लिख दिया, किंतु वैदिक मत को इस आलोचनात्मक दृष्टि से पूर्ण रूप से अछूता क्यों रखा? उसके भी तो दो-तीन दोष उजागर कर सकते थे। इसलिए यह कहना कि "सब मतों में झूठ पाया जाता है और जो सच है वह सब मतों में समान है" स्वयं ही विरोधाभास है और त्रुटिपूर्ण है, लोगों को भ्रमित और धोखा देना है।

यधपि, इस कथन से एक यह भी निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने सभी को झूठा कह कर स्वयं के मत को भी झूठा स्वीकार कर लिया है, और जो कुछ इस्लाम के विरोध में लिखा, वह केवल मतों की लड़ाइयाँ और मूर्खता को दर्शाता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

24. आनन्द का संदेशा ईमानदारों को। अल्लाह, फरिश्तों, पैग़म्बरों, ज़िबरईल और मीकाईल का जो शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफिरों का शत्रु है। 2: 97-98 कुरआन.

समीक्षक:- जब मुसलमान कहते हैं कि खुदा लाशरीक है फिर यह फौज की फौज शरीक कहा से कर दी? क्या जो औरों का शत्रु वह खुदा का भी शत्रु हैं। यदि ऐसा है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर किसी का शत्रु नहीं हो सकता।

उत्तर:

निःसन्देह ईश्वर लाशरीक है

मुसलमानों का यह कथन बिल्कुल सही है कि ईश्वर का कोई साझीदार नहीं है। परंतु समस्या यह है कि आप शिर्क की परिभाषा से ही परिचित नहीं हैं। केवल ईश्वर के साथ किसी अन्य का नाम आ जाना या किसी और का नाम ईश्वर के साथ ले लेना शिर्क नहीं कहलाता। बल्कि, शिर्क तब होता है जब कोई ईश्वर की स्वरूप (ज़ात) और उसके गुणों (सिफ़ात) में किसी अन्य को सहभागी ठहराता है।

ईश्वर के भक्तों से शत्रुता वास्तव में ईश्वर से शत्रुता है

हर बुद्धिमान व्यक्ति यह जानता है कि ईश्वर की मित्रता या शत्रुता से अभिप्राय उसकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता से है। यह अर्थ हमारी सामान्य भाषा और मुहावरों में भी स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त होता है। उदाहरण के तौर पर, जब हम कहते हैं — "राम झूठ का शत्रु है", तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि राम झूठ से युद्ध करेगा या झूठ उनके सामने हथियार लेकर खड़ा होगा। इसका भाव केवल इतना है कि राम को असत्य से घृणा है और वे सदैव सत्य का समर्थक हैं।

इसी प्रकार, जो व्यक्ति ईश्वर के नेक, धर्मनिष्ठ और प्रिय भक्तों से शत्रुता रखता है, वह वास्तव में ईश्वर की अप्रसन्नता का पात्र बनता है और कठोर दंड का भागी होता है। जैसे किसी राज्य के अधिकारी या शासन-प्रतिनिधियों का विरोध करना उस राज्य के प्रति विद्रोह माना जाता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति ईश्वर के प्रतिनिधि या प्रिय बंदों का विरोध करता है, वह वस्तुतः स्वयं ईश्वर का विरोधी बन जाता है।

यदि कोई व्यक्ति किसी वायसराय, कांस्टेबल या यहाँ तक कि एक चपरासी से भी — जो अपने पद के अनुसार सरकार का प्रतिनिधि होता है — शत्रुता रखे, तो उसे सरकार का शत्रु माना जाता है और उसके विरुद्ध दंडात्मक कार्यवाही की जाती है। फिर यह कैसे संभव है कि जो व्यक्ति ईश्वर के विशेष, धर्मप्रिय और सत्यनिष्ठ भक्तों का शत्रु है, वह ईश्वर का शत्रु न माना

जाए?

यह बात भी समझना चाहिए कि ईश्वर का शत्रु होना यह नहीं दर्शाता कि उसमें मानवीय क्रोध, द्वेष या प्रतिशोध की भावना है। इसका तात्पर्य केवल यह है कि ईश्वर अधर्म, अन्याय और असत्य का नाश करता है — और यही उसकी न्यायप्रियता एवं धर्मरक्षा है।

पंडित जी कहते है कि ईश्वर किसी का शत्रु नहीं हो सकता, परंतु वह शत्रुविनाशक अवश्य है। वेदों में ईश्वर (इन्द्र) को "दस्युहा" अर्थात शत्रुओं का नाश करने वाला कहा गया है। जैसे —

ऋग्वेद (8.76.11) — भाष्यकार: शिव शंकर शर्मा

अथर्ववेद (20.42.2) — भाष्यकार: जयदेव शर्मा

सामवेद (1668) — भाष्यकार: आचार्य रामनाथ वेदालंकार

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि ईश्वर किसी का शत्रु नहीं, तो फिर उसे "शत्रुविनाशक" क्यों कहा गया है? और वो शत्रुविनाशक क्यों है?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

25. और अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपनी के। 2: 105 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या जो मुख्य और दया करने के योग्य न हो उस को भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा? और बुरे कर्म को कौन छोड़ेगा? क्योंकि खुदा की प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं, कर्मफल पर नहीं, इस से सब को अनास्था होकर कर्मोच्छेप्रसंग होगा।

उत्तर:

कर्म और ईश्वर की कृपा

प्रस्तुत आयत का मूल भाव यह है कि ईश्वर अपनी असीम दया से जिसे चाहता है, उसे विशेष कृपा प्रदान करता है। इस पर यह कहना कि "वह उन पर भी दया करता है जो दया के योग्य नहीं हैं — एक अनुचित और आधारहीन आपत्ति है। आयत में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि अयोग्य व्यक्तियों पर भी दया की जाती है। यह आपत्ति वास्तव में आपत्तिकर्ता की भूल, भ्रम और पूर्वाग्रह का परिणाम मात्र है। वास्तविकता यह है कि ईश्वर जो कुछ भी करता है, वह पूर्ण ज्ञान, न्याय और बुद्धिमत्ता (हिकमत) के साथ करता है। जिस पर ईश्वर दया करता है, वही वास्तव में दया का पात्र होता है। यह धारणा की दया केवल उन्हीं पर होनी चाहिए जो अपने कर्मों से उसके योग्य बनते हैं, वास्तव में, दया के स्वरूप के प्रति अज्ञानता को दर्शाती है। क्योंकि जब कोई वस्तु या फल का अधिकारी होता है, तो उसे देना दया नहीं, बल्कि हक़ का अदा करना कहलाता है। सच्ची दया तो वह है जो बिना किसी स्वार्थ या पात्रता के भी प्रदान की जाए।

आर्य मत की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि उन्होंने ईश्वर को इस महान गुण — दया — से ही वंचित कर दिया। एक साधारण ज़मींदार अपनी प्रजा पर दया कर सकता है, एक न्यायाधीश किसी दोषी को क्षमा कर सकता है, लेकिन आर्य मत का ईश्वर, जो सृष्टि का सृजनहार और पालनहार कहा जाता है, अपने भक्तों पर दया नहीं कर सकता! यदि वह ऐसा करे, तो

आर्यों के अनुसार ईश्वर की न्याय-व्यवस्था नष्ट हो जाएगी। यह कैसी धारणा है, जो सर्वशक्तिमान ईश्वर को विवश और निर्बल बना देती है? इससे ईश्वर का न केवल सम्मान घटता है, अपितु उसे साधारण मनुष्यों से भी निम्नस्तरिय का दर्शाया जाता है। जो यह समझते हैं कि ईश्वर की दया से लोग निडर हो कर पाप करने लगेंगे, वे वास्तव में ईश्वर की शक्ति और न्याय से अनभिज्ञ है, और एक निर्बल और सीमित ईश्वर की कल्पना प्रस्तुत करते है। ईश्वर दयालु हैं, पर साथ ही वह प्रबल और दंड देने वाला भी है। वह पूर्ण स्वतंत्र और सर्वशक्तिमान है; उसके न्याय से कोई बच नहीं सकता। जो व्यक्ति भी यह जानता है, वह कभी निडर या उद्दंड नहीं हो सकता। यही कारण है कि संसार के सम्राट भी अपनी प्रजा पर दया और क्षमा करते हैं, फिर भी प्रजा उनके भय और सम्मान से काँपती रहती है। यदि दयानन्द का यह विचार सही होता कि दया से अनुशासन समाप्त हो जाएगा, तो संसार के प्रत्येक राज्य में अराजकता फैल जानी चाहिए थी।

यदि एक ज़मींदार, न्यायाधीश अथवा संसार का सम्राट अपनी प्रजा या अपराधियों पर दया कर सकता है, तो क्या सृष्टिकर्ता ईश्वर अपने भक्तों पर दया करने में असमर्थ है? आर्यों द्वारा ईश्वर को इस महान गुण से वंचित करना उसकी दिव्य प्रकृति का अपमान है। पंडित दयानन्द का यह तर्क कि "दया से भक्त निडर हो जाएँगे," वास्तव में एक दुर्बल और सीमित ईश्वर की कल्पना प्रस्तुत करता है। वास्तव में, भक्त तो ईश्वर की दया और दंड, दोनों से परिचित होकर ही संतुलित जीवन जीता है। आर्यों का यह मानना कि "दया से लोग अच्छे कर्म छोड़ देंगे," मानव स्वभाव और सामाजिक व्यवस्था दोनों के विपरीत है। संसार में राजा यदि दया करें, तो भी प्रजा उनके भय और अनुशासन में रहती है। उसी प्रकार, ईश्वर की दया और दंड-शक्ति साथ-साथ विद्यमान रहती हैं। पंडित जी का यह शंका कि "ईश्वरीय दया से व्यवस्था बिगड़ जाएगी," बिल्कुल निराधार है और वास्तव में उनका ईश्वर के प्रति अविश्वास को प्रकट करता है।

अतः यह स्पष्ट है कि ईश्वर की दया उसकी महानता का प्रमाण है, न कि उसकी दुर्बलता का। आर्य मत के विचारों ने ईश्वर की प्रतिष्ठा को घटाया है, जबकि वास्तविकता यह है कि दयालुता ईश्वर का उच्चतम गुण है, जो उसके न्याय और शक्ति के साथ सदैव संतुलित रहता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

26. ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्ष्या करके तुम को ईमान से फेर देवें क्योंकि उन में से ईमान वालों के बहुत से दोस्त हैं। 2: 109 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये! खुदा ही उन को चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफ़िर लोग न डिगा देवें। क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ऐसी बाते खुदा की नहीं हो सकती हैं।

उत्तर:

सर्वज्ञ ईश्वर पर अज्ञानी की आपत्ति

आपत्तिकर्ता में न तो ईमानदारी का भाव झलकता है, न ही सत्यनिष्ठा, न विद्वत्ता का और न ही बौद्धिक गहराई का। मूल आयत के अनुवाद को इस सीमा तक विकृत कर दिया गया है कि उसका वास्तविक स्वरूप ही परिवर्तित हो गया। एक सीधा विनती है दयानन्दी विद्वानों से की पंडित दयानन्द द्वारा जिस उर्दू अनुवाद के आधार पर देवनागरी में (क़ुरआन का)

अनुवाद तैयार किया गया है, उसी मूल उर्दू पाठ में से यह वाक्यांश से — क्योंकि उन में से ईमान वालो के बहुत से दोस्त हैं — कृपया प्रस्तुत कर दें। यदि वे उस उर्दू अनुवाद में यह वाक्यांश दिखा दें, तो मैं उन्हें दस हज़ार रुपये का इनाम देने को तैयार हूँ। जनसामान्य के साथ इस प्रकार का खुला धोखा और भ्रम फैलाने का प्रयास अत्यंत निंदनीय और अन्यायपूर्ण है। अब रही बात इस आपत्ति की — "ईश्वर ही उन्हें चेताता है कि तुम्हारे ईमान को कहीं ये काफिर लोग न फेर दें; इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर सब कुछ नहीं जानता" — तो यह तर्क वस्तुतः पंडित की अविचारित बुद्धिमत्ता को ही उजागर करता है। वास्तव में, आयत का उद्देश्य ईमान वालों को संभावित विपत्तियों से आगाह करना है, और ऐसी चेतावनी देकर उन्हें सचेत करना केवल एक सर्वज्ञ का ही कार्य हो सकता है, न कि किसी अल्पज्ञ का। जो व्यक्ति इतनी सरल और सूक्ष्म बात को समझने में असफल है, वह अपनी अल्पज्ञता और विचारहीनता का स्वयं प्रमाण दे रहा है। ऐसी सतही और तर्कहीन आपत्ति कोई विद्वान व्यक्ति कदापि नहीं कर सकता।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

27. तुम जिधर मुंह करो उधर ही मुंह अल्लाह का है। 2: 115 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान 'किबले' की ओर मुंह क्यों करते हैं? जो कहें कि हम को किबले की ओर मुंह करने का हुक्म है तो यह भी हुक्म है कि चाहें जिधर की ओर मुख करो। क्या एक बात सच्ची और दूसरी बात झूठी होगी? और जो अल्लाह का मुख है तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता। क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा, सब ओर क्योंकर रह सकेगा? इसलिए यह संगत नहीं।

उत्तर:

ईश्वर किसी विशेष दिशा में सीमित नहीं और वज्ह का अर्थ

आयत का अभिप्राय यह है कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण — सभी दिशाएँ ईश्वर की हैं। वह समस्त दिशाओं और स्थानों का स्वामी तथा नियंत्रक है। यह आयत ईश्वर को किसी विशेष दिशा या स्थान में सीमित नहीं करती, बल्कि यह बताती है कि समस्त दिशाएँ उसी की हैं; अर्थात् वह प्रत्येक दिशा का अधिपति है। इसलिए, इबादत (प्रार्थना) के लिए किसी एक विशेष दिशा या रुख़ का निर्धारण इस अर्थ में नहीं है कि ईश्वर केवल उसी दिशा में विद्यमान है। इस प्रकार, यह कोई विवाद या मतभेद का विषय नहीं होना चाहिए। वास्तव में, तुम जिस भी दिशा में मुख करो, वही दिशा ईश्वर की ओर है, क्योंकि समस्त दिशाएँ उसी की अधीन हैं। अतः चाहे बैतुलमुक़द्दस (यरूशलम) की ओर मुख करने का आदेश हो या काबा की ओर — जहाँ उसकी इच्छा हो, वही क़िबला है, और उसी ओर रुख़ करना भक्त का धर्म और कर्तव्य है।

यह आयत वस्तुतः अधर्मियों के कटाक्षों का उत्तर है। पंडित जी का यह प्रश्न कि “कौन-सा आदेश सच्चा है और कौन-सा असत्य”, इस आयत के मर्म से पूर्णतः असंगत है।

साथ ही, “वज्हुल्लाह” का अर्थ “ईश्वर का मुख” लेना ग़लत है। “वज्ह” शब्द का अर्थ केवल मुख नहीं, बल्कि रुख़, दिशा, अनुग्रह या कृपा भी होता है। अतः चाहे “वज्ह” को दिशा माना जाए या कृपा — दोनों ही स्थितियों में आपत्ति का कोई आधार नहीं रह जाता।

पंडित जी कहते है कि "जो ईश्वर का मुख है, वह सब ओर कैसे हो सकता है?", तो उन्हें चाहिए कि वह पहले अपने ही वेदों की वाणी पर विचार कर लें। उदाहरण के तौर पर —

अथर्ववेद (13.2.26) — भाष्यकार विश्वनाथ विद्यालंकार

"जो परमेश्वर विश्व का द्रष्टा, सब ओर मुख वाला, सब ओर हाथों के व्यवहार वाला, सब ओर विस्तार वाला है...।"

यजुर्वेद (17.19) — भाष्यकार जयदेव शर्मा

"वह राजा विजिगीषु स्वयं चरों और मंत्रियों द्वारा सब ओर अपनी आँख रखता है। वह सब ओर अपना मुख रखता है। वह सब ओर अपने शत्रुओं को पीड़ित करने वाली बाहुएँ रखता है और सब ओर शत्रु पर आक्रमण करने के कदम बढ़ाता रहता है...।"

मंत्रों से स्पष्ट रूप से ईश्वर न केवल मुख वाला लगता, बल्कि शरीरधारी भी है। अब प्रश्न यह उठता है कि जो ईश्वर का मुख है, वह सब ओर कैसे हो सकता है? या फिर मंत्र का यह अर्थ है कि ईश्वर सहस्त्र मुख, बाहुएँ और चरण वाला है?

क़ुरआन में "वज्ह" वास्तव में किसी विशेष दिशा या शारीरिक मुख के अर्थ में नहीं, बल्कि ध्यानाकर्षण, अनुग्रह या कृपा से है। जो सत्ता स्थान, दिशा और सीमाओं से परे है, उसे किसी एक दिशा में बाँधना अज्ञानता है।

ईश्वर वह सत्ता है जो अनन्त, असीम और अज्ञेय है, उसे किसी दिशा में सीमित करना कैसे संभव है? मनुष्य का मुख किसी एक दिशा में होता है — यह उसकी सीमित प्रकृति है; परंतु ईश्वर को किसी दिशा या स्थान में सीमित करना मूर्खता और अज्ञान का द्योतक है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

28\. जो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है। जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि हो जा! बस हो जाता है। 2: 117 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला खुदा ने हुक्म दिया कि हो जा तो हुक्म किसने सुना? और किसको सुनाया? और कौन बन गया? किस कारण से बनाया? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय खुदा के कोई भी दूसरा वस्तु न था तो यह संसार कहां से आया? बिना कारण के कोई भी कार्य्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत कारण के बिना कहां से हुआ? यह बात केवल लड़कपन की है।

(पूर्वपक्षी) नहीं नहीं खुदा की इच्छा से।

(उत्तरपक्षी) क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टांग भी बन सकती है? जो कहते हो कि खुदा की इच्छा से यह सब कुछ जगत बन गया।

(पूर्वपक्षी) खुदा सर्वशक्तिमान है इसलिए जो चाहे सो कर लेता है।

(उत्तरपक्षी) सर्वशक्तिमान का क्या अर्थ है?

(पूर्वपक्षी) जो चाहे सो कर सके।

(उत्तरपक्षी) क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है? अपने आप मर सकता है? मूर्ख रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है?

(पूर्वपक्षी) ऐसा कभी नहीं बन सकता।

(उत्तरपक्षी) इसलिए परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता। जैसे संसार में किसी वस्तु के बनने बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं — एक बनानेवाला जैसे कुम्हार, दूसरी घड़ा बनने वाली मिट्टी और तीसरा उस का साधन जिस से घड़ा बनाया जाता है। जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बनने वाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं वैसे ही जगत के बनने से पूर्व परमेश्वर जगत का कारण प्रकृति और उन के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं। इसलिये यह कुरान की बात सर्वथा असम्भव है।

उत्तर:

कुन फ़यकून और कार्य-कारण

आपत्ति में उठाया गया प्रश्न मूल रूप से सृष्टि, ईश्वर और उसकी सृजन-शक्ति से संबंधित है। पंडित का प्रश्न यह है कि जब ईश्वर ने "हो जा" कहा, तो यह आदेश किसने सुना और किसे सुनाया गया? यह प्रश्न मानवीय भाषा, अनुभव और सीमित बुद्धि की दृष्टि से उत्पन्न होता है। परंतु ईश्वर की सत्ता और शक्ति इन सीमाओं से परे हैं। जब कहा जाता है कि ईश्वर ने "हो जा" कहा, तो इसका अर्थ यह नहीं कि ईश्वर ने वास्तव में शब्दों में कोई आदेश दिया। यहाँ "आदेश" का प्रयोग प्रतीकात्मक है, न कि शब्दिक। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की इच्छा मात्र ही सृष्टि के उत्पत्ति का कारण बनी। ईश्वर का संकल्प ही सृजन की प्रक्रिया का आरंभ बिंदु है। उदाहरण के तौर पर, जब मनुष्य अपने भीतर किसी विचार का संकल्प करता है, तो वह विचार बिना किसी शब्द या बाह्य अभिव्यक्ति के ही उत्पन्न हो जाता है। उसी प्रकार, ईश्वर का संकल्प ही सृष्टि को अस्तित्व प्रदान करता है।

इसी प्रकार, संसार के अस्तित्व के लिए एक "अकारण कारण" (Uncaused Cause) की आवश्यकता होती है। परमेश्वर ही वह "आदि कारण" (Prime Mover) है। भौतिक जगत की सभी वस्तुएँ कर्ता, कारण और साधन के त्रिक पर आधारित हैं, किंतु यह त्रिक स्वयं सृष्टि के भीतर ही लागू होता है। इस्लाम के अनुसार, परमेश्वर इस त्रिक से परे है, क्योंकि वही समय, स्थान और पदार्थ का मूल स्रोत है। अतः वह किसी भौतिक कारण या साधन पर निर्भर नहीं है।

इस्लाम के अनुसार, सृष्टि की रचना "शून्य से" (Ex Nihilo) होने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर स्वयं ही पदार्थ, ऊर्जा और कारण का स्रोत है — वही सभी कारणों का अंतिम कारण (Ultimate Cause) है।

पंडित जी का यह कहना कि सृष्टि निर्माण के लिए कर्ता, कारण और साधन आवश्यक हैं — जैसे कुम्हार के लिए मिट्टी और चाक — यहाँ यह समझना आवश्यक है कि ईश्वर स्वयं ही कर्ता, कारण और साधन तीनों है। वह कर्ता है, क्योंकि वही सृजनकर्ता है; उसकी इच्छा ही कारण है, क्योंकि उसी से सृष्टि का आरंभ हुआ; और उसकी शक्ति ही साधन है, क्योंकि उसी से सृजन संभव हुआ। ईश्वर किसी बाहरी वस्तु या पदार्थ पर निर्भर नहीं करता। प्रकृति और उसके गुणों की रचना ईश्वर द्वारा तथा उसकी शक्ति से ही संपन्न हुई है।

पंडित जी का उदाहरण — "मक्खी की टाँग बनाना" — ईश्वर पर मानवीय सीमाएँ आरोपित करता है। मनुष्य सीमित बुद्धि और सीमित साधनों वाला प्राणी है; अतः वह निर्माण के लिए मिट्टी, चाक या अन्य साधनों पर निर्भर रहता है। परंतु ईश्वर

अनंत शक्ति और असीम सृजनशीलता से संपन्न है। वह बिना किसी साधन या बाह्य सामग्री के संपूर्ण ब्रह्मांड की रचना करता है। उसकी शक्ति और सामर्थ्य किसी बाह्य संसाधन पर निर्भर नहीं, क्योंकि वही कारण और परिणाम — दोनों का मूल स्रोत है। उसकी इच्छा ही समस्त अस्तित्व का आधार है, और उसकी शक्ति ही सृष्टि रचना का परम साधन।

सर्वशक्तिमान की परिभाषा और मुर्खतापूर्ण प्रश्न

सर्वशक्तिमान होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि ईश्वर कोई भी असंगत, तर्कविरुद्ध या अपने स्वयं के स्वभाव के विपरीत कार्य कर सकता है। वास्तव में, सर्वशक्तिमान का तात्पर्य यह है कि ईश्वर तार्किक दृष्टि से संभव समस्त कार्यों को करने की असीम शक्ति रखता है। उदाहरण के तौर पर, "अभाव" या "शून्य" से "भाव" अर्थात् सृष्टि की रचना करना केवल तभी तर्कहीन माना जाता, यदि उस कार्य का कोई कारण ही न होता। किंतु इस्लामी धारणा के अनुसार, ईश्वर स्वयं ही समस्त अस्तित्व का परम और अंतिम कारण (Ultimate Cause) है। अतः, जब ईश्वर ही सब कुछ का मूल कारण है, तब उसकी सृष्टि-शक्ति को तर्कहीन या असंभव कहना न केवल दोषपूर्ण, बल्कि अज्ञानतापूर्ण भी है।

इसी सिद्धांत के आधार पर, यह प्रश्न करना कि — “क्या ईश्वर अपने समान एक अन्य ईश्वर की रचना कर सकता है?”, “क्या वह मर सकता है?”, “क्या वह रोगी हो सकता है?”, “क्या वह अज्ञानी बन सकता है?” — सभी प्रश्न अपने आप में निरर्थक हैं। क्योंकि ये प्रश्न ईश्वर के मूल स्वभाव और गुणों के सीधे विरोधाभासी हैं। कोई भी ऐसा कथन, जो स्वयं में ही आंतरिक विरोधाभास रखता हो, वह तार्किक रूप से असंभव है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है — ईश्वर नित्य है, अर्थात् अनादि और अनन्त है। यदि कोई यह प्रश्न करे कि ईश्वर किसी अन्य ईश्वर की सृष्टि कर सकता है या नहीं, तो यह प्रश्न स्वयं में एक विरोधाभास उत्पन्न करता है। क्योंकि ईश्वर की परिभाषा ही यह है कि वह सदा से है और सदा रहेगा (नित्य है)। जो सत्ता किसी क्षण उत्पन्न होती है, वह नित्य नहीं हो सकती; और जो नित्य नहीं है, वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

29. जब हमने लोगों के लिये काबे को पवित्र स्थान सुख देने वाला बनाया तुम नमाज़ के लिये इब्राहिम के स्थान को पकड़ों। 2: 125 क़ुरआन.

समीक्षकः- क्या काबे के पहिले पवित्र स्थान खुदा ने कोई भी न बनाया था? जो बनाया था तो काबे के बनाने की कुछ आवश्यकता न थी जो नहीं बनाया था तो विचारे पूर्वोत्पन्नों को पवित्र स्थान के विना ही रखा था? पहिले ईश्वर को पवित्र स्थान बनाने को स्मरण (याद) न हुआ होगा।

उत्तर:

काबा पर उठाए गए प्रश्न का तार्किक खंडन

आयत का मुख्य प्रसंग यह है कि हज़रत इब्राहीम (अ.) को; काबा को हर प्रकार की अशुद्धियों, जैसे कूड़े-करकट और बहुदेववाद से मुक्त रखने तथा इसे अधर्म और अनैतिकता से बचाए रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई। इस आयत में या किसी अन्य आयत में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि यह पवित्र स्थल पहली बार हज़रत इब्राहीम (अ.) द्वारा ही बनाया गया था या फिर यह पहले से अस्तित्व में था और उन्हें इसे पवित्र करने तथा नवीकरण करने का आदेश दिया गया था।

अब यदि हम पंडित जी के इस तर्क को मान भी लेते है कि काबा हज़रत इब्राहीम (अ.) के निर्माण से ही पवित्र स्थल बना, और उससे पूर्व कोई पवित्र स्थल अस्तित्व में नहीं था, तो इसमें समस्या क्या है? क्या ईश्वर की सृष्टि में कोई क्रमिक प्रक्रिया नहीं होती? संसार का हर व्यक्ति जानता है कि पक्षी का बच्चा पहले नंगा जन्म लेता है, फिर धीरे-धीरे उसके ऊपर बाल और पंख आते हैं। क्या कोई यह कह सकता है कि ईश्वर को पहले ही पंख लगाना याद नहीं था? वास्तव में, ईश्वर समय और समाज की आवश्यकताओं के अनुसार मानव बुद्धि एवं चेतना के स्तर के अनुरूप ही मार्गदर्शन प्रदान किया। जैसे-जैसे मानव समाज सरलता से जटिलता की ओर बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसकी समझ, चेतना और जीवनशैली भी विकसित होती गई। यह उसी प्रकार है, जैसे एक शिशु को पहले दूध और हल्का भोजन दिया जाता है, और जब उसकी पाचन शक्ति तथा आवश्यकता बढ़ती है, तब उसे ठोस भोजन दिया जाता है। इसी प्रकार, मानव समाज के विकास के प्रत्येक चरण में उसकी बौद्धिक और आध्यात्मिक परिपक्वता के अनुरूप ईश्वर द्वारा मार्गदर्शन मिलता रहा। इसलिए यह कहना कि ईश्वर पहले भूल गया था, वास्तव में ईश्वर की योजना और सृष्टि के क्रमिक विकास को न समझ पाने का परिणाम है। यह तो एक सुस्थापित ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक तथ्य है कि मानव सभ्यता समय के साथ धीरे-धीरे विकसित हुई है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

30. वो कौन मनुष्य हैं जो इब्राहिम के दीन से फिर जावें परन्तु जिस ने अपनी जान को मूर्ख बनाया और निश्चय हम ने दुनिया में उसी को पसन्द किया और निश्चय आखरत में वो ही नेक हैं। 2: 130 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह कैसे सम्भव हैं कि जो इब्राहिम के दीन को नहीं मानते वे सब मूर्ख हैं। इब्राहिम को ही खुदा ने पसन्द किया इस का कारण क्या हैं? यदि धर्मात्मा होने के कारण से किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं। यदि विना धर्मात्मा होने के ही पसन्द किया तो अन्याय हुआ। हाँ! यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है वही ईश्वर को प्रिय होता है; अधर्मी नहीं।

उत्तर:

इब्राहिम (अ.) तौहीद और त्याग की वजह से चुने गए

ईश्वर ने हज़रत इब्राहीम (अ.) को सत्य मार्गदर्शन और मानवता के नेतृत्व करने के लिए चुना। उनके दीन (धर्म/मार्ग) की नींव सत्य, ईश्वर की एकता और नैतिक आचरण पर आधारित थी। इस संदर्भ में मूर्खता का अर्थ सांसारिक बुद्धि की कमी नहीं, बल्कि आत्मिक भटकाव और ईश्वरीय सत्य से विमुखता है। इस आयत का उद्देश्य किसी का अपमान करना नहीं, बल्कि सचेत करना है कि सत्य को ठुकराने वाला व्यक्ति स्वयं अपनी आत्मा के साथ अन्याय करता है और आध्यात्मिक उन्नति से वंचित रह जाता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं को हानि पहुँचाता है, क्योंकि वह जीवन के वास्तविक लक्ष्य — ईश्वर की ओर लौटने और आत्मिक प्रगति — से दूर हो जाता है।

प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों को सत्य का मार्ग दिखाने का दावा करता है और उसे स्वीकार करना अनिवार्य मानता है। उदाहरण के तौर पर, पंडित जी आपके वैदिक परंपरा में वेदों को अस्वीकार करने वाले को नास्तिक कहा गया है — जैसे आप स्वयं स.प. के तृतीय समुल्लास के पृष्ठ 67 में कहते है कि वेदों को न मानने वाला नास्तिक है। इसी प्रकार, जो व्यक्ति इब्राहिम (अ.) द्वारा बताए गए सत्य मार्ग को अस्वीकार करता है, उसे आत्मिक रूप से भटका हुआ माना जाता है। यहाँ

मूर्खता का अर्थ सांसारिक अज्ञानी नहीं, बल्कि आत्मिक अंधकार है — जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व के वास्तविक उद्देश्य को नकारकर स्वयं को हानि पहुँचाता है। प्रत्येक मत इस तथ्य पर एकमत है कि जो सत्य से विमुख होता है, वह मोक्ष, निर्वाण या स्वर्ग से वंचित रह जाता है। इसलिए बुद्धिमान वही है जो पूर्वाग्रह, अहंकार और अज्ञान को त्यागकर ईश्वरीय सत्य को स्वीकार करता है। आत्मिक उन्नति भी उसी की होती है जो सत्य को स्वीकार करने का साहस रखता है।

पंडित जी, ईश्वर के अनुसार इस्लाम ही सत्य का मार्ग और धर्म है। ईश्वर ने हज़रत इब्राहीम (अ.) को इसलिए पसंद किया क्योंकि वे न केवल धर्मात्मा थे, बल्कि उन्होंने पूरा जीवन ईश्वर की एकता के प्रचार और संरक्षण के लिए समर्पित कर दिया। उनका धर्मात्मा होना केवल अच्छे आचरणों तक सीमित नहीं था, बल्कि ईश्वर के प्रति उनका अटूट विश्वास, आज्ञाकारिता और हर प्रकार की कुर्बानी देने की तत्परता ने उन्हें ईश्वर का प्रिय बना दिया। उन्होंने मूर्तिपूजा, अग्निपूजा, नक्षत्रपूजा जैसी उस युग की प्रचलित अधर्मिक प्रथाओं का खंडन किया और एक ईश्वर की धारणा को निडरता से स्थापित किया।

इसी प्रकार, पंडित जी का यह प्रश्न की "धर्मात्मा तो और भी बहुत से हो सकते हैं" अपने स्थान पर यथार्थ है; किंतु यहाँ स्पष्टता आवश्यक है; केवल अच्छे कर्म करना ही पर्याप्त नहीं है। वास्तविक धर्मात्मा वही है जो ईश्वर के दिये गए सम्पूर्ण धर्म को स्वीकारे और उसे सत्य माने, और उन आदेशों और निर्देशों के अनुसार अपना जीवन वयाप्त करें, और उसका प्रसार-प्रचार करें। यदि आपका आशय यह है तो यह सत्य के अनुरूप है। परंतु यह मान लिया जाए कि ईश्वर द्वारा दिए गया मार्ग से हटकर अन्य सभी मार्ग भी समान रूप से धर्ममय हैं, तो यह भ्रम है। आपने स्वयं एकादश समुल्लास, पृष्ठ 255 पर लिखा है — "वेदविहित धर्म है और वेदविरुद्ध आचरण अधर्म है।" यह स्पष्ट करता है कि जो मार्ग ईश्वरीय आदेशों और निर्देशों से विपरीत हैं — जैसे मूर्तिपूजा, अग्निपूजा या भौतिकवाद — वे धर्म नहीं, बल्कि अधर्म हैं। ऐसे मार्गों पर चलने वाला व्यक्ति धर्मात्मा नहीं कहलाता, बल्कि ईश्वर के मार्ग से भटक चुका होता है। धर्मात्मा वही है तो सत्य धर्म को अपनाए या धारण करें ईश्वर की एकता को स्वीकार करें, और उसके निर्देशों का पालन करें।

हज़रत इब्राहीम (अ.) की महानता इसी में निहित है कि उन्होंने न केवल स्वयं सत्य पर अडिग रहकर जीवन जिया, बल्कि अपने जीवन का हर क्षण एकेश्वरवाद के प्रचार और अधर्म के खंडन में लगा दिया। ईश्वर ने उन्हें उनके इसी पूर्ण समर्पण, त्याग और निष्ठा के कारण चुना और नेक लोगों में उनका स्थान सुनिश्चित किया।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

31. निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं अवश्य हम तुझे उस किबले को फेरेंगे कि पसन्द करे उस को बस अपना मुख मस्जिदुल्हराम की ओर फेर, जहाँ कहीं तुम हो अपना मुख उस की ओर फेर लो। 2: 144 क़ुरआन

समीक्षक:- क्या यह छोटी बूत परस्ती है? नहीं बड़ी।

(पूर्वपक्षी) हम मुसलमान लोग बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु बुतशिकन अर्थात मूर्तों को तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम किबले को खुदा नहीं समझते।

(उत्तरपक्षी) जिन को तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन-उन मूर्त्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं। यदि बुतों को तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद किबले को क्यों न तोड़ा?

(पूर्वपक्षी) वाह जी! हमारे तो किबले की ओर मुख फेरने का कुरान में हुक्म हैं और इन्ही को वेद में नहीं हैं फिर वे बूत परस्त क्यों नहीं? और हम क्यों? क्योंकि हम को खुदा का हुक्म बजा लाना अवश्य हैं।
(उत्तरपक्षी) जैसे तुम्हारे लिए कुरान में हुक्म है वैसे उनके लिए पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को खुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी भी पुराण को खुदा के अवतार व्यास जी का वचन समझते हैं। तुम में और इन में बूत परस्ती का कुछ भिन्नभाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बूत परस्त और ये छोटे हैं। क्योंकि जब तक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तब तक उसके घर मे ऊंट प्रविष्ट हो जाय वैसे ही मुहम्मद साहेब ने छोटे बूत को मुसलमानों के मत से निकाला परन्तु बड़ा बूत जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद हैं वह सब मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी; क्या यह छोटी बूत परस्ती नही हैं? हां! जो हम वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बूतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको; अन्यथा नहीं। तुम को जब तक अपनी बड़ी बूत परस्ती को न निकाल दो तब तक छोटे बूत परस्तों के खण्डन से लज्जित हो के निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बूतपरस्ती से पृथक कर के पवित्र करना चाहिये।

उत्तर:

काबा पर निराधार आरोप और किबला एकता का प्रतीक

आश्चर्यजनक बात यह है कि जिस धर्म का मूल आधार ही एकेश्वरवाद — यानी ईश्वर के अस्तित्व और उसके गुणों में एकत्व और उसकी अपारता में विश्वास है, और जो केवल उसी एक ईश्वर की उपासना को सही ठहराता है, उस पर मूर्तिपूजा (बुतपरस्ती) का आरोप लगाना कितनी बड़ी धृष्टता है! जो व्यक्ति झूठ बोलते समय भी लज्जा का अनुभव नहीं करता, वह तो कुछ भी कह सकता है — ऐसे में उसकी बात का खंडन करना भी व्यर्थ प्रतीत होता है।
पंडित दयानन्द ने अपनी इसी आपत्ति में काबा-ए-मुअज़्ज़म को एक मस्जिद बताया है, और फिर उसी को 'बड़ा बुत' तक कह डाला। (ला'नतुल्लाहि अलल काज़िबीन — अर्थात झूठों पर अल्लाह की लानत)। अब कोई उनसे पूछे कि 'मस्जिद' का अर्थ होता है 'इबादत खाना' यानी वह स्थान जहाँ ईश्वर की उपासना की जाती है। दुनिया के किसी भी सभ्य और विज्ञ समाज में कभी भी किसी भी उपासना स्थल को बुत नहीं कहा गया। फिर दयानन्द ने ऐसा असंगत दावा क्यों किया?
वास्तव में, बुत वह जड़ वस्तु होती हैं, जिसे पूजनीय मान कर आराधना की जाती है — न कि वह स्थान या भवन, जहाँ बैठकर या खड़ा होकर उपासना की जाती है। पंडित को यह मौलिक अंतर की समझ ही नहीं। यदि उपासना स्थल को ही बुत मान लिया जाए, फिर तो हर भवन को उसके उद्देश्य के आधार पर ही पुकारना चाहिए — जैसे मुसाफिरखाने को 'मुसाफिर', दवाखाने को 'दवा' और शराबखाने को 'शराब'। यदि इस तरह के अतार्किक समीक्षक और एक-दो आ जाएँ, तो दुनिया का बेड़ा गर्क होना निश्चित है।
मस्जिद का अर्थ है सजदा (प्रार्थना) करने का स्थान या जहाँ सजदा की जाती है। यह एक पवित्र स्थल है, स्वयं पूज्य वस्तु नहीं। जिस प्रकार पारसियों के 'आतिशकदे' या हिंदुओं के 'मंदिरों' को कोई बुत नहीं कहता, फिर दयानन्द के बुद्धि को क्या हो गया कि उसने मस्जिद को बुत ठहरा दिया? यह तो पूर्वाग्रह की पराकाष्ठा है, जिसे पंडित जी ने दर्भाग्यवश पार कर लिया।

मुसलमान जब नमाज़ अदा करते हैं, तो उनके मन में यह भावना किंचित मात्र भी नहीं होती कि वे काबा की उपासना कर रहे हैं। काबा मात्र एक दिशा (किबला) है, जिसकी ओर मुख करके समस्त विश्व के मुसलमान एक ही केंद्र पर केन्द्रित होकर, एकसूत्र में बँधकर उस एक अद्वितीय ईश्वर की इबादत करते हैं। यह एकजुटता (वहदत) और अनुशासन का प्रतीक है, न कि कोई मूर्तिपूजा। इस एकजुटता को बुतपरस्ती कहना मूर्खता नहीं तो और क्या है? यदि दिशा-निर्धारण मात्र ही बुतपरस्ती है, तो संसार का कोई भी व्यक्ति इस तथाकथित बुतपरस्ती से मुक्त नहीं रह जाएगा। आर्य समाज, जो स्वयं यज्ञ के दौरान वेदी की ओर मुख करके परमात्मा की आराधना करते है, तो क्या वेदी की ओर मुख करके हवन करना अग्निपूजा नहीं कहलाएगा?

दयानन्द जी ने ही सत्यार्थप्रकाश (तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 43-44) में मनुस्मृति (2.104) का हवाला देते हुए लिखा है — वन में या एकांत स्थान पर जल के समीप बैठकर गायत्री मंत्र का जाप करो। प्रश्न उठता है — क्या जल के समीप बैठकर जाप करना जल की पूजा है? या फिर वेदी में अग्नि प्रज्वलित कर सुगंधित सामग्री डालकर मंत्रोच्चार करना अग्नि की पूजा है? यदि काबा की ओर दिशा-निर्धारण को बुतपरस्ती माना जाए, तो यही कसौटी आर्य समाज की पूजन पद्धति पर भी लागू होती है। (प्रमाण: पुस्तक संस्कारविधि का सामान्य प्रकरण, पृष्ठ 18 भी इस विषय पर देखा जा सकता है)।

विडंबना देखिए — जिन्होंने अपने लिए इतने बुत की प्रतिमाएँ बना रखी हैं, वे मुसलमानों पर बुतपरस्ती का आरोप मढ़ने चले है। और धृष्टता देखिए जो स्वयं ईश्वर की ज़ात और सिफ़ात में अन्य को शरीक ठहराते है वो हमें नसीहत कर रहे है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

32. जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उन के लिये यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं। 2: 154 क़ुरआन

समीक्षक:- भला ईश्वर के मार्ग में मरने मारने की क्या आवश्यकता है? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट मार कराने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा; पश्चात विषयानन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है।

उत्तर:

इस्लाम में युद्ध (जिहाद) स्वार्थ नहीं, अत्याचारियों के विरुद्ध है

इस्लाम ने युद्ध से संबंधित जो सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं, वे अत्यंत उच्च, नैतिक और मानव कल्याण पर आधारित हैं — ऐसा सिद्धांत केवल एक सच्चे ईश्वर के मार्गदर्शन से ही संभव हैं। उदाहरण के तौर पर —

उद्देश्य की पवित्रता — युद्ध केवल ईश्वरीय मार्ग के लिए लड़ा जाएगा। इसका अर्थ यह है कि युद्ध किसी की आर्थिक लालसा, व्यक्तिगत हित, प्रभुत्व स्थापित करने या श्रेष्ठता जताने के लिए नहीं, बल्कि सत्य व न्याय के धर्म की स्थापना और अत्याचार व अधर्म के विनाश के लिए होगा। यहाँ ईश्वरीय मार्ग पर लड़ने से तात्पर्य यह है कि युद्ध का उद्देश्य केवल सत्य, न्याय, अमन और शांति स्थापित करना है।

युद्ध का आधार — युद्ध केवल उन्हीं लोगों से लड़ा जाएगा जो आक्रमण करें, जिन्होंने पहले युद्ध छेड़ा हो, या जो सताए हुए और अत्याचारग्रस्त लोगों को उनके उत्पीड़कों से मुक्त कराने के लिए आवश्यक हो।

युद्ध-नैतिकता — युद्ध के दौरान इन बातों का सख्ती से पालन करना अनिवार्य है — शत्रु पक्ष की स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों और धार्मिक विद्वानों को हानि नहीं पहुँचाई जाएगी। धार्मिक स्थलों, फसलों और पेड़ों को नष्ट नहीं किया जाएगा। इसी प्रकार, शत्रु के देश में किसी भी प्रकार की लूट-पाट की सख्त मनाही है।

युद्ध के दौरान इन नैतिक सीमाओं और निर्देशों का पालन करना अनिवार्य है। इनका उल्लंघन करने वाला ईश्वरीय प्रकोप का भागीदार बनेगा। पवित्र क़ुरआन में काफ़िरों से युद्ध की बात इसलिए नहीं कही गई है क्योंकि वे इस्लाम को नहीं मानते थे, बल्कि इसलिए कही गई है क्योंकि उन्होंने मुसलमानों पर घोर अत्याचार किए, उन्हें उनके घरों और शहरों से बलपूर्वक बाहर निकाला, और उनकी ज़िंदगी दूभर कर दी थी। ये अत्याचारी मुसलमानों के विरुद्ध निरंतर षड्यंत्र रचते थे और दूसरे समुदायों को भी मुसलमानों के खिलाफ भड़काते थे। क़ुरआन की आयतों को यदि उनके सही ऐतिहासिक संदर्भ और पृष्ठभूमि में समझे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि युद्ध की अनुमति केवल आत्मरक्षा और अत्याचार के विरुद्ध खड़े होने के लिए दी गई है। मुसलमानों पर यह अत्याचार केवल इस आधार पर ढाए जा रहे थे कि वे ईश्वर को एक मानते थे, ईश्वरीय दूत मुहम्मद ﷺ को सच्चा पैग़म्बर मानते थे, और ईश्वरीय आदेशों के अनुसार पवित्र जीवन व्यतीत करते थे।

अब कोई भी व्यक्ति ईमानदारी से बताए कि क्या ऐसे अत्याचारियों और दुष्टों से अपने परिवार, अपने समाज और अपने मूल्यों की रक्षा के लिए स्वयं बहादुरी से लड़ना और अपने साथियों को भी साहसपूर्वक संघर्ष के लिए प्रेरित करना आवश्यक नहीं है? और क्या यह बात स्पष्ट नहीं हो जाती कि ऐसे संघर्ष का उद्देश्य स्वार्थ नहीं, बल्कि सत्य, न्याय और धर्म की रक्षा है?

उपयुक्त बातों के लिए क़ुरआन और हदीस के निम्नलिखित संदर्भ उपलब्ध हैं:

•क़ुरआन: 2,190 से 194, 4:75, 22:39-40

•हदीस: सुन्नन अबू दाऊद 2614, बुखारी 3015, मुस्लिम 1731, इब्न माजा 3937

अब, आर्य समाज (पंडित दयानन्द के सिद्धांतों) में युद्ध संबंधी शिक्षाओं पर भी एक दृष्टि डालिए:

ऋग्वेद भाष्य भूमिका (पृष्ठ 188) दयानन्द सरस्वती

"राजा का बल युद्ध करना है, इसके बिना धन और सुख की प्राप्ति संभव नहीं। युद्ध ही महाधन है, क्योंकि बिना संग्राम के प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य नहीं मिलता।"

लोगों, ज़रा ध्यान दो — आर्य समाज के दृष्टिकोण से युद्ध का उद्देश्य क्या माना गया है।

मनुस्मृति (7.96)

"जो योद्धा युद्ध में जीत कर रथ, घोड़े, हाथी, धन, गाय और स्त्रियाँ प्राप्त करता है, वही उसका अधिकारी होता है।"

ऋग्वेद (1.7.4) — भाष्यकार दयानन्द सरस्वती

"हे परमैश्वर्य देने वाले जगदीश्वर! आप असंख्य धन देने वाले चक्रवर्त्ति राज्य को सिद्ध करनेवाले हैं। महायुद्धों में अत्यन्त सुख देनेवाली उत्तम-उत्तम पदार्थों की प्राप्ति, तथा पदार्थों के विज्ञान और आनन्द में प्रवेश कराने से हम लोगों की रक्षा कीजिये।"

ऋग्वेद (10.84.2) — भावार्थ ब्रह्ममुनि परिव्राजक

"स्वाभिमानी पुरुष को अग्नि के समान तेजस्वी सेनानी के रूप में स्वीकार करना चाहिए, जो शत्रुओं को नष्ट कर उनका धन

छीन ले।"

अथर्ववेद (6.66.3) — भाष्यकार पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी

"शत्रु लोग निहत्थे हो जावें, उन के अङ्गों को हम शिथिल करते हैं। फिर उन के सब धनों को सैकड़ों प्रकार से हम बाँट लेवें।"

ऋग्वेद (1.103.6) — भाष्यकार दयानन्द सरस्वती

"हम लोग जो निडर शूरवीर पुरुष आदर सत्कार कर जैसे सब प्रकार से मार्ग में चले हुए डाकू दूसरे का धन आदि सर्वस्व हर लेते हैं वैसे चोरों के प्राण और उनके पदार्थों को छीन-छान हर लेवे वह विभाग अर्थात श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषों को अलग-अलग करता हुआ उनमें से जो यज्ञ नहीं करते उनके धन को छीन लेता।"

मनुस्मृति (7.95)

युद्ध से पिट दिखा कर भागे योद्धा की तो इस जन्म और परजन्म के लिए अर्जित की गई इसकी जो कुछ सुख सुविधा, प्रतिष्ठा है उस सब को उसका स्वामी राजा छीन लेता है अर्थात इस जन्म की सुख सुविधा, प्रतिष्ठा को राजा छीन लेता है और धर्मपालन न करने के कारण परजन्म में प्राप्तव्य पुण्य और उसका फल नष्ट हो जाता है।"

इन मंत्रों को पढ़ने के बाद; मुझे अब समझ आया है कि ये सभी मंत्र लोगों को लालच देकर युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए गढ़े गए हैं। यानी जब योद्धाओं को कोई लालच या लोभ का प्रलोभन दिया जाएगा, तभी तो वे पूरी उत्साह से युद्ध करेंगे, और मरने-मारने से भी नहीं घबराएँगे...।

क़ुरआन की आयतों पर आपत्ति करने की वास्तविक वजह अक्सर अज्ञानता और द्वेष ही होती है, न कि कोई गहन अध्ययन। इस्लाम और मुसलमानों को बदनाम करने के लिए क़ुरआन की आयतों को उनके ऐतिहासिक एवं वैधानिक संदर्भ से काटकर, तोड़-मरोड़कर पेश किया जाता है। इसका एकमात्र उद्देश्य लोगों को इस्लाम की शांतिपूर्ण और न्यायपूर्ण सच्चाई से दूर रखना तथा भ्रम फैलाकर उन्हें सच्चे मार्ग पर आने से रोकना है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

33. और यह कि अल्लाह कठोर दुःख देने वाला है। शैतान के पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है। उसके विना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते। 2: 167 से 169 क़ुरआन

समीक्षकः- क्या कठोर दुःख देने वाला दयालु खुदा पापियों पुण्यात्माओं पर है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है? जो ऐसा है तो वो ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य कही धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा उस पर दण्डदाता होगा तो फिर बीच में मुहम्मद साहेब और कुरान को मानना आवश्यक न रहा। और जो सब को बुराई कराने वाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है उस को खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया? क्या वह भविष्यत् की बात नहीं जानता था? जो कहो कि जानता था परन्तु परीक्षा के लिये बनाया तो भी नहीं बन सकता क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञ का काम है; सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को सदा से ठीक-ठीक जानता है। और शैतान सब

को बहकाता है तो शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप से आप बहकाता है तो अन्य भी आप से आप बहक सकते है; बीच मे शैतान का क्या काम? और जो खुदा ही ने शैतान को बहकाया तो खुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा। ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती। और जो कोई बहकता है वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रान्त होता है।

उत्तर:

इस्लाम एकमात्र मानदंड है अच्छे और बुरें का और रसूल की आवश्यकता

यह वही बातें हैं जिन्हें पंडित जी पूर्व में भी प्रस्तुत कर चुके हैं, और जिनका विस्तारपूर्वक उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। वास्तव में, जब इस्लाम एक ईश्वरीय धर्म है — जो मानवता के मार्गदर्शन के लिए आया है — तो उसमें निहित शिक्षाएँ ही वास्तव में उत्तम हैं, और जो बातें उसमें निषिद्ध कही गई हैं, वही बुरी मानी जाएँगी। अतः जो कोई भी मनुष्य इस्लाम के इन सिद्धांतों का अनुसरण करेगा, उसे उसी के अनुरूप फल प्राप्त होगा।

किंतु, आर्य समाज के दृष्टिकोण से ईश्वर की कृपा या दंड किसी व्यक्ति के आर्य मत या वेदों के अनुसरण करने पर निर्भर नहीं करते। पंडित दयानन्द सरस्वती के मतानुसार, प्रत्येक धर्म के अनुयायी — यदि वे सदाचारी और धर्मनिष्ठ हैं — तो मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। यदि यह सत्य माना जाए, तो केवल आर्य बनना ही मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र मार्ग नहीं रह जाता। इसी आधार पर देखा जाए, तो सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेद भाष्यभूमिका जैसी पुस्तकों की रचना करते हुए हिंदुओं को पाखंडी, ठग, कपटी, मूर्तिपूजक, अधर्मी या नास्तिक कहकर उनकी आलोचना करना तथा अन्य धर्मों की मान्यताओं पर अशोभनीय टिप्पणीयाँ करना न केवल निराधार है, बल्कि अन्याय भी है।

आशा तो यही की जाती है कि अब दयानन्दियों को यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हज़रत मुहम्मद ﷺ और पवित्र क़ुरआन को स्वीकार करना क्यों आवश्यक है। कारण यह है कि अनेक मतों में ऐसी त्रुटिपूर्ण मान्यताएँ और विचारधाराएँ विद्यमान है, जिन्हें मानकर मनुष्य न तो सदाचारी बन सकता है और न ही धर्मात्मा।

टिप्पणी: यद्यपि इस विषय के उत्तर पूर्व में कई स्थलों पर छोटे-छोटे अंशों में दिए गए हैं, परंतु पाठकों की सुविधा के लिए यह आवश्यक है कि वे उत्तर क्रमांक 5, 8, और 30 पुनः से देखें — ताकि इस चर्चा का सार स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

पंडित के दो व्यक्तित्व और इनपर शैतान का प्रभाव

शैतान के संदर्भ में उठाई गई आपत्ति का उत्तर क्रमांक 11 में पहले ही दिया जा चुका है। किंतु प्रतीत होता है कि आपको शैतान से कुछ अधिक अनुराग हो गया है, इसलिए आप बार-बार उसी का नाम दोहराते रहते हैं। परिणामस्वरूप, हमें भी विवश होकर आपको कुछ नई बातें सुनानी पड़ती हैं।

वर्तमान समय के मनोविज्ञान के अनुसार, यह तथ्य स्वीकार किया जा चुका है कि मनुष्य के भीतर भी अनेक व्यक्तित्व सक्रिय रहते हैं। एक ही व्यक्ति घर में कुछ और होता है, दफ़्तर में कुछ और; सज्जनों की संगति में उसका रूप भिन्न होता है, तो दुष्ट या आत्मीय मित्रों के बीच वह किसी और रूप में प्रकट होता है। नौकरों के साथ उसका व्यवहार अलग होता है, और पत्नी-बच्चों के साथ अलग — और एकांत में कुछ और होता है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति में अनेक भूमिकाएँ और व्यक्तित्व समाहित रहते हैं, जो परिस्थितियों के अनुसार प्रकट या सभी से गुप्त भी होते हैं।

आप स्वयं को ही देख लीजिए — ऊपर से आप एक सच्चे सन्यासी प्रतीत होते हैं। जब बात वेद की होती है, तो आपकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण हो जाती है कि झूठ को भी सत्य सिद्ध करने में आप निपुण दिखाई देते हैं। परंतु आपका एक दूसरा रूप भी है — नुक्ताचीनी (आलोचना) करने वाला। इस रूप में आप सत्य को भी विकृत करके प्रस्तुत करने में माहिर हैं। आपका यह दूसरा व्यक्तित्व उस शैतानी कुटिलता का परिणाम है, जिसके अंतर्गत आप चाहते हैं कि हिंदुस्तान से मुसलमानों और ईसाइयों को सियासी स्तर से हटाने के लिए एक सशक्त हिन्दू संगठन स्थापित किया जाए, ताकि देश को आर्यराष्ट्र बनाया जा सके। किंतु यह बात याद रखिए — अथवा दयानंदियों को यह स्मरण रहे — कि शैतान अपने गुप्त मंसूबों में कभी सफल नहीं हुआ है। उसकी चालें चाहे जितनी सूक्ष्म क्यों न हों, अंततः पराजय ही उसका निश्चित भाग्य है।

परीक्षा का उद्देश्य कर्मों का स्पष्ट करना

पंडित का यह कहना कि "ईश्वर हमारी परीक्षा इसलिए लेता है क्योंकि वह स्वयं नहीं जानता, और यदि जानता होता तो परीक्षा न लेता" — यह आपत्ति वास्तव में इस्लामी धारणा के प्रति एक गहन अज्ञानता को दर्शाता है। वास्तविकता यह है कि इस्लाम के अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ है; वह सदा से सब कुछ जानने वाला है — प्रकट और गुप्त, अतीत, वर्तमान और भविष्य, सब कुछ। ईश्वर द्वारा ली जाने वाली परीक्षा का उद्देश्य स्वयं ईश्वर के लिए कुछ जानना नहीं, बल्कि हमारे लिए है — ताकि हमारे कर्मों और आचरण का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो सके। परीक्षा के माध्यम से हमारा अपना सत्य, हमारा विश्वास और हमारा चरित्र सामने आता है। जब प्रलय के दिन प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगेगा, तो वह स्वयं भली-भांति जानता होगा कि उसे जो प्रतिफल मिला, वह किन कर्मों के कारण मिला। यही स्पष्टता न्याय की स्थापना के लिए आवश्यक है। इस प्रकार, ईश्वर की परीक्षा किसी अज्ञान का परिणाम नहीं, बल्कि न्याय और सत्य की स्थापना का माध्यम है।

पंडित महोदय की यह आपत्तियाँ वास्तव में इस्लाम के प्रति उनकी शत्रुता की वजह से है। एक ईर्ष्यालु व्यक्ति की बुद्धि कभी स्थिर नहीं रहती, और इस का प्रमाण उनकी अपनी बातों ही में मिलता है। वे स्वयं लिखते हैं — "जो कोई बहकता है वह कुसंग (बुरा साथ या साथी) तथा अविद्या से भ्रान्त होता है"

यह तो हर समझदार व्यक्ति जानता है कि हर भटकने वाले को कोई और व्यक्ति ही भटकाए यह आवश्यक नहीं। परंतु इसका यह मतलब भी नहीं कि उस पर बुरी संगति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मतलब साफ़ है कि एक व्यक्ति खुद-ब-खुद भी बहक सकता है, और कुसंग का प्रभाव भी उसे भटका सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि शैतान भी एक प्रकार की बुरी संगति है — ठीक उसी तरह जैसे संसार में अनेक प्रकार की कुसंगतियाँ पाई जाती हैं।

•••••••••••••••••••••••••••••••••••

34. तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सुअर का हराम है और अल्लाह के विना जिस पर कुछ पुकारा जावे। 2: 173 क़ुरआन.

समीक्षक:- यहाँ विचारना चाहिये कि मुर्दा चाहे आप से आप मरे वा किसी के मारने से दोनों बराबर हैं। हां! इन में कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन में कुछ भेद नहीं। और जब एक सुअर का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर शत्रु आदि को अत्यन्त दुःख देके प्राणहत्या करनी? इस से ईश्वर का नाम कलंकित हो जाता है। हां! ईश्वर ने विना पूर्वजन्म के अपराध के मुसलमानों के हाथ से दारुण दुःख क्यों दिलवाया? क्या

उन पर दयालु नहीं हैं? उनको पुत्रवत् नहीं मानता? जिस वस्तु से अधिक उपकार होवे उन गाय आदि के मारने का निषेध न करना जानो हत्या करा कर खुदा जगत का हानिकारक है। हिंसारूप पाप से कलंकित भी हो जाता है। ऐसी बातें खुदा और खुदा के पुस्तक की कभी नहीं हो सकती।

उत्तर:

मांसाहार पर आपत्ति, और ज़बिहा व मुर्दार में अंतर

आयत में ईश्वर ने स्वाभाविक रूप से मरा हुआ जानवर (मुर्दार), रक्त, सुअर का मांस और वह चीज़ जो ईश्वर के अलावा किसी और के नाम पर ज़ब्ह की गई हो — सभी को निषिद्ध घोषित किया है। पंडित जी की आपत्ति का सार यह है कि "मृत्यु" चाहे स्वाभाविक हो या फिर किसी के हाथों हो, दोनों ही स्थितियों में जानवर मरा हुआ ही होता है, फिर इनमें अंतर क्यों किया गया है?

पंडित जी, इस्लाम में हलाल भोजन के नियम केवल मांस की भौतिक अवस्था पर ही आधारित नहीं हैं, बल्कि ये आध्यात्मिक एवं नैतिक सिद्धांतों पर भी टिके हैं। स्वाभाविक रूप से मरा हुआ जानवर इसलिए हराम है क्योंकि उसकी मृत्यु के समय उसका रक्त शरीर के भीतर ही जम जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है। इसके विपरीत, शरीयत के अनुसार जानवर को विधिपूर्वक ज़ब्ह करने पर उसका अधिकांश रक्त बह जाता है, जिससे मांस स्वच्छ और उपयोगी बनता है।

इसी प्रकार, जब एक मुसलमान जानवर को ज़ब्ह करता है, तो "बिस्मिल्लाह" कहकर यह घोषणा करता है कि यह जीवन और सामग्री ईश्वर की देन हैं और इस नेमत का शुक्रिया अदा करने का अधिकार केवल उसी को है, न कि किसी अन्य देवी-देवता को। इसलिए काली देवी या किसी अन्य देवता के नाम पर ज़ब्ह किया गया जानवर निषिद्ध है।

इस्लामी नियम केवल मृत्यु की स्थिति पर केंद्रित नहीं हैं, बल्कि ईश्वर की आज्ञा के प्रति समर्पण पर टिके हैं। मुसलमानों के लिए वैध और अवैध का विभाजन ईश्वरीय आदेशों की परीक्षा का प्रतीक है।

आपका यह कथन कि "मृत्यु तो मृत्यु है, चाहे किसी भी तरह हो" — यह तर्क ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि शारीरिक संबंध तो संबंध ही है, चाहे वह विवाह बंधन में हो या व्यभिचार से। फिर इन दोनों में अंतर क्यों माना जाता है?

इस्लामी दृष्टिकोण से, प्रक्रिया, उद्देश्य और अनुमति का गहरा महत्व है। जिस प्रकार विवाह की वैध प्रक्रिया से बना शारीरिक संबंध वैध होता है, उसी प्रकार ज़ब्ह (इस्लामी पद्धति से वध) की प्रक्रिया से प्राप्त मांस वैध माना जाता है। इसके विपरीत, बिना ज़ब्ह के मरे जानवर का मांस अवैध है, ठीक वैसे ही जैसे बिना विवाह के शारीरिक संबंध व्यभिचार की श्रेणी में आता है।

निष्कर्ष यह है कि इस्लाम के अनुसार, हलाल भोजन के नियम केवल जानवर के मरने भर पर आधारित नहीं हैं, बल्कि इनमें स्वच्छता, स्वास्थ्य, आध्यात्मिकता और सबसे बढ़कर ईश्वर की आज्ञा का पालन करने का भाव निहित है। यदि जानवर ईश्वर के नाम के बिना या गलत तरीके से ज़ब्ह किया जाए, तो वह मांस हराम माना जाता है, क्योंकि यह इन मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध जाता है।

इस्लाम में सुअर और मानव मांस निषेध

यह प्रश्न ग़लत आधार पर आरोपित किया गया है। आयत में ईश्वर ने कुछ चीज़ों को स्पष्ट रूप से अवैध ठहराया है। अतः यह कहना कि "एक सुअर का निषेध किया" — यह दावा ही तथ्यों के विपरीत है।

अब प्रश्न का सार आता है कि "यदि सुअर निषेध है, तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है?"

इसका स्पष्ट और सीधा उत्तर है — कदापि नहीं!

इस्लामी शरीयत में मनुष्य का मांस खाना सख़्त वर्जित है, और यह प्रतिबंध क़ुरआन और हदीस दोनों के सिद्धांतों पर आधारित है। क़ुरआन के अनुसार, ईश्वर ने मनुष्य को समस्त सृष्टि में सबसे श्रेष्ठ बनाया है — सूरह इसरा (17:70) में कहा गया है —

"हमने आदम की संतान को इज़्ज़त बख़्शी, उन्हें ज़मीन और समुद्र में सवारी दी, और उन्हें बहुत से नेमतों से नवाज़ा, तथा उन्हें अपनी बहुत सी प्राणियों पर श्रेष्ठता दी। "

इसी तरह सूरह माइदा (5:32) में ईश्वर कहता है —

"जिसने एक निर्दोष व्यक्ति की जान ली, उसने पूरी मानवता की हत्या की। और जिसने किसी एक कि जान बचाई, उसने पूरी मानवता को जीवन दिया।"

इन शिक्षाओं से स्पष्ट है कि इस्लाम में मनुष्य की जान और उसका सम्मान अत्यंत पवित्र माना गया है। इसलिए किसी मनुष्य का मांस खाना तो दूर, उसकी जान लेना भी सख़्त पाप और अपराध है — सिवाय किसी न्यायोचित कारण (जैसे कानून के तहत अपराध का दंड) के।

पंडित जी का यह तर्क भी "यदि सुअर मना है तो मनुष्य का मांस क्यों नहीं?" — न केवल हास्यास्पद है, बल्कि तर्कहीन भी। यह वैसा ही है जैसे कोई कहे —

"जब पानी नहीं मिला तो पेट्रोल पी लिया जाए!"

या

"कुर्सी पर बैठना मना है तो खंभे पर बैठना ठीक है क्या?"

वाह पंडित जी! ऐसी दलीलों पर तो बस यही कहा जा सकता है — अज्ञान जब तर्क का रूप ले लेता है, तो परिणाम केवल हास्य ही होता है।

पशु ज़बिहा और मुसलमानों के स्वादिष्ट भोजन से आर्यों को दुःख क्यों

पंडित जी शायद भूल गए हैं कि पुनर्जन्म का सिद्धांत और शत्रुओं को सिंह आदि के मुख में डालकर दारुण पीड़ा देकर हत्या करने का विचार — वेदों का सिद्धांत है! परंतु, यह प्रश्न जो आपने उठाया है यह अत्यंत कठिन है। इसका उत्तर या तो स्वयं परमात्मा दे सकते हैं, या फिर आपको अपने विवेक से विचार करना चाहिए। जैसे बिल्ली चूहे को पकड़कर जिस प्रकार झकझोरती है, उसे तड़पाती है और कष्ट देकर मार डालती है — वैसे ही सिंह, चिता और भेड़िया जैसे हिंसक प्रजातियाँ भी गाय जैसी उपकारी और उपयोगी प्राणियों को जीवित अवस्था में ही उनके अंग फाड़कर कर दुःख देकर मार डालती हैं —

पंडित जी, परमात्मा इन प्राणियों के हाथों इन निरीह, उपकारी जीवों को क्यों मरवाते हैं और उन्हें इतना दुःख क्यों दिलाता है? यदि यह कहा जाए कि ये प्राणी अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण यह दंड भोगते हैं, तो यह भी मान सकते हैं कि मुसलमानों के हाथों जो गाये, बकरियाँ आदि ज़ब्ह होती हैं, वह भी उनके पूर्वजन्म के कर्मों का ही फल हैं। ईश्वर मुसलमानों को उनका मांस खिलाकर उनके पूर्वजन्म के अच्छे कर्म का फल दे रहा है, और गाय-बकरी अपने पिछले पापों का दंड भोग रही है। ऐसे में आर्यों को यह सोचकर संतोष करना चाहिए कि यदि परमात्मा मुसलमानों को बिरयानी, ख़ोरमा, कबाब, पुलाव आदि से तृप्त करता है, तो यह भी उसके न्याय के अनुसार है। और यदि आर्य मुसलमानों को देखकर दुःखी या क्रोधित होते हैं, तो वे स्वयं एक गहरे मानसिक दुःख में उलझे हुए हैं। क्योंकि आपके ही धर्म के अनुसार — ईश्वर बिना पूर्व कर्मों के न किसी को सुख देता है और न ही दुःख — तो आर्य लोगों को यह विचार करना चाहिए कि मुसलमान मांस-रोटी खाकर क्यों प्रसन्न रहता है, और हिंदू (आर्य) उसे देखकर क्यों कुढ़ते है।

पंडित का धृष्टता

पंडित जी कहते हैं कि "गाय-हत्या कराकर ईश्वर संसार का हानिकर्ता बनता है और हिंसा के पाप से कलंकित होता है।" यह कैसी दुःसाहसिक और ढीठता भरी बात है! जो ईश्वर प्रतिदिन अंसख्य जीवों का अंत करता है — जिसमें मनुष्य भी शामिल हैं — और जिसने मांसभक्षी जीवों की रचना इस प्रकार की है कि उनका जीवन ही अन्य जीवों के भक्षण पर निर्भर हो, तब तो उस पर कोई कलंक नहीं लगता। परंतु जब वही ईश्वर मुसलमानों को स्वादिष्ट कोफ्ता या नल्ली निहारी खाने का अवसर देता है, तब उसे हिंसक और पापी ठहराया जाता है! ऐसा तर्क निश्चित रूप से कोई बुद्धिजीवी या विवेकी व्यक्ति कदापि नहीं दे सकता। ईश्वर के व्यापक सृष्टि-नियमों को न समझकर इस प्रकार के आरोप लगाना न केवल अज्ञानता को दर्शाता है, बल्कि धार्मिक संकीर्णता का भी यह उदाहरण है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

35. रोज़े की रात तुम्हारे लिये हलाल की गई कि मदनोत्सव करना अपनी बीवियों से। वे तुम्हारे वास्ते पर्दा हैं और तुम उनके लिये पर्दा हो। अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात व्यभिचार, बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुम को बस उन से मिलो और ढूंढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात सन्तान, खाओं पियो यहां तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागे से सुफेद तागा वा रात से जब दिन निकले। 2: 187 कुरआन.

समीक्षक:- यहां यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहिले किसी ने किसी पौराणिक को पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत जो एक महीने भर का होता है उसकी विधि क्या है? वह शास्त्रविधि जो कि मध्याह्न में चन्द्र की कला घटने बढ़ने के अनुसार ग्रासों का घटाना बढ़ाना और मध्याह्न दिन में खाना लिखा है उस को न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन कर के खाना, उस को इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया। परन्तु व्रत में स्त्री समागम का त्याग है वह एक बात खुदा ने बढ़कर कह दी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो और रात में चाहे अनेक बार खाओ। भला यह व्रत क्या हुआ? दिन को न खाया रात को खाते रहे। यह सृष्टिक्रम से विपरीत है कि दिन में न खाना रात में खाना।।

उत्तर:

चन्द्रायण व्रत और सन्यासी का सफ़ेद झूठ

वसीम बरेलवी साहब का एक शानदार शेर याद आता है — "वो झूठ बोल रहा था बड़े सलीके से, मैं ऐतबार न करता तो और क्या करता..."

यही हाल समाजियों का भी है!

रमज़ान के रोज़ों के विषय में हमारे तथाकथित महर्षि और सन्यासी जी ने जो दावा किया है कि "मुसलमानों ने पौराणिकों की चन्द्रायण व्रत के बारे में पूछ कर रमज़ान का रोज़ा बनाया," — यह दावा न केवल निराधार है, बल्कि एक गम्भीर ऐतिहासिक असत्य भी है।

पर ठहरिए, पहले यह समझ लिया जाए कि चन्द्रायण व्रत वास्तव में है क्या।

मनुस्मृति — जिसे पंडित दयानन्द जी प्रमाणिक मानते हैं — में इस व्रत का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है। मनुस्मृति (11.41) में कहा गया है —

"यदि कोई ब्राह्मण अग्निहोत्र का त्याग करे तो यह पुत्रहत्या के समान अपराध है, अतः उसे चाहिए कि वह एक मास तक चन्द्रायण व्रत रखे ताकि अपने पाप का प्रायश्चित्त कर सके।"

अन्य स्थानों पर भी चन्द्रायण व्रत का उल्लेख विशिष्ट पापों के प्रायश्चित्त के रूप में ही मिलता है — न कि किसी आध्यात्मिक साधना या ईश्वर-भक्ति के रूप में। उदाहरण के लिए, मनुस्मृति (11.106) में कहा गया है कि गुरु-स्त्री गमन के पाप की शुद्धि हेतु चन्द्रायण व्रत करना चाहिए।

स्पष्ट है कि चन्द्रायण व्रत का उद्देश्य प्रायश्चित्त है — यानी पाप के प्रक्षालन का एक कर्मकाण्ड। इसके विपरीत, रमज़ान के रोज़े किसी पाप के प्रायश्चित्त के लिए नहीं रखे जाते, बल्कि आत्म-संयम, आत्म-शुद्धि और ईश्वर के प्रति समर्पण के लिए रखे जाते हैं।

पंडित का यह दावा कि मुसलमानों ने पौराणिको से यह उपवास पूछा है — एक गंभीर आरोप है। क्या आपके पास इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण है? यदि होता, तो उसे अवश्य आप सामने लाते।

सत्य यह है कि उपवास की शिक्षा ईश्वर ने अपने सभी नबियों और समुदायों को दी थी। इसका उद्देश्य रहा है इंद्रियों की शुद्धि एवं संयम, आत्मिक अनुशासन और ईश्वर के समक्ष नम्र समर्पण।

बाइबिल में कहा गया है —

"जब तुम उपवास करो, तो अपने सिर पर तेल मलो और अपना मुख धोओ, ताकि लोगों को नहीं, बल्कि तुम्हारे पिता को, जो गुप्त में है, उपवास का पता चले। तुम्हारा पिता, जो गुप्त से देखता है, तुम्हें इसका प्रतिफल देगा।" (मत्ती 6:17-18)

इस्लाम में भी यही भाव व्यक्त किया गया है। क़ुरआन में ईश्वर कहता है —

"ऐ ईमान वालों! तुम पर रोज़े अनिवार्य किए गए हैं, जैसे तुमसे पहले वालों पर किए गए थे, ताकि तुम तक़्वा (ईश्वर-भक्ति और संयम) हासिल कर सको।" (सूरह बकरा, 2:183)

रमज़ान का रोज़ा आत्म-संयम सिखाता है; यह दया, करुणा और कृतज्ञता की भावना को प्रबल करता है। यह मनुष्य को उसकी इच्छाओं का दास बनने से बचाता है और उसे अपने ईश्वर के समीप लाता है।

दुःख की बात यह है कि आर्यसमाज की विचारधारा अक्सर तथ्यों को इस प्रकार सजा-संवार कर प्रस्तुत करती है कि वे सच प्रतीत होने लगें। परंतु मुसलमानों का ईमान न तो किसी पौराणिक व्रत पर आधारित है, न ही किसी की कल्पना पर — वह केवल क़ुरआन और पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ की शिक्षाओं पर आधारित है।

यदि आर्य समाज के विद्वानों में तनिक भी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा शेष है, तो उन्हें इस गंभीर आरोप का ठोस ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत करना चाहिए। अन्यथा यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनका पूरा तर्क मात्र एक गढ़ी हुई कथा है — एक ऐसा भ्रम जिसे "सलीके से बोला गया झूठ" कहना अधिक उचित होगा।

रोज़ा बनाम चन्द्रायण व्रत

पंडित जी को चन्द्रायण व्रत इसलिए श्रेष्ठ लगता है क्योंकि उसमें स्त्री-समागम पूर्ण रूप से वर्जित बताया गया है। पर यह भी एक रोचक विरोधाभास है कि इस व्रत का कारण ही स्त्री-संबंध का पाप माना गया है। मनुस्मृति (11.106) में कहा गया है "गुरु की स्त्री के साथ संबंध रखने के पाप की शुद्धि के लिए, जितेन्द्रिय होकर जौ का दलिया खाते हुए तीन मास तक चन्द्रायण व्रत करना चाहिए।"

हुज़ूर — यह त्याग का उपदेश किस नैतिक आधार पर सुझाया गया है?

इस्लाम में रोज़ा रखने का उद्देश्य मानव को उसकी इच्छाओं का गुलाम बनने से बचाना है — न कि उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओं को जबरन दबाकर उसे कुंठा और कटुता से भर देना। रोज़े के दौरान दिनभर भूख, प्यास और वासना पर नियंत्रण का अभ्यास कराया जाता है ताकि मनुष्य अपनी इच्छाओं का स्वामी बने, न कि इच्छाएँ उसकी स्वामिनी।

रोज़ा केवल दिन के समय रखा जाता है; सूर्यास्त के बाद इफ्तार के माध्यम से भोजन और अपनी पत्नी के साथ मिलन की अनुमति दी जाती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि रोज़ा त्याग नहीं, संयम सिखाता है — यह मानवता के मूल अधिकारों का हनन नहीं करता, बल्कि मनुष्य को मर्यादा, अनुशासन और संतुलन का बोध कराता है।

रात में अनेक बार खाओ; जानबूझकर फैलाया गया भ्रम

पंडित दयानन्द ने जब यह कहा कि "रात में चाहें अनेक बार खाओ," तो मानो उन्होंने रोज़े की रात को ब्राह्मणों के श्राद्ध जैसा कोई मुफ़्त भोज समझ लिया हो — जहाँ लोग बस खाने पर टूट पड़ते हैं और पेट को गुब्बारे की तरह फुला लेते हैं। परंतु यह आरोप इस्लाम के स्पष्ट शिक्षाओं के सामने एकदम निराधार सिद्ध होता है।

सबसे पहले तो यह समझना आवश्यक है कि उक्त आयत में रात्रि में भोजन की अनुमति दी गई है — अर्थात् रात के किसी भी समय, बिना किसी रोक-टोक के, भोजन किया जा सकता है; जब तक कि रोज़े का समय आरंभ न हो जाए। यह अनुमति किसी अति या असंयम की नहीं, बल्कि सहज जीवन-क्रम बनाए रखने की है।

साथ ही, क़ुरआन में स्पष्ट रूप से खाने-पीने में संयम बरतने की शिक्षा दी गई है —

"खाओ-पीओ, परंतु अति मत करो; निस्संदेह, ईश्वर अति करने वालों को पसंद नहीं करता।" (सूरह अल-आराफ़, 7:31)

यह आयत इस बात का स्पष्ट संदेश देती है कि खाने-पीने में मध्यमार्ग अपनाना अनिवार्य है।

पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ की व्यवहारिक शिक्षा भी इसी संतुलन को पुष्ट करती है। उन्होंने कहा —

"मनुष्य के लिए अपने पेट से बढ़कर कोई बर्तन भरने योग्य नहीं। उसके लिए कुछ निवाले ही पर्याप्त हैं जो उसकी कमर सीधी रखें। यदि अधिक खाना ही हो, तो पेट का एक-तिहाई भाग खाने के लिए, एक-तिहाई पानी के लिए, और एक-तिहाई सांस लेने के लिए छोड़ दो।" (इब्ने माजा, हदीस 3349)

इस प्रकार, पंडित जी का यह व्यंग्य वस्तुतः एक जानबूझकर फैलाया गया झूठ है। रात में खाने-पीने का उद्देश्य पेट-पूजा नहीं, बल्कि शरीर को पुनः अगले दिन के रोज़े के लिए सक्षम बनाना है — संतुलित आहार लेकर स्वयं को संयमित जीवन के लिए तैयार करना।

रोज़े की वास्तविक शिक्षा यही है — दिन में संयम का अभ्यास करो, और रात में ईश्वर द्वारा प्रदान किए गए जीवनोपहार (रिज़्क़) से संतुलित रूप में लाभ उठाओ। हर क्षण अपनी सीमाओं का बोध रखो और अपने पालनहार के प्रति उत्तरदायित्व का स्मरण बनाए रखो।

सृष्टिक्रम के विपरीत — अपने ही गले की फांस

पंडित दयानन्द, सत्यार्थप्रकाश (अष्टम समुल्लास, पृष्ठ 176–177) में यह कहते है कि —

"ईश्वर सृष्टिक्रम के विपरीत कार्य नहीं कर सकता, क्योंकि यह असंभव है।"

पंडित जी ने सृष्टिक्रम यानी प्रकृति के नियमों से विरुद्ध किसी भी कार्य का होना असंभव माना है। किंतु पंडित जी का यह सृष्टिक्रम का विचार कुछ विचित्र प्रतीत होता है, क्योंकि जिन सृष्टिक्रम के विरुद्ध कार्यों को वो ईश्वर के लिए असंभव बताते हैं, वही सृष्टिक्रम के विरुद्ध कार्य को मनुष्य — विशेषकर मुसलमान — अपनी धार्मिक साधना कर पाने में सफलता पाते हैं। उदाहरण के तौर पर, मुसलमान रमज़ान के महीने में पूरे दिन उपवास (रोज़ा) रखते हैं — अर्थात् सूर्योदय से सूर्यास्त तक न तो भोजन करते हैं और न ही पानी पीते हैं। वे केवल रात के समय भोजन करते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि सृष्टिक्रम के विपरीत कोई कार्य संभव ही नहीं, तो मुसलमान यह कैसे कर लेते हैं? क्या उन्होंने कोई असंभव कार्य कर दिखाया?

रात के समय भोजन करना मानव जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। किसान दिनभर खेतों में परिश्रम करता है और शाम को लौटकर भोजन करता है। अधिकांश लोग दिन में कार्य करते हैं और रात को विश्राम व भोजन करते हैं। यदि दिन में भोजन न करना और रात में भोजन करना सृष्टिक्रम-विरोधी होता, तो अरबों मुसलमान सदियों से यह आचरण कर ही नहीं पाते। अतः यह स्वयं इस बात का प्रमाण है कि दयानन्द जी का यह तर्क निराधार और अपने ही कथन से विरोधाभास है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

36. अल्लाह के मार्ग में लड़ो उन से जो तुम से लड़ते हैं। मार डालो तुम उनको जहाँ पाओ, कत्ल से कुफ्र बुरा है। यहाँ तक उनसे लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का। उन्होंने जितनी जियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उनके साथ करो। 2: 190-194 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो कुरान में ऐसी बातें न होतीं तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है; न करते। और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है। जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उसको कुफ्र कहते हैं अर्थात कुफ्र से कतल को मुसलमान अच्छा मानते हैं। अर्थात जो हमारे दीन को न मानेगा उस को हम कतल करेंगे सो करते ही आये। मज़हब पर लड़ते लड़ते आप ही राज्य आदि से नष्ट हो गये। और उन का मन अन्य मत वालों पर अति कठोर रहता है। क्या चोरी का बदला चोरी है? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि चोरी करें क्या हम भी चोरी करें? यह सर्वथा अन्याय की बात है। क्या कोई अज्ञानी हम को गालियां दें क्या हम भी उसको गाली देवें? यह बात न ईश्वर की और न ईश्वर के भक्त विद्वान की न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है। यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्य की है।

उत्तर:

काफ़िरो के कत्ल करने का झूठा आरोप

आगे उत्तर पढ़ने से पहले पंडित का यह कथन सुने — "बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं जो वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है।" (स.प. भूमिका)

पवित्र क़ुरआन में ईश्वर कहता है — "लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं — 2:190।" किंतु पंडित अपने अनुयायी समेत हिन्दू समुदाय को यह भ्रम देते हैं कि इस आयत में सभी काफ़िरों (गैर-मुस्लिमों) की हत्या का आदेश दिया गया है, और मुसलमान हमेशा इसी वजह से निरपराधी लोगों का कत्ल करते रहे है।

आइए आयत के सही संदर्भ को समझते हैं — यह आयत उन मक्कावासी मूर्तिपूजकों के विरुद्ध संघर्ष का आदेश देती है जो अत्याचारी, दुष्ट और क्रूर थे; न कि निरपराध, निर्दोष या मासूम लोगों के विरुद्ध, जैसा कि पंडित ने प्रस्तुत किया है। आयत स्पष्ट रूप से कहती है — "लड़ो उनसे जो तुमसे लड़ते हैं" — अर्थात, यह आज्ञा आत्मरक्षा के लिए है, न कि निर्दोषों को मारने के लिए। यह स्पष्ट करता है कि संघर्ष की अनुमति अत्याचार और अत्याचारियों के विरुद्ध है, धर्म थोपने के लिए नहीं। इसी संदर्भ में आयत यह भी शिक्षा देती है कि "हद से न गुज़रों अर्थात, लोगों को अनावश्यक हिंसा से रोकना — विशेषकर महिलाओं, बच्चों, बुजुर्गों और निर्दोषों को हानि पहुँचाने से तथा प्रतिशोध से रोकती है।

पवित्र क़ुरआन यह भी स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि धर्म के विषय में कोई ज़बरदस्ती नहीं है। सूरह बकरा, (2:256)। यानी, इस्लाम में जबरन धर्मांतरण की कोई अनुमति नहीं है।

पंडित का यह आरोप कि "जो मुसलमानों के मत को ग्रहण नहीं करते, मुसलमान उसे कुफ़्र मानते हैं और कुफ़्र से कत्ल करने को अच्छा समझते हैं" — मैं यह आशा नहीं करता कि एक विद्वान व्यक्ति इतना अज्ञानी होगा कि वह कुफ़्र और काफिर का अर्थ ही न जानता हो। काफिर शब्द का अर्थ सभी जानते हैं। इसका मूल अर्थ है — वह व्यक्ति जो ईश्वर के अस्तित्व को नकारता हो, अथवा ईश्वरीय धर्म-विधान, व्यवस्था, नियम, अथवा शिक्षाओं को अस्वीकार करता हो। ऐसे व्यक्ति को अरबी भाषा में अथवा ईमान के संदर्भ में काफिर कहा गया है। क़ुरआन में कही भी यह आदेश नहीं दिया गया है कि सभी काफ़िरों की हत्या कर दी जाए, और न ही यह कहा गया है कि जो इस्लाम धर्म या मुसलमानों के मत को ग्रहण नहीं

करता, उसे मार डालो। क़ुरआन में जितने भी संघर्ष के आदेश दिए गए हैं, वे या तो आत्मरक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए हैं, अथवा अत्याचारियों के विरुद्ध — न कि धर्मांतरण अथवा निहत्थे निर्दोष लोगों के संहार के लिए।

काफ़िर और नास्तिक एक दूसरे के समानार्थी शब्द

पाठकों के लिए यह समझना आवश्यक है कि काफिर और नास्तिक शब्द, अपने मूल अर्थ में, एक दूसरे के समानार्थी हैं। जिस प्रकार ईश्वर और धर्म में अविश्वास रखने वाले व्यक्ति को क़ुरआन की भाषा में काफिर कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार वेदों में ऐसे व्यक्ति के लिए नास्तिक शब्द का प्रयोग हुआ है। वेदों के अनुसार, नास्तिक उसे माना गया है जो वेदों की सत्ता, उनके आदेशों और वैदिक ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार नहीं करता।

इस संबंध में विद्वानों के मत इस प्रकार हैं —

स्वयं दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास (पृष्ठ 67) में स्पष्ट कहा है — वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहाता है।" इसी ग्रंथ के एकादश समुल्लास (पृष्ठ 255) में वे लिखते हैं — "वेदों की निन्दा अर्थात अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है।"

पंडित अच्युतानंद सरस्वती, सामवेद के एक मंत्र (11) का भावार्थ करते हुए लिखते हैं — "जो लोग ईश्वर से विमुख होकर ईश्वर की भक्ति और वेदों की आज्ञा से विरुद्ध चलते हैं, नास्तिक बन संसार की हानि करते हैं।" इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मंत्र (10.151.4) का भावार्थ करते हुए लिखते हैं — "श्रद्धा के बिना कोई भी श्रेष्ठ कर्म नहीं हो सकता। जिनकी वेदों में और अपने माननीय आचार्यों में श्रद्धा नहीं, ऐसे नास्तिक; कोई अच्छा धर्म कर्म नहीं कर सकते।"

पंडित ब्रह्ममुनि परिव्राजक जी ने भी ऋग्वेद के एक मंत्र (10.55.1) का भावार्थ करते हुए लिखा — "जो लोग नास्तिक हैं, ईश्वर की उपासना नहीं करते हैं, वे परमात्मा के रहस्यपूर्ण नामों को नहीं समझ सकते।"

इसी प्रकार वेदों में अनेक स्थलों पर नास्तिक की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (10.48.7) "जो मुझ इन्द्र को ऐश्वर्यवाले परमात्मा को जो नहीं जानते और मानते, ऐसे नास्तिक शत्रु विरोधी मेरी क्यों निन्दा करते हैं, अतः वे दण्डभागी होंगे।" (भाष्यकार ब्रह्ममुनि परिव्राजक)

ऋग्वेद (9.97.54) "जो लोग परमात्मा की भक्ति नहीं करते अर्थात नास्तिक हैं, उनको इस आस्तिक समाज से दूर करना।" (भाष्यकार आर्य मुनि)

ऋग्वेद (10.27.6) "मुझ इन्द्र परमात्मा को न मानने वाले नास्तिक दूसरे के मांस रक्तादि पीने खानेवालों को मैं देखता हूँ जानता हूँ।" (भाष्यकार ब्रह्ममुनि परिव्राजक)

ऋग्वेद (8.21.14) "हे इन्द्र! तू जो जन केवल धनिक है परंतु दान और यज्ञादि से रहित है उसको मैत्री के लिए प्राप्त नहीं करता अर्थात वैसे पुरुष को तू मित्र नहीं बनाता क्योंकि सुरा आदि अनर्थक द्रव्यों से सुपुष्ट नास्तिक गण तेरी हिंसा करते हैं, अर्थात तेरे नियमों को नहीं मानते।" (भाष्यकार शिव शंकर शर्मा)

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि वैदिक दृष्टिकोण से, जो भी व्यक्ति वेदों के ईश्वर की सत्ता और वेदों के प्रामाण्य को स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक की श्रेणी में आता है। इस परिभाषा के अनुसार, वे सभी मत (जैसे मुसलमान, ईसाई, यहूदी, जैन,

बौद्ध) जो वेदों को अपना प्रमुख धर्मग्रंथ नहीं मानते और वैदिक ईश्वर की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते, वेदों की भाषा में वह नास्तिक कहलाएंगे।

अब यह देखना भी आवश्यक है कि वेद नास्तिकों के विषय में क्या निर्देश देता है —

अथर्ववेद (12.5.62) "तू वेदनिन्दक को काट डाल, चीर डाल, फाड़ डाल, जला दे, फूँक दे, भस्म कर दे।" (भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी)

अथर्ववेद (12.5.54) "जलाती हुई, भस्म कर देती हुई, तू (वेदनिन्दक के लिये) ब्रह्म (परमेश्वर) का वज्ररूप है।" (भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी)

अथर्ववेद (12.5.52) "जो जितेंद्रिय वेदज्ञानी पुरुष निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, वे वेदविरुद्ध दोषों और शत्रुओं को नाश कर सकते हैं।" (भाष्यकार ब्रह्ममुनि परिव्राजक)

यजुर्वेद (13.12) "धर्मात्मा पुरुषों के लिए सुखों का विस्तार कीजिये। हे तीव्र दंड देने वाले राजपुरुष! धर्म के द्वेषी शत्रुओं को निरन्तर जालिये।" (भाष्यकार दयानन्द सरस्वती)

अथर्ववेद (12.3.43) "ज्ञानाग्नि राक्षसी विचार को तपा दे, भस्मीभूत कर दें जो कि देवविरोधी है, परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता, नास्तिकतारूपी है। मांसभक्षी यह पैशाची विचार इस हमारे जीवन में हमारा रक्त न पीए। इसे हम दूर करते हैं, अपने पास आने का इसका मार्ग दूर से ही रोक देते हैं। (भाष्यकार विश्वनाथ विद्यालंकार)

सामवेद (1106) "हे सोम, शान्तिप्रिय प्रजाध्यक्ष! आप इस राष्ट्र से द्रोहकारी रिपुओं को दूर कर दो, अविवेकी, अधार्मिक नास्तिकों को दूर कर दो। इस प्रकार राष्ट्र में परमेश्वर के प्रचार के लिए और वेदप्रचार के लिए कटिबद्ध होवो।" (भाष्यकार आचार्य रामनाथ वेदालंकार)

यदि इन प्रमाणों के उपरांत भी कोई जिहाद और अन्य मत वालों के कत्ल को अपने मुख पर लाता है तो इससे बढ़कर निर्लज्जता और विवेकहीनता का उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता।

मज़हब पर लड़ते-लड़ते अपने राज्यों से नष्ट हो गए

दयानन्द जी मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि "मज़हब पर लड़ते-लड़ते अपने राज्यों से नष्ट हो गए।" राज्य खोना निश्चित ही एक गंभीर विपत्ति है, किंतु पंडित जी किस मानसिक भ्रम में थे कि यह भी नहीं देख सके कि उन्ही के समय में भी मुसलमानों के अनेक राज्य स्वतंत्र थे, और आज भी हैं। मुस्लिम राज्य तो आज तक विश्व पटल से मिटे नहीं, परंतु आर्यों ने अपना राज्य किन कारणों से गँवा दिया? और ऐसा गँवाया कि आज तक भूमि के किसी भी टुकड़े पर उनका अपना कोई राज्य नहीं, यहाँ तक कि किसी गली-मोहल्ले तक में नहीं। यह किस पाप की सज़ा है कि एक संपूर्ण समुदाय सदियों तक परतंत्रता का जीवन जीता रहा और आज भी धर्मनिरपेक्ष कानूनों के अधीन जीने को विवश है?

इनके यहाँ तो आख़िरत जैसे कोई अवधारणा भी नहीं, जिससे यह समझा जा सके कि सत्कर्मों का प्रतिफल परलोक में मिलेगा। इन्हें जो कुछ भी प्राप्त होना है, इसी लोक में प्राप्त होगा — और इस लोक में इन्हें मिली है केवल अपमानजनक पराधीनता और दासता।

चोरी पाप एवं अपराध है पर आत्मरक्षा कर्तव्य

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि चोरी करना एक घोर अपराध एवं पाप है, किंतु आत्मरक्षा करना मनुष्य का नैसर्गिक अधिकार और कर्तव्य भी है। उल्लेखित आयत का सार तत्व यही था कि पवित्र महीनों में यदि शत्रु मुसलमानों पर आक्रमण करे, तो उन्हें भी अपनी रक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, पवित्र माह का सम्मान सर्वोपरि बना रहना चाहिए। यदि विरोधी पक्ष इस पवित्रता का उल्लंघन करते हुए आक्रमण करता है, तो भी तुम्हें उनके समान आचरण नहीं करना है। बल्कि, पवित्रता के महत्व को बनाए रखते हुए, केवल उतने ही प्रतिरोध तक स्वयं को सीमित रखना है जिससे शत्रु को यह संदेश स्पष्ट हो जाए कि तुम निर्बल नहीं हो, किंतु सिद्धांतों और मर्यादाओं का पालन करने वाले हो।

ऐसी स्पष्ट और संतुलित शिक्षा पर यह कितना खेद का विषय है कि बिना आयत के सही तात्पर्य को समझे, उस पर आधारहीन दोषारोपण कर दिया जाता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

37. अल्लाह झगड़ा करने वालों को मित्र नहीं रखता। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो इस्लाम में प्रवेश करो। 2: 205-208 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो झगड़ा करने वाले को ख़ुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता है? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता हैं? क्या मुसलमानों के मत में मिलने ही से खुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है; सब संसार का ईश्वर नहीं। इस से यहां यह विदित होता है कि न कुरान ईश्वरकृत और न इस में कहा हुआ ईश्वर हो सकता है।

उत्तर:

वेद में आर्यों को क़त्लोंगारत करने का लाइसेंस

आयत में अत्यंत स्पष्ट, सुंदर और गहन संदेश दिया गया है कि ईश्वर उन लोगों को पसंद नहीं करता जो धरती पर फसाद — अर्थात् अन्याय, झगड़ा और विद्वेष — फैलाते हैं। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि जिन पर अत्याचार हुआ हो, वे यदि अपने अधिकारों और न्याय के लिए आवाज़ उठाएँ या संघर्ष करें, तो उनके इस प्रयास को फसाद कहा जाए। फसाद' का अर्थ है — बुराई, अत्याचार और पृथ्वी पर शांति का भंग करना; न कि आत्मरक्षा या न्याय की स्थापना के लिए किया गया संघर्ष।

इस्लाम की शिक्षा इस संदर्भ में अत्यंत संतुलित है। ईश्वर ने मुसलमानों को भी चेताया है कि यदि वे स्वयं अत्याचार करेंगे, तो वे भी दोषी ठहरेंगे और उसकी नज़रों में अप्रिय बनेंगे। इस्लाम ने अशांति और अन्याय फैलाने वालों के लिए कठोर दंड का विधान रखा है — चाहे वह कोई भी व्यक्ति क्यों न हो।

सत्य के विरोध और घृणा का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है कि जो ग्रंथ (क़ुरआन) फसाद को रोकता है, और जो आयत उसकी निंदा करती है, उसी को आधार बनाकर मुसलमानों पर फसाद का झूठा आरोप लगाया जाए! यह न केवल अन्याय है, बल्कि गंभीर विकृति भी है।

शायद चौदहवीं सदी के सन्यासी को यह आयत इसलिए अप्रिय लगी हो, क्योंकि वेदों में वर्णित उनके ईश्वर ने तथाकथित आर्यों को जिस हिंसा और विनाश का 'अधिकार' दिया है, उसके विपरीत इस्लाम उन अशांति फैलाने वालों को दंडित करने का उपदेश भी न दें। उदाहरण के तौर पर देखें —

वेद में आर्यों को अहिंसा फैलाने का लाइसेंस —

यजुर्वेद (15.17) "वे हम लोग जिससे द्वेष करें और जो दुष्ट हमसे द्वेष करे, जिसको हम इन सिंहादि के मुख में धरें, उसको वे रक्षक भी सिंहादि के मुख में धरें।"

यजुर्वेद (15.18) "वे हम जिससे द्वेष करें और जो हमसे द्वेष करे, उसको इन जल-वायुओं के दुःखदायी गुणरूप मुख में धरें, वैसे तुम लोग भी वर्त्तो।"

यजुर्वेद (20.19) "जो हमारा द्वेष करे और जिसका हम द्वेष करें, उनके लिए ये सब शत्रुओं के समान हों।"

यजुर्वेद (16.64) "वे हम लोग जिससे अप्रीति करें, और जो हम को दुःख दे उसको इन वायुओं की बिलाव के मुख में मुषे के समान पीड़ा में डालें।"

इन सभी मंत्रों का भाष्य स्वयं पंडित दयानन्द सरस्वती ने किया है। यह उन लोगों के लिए एक गंभीर चिंतन का विषय है जो आर्य समुदाय से भिन्न मत रखते हैं, क्योंकि इन मंत्रों में उन समुदायों के विनाश का आदेश दिया गया है जिनसे आर्य द्वेष रखते हैं — भले ही वे समुदाय आर्यों से शत्रुता न रखते हों।

क्या यह घोर पक्षपात नहीं है कि एक ओर जो द्वेष करे, वह भी दंड का पात्र है, और दूसरी ओर जिससे आर्य स्वयं द्वेष करें, वह भी दंडित किया जाए? क्या दोनों ही स्थितियों में दूसरे समुदाय को ही अपराधी ठहराना न्यायकारी ईश्वर का कार्य हो सकता है?

पाठकगण! आप स्वयं विचार करें कि कौन-सा दृष्टिकोण ईश्वरीय न्याय, करुणा और सार्वभौमिक नैतिकता के अधिक अनुरूप है।

इस्लाम से ईश्वर प्रसन्न क्यों होता है

हे पंडित जी! इस्लाम में प्रवेश करने से ईश्वर प्रसन्न होता है, क्योंकि 'इस्लाम' का शाब्दिक अर्थ ही है — आत्मसमर्पण और आज्ञापालन। यदि ईश्वर अपने आज्ञाकारी और समर्पित भक्तों से प्रसन्न नहीं होगा, तो फिर किससे होगा? क्या आप अपने मत में यह मानते हैं कि वेदानुकूल आचरण करने से ईश्वर अप्रसन्न होता है? स्पष्ट है कि आपकी यह आपत्ति न केवल द्वेषपूर्ण भावना से प्रेरित है, बल्कि गहन अज्ञान पर भी आधारित है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

38. खुदा जिसको चाहे अनन्त रिज़क देवे। 2: 212 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या विना पाप पुण्य के खुदा ऐसे ही रिज़क देता है? फिर भलाई बुराई का करना एक सा ही हुआ। क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उस की इच्छा पर है। इस से धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई कोई इस कुरानोक्त पर विश्वास कर के धर्मात्मा भी होते हैं।

उत्तर:

जीवन की परिस्थितियाँ एक परीक्षा

इस्लामी परिपेक्ष्य के अनुसार, वर्तमान जीवन की सभी परिस्थितियाँ — चाहे वे सुखद हों या कष्टदायक — ईश्वर की ओर से एक परीक्षा हैं। मनुष्यों को इन परिस्थितियों में अच्छे एवं बुरें के बीच चयन करने की स्वतंत्र इच्छा प्रदान की गई है। ईश्वर द्वारा प्रदान किए गए संसाधनों पर समस्त मानवों का समान अधिकार है। इन्ही संसाधनों और परिस्थितियों के माध्यम से वह कुछ लोगों की कृतज्ञता की परीक्षा करता है, तो कुछ की धैर्य की — ताकि उनपर यह स्पष्ट हो जाए कि उनमें कौन अपनी समृद्धि में नम्र और कृतज्ञ है, और कौन विपत्ति में भी अपने विश्वास एवं नैतिकता पर अडिग है। क़ुरआन में इसी चीज़ को स्पष्ट रूप से कहा गया है — "और हम निश्चित रूप से तुम्हें थोड़े-बहुत भय, भूख, धन-जन की कमी और फसलों के नुकसान से अवश्य परखेंगे।" (सूरह बकरा, 2:155) इस आयत से स्पष्ट है कि संसार के सुख-साधन हो या दुःख के कारण, सभी ईश्वरीय योजना का अंग हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य के विश्वास, सहनशीलता और कृतज्ञता को परखा जाता है। इस्लाम सांसारिक जीवन को कारावास नहीं मानता, और न ही यह सिद्धांत स्वीकार करता है कि मनुष्य की आत्मा किसी पूर्वजन्म या कर्म-फल की अदृश्य बेड़ियों में जकड़ी हुई है। इसके विपरीत, इस्लाम प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा को मूल रूप से स्वतंत्र मानता है, जिसे किसी काल्पनिक बंधनों से मुक्ति पाने की आवश्यकता नहीं है। इस्लामी दृष्टिकोण में मानव विकास का चरम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति नहीं, बल्कि फलाह (सफलता) है, जो आध्यात्मिक, नैतिक और सांसारिक उपलब्धियों का सामंजस्यपूर्ण समन्वय है। फलाह का अर्थ है — ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करते हुए जीवन के उद्देश्यों को पूरा करना। इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार, मानव की आत्मा की तुलना एक बीज से की जा सकती है, जिसे विकसित होकर फल देने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है —

1. बाहरी खतरों (जैसे अज्ञानता, पाप) से सुरक्षा।
2. आंतरिक क्षमताओं (जैसे ईमान, सद्कर्म) का पोषण।

इसे हम एक रासायनिक प्रक्रिया से भी समझ सकते है — उदाहरण के तौर पर — जिस प्रकार कोई मिश्रण विभिन्न तापमानों पर अपने गुण प्रकट करता है, उसी प्रकार मनुष्य जीवन की विविध परिस्थितियों (सुख-दुःख) के माध्यम से अपनी छिपी हुई प्रतिभाओं और नैतिक गुणों को उजागर करता है। इस पूरी प्रक्रिया में ईश्वरीय मार्गदर्शन (क़ुरआन) और स्वतंत्र इच्छा का सदुपयोग ही फलाह की कुंजी है।

पुनर्जन्म (आवागमन) एक तर्कहीन सिद्धांत

पंडित दयानन्द के अनुसार आत्माएँ अमर और अजन्मा है, जो अपने कर्मों के आधार पर बार-बार भिन्न-भिन्न शरीरों (योनियों) में जन्म लेती रहती हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, जब तक आत्मा अपने पिछले जन्मों के बुरें कर्मों का प्रायश्चित कर पुण्य संचय नहीं कर लेती, तब तक वह इस कर्म-फल के चक्र से मुक्त नहीं हो सकती। उनके अनुसार, आत्मा संसार की विभिन्न योनियों (जैसे मनुष्य, पशु, किट, पौधे आदि) में भटकती रहती है, जब तक वह अपने कर्मों का पूर्ण निवारण करके मोक्ष प्राप्त नहीं कर लेती। उनके मत में मानव योनि ही एकमात्र ऐसी योनि है जहाँ सुख और दुःख दोनों का भोग संभव है,

जबकि अन्य योनियाँ मुख रूप से केवल दुःख भोगने का स्थान हैं। इसी अवधारणा को आवागमन या कर्म-फल सिद्धांत कहा जाता है।

परंतु, जब इस सिद्धांत का तार्किक एवं दार्शनिक दृष्टि से विचार किया जाता है, तो एक मूलभूत प्रश्न उठता है — "प्रथम जन्म कैसे संभव हुआ होगा?" विशेष रूप से तब, जब यह माना जाता है कि प्रत्येक जन्म का आधार पूर्वजन्म के कर्म हैं। यह विचारधारा एक गहन तार्किक दुविधा को जन्म देती है, जिसे दर्शनशास्त्र में अनन्त प्रतिगमन (Infinite Regress) कहा जाता है। अनन्त प्रतिगमन का अर्थ यह है कि यदि किसी घटना का कारण हमेशा कोई पूर्ववर्ती घटना है, और वह पूर्ववर्ती घटना का कारण उससे भी पहले की कोई घटना है, तो यह श्रृंखला अनन्त काल तक पीछे चलती रहेगी, बिना किसी आरंभिक बिंदु के। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है — मान लीजिए, यदि जन्म कर्म का परिणाम है, और यह कर्म पिछले जन्म में किये गए कर्मों का परिणाम है, तो सर्वप्रथम जन्म से पहले वह कर्म कहाँ से आया? यह एक ऐसा अंतहीन चक्र बन जाता है, जिसका कोई तार्किक प्रारंभ बिंदु नहीं मिलता। यदि कोई प्रारंभ बिंदु नहीं है, तो समस्त व्यवस्था ही तर्कहीन है। वैज्ञानिक एवं दार्शनिक नियम के अनुसार, प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है। यदि जन्म और कर्म के चक्र को इसी सिद्धांत के आधार पर देखें, तो प्रश्न उठता है — प्रथम कारण क्या था? यदि यह भी मान लिया जाए कि यह चक्र अनन्त काल से चलता आ रहा है और इसका कोई प्रारंभ नहीं था, तो भी यह पूरी प्रणाली तर्कहीन ही ठहरती है; क्योंकि किसी भी घटनाक्रम के आगे बढ़ने के लिए उसका एक आरंभिक बिंदु होना अनिवार्य माना जाता है। बिना किसी प्रथम कारण (First Cause) के, यह क्रम प्रारंभ ही नहीं हो सकता, आगे बढ़ना तो दूर की बात है।

यह तर्क दर्शाता है कि इस सिद्धांत के समक्ष दो विकल्प है — या तो वो प्रथम जन्म बिना किसी पूर्व कर्म के हुआ माने, परंतु यहाँ एक समस्या है कि यदि यह मान लिया जाए तो पूरी कर्मवाद सिद्धांत का ही खंडन हो जाएगा — और ये आर्य समाज के लिए संभव ही नहीं। या फिर कर्म पहले ही से माने — जो आर्य समाज के अनुसार असंभव है, क्योंकि बिना किसी जीव के कर्म कैसे हो सकता है? यदि तर्क और प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाए, तो यह स्पष्ट है कि जन्म और कर्म का यह सिद्धांत आंतरिक विरोधाभास (Contradiction) से धीरा हुआ है। यह द्वंद्व हमें एक तर्कहीन चक्र में ले जाता है, जो अनन्त प्रतिगमन की समस्या पैदा करता है और स्वयं कार्य-कारण के उस सार्वभौमिक सिद्धांत का भी उल्लंघन करता है — जिसे पंडित दयानन्द स्वयं स्वीकार भी करते हैं।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

39. प्रश्न करते हैं तुझ से रजस्वला को कह वो अपवित्र हैं। पृथक् रहो ऋतु समय में उन के समीप मत जाओ जब तक कि वे पवित्र न हों। जब नहा लेवें उन के पास उस स्थान से जाओ खुदा ने आज्ञा दी। तुम्हारी बीवियां तुम्हारे लिये खेतियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में। तुम को अल्लाह लग़ब (बेकार, व्यर्थ) शपथ में नहीं पकड़ता। 2: 222-225 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो यह रजस्वला का स्पर्श संग न करना लिखा है वह अच्छी बात है। परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और जैसा जिस तरह से चाहो जाओ यह मनुष्यों को विषयी करने का कारण है। जो खुदा बेकार शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब झूठ बोलेंगे शपथ तोड़ेंगे। इस से खुदा झूठ का प्रवर्त्तक होगा।

उत्तर:

महिलाओं को खेतियाँ कहने का अर्थ

स्त्री को उपजाऊ खेत और पुरुष को बीज के रूप में प्रस्तुत करने वाली यह उपमा विश्व के कई धार्मिक ग्रंथों में पाई जाती है, जो प्रजनन और वंश-वृद्धि की प्रक्रिया को एक सांकेतिक रूपक के माध्यम से समझाती है। इस संदर्भ में, मनुस्मृति (9.33, 9.49, 9.53 और 9.56) में स्पष्ट कहा गया है कि स्त्री खेत के तुल्य है और पुरुष बीज के। स्वयं दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश (चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ 101-102) में भी स्त्री को खेत से तुलना की है। इसके अतिरिक्त, अथर्ववेद (14.2.14) में भी इसी तरह स्त्री को खेत बताया गया है। पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेद के भाष्य के अनुसार "आत्मा (भीतरी बल) वाली उपजाऊ धरती, यह नारी आयी है; हे नर! उस ऐसी गुणवती वधु में बीज बो। वह नारी वीर्यवान पुरुष के दूध समान वीर्य को धारण करती हुई, अपने पेट की नाड़ियों से तेरे लिए सन्तान उत्पन्न करे।"

इसी मूलभूत सत्य को पवित्र क़ुरआन ने भी एक अत्यंत ऊँचे, सभ्य और कोमल अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। क़ुरआन कहता है — "ऐ पुरुषों! स्त्रियाँ (पत्नियाँ) तुम्हारी खेतियाँ हैं" — अर्थात, उनमें तुम्हारी संतान का आधार निहित है।

खेती की यह उपमा जीवनदायिनी, उपजाऊ और पोषक भूमि के समान एक सकारात्मक तुलना है, जो स्पष्ट करती है कि नारी परिवार और समाज की आधारशिला है — वह स्रोत है जहाँ से प्रेम, सहयोग और नई पीढ़ी का उदय होता है। इस तुलना का गहन अर्थ यह है कि जिस प्रकार एक किसान अपनी भूमि का सतत ध्यान रखता है, उसे संकटों से सुरक्षित रखता है, उसे स्नेहपूर्वक सींचता है और बीजारोपण से पूर्व उचित समय एवं विधि का विचार करता है, ठीक उसी प्रकार एक पति का कर्तव्य है कि वह अपनी पत्नी के साथ सम्मान, देखभाल और प्रेम का व्यवहार करें तथा उससे सद्चरित्र और योग्य सन्तान की प्राप्ति का प्रयास करे। यह उपमा पुरुष को उसकी जिम्मेदारी का स्मरण कराती है, न कि उसे स्वेच्छाचारिता की अनुमति देती है।

इस विषय के गहन अध्ययन हेतु "अल्लामा मुहम्मद क़ासिमुल क़ादरी अल-अजहरी" की पुस्तक "क़ुरआन ने औरतों को खेती क्यों कहा?" अवश्य पढ़नी चाहिए।

इसमें किसी प्रकार की अश्लीलता नहीं है — जैसा कि ब्रह्मचारी ने चित्रित करने का प्रयास किया है। पवित्र क़ुरआन की यह बात नितांत शुद्ध, शालीन और मानव मूल्य आधारित है। परंतु खेद की बात यह है कि ब्रह्मचारी जी ने इसके अर्थ को विकृत रूप देने का दुस्साहस किया है।

इसके अतिरिक्त, वेदों में ऐसे अनेक मंत्र मौजूद हैं जो मनुष्यों के विषयी बनने का कारण बनते हैं, जैसे —

यजुर्वेद (28.32) के भावार्थ में पंडित दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं — "हे मनुष्यों! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है, वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढ़ावें।"

यजुर्वेद (19.76) के भाष्य में — "पुरुष का लिंग इन्द्रिय स्त्री की योनि में प्रवेश करता हुआ वीर्य को विशेष कर छोड़ता है, इससे अलग प्रस्राव (तरल) को छोड़ता है।"

इसी प्रकार के स्पष्ट शारीरिक विवरण अन्य मंत्रों में भी मिलते हैं, जैसे —

यजुर्वेद (19.88) भाष्यकार दयानन्द सरस्वती

यजुर्वेद (20.9) भाष्यकार दयानन्द सरस्वती

यजुर्वेद (23.29) भाष्यकार दयानन्द सरस्वती

अथर्ववेद (4.4.7) भाष्यकार विश्वनाथ विद्यालंकार

अथर्ववेद (6.72.2) भाष्यकार सत्यार्थप्रकाश सरस्वती

अथर्ववेद (14.2.38-39) भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी

सत्य यह है कि उक्त मंत्र इतने अशोभनीय हैं कि उन्हें खुले रूप में प्रस्तुत करना भी उचित नहीं। वास्तविकता तो यह है कि ब्रह्मचारी जी ने अपने ग्रंथों में निहित इस अश्लीलता पर एक प्रकार का सुनियोजित पर्दा डालने का प्रयास किया है। एक कारण यह भी है कि वे स्वयं के ग्रंथों के कूड़े-करकट से लोगों का ध्यान हटाने के लिए एक सुविधाजनक रणनीति अपनाते है — दूसरे के पवित्र ग्रंथों पर दोषारोपण कर दो। इस प्रकार की तुष्टिकरण की नीति उन्हें एक ऐसी सुरक्षित स्थिति प्रदान करती है, जहाँ उनके स्वयं के ग्रंथों में मौजूद दोषों और विसंगतियों पर कभी कोई सार्थक प्रश्न ही न उठ पाता। उनका उद्देश्य स्पष्ट है — अपने कचरे को छिपाने के लिए दूसरों के आँगन में गंदगी फेंकना, ताकि उन्हें कभी अपने ही कूड़ेदान का उत्तर देने की आवश्यकता ही न पड़े।

अनिच्छापूर्ण क़समें

क़ुरआन की इस आयत में स्पष्ट रूप से कहा गया है — "ईश्वर तुम्हें तुम्हारी अनिच्छापूर्ण क़समों के लिए नहीं पकड़ेगा, बल्कि वह तुम्हें उन क़समों के लिए ज़िम्मेदार ठहराएगा जो तुमने दृढ़ नियत से खाई हों।"

इस आयत का सार यह है — ईश्वर के यहाँ किसी व्यक्ति को किसी वचन का दोषी तभी माना जाता है जब उसकी नियत दोषपूर्ण हो। यदि कोई वचन अनजाने (अचेत) में या बिना इरादे के मुख से निकल जाए, तो उसे अपराध नहीं माना जाएगा। यदि पंडित इस सूक्ष्म अंतर को समझ पाते, तो शायद वे इस पर आपत्ति करने की भूल न करते। क़ुरआन मानवीय कमज़ोरी और भूलों को समझता है। यह अनजाने में हुई गलतियों और जानबूझकर कहें गए वचनों के बीच स्पष्ट अंतर करता है। जो लोग भूल से निकले वचनों को पकड़कर आलोचना करते हैं, वे वास्तव में न्याय और इंसाफ के मूलभूत सिद्धांतों को नहीं समझ पाते।

पंडित दयानन्द ने इस आयत के संदर्भ को भी छिपाया है। उन्होंने क़ुरआन पर यह आरोप लगाया कि यह "क़सम तोड़ने" को बढ़ावा देता है, जबकि आयत में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है। इसके विपरीत, आयत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इरादतन खाई गई क़समों पर ही तुम्हारी पकड़ होगी। दुर्भाग्य से, आयत के इस महत्वपूर्ण अंश को उजागर ही नहीं किया गया। आयत का मर्म यही है कि ईश्वर केवल उन्हीं क़समों पर पकड़ करेगा, जो सोच समझकर दृढ़ नियत से खाई गई हों। जो क़सम अनजाने में, बिना इरादे के, ज़बान से फिसल जाए, उसके लिए कोई दोषारोपण नहीं है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

40. वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे। अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उस को उस के वास्ते। 2: 245 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला खुदा को कर्ज उधार लेने से क्या प्रयोजन? जिस ने सारे संसार को बनाया वह मनुष्य से कर्ज लेता है? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समझे कहा जा सकता है। क्या उस का खजाना खाली हो गया था? क्या वह हुण्डी पुड़िया व्यापारादि में मग्न होने से टोटे में फंस गया था जो उधार लेने लगा? और एक का दो-दो देना स्वीकार करता है, क्या यह साहूकारों का काम है? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों वा खर्च अधिक करने वाले और आय न्यून होने वालों को करना पड़ता है; ईश्वर को नहीं।

उत्तर:

कर्ज़ का अर्थ सद्कर्म हैं, न कि धन-दौलत का लेन-देन

आगे बढ़ने से पहले पाठकों से अनुरोध है कि वे पंडित जी के इस कथन पर गंभीरतापूर्वक विचार करें — "जहाँ-जहाँ (अर्थ) असम्भव होता है, वहाँ-वहाँ लक्षणा होती है। उदाहरण देकर वे स्पष्ट करते हैं — किसी सत्यवादी विद्वान पुरुष ने किसी से कहा कि खेतों में मन्चान पुकारते हैं, इस वाक्य में लक्षणा से ये अर्थ होता है कि मन्चान के ऊपर मनुष्य पुकार रहे हैं।"(ऋग्वेद भाष्यभूमिका, विषय-वेदोत्पत्ति, पृष्ठ 13)

यह भाषाशास्त्र का एक मौलिक एवं गूढ़ सिद्धांत है कि जहाँ किसी शब्द का प्रत्यक्ष अर्थ असंगत या असंभव प्रतीत हो, वहाँ लाक्षणिक अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसी सिद्धांत के आधार पर यदि हम ईश्वर को कर्ज देना जैसे प्रयोग पर दृष्टिपात करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर के साथ कर्ज़ का वास्तविक लेन-देन संभव नहीं। अतः यहाँ कर्ज़ शब्द लक्षणा के रूप में प्रयुक्त हुआ है। (पंडित जी की बुद्धि केवल वेदों की व्याख्या तक ही क्यों सीमित रहती है, अन्य ग्रंथों पर वही दृष्टि क्यों नहीं लागू होती? — सन्यासी का यह स्पष्ट पक्षपात है)

कर्ज़-ए-हसना से तात्पर्य उस सकारात्मक कर्म और सद्कर्म से है, जो भक्त दूसरों के प्रति करुणा, सेवा और भलाई के भाव से करता है। इसे कर्ज़-ए-हसना — अर्थात सुंदर ऋण या उत्तम दान — इसलिए कहा गया है, क्योंकि इसका प्रतिफल देने का दायित्व स्वयं ईश्वर पर है। ईश्वर अपनी असीम कृपा से उस नेकी का प्रतिफल अनेक गुना बढ़ाकर प्रदान करता है। वह अपने भक्तों के किसी भी सत्कर्म को व्यर्थ नहीं जाने देता। अतः ईश्वर को कर्ज देना कोई लेन-देन नहीं है, बल्कि एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है — जो इस गूढ़ सत्य को प्रकट करती है कि मनुष्य के सत्कर्म ही ईश्वर के प्रति उसका सच्चा निवेश हैं।

वेदों में इंद्र परमेश्वर पर चोरी और गर्भ गिराने का आरोप

संभवतः पंडित जी से भुलवश क़ुरआन पर आपत्ति हो गई; जबकि उनकी असली आपत्ति का निशाना तो ऋग्वेद का एक मंत्र था। और इस मंत्र का भाष्य स्वयं पंडित जी ने किया है — (ऋग्वेद-1.104.8) "हे परमैश्वर्य (संपूर्ण ऐश्वर्य) से युक्त परमेश्वर! हमारा वध मत करो, यानी हमें खुद से अलग मत करो। हमसे दूर मत हो। हमारे प्रिय भोजन को मत चोर और मत चोरवावो। हमारे गर्भों का नाश मत करो।"

इन्द्र परमेश्वर की चोरी करने और गरीबों के गर्भ गिराने की यह आदत, जो आपके ही भाष्य में मौजूद है, वह बहुत बुरी है। इसलिए, आप यह आपत्ति वेद की तरफ इस तरह लौटाए — (पंडित जी अपनी भाषा मे कहते) इन्द्र परमेश्वर को चोरी करने

और निर्दोष महिलाओं के गर्भ गिराने की यह बहुत बुरी लत है; ऐसे इन्द्र परमेश्वर से मित्रता रखना ठीक नहीं। ऐसा परमेश्वर हमसे दूर रहे, और हम उनसे दूर। देखिए, वेद की यह बात कितनी नसमझी और हास्यापद है — एक ओर परमेश्वर जुए में सबकुछ हार जाता है, दूसरी ओर भूख में लोगों के घरों से भोजन चुराने निकल पड़ता है। जुआ खेलने का यही अंजाम होता है — दीवाली की रात को देव दिवाला हो जाता है! फिर जब चोरी करते पकड़ा जाता है, तो घरों में जागे लोगों के गर्भ गिराने और वध करने जैसे कर्म करता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

41 उनमें से कोई ईमान न लाया और कोई काफ़िर हुआ, जो अल्लाह चाहता न लड़ते, जो चाहता है अल्लाह करता है। 2: 253 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या जितनी लड़ाई होती है वह ईश्वर ही की इच्छा से। क्या वह अधर्म करना चाहे तो कर सकता है? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं, क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें। इस से विदित होता है कि यह कुरान न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है।

उत्तर:

इच्छा और प्रसन्नता का अंतर तथा ईश्वरीय नियम

पवित्र क़ुरआन की आयत कहती है — "यदि ईश्वर चाहता तो वे आपस में युद्ध न करते, परंतु ईश्वर वही करता है जो वह चाहता है" — यह आयत स्पष्ट दर्शाती है कि युद्ध और असमानता ईश्वर के अन्यायपूर्ण आदेशों के कारण नहीं, बल्कि मनुष्य को मिली स्वतंत्र इच्छा (Free Will) के परिणाम से होते हैं।

ईश्वर ने इस संसार को एक नियमबद्ध प्रणाली (Natural Order) पर स्थापित किया है। इस व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु और घटना कुछ निश्चित नियमों के अधीन संचालित होती है। इसी प्रणाली के अंतर्गत मनुष्य को स्वतंत्र इच्छा प्रदान की गई है — अर्थात वह अपने कर्मों का चुनाव स्वयं कर सकता है। उदाहरण के तौर पर —

• आग जलाती है।

• बलवान व्यक्ति दुर्बल को पराजित कर सकता है।

• लालच, सत्ता की इच्छा, और स्वार्थ — संघर्ष और युद्ध का कारण बन सकते हैं।

पंडित जी, ईश्वर ने इन नियमों की रचना अवश्य की है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि जो कुछ इन नियमों के अधीन घट रहा है, उससे ईश्वर प्रसन्न (राज़ी) भी है।

ईश्वर की मशीयत (ईश्वरीय इच्छा) और ईश्वर की रिद़ा (ईश्वरीय प्रसन्नता) में अंतर है।

मशीयतुल्लाह का अर्थ है — जो कुछ इस दुनिया में घटित होता है, वह ईश्वर की बनाई व्यवस्था और अनुमति के अधीन संभव होता है।

परंतु, रिद़ाल्लाह का अर्थ है — ईश्वर की प्रसन्नता या स्वीकृति। ये दोनों एक ही बात नहीं हैं। इसे एक उदाहरण से समझें — यदि कोई व्यक्ति आग में हाथ डालता है, तो उसका हाथ जल जाएगा — यह प्राकृतिक नियम है। लेकिन इसका अर्थ यह

नहीं है कि ईश्वर चाहता है कि लोग अपने हाथ जलाएँ।
कोई शक्तिशाली व्यक्ति किसी दुर्बल पर अत्याचार करे, तो यह उसकी स्वतंत्र इच्छा का दुरुपयोग है; ईश्वर इस अन्याय से प्रसन्न नहीं होता।
इस अवधारणा को एक राज्य व्यवस्था से भी समझी जा सकती है। मान लीजिए — किसी बादशाह ने अपने राज्य के लिए कानून बनाए हैं। अब प्रजा उन्हीं कानूनों के अंतर्गत कार्य करेगी। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि बादशाह प्रजा के हर कार्य से प्रसन्न भी होगा। जैसे — अंग्रेज़ी शासनकाल में, उनके बनाए कानूनों के तहत भारतीयों को आंदोलन करने का अधिकार प्राप्त था। स्वतंत्रता सेनानियों ने उन्हीं कानूनों के अनुसार आंदोलन किया। परंतु, क्या इसका अर्थ यह था कि अंग्रेज़ी सरकार इस आंदोलन से प्रसन्न थी? बिल्कुल नहीं।
इसी प्रकार, ईश्वर ने भी इस संसार के लिए नियम बनाए हैं, परंतु हर कार्य या घटना ईश्वर की प्रसन्नता के अनुरूप नहीं होती। ईश्वर ने मनुष्यों को स्वतंत्र इच्छा दी है, और वे अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी हैं। इस प्रकार, उक्त आयत का आशय यह नहीं है कि ईश्वर मनुष्यों को जबरन युद्ध करवाता है। बल्कि यह दर्शाती है कि युद्ध मानव की स्वतंत्र इच्छा के दुरुपयोग का दुष्परिणाम है। यदि ईश्वर चाहता, तो वह मनुष्यों को ईमान लाने या शांति से रहने पर विवश कर सकता था। किंतु, तब इच्छा और परीक्षा का कोई अर्थ ही न रह जाता। ईश्वर ने मनुष्यों को चयन की स्वतंत्रता दी है — ताकि वे स्वयं निर्णय लें कि वे सदाचार के मार्ग पर चलना चाहते हैं या अधर्म के। अंततः, मनुष्य अपने निर्णयों और कर्मों के लिए स्वयं जिम्मेदार होगा। और ईश्वर के न्याय के अनुसार उसे उसके कर्मों का परिणाम अवश्य मिलेगा।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

42. जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है? चाहे उस की कुरसी ने आसमान और पृथिवी को समा लिया है। 2: 255 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो आकाश भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं, अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है, उस को किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं। जब उस की कुर्सी है तो वह एकदेशी है। जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है।

उत्तर:

सभी सृष्टि ईश्वर ही का है

इस्लामी सिद्धांत के अनुसार, आयत में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि आकाशों और पृथ्वी में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर ही का है। इसका तात्पर्य यह है कि संपूर्ण ब्रह्मांड और सृष्टि पर ईश्वर की पूर्ण संप्रभुता (Absolute Sovereignty) तथा निरंकुश अधिकार (Complete Authority) स्थापित है। पंडित जी, इसे एक उदाहरण से समझे — जैसे कोई सम्राट यह घोषणा करे कि "संपूर्ण साम्राज्य मेरा है।" इसका अर्थ यह नहीं होता कि वह स्वयं उस साम्राज्य के प्रत्येक अंग का उपभोग करता है, बल्कि इसका आशय यह होता है कि वही उस राज का संप्रभु है, सर्वोच्च अधिकार उसी के पास निहित है, और वह अपने अपार ज्ञान तथा न्याय के अनुसार उसका शासन व प्रबंधन करता है। पवित्र क़ुरआन इसी वास्तविकता को दूसरे स्थान पर

इस तरह से स्पष्ट करता है — "सारा आधिपत्य और प्रभुत्व ईश्वर ही का है, और वही हर चीज़ पर सामर्थ्य रखता है।" (सूरह इमरान, 3:189)

इस आयत से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर की मालिकियत का अर्थ उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति नहीं, बल्कि सृष्टि पर उसका पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण है।

पंडित जी इस्लाम के अनुसार, ईश्वर अल-ग़नी (सर्वस्व स्वावलंबी) और अस-समद (सब जिसकी ओर प्रयत्न और आशाएँ करें, मगर स्वयं परिपूर्ण है, किसी पर निर्भर नहीं) है। अर्थात, वह हर प्रकार की आवश्यकता एवं कमी से पूर्णतः मुक्त और सर्वथा स्वतंत्र है। क़ुरआन इसी सिद्धांत को इस प्रकार प्रस्तुत करता है — "ऐ लोगों! तुम्हीं ईश्वर के मुहताज हो, और ईश्वर ही बेनियाज़ व सराहनीय है।" (सूरह फातिर, 35:15)

यह आयत इस तथ्य को उजागर करती है कि ईश्वर ने सृष्टि को अपनी किसी आवश्यकता या लाभ के लिए नहीं बनाया। यदि उसे किसी वस्तु की आवश्यकता होती, तो वह परिपूर्ण (Perfect) नहीं रहता। परंतु ईश्वर हर कमी, निर्भरता और आवश्यकता से पवित्र है।

ईश्वर की कुर्सी का तात्पर्य

पवित्र क़ुरआन में कुर्सी शब्द ईश्वर के ज्ञान, शक्ति और प्रभुत्व के प्रतीक के रूप में प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ किसी भौतिक, चार पायों वाली कुर्सी या सिंहासन से नहीं है। कुर्सी वास्तव में ईश्वर के अधिकार, नियंत्रण और उसकी सर्वव्यापी सत्ता का प्रतीक है। जब कहा जाता है कि — "उसकी कुर्सी आकाशों और धरती को समाए हुए है" — तो इसका आशय यह है कि ईश्वर का ज्ञान और शक्ति संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है; वह किसी सीमा या स्थान विशेष में सीमित या बंधा नहीं है। इस विषय में उठाई गई आपत्ति का मूल कारण एक भ्रम है। पंडित जी ने यह समझ लिया कि यह कुर्सी कोई भौतिक वस्तु हैं। जब अवधारणा ही गलत आधार पर टिकी हो, तो निश्चित रूप से उसका निष्कर्ष भी स्वतः ही त्रुटिपूर्ण होगा। वास्तव में, पवित्र क़ुरआन में कुर्सी शब्द का उद्देश्य ईश्वर के ज्ञान की अनंतता को दर्शाना है, न कि ईश्वर को किसी स्थान तक सीमित करना।

हम मुसलमानों का यह स्पष्ट सिद्धांत है कि ईश्वर स्थान और दिशा की सभी सीमाओं से पूरी तरह परे और पवित्र है। क़ुरआन स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि "लैस कमिस्लिही शई" अर्थात उसके समान कुछ भी नहीं है (सूरह अश-शूरा, 42:11)। भौतिक जगत की किसी भी वस्तु को ईश्वर से जोड़कर देखना, इस आयत के स्पष्ट निर्देश के विपरीत है। यह ईश्वर को मानवीय आकार देना है, जो इस्लाम की मूलभूत शिक्षा के पूर्णतः विपरीत और निराधार है। अतः कुर्सी को एक भौतिक वस्तु मानकर यह निष्कर्ष निकालाना कि ईश्वर किसी स्थान विशेष में सीमित है, इस्लामी दृष्टिकोण से पूरी तरह अनुचित है। कुर्सी वास्तव में ईश्वर की सर्वव्यापी सत्ता और असीम ज्ञान का प्रतीक है, न कि उसकी भौतिक उपस्थिति का विवरण। ईश्वर सभी सीमाओं से परे है और उसका प्रभुत्व समस्त ब्रह्मांड पर व्याप्त है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

43. अल्लाह सूर्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से ले आ, बस जो काफिर था हैरान हुआ था, निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता। 2: 258 क़ुरआन

समीक्षक:- देखिये यह अविद्या की बात! सूर्य्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है, वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है। इस से निश्चित जाना जाता है कि कुरान के कर्ता को खगोल और न भूगोल विद्या आती थी। जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के खुदा की आवश्यकता नहीं। क्योंकि धर्मात्मा तो धर्ममार्ग में ही होते हैं। मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है। सो कर्त्तव्य के न करने से कुरान के कर्ता की बड़ी भूल है।

उत्तर:

सूर्योदय और सूर्यस्त एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति

क़ुरआन की इस आयत में हज़रत इब्राहीम (अ.) ने अहंकारी शासक नमरूद को चुनौती देते हुए कहा — "निःसन्देह ईश्वर सूर्य को पूर्व से लाता है, तो (हे नमरूद!) तू इसे पश्चिम से ले आ।" इस आयत का मुख्य उद्देश्य ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता को स्पष्ट करना और मानवीय अहंकार की निरर्थकता को उजागर करना है। यह आयत एक शुद्ध दार्शनिक वार्तालाप है, जो इस सत्य पर प्रकाश डालने का प्रयास करती है कि मनुष्य की सीमित शक्ति प्रकृति के वास्तविक नियंत्रक (ईश्वर) के सामने नगण्य है। इस आयत का लक्ष्य खगोल विज्ञान का पाठ पढ़ाना नहीं, बल्कि यह समझाना है कि सृष्टि का संचालन ईश्वर के अधीन है।

सूर्योदय और सूर्यस्त शब्दों का प्रयोग जैसे आज भी हम रोज़मर्रा की भाषा में प्रयोग करते है, वैसे ही हज़रत इब्राहीम (अ.) ने उस युग में एक गहन दार्शनिक सत्य से उनको समझाया है। पंडित जी द्वारा उठाई गई आपत्ति मूल रूप से भाषा की इसी प्रतीकात्मक और रूपकात्मक प्रकृति को न समझने का परिणाम है। यदि हज़रत इब्राहीम की इस शैली को वैज्ञानिक त्रुटि मानी जाए, तो वेदों में प्रयुक्त समान भाषा पर भी वही आपत्ति लगनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर —

अथर्ववेद (13.2.6) — भाष्यकार हरिशरण सिद्धान्तालंकार

"हे सूर्य, तेरे निरंतर चलने वाले इस रथ के लिए उत्तम स्थिति हो, जिस रथ के द्वारा उभी दोनों अन्तों को, पूर्व व पश्चिम को अथवा उत्तरायण व दक्षिणायन को तू शीघ्र ही जानेवाला होता है। जिस तेरे रथ को वहन करने में सर्वोत्तम ये किरणरूप अश्व वहन करते हैं।"

अथर्ववेद (13.2.13) — भाष्यकार क्षेमकरणदास त्रिवेदी

"हे सूर्य! दोनों अन्तों (पूर्व-पश्चिम अथवा आगे-पीछे दोनों ओर) को ठीक-ठीक, पहुँचता है, जैसे बालक दो सामान्य (मिली हुई) माताओं को।"

अथर्ववेद (4.5.1) — भाष्यकार विश्वनाथ विद्यालंकार

"हजार रश्मियों वाला, वर्षा करने वाला जो सूर्य समुद्र या अंतरिक्ष से उदित हुआ है, उस सूर्य द्वारा हम गृहजनों का नितरां घर में सुला देते हैं।"

हर सुविज्ञ व्यक्ति जानता है कि सूर्य घोड़ों के रथ पर सवार होकर नहीं चलता, न ही वह स्वयं पूर्व या पश्चिम की ओर जाता है, बल्कि यह पृथ्वी की घूर्णन गति का परिणाम है। इसी प्रकार, सूर्य न तो समुद्र से उदय होता है और न ही अंतरिक्ष में कही ऊपर उठता है। यदि कोई भाषा के इन रूपकों को शब्दिक अर्थ में लेकर यह निष्कर्ष निकाले कि वेदों के रचनाकार (ईश्वर) को खगोल और भूगोल विज्ञान का ज्ञान नहीं था, तो यह उसकी एक स्पष्ट अज्ञानता होगी।

पंडित जैसे लोग जब क़ुरआन की आयतों को वैज्ञानिक त्रुटि बताने का प्रयास करते हैं, तो वे दो बड़ी भूल करते हैं — पहली संदर्भ और उद्देश्य की अनदेखी, और दूसरी, भाषा के प्रतीकात्मक स्वरूप की अवहेलना। ऐसे लोग अपने पूर्वाग्रहों के आधार पर पवित्र ग्रंथों की व्याख्या करने लगते हैं।

मार्गदर्शन प्राप्त का अवसर समस्त मनुष्य के लिए

इस्लाम में हिदायत अर्थात मार्गदर्शन को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है —

1. सामान्य मार्गदर्शन — यह वह मार्गदर्शन है जो सभी मनुष्यों के लिए उपलब्ध है — जैसे ईश्वर द्वारा भेजे गए ग्रंथ। यह प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है।

2. विशेष मार्गदर्शन — यह मार्गदर्शन केवल उन लोगों को प्राप्त होता है जो ईमान लाने के पश्चात सच्चे ह्रदय से अपने पापों से तौबा करते हैं और अपने जीवन को ईश्वर के आदेशों के अनुसार ढालने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग सत्य के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर रहते हैं, तो ईश्वर उन्हें अपने मार्ग की ओर अधिक स्पष्टता प्रदान करता है।

जब क़ुरआन में कहा जाता है कि ईश्वर अत्याचारियों को मार्गदर्शन नहीं देता, तो इसका आशय उन लोगों से है जिनके सामने सत्य स्पष्ट कर दिए जाने के बावजूद वे अहंकारवश उसे स्वीकार नहीं करते — जैसे नमरूद — और हठधर्मिता का परिचय देते हैं। यह आयत सामान्य पापियों के संदर्भ में नहीं है। यदि पापी मार्गदर्शन के पात्र ही नहीं होते, तो हज़रत इब्राहीम (अ.) जैसे पैग़म्बर नमरूद जैसे अत्याचारी शासक से संवाद क्यों करते? यदि कोई भी पापी मार्गदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता, तो फिर पैग़म्बरों का भेजा जान निरर्थक हो जाता। अतः आयत का वास्तविक अर्थ यह है कि ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति को मार्गदर्शन प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है, परंतु जो लोग अपने अहंकार और अज्ञानता में डूबे रहना चाहते हैं, वे स्वयं ही इस मार्गदर्शन को अस्वीकार कर देते हैं और इस प्रकार वो ईश्वर के विशेष मार्गदर्शन से वंचित रह जाते हैं।

धर्माताओ को भी मार्गदर्शन की आवश्यकता क्यों

यह एक बहुत बड़ी भ्रांति है कि धर्माता या ईमानदार लोगों को अब किसी मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। वास्तव में, मार्गदर्शन हर स्तर पर आवश्यक है — चाहे व्यक्ति नया आस्तिक हो या वर्षों से धर्म के रास्ते पर चल रहा हो। इसके दो मुख्य कारण है —

1. मानवीय अधूरापन — मनुष्य स्वभाव से भूलने या भटकने वाला है। अपनी इच्छाओं, भावनाओं या व्यक्तिगत विचारों के प्रभाव में वह कभी-कभी भटक सकता है। इसलिए निरंतर मार्गदर्शन उसकी रक्षा करता है।

2. ज्ञान और समझ की निरंतरता — सत्य की गहन और स्पष्ट समझ के लिए निरंतर मार्गदर्शन आवश्यक है। एक धर्मात्मा व्यक्ति यद्यपी सत्य के मार्ग पर चल रहा होता है, किंतु उसे अपने ज्ञान, स्मरण और आचरण को सुदृढ बनाए रखने के लिए

लगातार मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

अतः, धर्मात्माओं को भी जीवन भर मार्गदर्शन की आवश्यकता बनी रहती है, ताकि वे किसी भी प्रकार के भ्रम या भटकाव से सुरक्षित रह सकें। यह आपत्ति भी क़ुरआन की आयतों के संदर्भ को समझ न पाने और गहन अध्ययन की कमी के कारण उठाई गई है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

44. कहा चार जानवरों से ले उन की सूरत पहिचान रख। फिर हर पहाड़ पर उन में से एक-एक टुकड़ा रख दे। फिर उन को बुला, दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे। 2: 260 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह-वाह देखो जी! मुसलमानों का खुदा भानमती के समान खेल कर रहा है! क्या ऐसी ही बातों से खुदा की खुदाई है। बुद्धिमान् लोग ऐसे खुदा को तिलाञ्जलि देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फसेंगे? इस से खुदा की बड़ाई के बदले बुराई उस के पल्ले पड़ेगी।

उत्तर:

ईश्वरीय निशानियों का अपमान — अज्ञान का परिचायक

ईश्वरीय शक्ति की वे निशानियाँ, जो ज्ञान एवं परमज्ञान का सर्वोच्च साधन हैं, यदि उन्हें कोई व्यक्ति जादू-टोना या मनोरंजन का खेल बताए, तो उसे मूर्ख और अज्ञानी के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? आयत स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती है कि हज़रत इब्राहीम (अ.) ने परलोक के सिद्धांत को प्रत्यक्ष रूप से देखने की इच्छा प्रकट की और ईश्वर ने उनकी इस इच्छा का सम्मान करते हुए उन्हें यह प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाया। इसके उपरांत भी यदि कोई उसे भानुमति का खेल कहे, तो उसकी बुद्धि पर केवल तरस खाया जा सकता है।

पंडित जी, जो स्वयं अपनी ही बुद्धि के शत्रु बने बैठे हैं, उनकी दृष्टि में सूर्य और चंद्रमा की गति, ब्रह्मांड की समस्त व्यवस्था, उनकी लयबद्ध गतियाँ, रात और दिन का निरंतर चक्र, ऋतुओं का परिवर्तन और उनका प्रभाव, निर्जीव वस्तुओं के अद्‌भुत रूप और उनमें छिपे रहस्य, वनस्पति जगत की आश्चर्यजनक स्थितियाँ, उनका मृतावस्था के पश्चात पुनर्जीवित होना, मनुष्य की हमेशा परिवर्तनशील अवस्थाएँ — कभी शैशव, कभी यौवन, कभी वृद्धावस्था — और प्रत्येक अवस्था पर भिन्न-भिन्न नियमों का लागू होना... क्या यह सब कुछ पंडित ने स्वयं रचा या चलाया है? अथवा क्या उसके माता-पिता ने उसे ऐसा बनाया, या उनका अस्तित्व किसी और कि सत्ता के अधीन रहकर निरंतर परिवर्तन से गुज़र रहा है? कौन है जो इन सब परिवर्तनों और प्रभावों के माध्यम से अपनी शक्ति की विविधता प्रदर्शित कर रहा है?

क्या पंडित इस समस्त ईश्वरीय व्यवस्था को, अपनी समझ और बुद्धि से भानमती का खेल घोषित करेगा?

प्रत्येक राज्य अपने प्रतिनिधियों को एक विशेष प्रतीक चिह्न प्रदान करता है, जिससे उनकी पहचान और प्रमाणिकता सिद्ध हो सके। सेना के प्रत्येक सैनिक के पास शाही प्रतीक होता है और सेनापतियों की वर्दी एवं चिह्न तो और भी विशिष्ट होते हैं। इन्हीं चिह्नों के आधार पर सभी उन्हें पहचानते एवं सम्मान देते हैं। ठीक इसी प्रकार, जब सृष्टिकर्ता किसी व्यक्ति को मानवजाति के मार्गदर्शन के लिए भेजता है, तो उसके साथ अपनी शक्ति के ऐसे अकाट्य प्रमाण भी प्रदान करता है जिन्हें

देखकर संसार उनपर विश्वास कर सके कि यह व्यक्ति ईश्वर की ओर से नियुक्त और समर्थित है। यदि ऐसा न हो, तो ईश्वर के सच्चे दूत और झूठे दावेदारों से कैसे पृथक पहचाने जाएँगे?

किंतु चूँकि पंडित के धर्म में ऐसा कोई व्यक्तित्व नहीं हुआ, जिसे ईश्वरीय सामर्थ्य के ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ हो, इसलिए वह दयनीय रूप से उन प्रमाणों का उपहास उड़ाने लगे। अपने इस असमर्थता पर पर्दा डालने के लिए उन्होंने ईश्वर और उसके सच्चे दूतों के मौजिज़े को महज छल-कपट या खेल करार दे दिया।

यह स्थिति वैसी ही है जैसे कोई अत्यंत कुरूप व्यक्ति अपनी जाति में सौंदर्य का दावा करें, और वहाँ किसी ओर से कोई तेजस्वी तुर्क युवक आ पहुँचे। ईर्ष्या में भरकर यदि वह कुरूप व्यक्ति उस तुर्क को मुँह चिढ़ाने लगे। तो निःसन्देह इस मुँह-चिढ़ाहट और हेय दृष्टि से उस तुर्क के सौंदर्य में तनिक भी अंतर नहीं आएगा; बल्कि उल्टे, उस कुरूप व्यक्ति का अपना चेहरा ही और भी अधिक विकृत प्रतीत होने लगेगा।

पंडित जी की यह आपत्ति तो उस कुरूप व्यक्ति से भी अधिक निकृष्ट है। काश! विवेकशील और बुद्धिमान आर्य इस घृणित आचरण को यथोचित घृणा की दृष्टि से देखें और पंडित की इस दुराग्रहपूर्ण एवं अशोभनीय वाणी पर गहरा खेद और लज्जा प्रकट करें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

45. जिस को चाहे नीति देता है। 2: 269 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब जिस को चाहता है उस को नीति देता है तो जिस को नहीं चाहता है उस को अनीति देता होगा। यह बात ईश्वरता की नहीं किन्तु जो पक्षपात छोड़ सब को नीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है; अन्य नहीं।

उत्तर:

मार्गदर्शन — प्रयास का प्रतिफल

जैसा कि पूर्व उत्तर (क्रमांक 43) में उल्लेख किया जा चुका है, ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति का अवसर प्रदान करता है; परंतु वह मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा का हनन नहीं करता।

उदाहरण के तौर पर — सूर्य सभी को समान रूप से प्रकाश देता है, परंतु जो व्यक्ति स्वेच्छा से आँख मूँद लेता है, वह अंधकार में ही रहता है। क्या इसके लिए सूर्य दोषी है? बिल्कुल नहीं!

ठीक इसी प्रकार, ईश्वर का मार्गदर्शन सर्वव्यापी है, परंतु उसे ग्रहण करने के लिए मनुष्य को अपनी बुद्धि, ईमानदारी और सच्चे प्रयास का प्रयोग करने की आवश्यकता है। आयत में "जिसे चाहे" का आशय यह कदापि नहीं है कि ईश्वर मनमाने ढंग से किसी को वंचित रखता है, बल्कि यह उसकी दिव्य योजना का अंश है। वह उन्हें ही विशेष ज्ञान प्रदान करता है, जो —

• सत्य की खोज में निरंतर प्रयासरत रहते हैं,

• अहंकार और पूर्वाग्रह से मुक्त होकर निष्कपट भाव से अपनी बुद्धि का सदुपयोग करते हैं।

ईश्वर ऐसे ही सत्यनिष्ठ साधकों को विशेष मार्गदर्शन करता है। क़ुरआन स्पष्ट रूप से कहता है — "और जो लोग मेरे मार्ग में प्रयत्नशील रहते हैं, मैं उन्हें अवश्य अपना मार्ग दिखाता हूँ।" (सूरह अनंकबुत, 29:69) इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर की

विशेष कृपा मनुष्य के स्वयं के प्रयत्नों से जुड़ा हुआ है।

अज्ञानता या पाप मनुष्य के स्वेच्छा का ही परिणाम है। ईश्वर तो सदैव सत्य की ओर आमंत्रित करता है — "सत्य तुम्हारे रब की ओर से है, अतः अब जो चाहे विश्वास करे और जो चाहे इनकार करे" (सूरह कहफ,18:29)। जो लोग अहंकार या हठ के कारण सत्य को अस्वीकार कर देते हैं, ईश्वर उनके हृदयों पर मोहर लगा देता है; यह उनकी स्वयं चुनी हुई दिशा का ही प्रतिफल है। अतः पंडित का यह पक्षपात का आरोप बिल्कुल ही निराधार है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

46. जो लोग ब्याज खाते हैं वे कबरों से नहीं खड़े होंगे। 2: 275 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या वे कबरों में ही पड़े रहेंगे और जो पड़े रहेंगे तो कब तक? ऐसी असम्भव बात ईश्वर के पुस्तक की तो नहीं हो सकती किन्तु बालबुद्धियों की तो हो सकती है।

उत्तर:

ब्याज़खोर कब तक क़ब्रों में पड़े रहेंगे

आयत का मर्म यह है कि — "जो लोग ब्याज खाते हैं, वे क़ियामत के दिन ईश्वर की अदालत में उस अवस्था में खड़े होंगे, मानो शैतानी प्रभाव ने उन्हें विक्षिप्त कर दिया हो; वे बदहवास होकर गिरते-पड़ते होंगे।"

इस पर आपत्ति करते हुए पंडित जी प्रश्न उठाते हैं — "क्या वे क़ब्रों में ही पड़े रहेंगे, और यदि पड़े रहेंगे तो कब तक?"

मेरा नम्र निवेदन आर्य समाज के अनुयायियों से है कि आप मूल अनुवादक 'शाह रफ़ीउद्दीन साहब' का उर्दू में किया हुआ क़ुरआन का अनुवाद स्वयं उठाएँ, जिसके आधार पर आपके स्वामी जी ने इस आयत का देवनागरी अनुवाद किया है। कृपया उस आयत को पूरा पढ़े और स्वयं निर्णय करें कि क्या पूर्ण आयत को पढ़ने के बाद यह प्रश्न उठाना उचित है?

मैं मौलाना साहब के उर्दू अनुवाद का देवनागरी रूपांतर प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिन्हें शक है वो मूल से अवश्य पढ़ें — "जो लोग के खाते है ब्याज, नहीं खड़े होंगे (यानी क़ब्रों से) मगर जैसा खड़ा होता है वह व्यक्ति के बावला करता है उसको शैतान।"

शाह रफ़ीउद्दीन साहब ने अनुवाद में स्पष्ट कहा है कि 'मगर वह खड़े होंगे' — वास्तव में आयत मनुष्य की उस दशा का वर्णन कर रही है कि जब ईश्वर की अदालत लगेगी और लोग हिसाब-किताब के लिए उपस्थित किए जाएँगे, तब सूदखोरों की हालत ऐसी होगी मानो शैतान के प्रभाव से वे उन्मत्त हो गए हों — अर्थात् दिशाहीन, भयभीत और विक्षिप्त। यह आयत उनके आध्यात्मिक पतन और मानसिक अस्थिरता को दर्शाती है, न कि क़ब्र में पड़े रहने की स्थिति को।

पंडित जी यह भी कहते हैं कि — "ऐसी असंभव बातें ईश्वर की पुस्तक में नहीं हो सकतीं।" तो प्रश्न यह उठता है — इसमें असंभव क्या है? क्या यह असंभव है कि ईश्वर मृतकों को पुनर्जीवित नहीं कर सकता? या फिर यह कि ईश्वर मनुष्य शरीर के कणों को एक निश्चित अवधि तक कब्र में नहीं रख सकता है? यदि आपकी आपत्ति यही है, तो दोनों ही प्रश्नों का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है — उसके लिए न तो मृतकों को पुनर्जीवित करना कठिन है, और न ही उन्हें एक निश्चित समय तक क़ब्रों में रखना कोई असंभव कार्य है।

अब यदि यही तर्क पंडित दयानन्द जी के मत पर लागू किया जाए, तो उन्होंने 'ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका' (पृष्ठ 167) में लिखा

कि "जीवात्मा पुनर्जन्म के समय वायु, जल, औषधि और वीर्य से होती हुई गर्भ तक पहुँचती है। तो क्या यह कोई अत्यंत तर्कसंगत, वैज्ञानिक और संभव मानी जा सकती है? यदि हाँ, तो किस आधार पर?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

47. वह कि जिस को चाहेगा क्षमा करेगा जिस को चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है। 2: 284 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना, अयोग्य पर क्षमा करना गवरगण्ड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है? यदि ईश्वर जिस को चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप-पुण्य न लगना चाहिये और जब ईश्वर ने उस को वैसा ही किया तो जीव को दुःख-सुख भी होना न चाहिये। जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उस का फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं।

उत्तर:

यदि कोई व्यक्ति बार-बार एक ही आपत्ति कर रहा है, तो इसका सीधा अर्थ यह है कि उसकी स्मृति में दोष है। इस संबंध में उत्तर क्रमांक 25 एवं 41 का अवलोकन किया जा सकता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह इमरान

48. कह इस से अच्छी और क्या परहेजगारों को खबर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिन में नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीबियां हैं अल्लाह की प्रसन्नता से। अल्लाह उन को देखने वाला है साथ बन्दों के। 3: 15 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला यह स्वर्ग है किं वेश्यावन? इस को ईश्वर कहना वा स्त्रैण? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिस में हों उस को परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है? यह पक्षपात क्यों करता है। जो बीबियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहाँ गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं। यदि यहां जन्म पाकर वहाँ गई हैं और जो कयामत की रात से पहिले ही वहाँ बीबियों को बुला लिया तो उन के खाविन्दों को क्यों न बुला लिया। और कयामत की रात में सब का न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा। यदि वहीं जन्मी हैं तो कयामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं। जो उन के लिये पुरुष भी हैं तो यहां से बहिश्त में जाने वाले मुसलमानों को खुदा बीबियां कहां से देगा? और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहने वाली बनाई वैसे पुरुषों को वहाँ सदा रहने वाले क्यों नहीं बनाया। इसलिये मुसलमानों का खुदा अन्यायकारी, बे समझ है।

उत्तर:

पवित्र स्त्री-पुरुष स्वर्ग में एक-दूसरे के जीवनसाथी

पहले आयत पर दृष्टि डालिए — "ऐ लोगों! क्या मैं तुम्हें इस (सांसारिक सुख) से बेहतर चीज़ बताऊँ? जो लोग ईश्वर से डरते हैं, उनके लिए उनके रब के पास ऐसे बाग़ हैं, जिनमें नहरें बह रही हैं, और उनमें वे सदा रहेंगे। वहाँ उनके लिए पवित्र जीवनसाथी (पत्नियाँ) होंगी, और सबसे बढ़कर ईश्वर की प्रसन्नता (प्राप्त) होगी। और ईश्वर अपने बंदों को देख रहा है।" (सूरह इमरान, 3:15)

हे समाजियों! अपने चौथे नियम को स्मरण करते हुए बताइए — क्या उठाई गई आपत्तियाँ इस आयत के संदर्भ और मूल

विषय के अनुकूल हैं?

पंडित की अशोभनीय टिप्पणी एवं ईशनिंदा

पंडित ने इस आयत पर टिप्पणी करते हुए स्वर्ग को वेश्यावन और ईश्वर को स्त्रैण (स्त्री शौकीन) कहने जैसी घोर अपमानजनक बातें कही हैं। यह टिप्पणी न केवल अत्यंत अशोभनीय है, बल्कि स्पष्ट रूप से ईशनिंदा की श्रेणी में आती है। पवित्र क़ुरआन में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है कि स्वर्ग में विश्वासियों के लिए पवित्र जीवनसाथिनियाँ (अज़वाजुन मुताह्हारातुन) होंगी। अब प्रश्न यह है कि इस पवित्र अवधारणा पर आपत्ति का आधार ही क्या है? यदि स्वर्ग की शाश्वत ख़ुसी में पवित्र पत्नीयों का होना बताया गया है, तो इसमें आपत्तिजनक तत्व क्या है? क्या पुरुषों के लिए पत्नियों के रूप में स्त्रियों की रचना अनुचित है? यदि हाँ — तो क्या इस संसार में स्त्रियों की उत्पत्ति ईश्वर के अतिरिक्त किसी और ने की है? और यदि नहीं — तो जब वही ईश्वर अपने विश्वासियों के लिए स्वर्ग में पवित्र साथियों का प्रबंध करे, तो उसे स्त्रैण किस आधार पर कहा जा सकता है? इसी प्रकार, यदि आपकी दृष्टि में स्वर्ग में पत्नियों का होना वेश्यावन है, तो क्या इस आधार पर संसार की हर पत्नी को आप वेश्या कहेंगे? क्या यह दृष्टिकोण आपके अपने परिवार और समाज का अपमान नहीं है? और जब आपके मत के अनुसार संसार ही स्वर्ग है — तो क्या यह कहना उचित होगा कि ईश्वर ने यहाँ रंडीखाना खोल रखा है?

किसी समीक्षक का यह कहना हो सकता है कि — "कयामत के दिन से पहले वहाँ बीवियों को बुला लिया तो उनके पुरुषों को क्यों न बुलाया," — यह प्रश्न ही क़ुरआन के मूल सिद्धांतों से पूर्ण अज्ञानता को दर्शाता है। इस्लाम की मान्यता है कि ईमान और सत्कर्मों के आधार पर, बिना किसी लिंग-भेद के, कोई भी व्यक्ति ईश्वर की कृपा से स्वर्ग में प्रवेश करेगा, और वहाँ वे सदैव रहेंगे। क़ुरआन की अनेक आयतों में उसमें वे सदैव रहेंगे (खालिदिना फीहा) का स्पष्ट उल्लेख है, जो स्त्री-पुरुष विश्वासियों के लिए समान रूप से है।

वास्तव में, इन आपत्तियों का मूल कारण उन पौराणिक मान्यताओं का प्रभाव है, जिनमें स्वर्ग का चित्रण इन्द्र ईश्वर जी के रक़्समहल के रूप में किया गया है — जहाँ अप्सराएँ नृत्य करती हैं और इन्द्र देव उनमें लिप्त रहते हैं। पंडित के मानस-पटल पर अंकित यही रंडीखाना जैसा चित्र है, जिसे वे अकारण ही इस्लामी स्वर्ग पर थोप रहे हैं। जबकि क़ुरआन का स्वर्ग पवित्रता, शांति और ईश्वरीय प्रसन्नता का केंद्र है — जहाँ की हर वस्तु और हर संबंध दोषरहित, निर्मल और दिव्य होंगे। शेष आपत्तियों के विस्तृत उत्तर पूर्व में (क्रमांक 9) दिए जा चुके हैं।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

49. निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है। 3: 19 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं? क्या तेरह सौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं? इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है।

उत्तर:

इस्लाम एकमात्र ईश्वरीय मार्गदर्शन (धर्म)

आपत्ति के उत्साह में पंडित जी यह भूल गए कि इस प्रश्न का उत्तर तो स्वयं पवित्र क़ुरआन की प्रथम ही आयत में स्पष्ट रूप

से निहित है — “अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन” — अर्थात “सब प्रशंसा उस अल्लाह (ईश्वर) के लिए है जो समस्त संसारों का रब (पालनहार) है।” क़ुरआन में बार-बार इस तथ्य को दोहराया गया है कि ईश्वर केवल किसी एक समुदाय या समूह का नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि का रब है — जैसे कि सूरह 114:3, 73:9 और 37:5 में स्पष्ट रूप से कहा गया है। इस प्रकार इस्लाम यह घोषित करता है कि क़ुरआन का ईश्वर ही समस्त संसार का रब है — चाहे कोई उसे अपना उपास्य माने या न माने। उसकी रबूबिय्यत (प्रभुत्व) सार्वभौमिक और सर्वव्यापी है। वही समस्त सृष्टि का स्रष्टा और पालनकर्ता है, और प्रत्येक युग व समुदाय का पोषण उसी के द्वारा होता है।

इस्लाम शब्द का अर्थ है — ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण। इस्लाम की मूल शिक्षा यह है कि यह मानवता का आदि धर्म है — वही धर्म जिसे हर युग में ईश्वर ने अपने पैग़म्बरों के माध्यम से मनुष्यों तक पहुँचाया, ताकि वे सत्य के मार्ग पर चल सकें। क़ुरआन यह भी स्पष्ट करता है कि इस्लाम कोई नया धर्म नहीं, बल्कि सभी पूर्ववर्ती पैग़म्बरों के एक ही शाश्वत सन्देश की पुनर्स्थापना है।

इस्लाम के अनुसार, हर युग में ईश्वर ने मानवता को मार्गदर्शन हेतु नबी और रहनुमा भेजे, जिन्होंने लोगों को सत्य और असत्य का ज्ञान दिया। किंतु समय के साथ कुछ लोगों ने उन शिक्षाओं को विकृत कर दिया। क़ुरआन उसी मूल सत्य का अंतिम, शुद्ध और संरक्षित अभिव्यक्ति है। हज़रत मुहम्मद ﷺ को ख़ातमुन्नबिय्यीन — अर्थात पैग़म्बरों की श्रृंखला का समापन कहा गया है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि इस्लाम पूर्ववर्ती सभी ईश्वरीय शिक्षाओं का सार और समापन है।

क़ुरआन कहता है — "और हमने आपको समस्त मानवजाति के लिए भेजा है — शुभ सूचना देने वाला और सावधान करने वाला बनाकर।" (सूरह सबा, 34:28)

और एक अन्य स्थान पर — "आज मैं ने तुम्हारे लिए तुम्हारे धर्म को पूर्ण कर दिया।" (सूरह माइदा, 5:3)

यह घोषणा इस बात की साक्षी है कि इस्लाम ही वह अंतिम और संपूर्ण ईश्वरीय मार्गदर्शन है जो मानवता के लिए सदैव से था।

दयानन्द जी का यह कहना कि "1300 वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं?" — उनकी आपत्ति यह दर्शाती है कि वे केवल नाम का समीक्षक हैं; अतः उन्हें न तो क़ुरआन के गहन दर्शन का बोध है, न ही उसकी सार्वभौमिकता का। उनकी आलोचना सतही है, क्योंकि क़ुरआन "रब्बुल आलमीन" की व्यापक अवधारणा प्रस्तुत करता है और सिद्ध करता है कि अल्लाह (ईश्वर) की रबूबिय्यत किसी विशेष काल, समुदाय या भूभाग तक सीमित नहीं है।

इस्लाम के अनुसार, हज़रत आदम (अ.) से लेकर हज़रत ईसा (अ.) तक सभी पैग़म्बरों ने एक ही ईश्वर — अल्लाह — के धर्म इस्लाम का प्रचार किया। पूर्ववर्ती धर्म भी मूल रूप से इस्लाम ही थे, जिन्हें प्रत्येक युग में पैग़म्बरों ने सिखाया। जिन्होंने अपने युग के पैग़म्बर का अनुसरण किया, वे सत्य मार्ग पर थे; और जिन्होंने अस्वीकार किया, वे पथभ्रष्ट हुए। क़ुरआन इसी तथ्य को यूँ कहता है — "निःसन्देह, ईमान वाले चाहे यहूदियों में से हों, ईसाइयों में से हों, साबीऊन में से हो या मुहम्मद ﷺ के अनुयायियों में से हों — जो कोई अल्लाह और न्याय के दिन पर ईमान लाया और उसने अच्छे कर्म किए, उनके लिए उनके रब के पास प्रतिफल है; उन्हें न कोई भय होगा और न वे दुःखी होंगे।" (सूरह बकरा, 2:62)

हज़रत मुहम्मद ﷺ इसी शाश्वत धर्म के अंतिम और सार्वभौमिक प्रतिनिधि हैं। और इस्लाम ही वह एकमात्र ईश्वरीय मार्गदर्शन है, जो ईश्वर द्वारा मानवता के लिए निर्धारित किया गया है।

••••••••••••••••••••••••••••••••••

50. प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उस ने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे। कह या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिस को चाहे देता है, जिस से चाहे छीनता है, जिस को चाहे प्रतिष्ठा देता है, जिस को चाहे अप्रतिष्ठा देता है, सब कुछ तेरे ही हाथ में है, प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है। रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से जीवित को मृतक से निकालता है और जिस को चाहे अनन्त अन्न देता है। मुसलमानों को उचित है कि काफ़िरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे बस वह अल्लाह की ओर से नहीं। कह जो तुम चाहते हो अल्लाह को तो पक्ष करो मेरा। अल्लाह चाहेगा तुम को और तुम्हारे पाप क्षमा करेगा; निश्चय ही करुणामय है। 3: 25 से 29 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा-पूरा फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा। और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा जब विना उत्तम कर्मों के राज्य प्रतिष्ठा देगा तो भी अन्यायी हो जायगा और विना पाप के राज्य और प्रतिष्ठा छीन लेगा तो भी अन्यायकारी हो जायगा। भला! जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य अभेद्य है। कभी अदल-बदल नहीं हो सकती। अब देखिये पक्षपात की बातें कि जो मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं उन को काफ़िर ठहराना। उन में श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के लिये उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है। इस से यह कुरान, का खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्या के भरे हुए हैं। इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेरे में हैं। और देखिये मुहम्मद साहेब की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उस की क्षमा भी करेगा। इस से सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब का अन्तःकरण शुद्ध नहीं था। इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहेब ने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है।

उत्तर:

पूरा बदला और पापों की क्षमा

ईमान और सद्कर्म का पूरा बदला मिलने के साथ-साथ पापों के क्षमा हो जाने की स्थिति को एक सटीक उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए, एक छात्र कड़ी मेहनत के साथ परीक्षा देता है, परंतु उसे पूरे अंक नहीं मिल पाते — वह केवल उतने ही अंक प्राप्त कर पाता है जितने उसे पास होने के लिए आवश्यक होते हैं। ऐसे में, उसकी उन थोड़ी-सी कमी को क्षमा कर दिया जाता है और उसे अगली कक्षा में प्रोन्नति दे दी जाती है। इस प्रकार, उसे मेहनत का बदला भी पूरा मिला और अंकों की कमी को भी क्षमा कर दी गई। इस तरह ईश्वर ने न्याय की जो व्यवस्था बनाई है उसके अनुसार वह किसी के साथ एक कण के बराबर भी अन्याय नहीं करेगा। हर किसी को उसके कर्मों का पूरा-पूरा प्रतिफल अवश्य मिलेगा।

आर्य समाज और इस्लाम के विश्वास में अंतर

आर्य समाज और इस्लाम की आस्था के बीच मुख्य अंतर को इस प्रकार से समझें — आर्य समाज का मानना है कि ईश्वर

सद्कर्म के फलस्वरूप रेशमी पगड़ी प्रदान करता है, किंतु साथ ही बुरें कर्मों के लिए दस जूते भी लगाता है। इसके विपरीत हमारा विश्वास यह है कि ईश्वर अपने बंदों के सद्कर्मों से प्रसन्न होकर उसे रेशमी पगड़ी भी प्रदान करता है, साथ ही उनके बुराइयों को क्षमा भी कर देता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे किसी छात्र के परीक्षा परिणाम में थोड़ी कमी रह जाने पर गुरु उसे क्षमा कर देता है।

यदि आर्य समाज का ईश्वर केवल न्याय ही करता है, दया न करे तो बुद्धिमत्ता दृष्टि से यह उचित होगा कि वह रेशमी पगड़ी के स्थान पर खादी की पगड़ी तो बाँध सकता है, परंतु बेचारों को जूते न मारे। आर्य समाज के वे अनुयायी जो विवेक और तर्क से काम लेते हैं, वे इन दोनों दृष्टिकोणों पर गंभीरता से विचार करें और स्वयं तय करें कि इन दोनों स्थितियों में से कौन-सी अधिक श्रेष्ठ है।

सद्कर्म वालों की शासन से आर्यों का विद्रोह

यदि ईश्वर अच्छे कर्मों के फलस्वरूप किसी व्यक्ति या समाज को राज्य देकर सुख देता है, तथा बुरें कर्मों के परिणामस्वरूप उसे दासता देकर दुःख प्रदान करता है, तो जब अंग्रेजों और मुसलमानों को ईश्वर ने उनके पूर्व के अच्छे कर्मों के आधार पर राज्य प्रदान किया, तब आर्य उनका विरोध क्यों कर रहे थे? क्या यह विरोध ईश्वर के निर्णय के विरुद्ध नहीं था? यदि दासता हमारे बुरे कर्मों का दंड थी, तो उस दंड का विरोध करना या उससे मुक्त होने के लिए षड्यंत्र रचना, क्या ईश्वर की व्यवस्था के प्रतिकूल नहीं माना जाना चाहिए? जब यह सब ईश्वरीय न्याय का ही परिणाम था, तब आर्यों को — और विशेष रूप से पंडित दयानन्द को — यह समझाना चाहिए था कि हिन्दू नेता ईश्वर के न्याय के विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं, जो अनुचित है। उन्हें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए था कि जो दुःख और दासता मिली है, वह हमारे अपने कर्मों का परिणाम है।

मृत से जीवित का निकलना और जीवित से मृत का

हम यहाँ आयत की पूरी व्याख्या में जाए बिना ही आपत्ति का उत्तर रख रहे हैं। लेकिन जो लोग पंडित दयानन्द की इस अज्ञानता को विस्तार से समझना और जानना चाहते है, तो हमारा उनलोगों से अनुरोध है कि वे इस आयत की व्याख्या भी पढ़ें — ताकि वे उनके अज्ञानता पर खुलकर हँस सकें।

पंडित का कहना है कि — जीवित से मृत और मृत से जीवित नहीं निकल सकता — यदि यह बात सही है, तो फिर तो हिंदुओं का उद्धार असंभव है। क्योंकि जो समाज मर चुका हो, जो सो चुका हो, वह कभी जाग नही सकता! फिर तो आपकी सारी कोशिशें, प्रवचन और सुधार आंदोलनों का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। लेकिन क़ुरआन का यह कथन सत्य है — "ईश्वर जीवित से मृत और मृत से जीवित को उत्पन्न करता है।" यह केवल शरीर या जीवो की बात नहीं है बल्कि यह विचार, समाजों और सभ्यताओं की भी बात है। उदाहरण के तौर पर — बीज का पेड़ बनना, एक बीज मृत के समान है। लेकिन जब वह भूमि में पड़ता है, तो उसी मृत बीज में से एक हरा-भरा, जीवंत विशाल पेड़ निकल आता है। एक बंजर धरती पर पानी की बूंदों से हरी-भरी जीवनदायिनी फसलें और बाग़-बगीचे निकल आते हैं। इसी तरह, मानव समाज में भी यही नियम लागू होता है। इतिहास गवाह है कि मिस्र की प्राचीन सभ्यता समाप्त हो गई, पर उसी भूमि से एक नई संस्कृतियाँ उठ खड़ी हुई है। अरब की एक अंधकार में मरी हुई जाती में इस्लाम के माध्यम से एक जाग्रत, सजीव समाज उत्पन्न हुआ। और एक

विपरीत, कभी ज्ञान और सामर्थ्य में अग्रणी यूनान, रोम, और स्वयं पंडित जी आपका आर्यावर्त जैसी साम्रज्य एवं सभ्यताएँ, अपने अहंकार और पतन के कारण मृत समाज बनकर इतिहास के पन्नो में दब गईं।
तो पंडित जी, यदि "मृत से जीवित निकल नहीं सकता" आपका सिद्धांत मान लिया जाए, तो मानव इतिहास ही झूठा सिद्ध हो जाएगा। क्योंकि हर नवजागरण एक नींद से उठना है, हर नई रोशनी एक अँधेरे से निकलती है। इसका अर्थ यह है कि जिस मृत समाज को आप देख रहे हैं, उससे भी एक दिन नई चेतना, नया जीवन फुट सकता है — यदि उसमें सच्ची निष्ठा, परिश्रम और आत्मबल जाग उठे। और यही तो क़ुरआन की बात है — "एक मरे हुए समाज से जीवित समाज निकल आता है, और जीवित समाज से मरे हुए।"

मुसलमान, काफ़िर, आर्य और दस्यु

जो व्यक्ति इस्लाम को धर्म नहीं मानता, क़ुरआन को ईश्वरीय ग्रंथ नहीं मानता, और क़ुरआन में वर्णित जिस सत्ता को ईश्वर कहा गया है, उसे भी ईश्वर के रूप में स्वीकार नहीं करता — यदि उसे काफ़िर कहा जाए, तो यह कोई पक्षपात नहीं है। क्योंकि काफ़िर शब्द उसी के लिए प्रयोग होता है जो इस्लामी मान्यताओं को अस्वीकार करता है। अतः जब कोई व्यक्ति स्वयं स्वीकार करता है कि वह इस्लाम, क़ुरआन और उसमें वर्णित ईश्वर को नहीं मानता, तो उसे काफिर कहना केवल एक वर्णनात्मक तथ्य है, न कि किसी प्रकार का पक्षपात या अपमान।
इसके विपरीत, केवल देश के आधार पर किसी को आर्य (श्रेष्ठ) और अन्य देशों के समुदायों को दस्यु (दुष्ट), राक्षस या म्लेच्छ कहना — ईश्वर को अत्यंत पक्षपाती और अन्यायी ठहराता है। ईश्वर सर्वजन के लिए समान है; वह किसी एक देश का नहीं हो सकता।
काफ़िर के संदर्भ में अधिक विवरण के लिए उत्तर क्रमांक 36 भी देखें।

काफ़िर संग मित्रता

इस्लाम धर्म अपने अनुयायियों को अन्य मतों के भले यानी शांतिप्रिय लोगों के साथ भलाई और न्याय करने से कदापि नहीं रोकता। इस्लाम केवल उन लोगों से घनिष्ठ मित्रता या निकट संबंध रखने से मना करता है जो मुसलमानों के प्रति शत्रुता रखते हों, उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचते हों या उन्हें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाने का प्रयास करते हों।
अब प्रश्न यह उठता है कि यदि किसी समुदाय का कोई सदस्य अपने समुदाय के शत्रु से ऐसी गहन मित्रता रखे जिससे पूरे समुदाय को हानि पहुँचे, तो क्या कोई भी धर्म या मत इसे उचित ठहरा सकता है? निश्चित रूप से नहीं। कोई भी मत अपने अनुयायियों को ऐसा आचरण करने की अनुमति नहीं दे सकता जिससे समाज या समुदाय की सुरक्षा और हितों को नुकसान पहुँचे। उदाहरण के तौर पर, पंडित दयानन्द स्वयं सत्यार्थप्रकाश के षष्ठम समुल्लास (पृष्ठ 134) में मनु के हवाले से लिखा है कि "जो भीतर से शत्रु से मिला हो और ऊपर से मित्रता रखे, गुप्त रूप से शत्रु को भेद दे, उसके आने-जाने में उससे बात करने में अत्यंत सावधानी रखे, क्योंकि भीतर शत्रु और ऊपर मित्र वाले पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिए।" यह निर्देश स्पष्ट करता है कि आर्य मत में भी ऐसे 'वली' जैसे संबंधों को अस्वीकार किया गया है।

वेदों की असहिष्णु शिक्षा

हालाँकि, वेदों में हमें कुछ ऐसी शिक्षाएँ भी मिलती हैं जो पक्षपातपूर्ण और असहिष्णु है। उदाहरण के तौर पर — यजुर्वेद (16.65) और (15.19) में (पंडित दयानन्द सरस्वती के भाष्य के अनुसार) "शत्रु को वायुओं की बिलाड़ा के मुख में मूषक के समान पीड़ा में डालने की बात कही गई है।"

वेदों की भाषा में शत्रु से तात्पर्य उन लोगों से है जो अन्य मतों या विचारधाराओं को मानते हैं। वेदों में ऐसे लोगों को "दस्यु", "म्लेच्छ" और "राक्षस" जैसे शब्दों से संबोधित किया गया है। सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास (पृष्ठ 186) में आर्य्यवर्त्त से बाहर रहने वाली समस्त मानवजाति को दस्यु या म्लेच्छ माना गया है। वेदों में दस्युओं — अन्य मतों या विचारधाराओं को मानने वालों — की हत्या, बल्कि समस्त समुदाय की नस्लकुशी का निर्देश दिया गया है। उदाहरण के तौर पर देखें —

"(दस्युहत्याय) शत्रुओं को मारने के लिए ही उत्पन्न हुए हो, इसलिए हम लोग आपका सत्कार करते हैं।" — ऋग्वेद (1:51:6), भाष्य दयानन्द सरस्वती।

"(विश्वस्य दस्योहः) सम्पूर्ण दस्युओं के आप हनन करने आए हो।" — ऋग्वेद (9:88:4), भाष्य आर्यमुनि।

"(आर्य्याय) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्त्तमान धार्मिक मनुष्यों के लिए (दस्युम्) डाकू, दुष्ट प्राणी को अग्नि से जलाते हुए, अत्यंत बड़ा राज्य करो।" — ऋग्वेद (1:117:21), भाष्य दयानन्द सरस्वती।

"(दस्युहन्तमम्) डाकुओं को अतिशय मारने वाले, प्रत्येक संग्राम में धन को जीतने वाले उन आपको प्राप्त कराता है, वैसे आप मुझे भी प्राप्त कराइए।" — ऋग्वेद (6:16:15), भाष्य दयानन्द सरस्वती।

"(अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च) तू विरोधी विचारों का नाशक, पापनाशक और क्षयकारक रोग का नाशक है।" — ऋग्वेद (10:83:3), भाष्य ब्रह्ममुनि परिव्राजक।

अब विचारणीय है कि क्या ऐसी शिक्षाएँ ईश्वरीय हो सकती हैं? क्या ऐसे ग्रंथ ईश्वरीय माने जा सकते हैं या उनके अनुयायी श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं, जो एक वर्ग विशेष को छोड़कर अन्य सभी मनुष्यों के विनाश का आदेश देते हैं? कदापि नहीं। ऐसी शिक्षाएँ पक्षापतपूर्ण, निर्दयी और हिंसक प्रवृत्ति से ग्रस्त हैं।

इस प्रकार, इस्लाम की शिक्षा पक्षपात या द्वेष की नहीं, बल्कि शांति, न्याय और मानवता की है। यह धर्म मानव समाज में सद्भाव, करुणा और परस्पर सम्मान की भावना को प्रोत्साहित करता है।

शेष 'वली' शब्द का विस्तृत विवरण क्रमांक 63 पर आएगी।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

51. जिस समय कहा फ़रिश्तों ने कि ऐ मर्य्यम तुझ को अल्लाह ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् की स्त्रियों के। 3: 42 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला जब आज कल खुदा के फरिश्ते और खुदा किसी से बातें करने को नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे? जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुण्यात्मा थे अब के नहीं तो यह बात मिथ्या है। किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था उस समय उन देशों में जङ्गली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसी लिये ऐसे विद्या-विरुद्ध मत चल गये। अब

विद्वान् अधिक हैं इसलिये नहीं चल सकता। किन्तु जो-जो ऐसे पोकल मज़हब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं; वृद्धि की तो कथा ही क्या है।

उत्तर:

पंडित जी का टेप रिकॉर्डर फिर से अटक गया है। यह वही तर्क है जो पंडित पहले भी मोजिज़ा के संदर्भ में उठा चुके हैं, और इसका उत्तर भी वही है जो हमने पहले दिया था।

यानी — भला! यदि पहले वैदिक ईश्वर पुण्यात्माओं पर प्रकाश करता था, तो आज क्यों नहीं करता?

यदि कहा जाए कि पहले के मनुष्य पुण्यात्मा थे और अब नहीं, तो यह कथन मिथ्या है। और यदि कहा जाए कि उन दिनों इसकी आवश्यकता थी, तो ठीक इसी प्रकार उन दिनों आवश्यकता थी। यह तो स्पष्ट है कि आवश्यकता का निर्धारण करना और उसकी अनुपस्थिति को समझना कर्ता (ईश्वर) का कार्य है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

52. उस को कहता है कि हो बस हो जाता है। काफ़िरों ने धोखा दिया, ईश्वर ने धोखा दिया, ईश्वर बहुत मकर करने वाला है। 3: 47 & 54 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब मुसलमान लोग खुदा के सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते तो खुदा ने किस से कहा? और उस के कहने से कौन हो गया? इस का उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी नहीं दे सकेंगे। क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। विना कारण के कार्य कहना जानो अपने माँ बाप के विना मेरा शरीर हो गया ऐसी बात है। जो धोखा देता और मकर अर्थात् छल और दम्भ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता।

उत्तर:

पहले तो पंडित का यह कथन पढ़े "इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसा प्रश्न करते हैं कि ईश्वर निराकार है, उससे शब्दरूप वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान है, उसमें ऐसी शंका करना सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि मुख और प्राणादि साधनों के बिना भी परमेश्वर में मुख और प्राणादि के काम करने का अनन्त सामर्थ्य है।... यह दोष तो हम जीव लोगों में आ सकता है कि मुखादि के बिना मुखादि का कार्य नहीं कर सकते हैं। क्योंकि हम लोग अल्प सामर्थ्य वाले हैं।... और जो सम्पूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसी का सहाय ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह अपने सामर्थ्य से ही सब कार्यों को कर सकता है। जैसे हमलोग बिना सहाय से कोई काम नहीं कर सकते वैसा ईश्वर नहीं है — (ऋग्वेद भाष्यभूमिका पृ. 9)।" यदि दयानन्द ईश्वर को किसान या राजमिस्त्री (मनुष्यों) के समान मानते है — अर्थात ऐसा सृजनकर्ता जो अपनी रचना के लिए किसी वस्तु या साधन पर निर्भर करता है — तो मुसलमानों को इस प्रकार की धारणा का उत्तर देने के लिए न तो सात जन्मों की आवश्यकता है और न ही अनन्त जन्मों की। कारण स्पष्ट है — इस्लाम के अनुसार ईश्वर न तो किसान है और न ही राजमिस्त्री — वह मनुष्यों की भाँति किसी भी प्रकार की सीमा, आवश्यकता या निर्भरता से पूर्णतः परे है। इस्लामी मान्यता में ईश्वर को अल-ग़नी (स्वयं-पूर्ण), अस-समद (सब; जिसपर निर्भर करते है) और अल-क़ादिर (सर्व-सामर्थ्यवान) कहा गया है। अर्थात, ईश्वर किसी पर निर्भर नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि उस पर निर्भर है।

और यदि दयानन्द जी का अभिप्राय यह है कि ईश्वर किसी किसान या राजमिस्त्री की भाँति निर्भर नहीं, बल्कि सर्वशक्तिमान, स्वतंत्र और निर्भरता से रहित है — तो इस विषय में मुसलमान पहले ही अपना उत्तर स्पष्ट कर चुके हैं (देखें उत्तर क्रमांक 28)।

ख़ैरुल माकिरीन" का अर्थ

ईश्वर न धोखा देता है और न ही छल करता है। क़ुरआन में प्रयुक्त शब्द 'मकर' का मूल अर्थ होता है — योजना बनाना या किसी योजना को बुद्धिमत्तापूर्वक क्रियान्वित करना। यह शब्द स्वयं में तटस्थ (Neutral) है और इसका प्रयोग सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के सन्दर्भों में किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई व्यक्ति किसी को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से योजना बनाता है, तो यह मकर का नकारात्मक प्रयोग है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति न्याय या किसी उचित उद्देश्य की रक्षा के लिए योजना बनाता है, तो यह उसी शब्द का सकारात्मक प्रयोग है। जैसे हज़रत मसीह (अ.) के समय यहूदी धर्मगुरुओं और रोमन शासकों ने हज़रत ईसा (अ.) को सूली पर चढ़ाने के उद्देश्य से एक षड्यंत्र (मकर) रचा। किंतु ईश्वर ने उनकी इस कुटिल योजना को विफल कर दिया और अपनी श्रेष्ठ योजना के अनुसार हज़रत मसीह (अ.) को सुरक्षित बचा लिया।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम में ईश्वर उस सर्वोच्च सत्ता का नाम है जिसमें सभी उत्कृष्ट गुण विद्यमान हैं। अतः उसकी ओर किसी भी प्रकार की नकारात्मक या बुराई को जोड़ना क़ुरआन और इस्लाम की मूल शिक्षाओं के पूर्णतः विपरीत और विरुद्ध है। इसलिए यह स्पष्ट है कि ईश्वर के लिए मकर का अर्थ धोखा देना या छल करना नहीं है, बल्कि दुष्टों की योजनाओं को विफल कर सत्य और न्याय की स्थापना करना है।

अलबत्ता, वेदों में आर्यों के ईश्वर इन्द्र को कई स्थानों पर 'मायिन्' या 'मायाभि' कहा गया है। संस्कृत में मायिन् या मायाभि शब्द का अर्थ 'माया से युक्त' अर्थात छल-कपट या मक्कारी करने वाला बताया गया है। विभिन्न भाष्यकारों ने इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है — ऋग्वेद (1.11.7) हरिशरण सिद्धांतालंकार का भाष्य —

मायिन् — नाना प्रकार के कपटों से युक्त, अशोभनीय रूप धारण करने वाला।"

जयदेव शर्मा के अनुसार —

मायिन् — माया तथा कुटिल बुद्धि वाला।"

यहाँ तक कि पंडित दयानन्द ने भी इस शब्द का अर्थ कपटी अथवा छल करने वाला बताया है।

ऋग्वेद (1.51.5) पर दयानन्द सरस्वती का भाष्य —

मायिन् —निंदनीय बुद्धिवाला।

मायाभि — कपट, छल आदि।

वेदों का ईश्वर इन्द्र और उसका मायावी स्वरूप

अब उन ऋग्वैदिक मंत्रों पर दृष्टि डालिए जहाँ इन्द्र अर्थात ईश्वर को मायावी कहा गया है —

ऋग्वेद (8.76.1): इ॒मम् नु मा॒यिन॑म् हु॒वे॒ इन्द्र॑म् ईशा॑नम् ओज॑सा मरु॒त्व॑न्तम् न वृ॒ञ्जसे

ऋग्वेद (10.147.2): त्वम् मायाभिः अनवद्य मायिनम् श्रवस्यता मनसा वृत्रम् अर्दय
उपरोक्त मंत्रों से स्पष्ट है कि वेदों में इन्द्र (ईश्वर) को 'मायावी' अर्थात छल करने वाला और कपटी बताया गया है।
यदि इन वैदिक तथ्यों को अलग भी रख दिया जाए, तब भी पंडित द्वारा प्रतिपादित ईश्वर इस अवधारणा या समस्या से बच नहीं सकता — उनके मत के अनुसार —
* ईश्वर किसी भी छोटी-सी-छोटी गलती को क्षमा नहीं करता।
* यदि कोई आत्मा पूर्णतः पापमुक्त हो जाए, तो वह हमेशा के लिए मोक्ष प्राप्त कर सकती है। किंतु, आर्य मत के अनुसार मोक्ष की एक निश्चित अवधि समाप्त होने के बाद उस आत्मा को पुनः संसार में भेज दिया जाता है।
इस सिद्धांत पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है — जब मोक्षावस्था में आत्मा पूर्णतः कर्मशून्य होती है (न पुण्य शेष रहता है और न पाप), तब ईश्वर उसे किस आधार पर किसी विशेष योनि में जन्म देता है? यदि कोई कर्म शेष नहीं है, तो चयन का मापदंड क्या होगा?
इस स्थिति में यह धारणा बनती है कि ईश्वर किसी न किसी कर्म को बचाकर आत्माओं के साथ छल करता है, ताकि आत्मा पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त न कर सके और पुनः बंधन में लौट आए — जिससे इन्द्र की सत्ता बनी रहे।
यदि आर्य इसका कोई स्पष्ट आधार न बताए, तो यह व्यवस्था — आत्मा को पुनः संसार में भेजने की प्रक्रिया — किसी अस्पष्ट या मनमाने सिद्धांत पर आधारित है। जो स्वयं पंडित दयानन्द को भी निश्चित रूप से अस्वीकार है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

53. क्या तुम को यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुम को तीन हजार फ़रिश्तों के साथ सहाय देवे। 3: 124 क़ुरआन.
समीक्षक:- जो मुसलमानों को तीन हजार फ़रिश्तों के साथ सहाय देता था तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुत सी नष्ट हो गई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खों को फंसाने के लिये महा अन्याय की है।

उत्तर:

तीन हज़ार फ़रिश्तों से सहायता

यह आपत्ति भी बिना क़ुरआन के संदर्भ और इस्लाम के मूल सिद्धांतों को समझे उठाई गई है। संबंधित आयत बद्र के युद्ध (624 ई.) के विशेष प्रसंग में अवतरित हुई थी। उस समय मुसलमानों की एक छोटी सी सेना (केवल 313 योद्धा) को काफ़िरों की विशाल सेना (लगभग 1000 योद्धा) का सामना करना पड़ा। इस निर्णायक युद्ध में ईश्वर ने मुसलमानों को विशेष सहायता प्रदान की, जिसका उद्देश्य सत्य की विजय को प्रमाणित करना था। यह सहायता एक विशिष्ट ऐतिहासिक घटना से जुड़ी थी — यह कोई सार्वभौमिक वादा नहीं था कि हर युद्ध में फ़रिश्ते उतरेंगे।
ईश्वर की सहायता की प्रकृति के संदर्भ में क़ुरआन स्पष्ट रूप से कहता है — "निःसन्देह, ईश्वर किसी समुदाय की स्थिति को नहीं बदलता, जब तक वे स्वयं अपने गुणों में परिवर्तन न कर लें।" (सूरह राद, 13:11)
इस आयत से यह सिद्ध होता है कि मुसलमानों की उन्नति या पतन उनके अपने कर्मों पर निर्भर करता है। यदि मुसलमानों

को राजनीतिक या सैन्य हानि हुई है, तो वह उनके आपसी मतभेदों, अनुशासनहीनता अथवा ईमान की कमज़ोरी का परिणाम है, न कि ईश्वर की सहायता के अभाव का।

बद्र में फ़रिश्तों की सहायता का उद्देश्य

बद्र में फ़रिश्तों की सहायता एक ईश्वरीय मौजिज़ा थी, जो नबी मुहम्मद ﷺ के युग में सत्य की प्रमाणिकता स्थापित करने के लिए प्रकट हुई। इस्लाम के अनुसार, मौजिज़े का उद्देश्य नबियों द्वारा सत्य की स्थापना करना होता है, न कि हर परिस्थिति में भौतिक विजय दिलाना। यदि यह कोई सार्वभौमिक नियम होता, तो मुसलमान किसी भी प्रयास के बिना फ़रिश्तों के उतरने की प्रतीक्षा करते रहते। लेकिन इतिहास साक्षी है कि मुसलमानों ने अपने प्रयासों, अनुशासन और तैयारियों के बल पर विजय प्राप्त की। यदि मुसलमानों के पतन का प्रश्न उठाया जाता है, तो इस्लामी सभ्यता के सुनहरे युगों के इतिहास को भी ध्यान में रखना चाहिए। सातवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक मुस्लिम साम्राज्यों ने न केवल ईश्वर की सहायता से धरती के अनेक भागों पर राज्य किया बल्कि विज्ञान, दर्शन, चिकित्सा, गणित और शासन प्रणाली में भी अग्रणी भूमिका निभाई। वर्तमान में जो कमजोरी देखी जाती है, वह ईश्वर के वादे की असफलता नहीं, बल्कि मुसलमानों की अपनी कमजोरियों और आंतरिक विघटन का परिणाम है।

यदि क़ुरआन पर यह आपत्ति की जाती है कि ईश्वर पहले अपने भक्तों की सहायता करता था, पर अब क्यों नहीं करता — तो फिर यही प्रश्न वेदों पर भी समान रूप से लागू होगा — क्योंकि वेदों में भी ईश्वर से रक्षा, सहायता और विजय प्राप्त करने की प्रार्थना की गई है। उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (7.32.25) आर्याभिविनयः मूल प्रार्थना पृष्ठ 36.

"हे इन्द्र! परमात्मन्! हमारे सब शत्रुओं को परास्त कर दे। हमारे लिए सब पृथ्वी के धन सुलभ कर। युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के रक्षक आप ही हो तथा हमको अपना ही जानों।"

ऋग्वेद (8.47.12) अर्य्याभिविनयः मूल प्रार्थना पृष्ठ 41.

"हे भगवन! पापी, हिंसक और दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना। धर्म से विपरीत चलने वाले को सुख कभी मत हो, तथा अधर्मी के समीप रहने वाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो। ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिए, नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा, किंतु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिए। आप सब धर्मात्माओं की रक्षा करनेहारे हैं। जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव भद्र कल्याण प्राप्त होता है; अन्य को नहीं।"

ऋग्वेद (8.11.2) आर्याभिविनयः मूल प्राथना पृष्ठ 38.

“हे अग्ने सर्वज्ञ! तू ही सर्वत्र स्तुति करने योग्य है, अन्य कोई नहीं। जो तुम्हारी स्तुति को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है, उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है। शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो। यज्ञ और युद्ध मे आप ही रथी हो। हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हों, इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता।”

यह मूल प्रार्थनाएँ इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर अपने भक्तों की सहायता करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता, तो ऐसी प्रार्थनाओं का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। इस्लाम की मूल शिक्षा यह है कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो अपने

कर्मों और आचरण से उसकी सहायता के योग्य बनते हैं। इसी प्रकार, ईश्वर की सहायता का स्वरूप हर समय और परिस्थिति में समान नहीं होता — और न ही वह बिना प्रयास के प्राप्त होती है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

54. और काफ़िरों पर हम को सहाय कर। अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज है। जो तुम अल्लाह के मार्ग में मारे जाओ वा मर जाओ, अल्लाह की दया बहुत अच्छी है। 3: 147, 150, 157 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये मुसलमानों की भूल कि जो अपने मत से भिन्न हैं उन के मारने के लिये खुदा की प्रार्थना करते हैं। क्या परमेश्वर भोला है जो इन की बात मान लेवे? यदि मुसलमानों का कारसाज अल्लाह ही है तो फिर मुसलमानों के कार्य नष्ट क्यों होते हैं? और खुदा भी मुसलमानों के साथ मोह से फंसा हुआ दीख पड़ता है, जो ऐसा पक्षपाती खुदा है तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता।

उत्तर:

पक्षपात का दोषी क़ुरआन नहीं, वेद का ईश्वर

यह तो अब सर्वविदित है कि पवित्र क़ुरआन में किसी अन्य मत के लोगों (काफ़िरों) को केवल उनके धार्मिक मतभेद या विश्वास के कारण मारने का न तो आदेश है और न ही ऐसी कोई प्रार्थना मिलती है। क़ुरआन में उल्लिखित युद्ध या संघर्ष संबंधी आयतें स्पष्ट रूप से उन विशिष्ट परिस्थितियों को संबोधित करती हैं जहाँ मुसलमानों के विरुद्ध धर्म के कारण आक्रामक कार्य हुए हों या उन पर अत्याचार किया गया हो। उदाहरण के तौर पर — यदि किसी व्यक्ति या समूह मात्र भिन्न आस्था रखता है, तो यह उसके विरुद्ध हिंसा का औचित्य नहीं बनता; परंतु यदि वही व्यक्ति किसी अन्य के जीवन, अस्तित्व या श्रद्धा पर आक्रमण करे, तो आत्मरक्षा में किया गया उचित प्रतिहार न्यायसंगत और धर्मसंगत मानी जाती है।

यह भी एक रोचक तथ्य ही है कि जहाँ क़ुरआन में अन्य मतावलंबियों के संहार की प्रार्थना नहीं मिलती, वहीं वेदों में ऐसी अनेक प्रार्थनाएँ पाई जाती है। उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (1.51.8) आर्याभिविनयः, मूल प्रार्थना पृष्ठ 21.

"हे यथायोग्य सब कुछ जानने वाले ईश्वर! आप नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलंपट, हिंसादि दोषयुक्त, उत्तम कर्म में विघ्न करने वाले, स्वार्थी वेदविद्या विरोधी अनार्यों को मूल सहित नष्ट दीजिए।"

ऋग्वेद (7.32.25) आर्याभिविनयः, मूल प्रार्थना पृष्ठ 36.

"हे इन्द्र परमात्मन्! हमारे सब शत्रुओं को परास्त कर दे। हे दातः! हमारे लिए सब पृथिवी के धन सुलभ कर। युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के रक्षक आप ही हो तथा हमको आप ही जानो।"

इन मंत्रों से यह स्पष्ट है कि वेदों में उन व्यक्तियों या समुदायों के विनाश की कामना की गई है जिन्हें अनार्य, दस्यु या वेदविरोधी आर्यों के ईश्वर ने नाम दिया हुआ है — अर्थात वे लोग जो आर्य या आर्यावर्त से भिन्न देशों या समुदाय या वैदिक मूल्यों से भिन्न मत रखते है या उसे नहीं मानते।

कुछ मंत्र तो ऐसे है जहाँ अनार्यों और दस्यु देशों के जनसमूहों से उनके संसाधनों को लूटने की भी कामना की गई है।

उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (3.53.14) — भाष्यकार हरिशरण सिद्धान्तालंकार

"हे प्रभों! इन कीकटों ने गौवों को खा ही तो जाना है, अतः उनके पास इनका न रहना ही ठीक है। प्रमगन्द पुरुष अत्यन्त धनलुब्ध होने से धन का धर्मकार्यों में प्रयोग न करेगा। और ये नीचाशाख पुरुष तो धन का अत्यन्त निकृष्ट विलासों में व्यय करेंगे। सो इनका धन भी इनसे पृथक् किया ही जाना चाहिए। राष्ट्र में भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि राजा इनके धन को छीन ले।"

इन मंत्रों से यह स्पष्ट हो चुका है कि वेदों में अन्य मतों या विरोधी समूह के प्रति वैमनस्य और उनके विनाश की कामनाएँ की गई है, जबकि पवित्र क़ुरआन में ऐसा कुछ नही मिलता। क़ुरआन का संदेश न्यायसंगत आत्मरक्षा की भावना पर आधारित है — न कि केवल मतभेद के आधार पर हिंसा करने पर।

बड़ी मीठी ज़बान है तुम्हारी, पर जो भी कहते हो, ज़हर लगता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

55. और अल्लाह तुम को परोक्षज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैग़म्बरों से जिस को चाहे पसन्द करे। बस अल्लाह और उस के रसूल के साथ ईमान लाओ। 3: 179 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब मुसलमान लोग सिवाय खुदा के किसी के साथ ईमान नहीं लाते और न किसी को खुदा का साझी मानते हैं तो पैग़म्बर साहेब को क्यों ईमान में खुदा के साथ शरीक किया? अल्लाह ने पैग़म्बर के साथ ईमान लाना लिखा, इसी से पैग़म्बर भी शरीक हो गया, पुनः लाशरीक का कहना ठीक न हुआ। यदि इस का अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहेब के पैग़म्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मुहम्मद साहब के होने की क्या आवश्यकता है? यदि खुदा उन को पैग़म्बर किये विना अपना अभीष्ट कार्य नहीं कर सकता तो अवश्य असमर्थ हुआ।

उत्तर:

मुहम्मद ﷺ पर ईमान शिर्क नहीं

पंडित और उनके अनुयायी चूँकि अभी-अभी इस्लामी शिक्षाओं से परिचित हुए हैं, इसलिए वे तौहीद और शिर्क के सही अर्थों से अभी तक भलीभांति परिचित नहीं हुए हैं। आर्य बंधु केवल एकेश्वरवाद को ही शायद तौहीद समझते हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि वे भले ही एक ईश्वर पर विश्वास रखते हों, फिर भी उनके विचार मुश्रिकाना (शिर्क करने वाले) हैं। वे अभी तो तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की पूजा, पशु, लिंग और योनि जैसी मूर्तिपूजा से बाहर निकले हैं — ऐसे में तौहीद और शिर्क जैसे गूढ़ मर्म को समझना शायद उनके लिए आसान नहीं!

शिर्क क्या है?

शिर्क का अर्थ है — ईश्वर की विशिष्टता, अधिकार या ईश्वरत्व में किसी अन्य को सहभागी ठहराना। अर्थात किसी दूसरे को ईश्वर का समकक्ष मानना, उसे वैसा ही गुण देना या पूज्य समझना — यह सब शिर्क के दायरे में आता है।

इस्लाम में पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ को ईश्वर का साझीदार किसी एक चीज़ में भी नहीं बनाया जाता। बल्कि, वे केवल ईश्वर के दूत

(सन्देशवाहक) माने जाते हैं, जिनके माध्यम से ईश्वरीय ज्ञान मानवता तक पहुँचा।

ईमान और शिर्क में अंतर

पंडित जी को ईमान और शिर्क के बीच के अंतर की सही समझ नहीं थी। यदि होती, तो वे ऐसी भ्रांत बातें न करते।

ईमान लाने का अर्थ है — किसी बात को सच्चे दिल से स्वीकार करना और उस पर दृढ़ विश्वास रखना। उदाहरण के तौर पर — यह मानना की यह समस्त सृष्टि स्वयं उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि एक सर्वशक्तिमान ईश्वर ने इसे रचा है और वही इसका संचालन करता है — इसे मानना और इसपर विश्वास रखना ईमान कहलाता है।

इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ पर ईमान लाना शिर्क इसलिए नहीं है क्योंकि यह ईश्वर के दूत के रूप में उन्हें स्वीकार करना है न कि ईश्वर के समकक्ष उन्हें खड़ा करना।

पैग़म्बर की आवश्यकता और वैदिक ऋषियों का स्थान

यदि पंडित दयानन्द यह मानते है कि ईश्वर ने अग्नि, वायु, अंगिरा और आदित्य जैसे ऋषियों पर वेदों की प्रकाशना की, और वे इस पर विश्वास भी रखते हैं — साथ ही यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर यदि अपना ज्ञान उन ऋषियों के माध्यम से न देता, बल्कि सीधे हर किसी को ज्ञान दे देता या किसी वृक्ष पर लिख देता — तो फिर निःसन्देह ऋषियों या नबी-रसूलो की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

पंरतु उसने ऐसा नहीं किया, बल्कि उसने अपने नबी, रसूल या ऋषियों के माध्यम से ही अपना ज्ञान प्रकट किया।

पंडित दयानन्द सरस्वती जो स्वयं यह स्वीकार करते है वेद बिना ऋषियों के माध्यम से समझ नहीं आ सकते (सप्तम समुल्लास, पृष्ठ 168-170)। और वेदों के मंत्रों को समझने के लिए ऋषियों की व्याख्या और मार्गदर्शन को अनिवार्य माना जाता है। यदि दयानन्द ऋषियों के माध्यम को अस्वीकार करते है, तो फिर वेद बिना ऋषियों के समझ में कैसे आए? यह आपत्ति वास्तव में स्वयं दयानन्द के लिए एक तार्किक संकट है — क्योंकि यदि वेद ऋषियों के दिए बिना लोगो तक नहीं पहुँच सकता और उसके माध्यम के बगैर लोग उसे समझ नहीं सकते, तो पंडित दयानन्द के अनुसार ही उनका ईश्वर शक्तिहीन सिद्ध होता है।

वही, इस्लाम की यह मान्यता है कि ईश्वर यदि चाहे तो बिना किसी माध्यम के भी ज्ञान प्रदान कर सकता है, परंतु उसने ही यह व्यवस्था बनाई है कि लोगों तक नबी-रसूलों के माध्यम से ही उसका संदेश लोगों तक पहुँचे। यह कोई कमज़ोरी नहीं, बल्कि एक सुनियोजित ईश्वरीय योजना है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

56. ऐ ईमानवालो! सन्तोष करो परस्पर थामे रक्खो और लड़ाई में लगे रहो। अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ। 3: 200 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह कुरान का खुदा और पैग़म्बर दोनों लड़ाईबाज थे। जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शान्तिभंग करने वाला होता है। क्या नाम मात्र खुदा से डरने से छुटकारा पाया जाता है? वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से? जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर और जो द्वितीय पक्ष है तो ठीक है।

उत्तर:

युद्ध मानव सभ्यता का महत्वपूर्ण अंग

पंडित दयानन्द द्वारा; युद्ध की आज्ञा को आधार बनाकर ईश्वर और उसके दूत पर लगाए गए निराधार आरोप, वास्तव में उनकी अपनी ही छवि और मत को धूमिल करते है। क्योंकि धर्म केवल आध्यात्मिक या निजी मार्गदर्शन तक सीमित नहीं होता; बल्कि यह मानव जीवन की समग्र प्रणाली — चाहे वह आध्यात्मिक, सामाजिक नैतिक, आर्थिक हो या राजनीतिक — के प्रत्येक महत्वपूर्ण पहलू के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

इतिहास साक्षी है कि युद्ध और संघर्ष मानव सभ्यता के अनिवार्य यथार्थ रहे हैं। कभी आत्मरक्षा के लिए, कभी अन्याय अत्याचार के विरुद्ध, और कभी न्याय व शांति की स्थापना के लिए संघर्ष आवश्यक हो जाता है। ऐसे में, यदि कोई धर्म इस यथार्थ पर मौन रहें — अर्थात यह न बताए कि कब संघर्ष करना उचित है और कब नहीं, कब धैर्य रखना चाहिए और कब निर्णायक कदम उठाना आवश्यक है — तो यह उस धर्म की एक गंभरी कमी होगी। यही वह मूलभूत अंतर है, क्योंकि धर्म का कार्य केवल आदर्श प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन में सही मार्ग दिखाना भी है। इसी कारण ईश्वर और उनके दूत मुहम्मद ﷺ ने स्पष्ट रूप से बताया कि संघर्ष केवल उचित और न्यायसंगत परिस्थितियों में ही अनुमन्य है। इसे "लडाईबाज़" या शांतिभंग कहना नितांत मुर्खतापूर्ण और पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। इस्लाम का उद्देश्य सदैव मानवता का पथप्रदर्शन करना तथा न्याय की स्थापना करना है, न कि अनियंत्रित हिंसा को बढ़ावा देना।

सार यह है कि यदि कोई धर्म जीवन के इस महत्वपूर्ण पक्ष पर मार्गदर्शन नहीं देता, तो उसकी व्यावहारिकता और व्यापकता अधूरी है। और इस्लाम वह धर्म नहीं है जो इस आवश्यक पहलू से लोगो को अज्ञानता में रखे। निःसन्देह यह धर्म शांति का पाठ भी पढ़ाता है, न्याय स्थापित करना भी सिखाता है, और आवश्यकता पड़ने पर न्यायसंगत ढंग से संघर्ष करने का सिद्धांत भी प्रदान करता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह निसा

57. ये अल्लाह की हदें हैं जो अल्लाह और उनके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुँचेगा जिन में नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है। जो अल्लाह की और उस के रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उस की हदों से बाहर हो जायगा वो सदैव रहने वाली आग में जलाया जावेगा और उस के लिये खराब करने वाला दुःख है। 4: 13-14 क़ुरआन.

समीक्षक:- खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैग़म्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुद कुरान ही में लिखा है। और देखो! खुदा पैग़म्बर साहेब के साथ कैसा फंसा है कि जिस ने बहिश्त में रसूल का साझा कर दिया है। किसी एक बात में भी मुसलमानों का खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरीक कहना व्यर्थ है। ऐसी-ऐसी बातें ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं।

उत्तर:

रसूल की आज्ञा मानना — शिर्क नहीं

यदि दयानन्द सरस्वती के दृष्टिकोण से शिर्क की परिभाषा को देखा जाए, तो उनके अपने ही सिद्धांतों के आधार पर उनका

ईश्वर स्वतन्त्र सत्ता नहीं ठहरता। यह अत्यंत हास्यपद की बात है कि जिन दोषों और आरोपों को वे मुसलमानों के ईश्वर के संबंध में लगाते हैं, वही स्थिति उनके स्वयं के ईश्वर की अवधारणा को दोषयुक्त बना देती है। उदाहरण के तौर पर —
अथर्ववेद (10.7.23) — पं. विश्वनाथ विद्यालंकार
"तैंतीस देव जिस की निधि की सदा रक्षा करते हैं, उस निधि को, आज तक कौन जानता है, जिस निधि की हे देवो! तुम रक्षा करते हो।"
अथर्ववेद (12.3.16) — पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी
"सब जीवों ने सात परस्पर मिले हुए (पदार्थों) को ग्रहण किया है, तैंतीस (वसु आदि) देवता उन (जीवों) को सेवते हैं, जो (पुरुष) इन (जीवों) में से तेजस्वी है, और जिसने (विज्ञान को) सूक्ष्म किया है, वह तू हमको सुख पहुँचाने वाले समाज में पहुँचा।"
इन मंत्रों से स्पष्ट है कि वैदिक देवताओं को सृष्टि के विभिन्न कार्यों में संलग्न माना गया हैं। स्वयं पंडित ने स.प. (सप्तम समुल्लास, पृ. 146-147) में स्वीकार किया है कि ईश्वर देवों का देव अर्थात महादेव है, और चूँकि वह उन तैंतीस देवताओं से बड़ा है इसलिए चौंतीसवाँ देव कहलाता है। अब यदि ईश्वर को देवों का देव कहकर उन तैंतीस देवताओं से भिन्न किंतु उनसे बड़ा माना गया है, तो यह विभाजन और संख्या-निर्धारण स्वयं दयानन्द की परिभाषा के अनुसार ईश्वर को स्वतन्त्र नहीं रहने देता। यानी वही आरोप — कि कोई सत्ता ईश्वर के साथ साझीदार है — जो वे मुसलमानों पर लगाते हैं, वह उनके अपने ही सिद्धांत को दोषी ठहराता है।
जहाँ तक इस्लाम में शिर्क का प्रश्न है, इसकी परिभाषा हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं (क्रमांक 55 में)। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि रसूल ﷺ की आज्ञा का पालन वास्तव में ईश्वर की आज्ञा का ही पालन है, क्योंकि रसूल ﷺ स्वयं किसी स्वतन्त्र आदेश का स्रोत नहीं हैं। जैसा कि क़ुरआन (सूरह निसा, 4:80) में कहा गया है — "जो रसूल ﷺ की आज्ञा का पालन करता है उस ने ईश्वर ही कि आज्ञा का पालन किया। रसूल ﷺ का संदेश और मार्गदर्शन पूर्णतः वह्य (Divine Revelation) पर आधारित है (सूरह नज्म, 53:3-4)। यदि रसूल ﷺ को ईश्वर के समकक्ष कोई स्वतन्त्र अधिकार प्राप्त होता — जो कि असंभव है — तो निःसन्देह यह शिर्क होता। किंतु, रसूल ﷺ ने भी स्वयं को मात्र एक मनुष्य एवं ईश्वर का दूत बताया हैं, जैसा कि क़ुरआन (सूरह कहफ, 18:110) में है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

58. और एक त्रसरेणु की बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता। और जो भलाई होवे उस का दुगुण करेगा उस को। 4:40 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो एक त्रसरेणु के बराबर भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्य को द्विगुण क्यों देता? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है? वास्तव में द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का देवे तो खुदा अन्यायी हो जावे।

उत्तर:

ईश्वर का दया और कृपा अधिक प्रिय है या बनियापन

हमारे पंडित जी की बातें इस संसार की सामान्य समझ से एकदम विपरीत हैं। उनकी दृष्टि में यदि किसी मेहनती मजदूर को उसकी मेहनत, लगन और ईमानदारी को देखकर एक रुपये के बजाय दो रुपये दे दिए जाएँ, तो यह अन्याय कहलाता है। इसी प्रकार, यदि कोई अपने पुत्र, पत्नी या नौकर की गलती क्षमा कर दे, तो वह भी उनके अनुसार अन्याय है। यह न्याय और अन्याय की ऐसी विचित्र परिभाषा है, जिसे कोई भी न्यायप्रिय और तर्कसंगत समाज स्वीकार नहीं कर सकता। परंतु हमारे पंडित जी और उनके समाज मंदिर में यही नियम चलता है।

संसार की प्रत्येक समाज में न्याय और दया — ये दो शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं। न्याय का अर्थ है — मजदूर को उसकी निर्धारित मजदूरी का पूर्णतः भुगतान करना, जबकि दया या कृपा का अर्थ है — उस निर्धारित मजदूरी से अधिक प्रदान करना। विरोधाभास यह है कि पंडित जी ईश्वर के न्याय की बहुत चर्चा करते हैं, परंतु दया और कृपा को स्वीकार नहीं कर पाते। इसलिए वे शिकायत करते हैं कि — "ईश्वर पुण्य का प्रतिफल दोगुना क्यों देता है?" पंडित जी! ईश्वर ऐसा इसलिए करता है ताकि नेकी और सदाचार के प्रति मनुष्य का उत्साह (रुचि) और भी बढ़े। क्योंकि वह केवल न्यायप्रिय ही नहीं बल्कि दयालु और उदार (दाता) भी है — इसलिए वह अपने भक्तों को उनके कर्मों से कहीं अधिक प्रदान करता है।

ईश्वर मुसलमानों का पक्षपात नहीं

इसी प्रकार यह कहना कि "ईश्वर केवल मुसलमानों का पक्ष लेता है" — एक गंभीर भ्रांति पर आधारित है। इस भ्रांति का मूल कारण है — ईश्वर के न्याय और उसके सार्वभौमिक नियमों की सही समझ का अभाव। इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार, ईश्वर समस्त मानवता का रचयिता है। वह पूर्णतः न्यायप्रिय है — न वह किसी जाति, नस्ल या समुदाय का पक्ष लेता है, और न ही किसी के साथ अन्याय करता है।

ईश्वर के प्रतिफल और दंड का आधार केवल दो ही है — ईमान (विश्वास और समर्पण) और कर्म (कर्मठता और आचरण) पर होता है। यदि कोई मुसलमान भी अपराध करता है, तो उसे भी दंड मिलेगा। केवल मुसलमान कहलाने मात्र से कोई व्यक्ति दंड से मुक्त नहीं हो जाता। हाँ, यदि कोई व्यक्ति सच्चे मन से पश्चताप करे और उसके पाप शिर्क (ईश्वर के अतिरिक्त अन्य को साझीदार बनाना) या कुफ्र (ईश्वर और धर्म का अस्वीकार करना) जैसे गंभीर अपराधों में नहीं आते हों, तो ईश्वर उसे क्षमा कर सकता है। परंतु जो व्यक्ति ईश्वर और उसके धर्म को अस्वीकार करता है या उसके साथ किसी अन्य को उसका भागीदारी ठहरता है, तो यह सबसे बड़ा अपराध माना जाता है, जिसे बिना सच्चे पश्चातप के क्षमा नहीं किया जाता। अतः, यह सोचना की ईश्वर केवल मुसलमानों का पक्षपात करता है — इस्लाम की मूल शिक्षाओं और ईश्वर के न्याय सिद्धांत — दोनों के ही विरुद्ध है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

59. जब तेरे पास से बाहर निकलते हैं तो तेरे कहने के सिवाय (विपरीत) शोचते हैं। अल्लाह उन की सलाह को लिखता है। अल्लाह ने उन की कमाई वस्तु के कारण से उन को उलटा किया। क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह के गुमराह किये हुए को

मार्ग पर लाओ? बस जिस को अल्लाह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा। 4: 81 & 88 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो अल्लाह बातों को लिख बहीखाता बनाता जाता है तो सर्वज्ञ नहीं। जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सब को बहकाने से दुष्ट हुआ है तो जब खुदा ही जीवों को गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद रहा? हां! इतना भेद कह सकते हैं कि खुदा बड़ा शैतान, वह छोटा शैतान। क्योंकि मुसलमानों ही का कौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है तो इस प्रतिज्ञा से खुदा को भी शैतान बना दिया।

उत्तर:

ईश्वर का कर्मों को संरक्षित करने का अर्थ

किसी धर्म के विरुद्ध झूठी बातें गढ़कर आपत्ति करना संकीर्ण मानसिकता का परिणाम है। मुसलमानों के बारे में यह कहना कि वे यह मानते है कि "ईश्वर सचमुच किसी किताब में लिखता रहता है" — एक मनगढ़त और झूठा आरोप हैं।

क़ुरआन में प्रयुक्त शब्द यक्तुबु एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका उद्देश्य मनुष्य के प्रत्येक कार्य का एक सूक्ष्म एवं पूर्ण रिकॉर्ड संरक्षित होने के सिद्धांत को समझाना है। यह इस सत्य को दर्शाता है कि प्रत्येक व्यक्ति के किए-धरे का एक सटीक लेखा-जोखा संरक्षित किया जा रहा है, ताकि न्याय के दिन कोई यह दावा न कर सके कि उसके साथ अन्याय हुआ है या कोई बात छूट गई है। यह 'लिखा जाना' ईश्वरीय ज्ञान की कमी का नही, बल्कि उसके न्याय की परिपूर्णता और पारदर्शिता का प्रतीक है।

ईश्वर सर्वज्ञ है — उसका ज्ञान असीम, पूर्ण और समय व स्थान की सीमाओं से परे है। उसे कुछ भी याद रखने की लिए लिखने जैसी किसी प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है। किंतु चूँकि मनुष्य की बुद्धि सीमित है, इसलिए ईश्वर ने अपनी बात को मानवबोधक भाषा और प्रतीकों के माध्यम से समझाया है। कर्मों का लिखा जाना ऐसा ही एक प्रतीक है, जो मनुष्य को उसकी नैतिक जिम्मेदारी और अंततः ईश्वर की अदालत में जवाबदेही का एहसास कराता है।

ईश्वर किसी को गुमराह नहीं करता

पंडित द्वारा ईश्वर और उसके दूत के प्रति प्रयुक्त शब्द अत्यंत निंदनीय एवं अनुचित हैं। इस्लाम की मूलभूत शिक्षाओं के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के ईश्वर, धर्म या महापुरुषों के प्रति अपमानजनक भाषा का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है; क्योंकि यह हमारे धर्म के मूलभूत सिद्धांतों के प्रतिकूल है। ऐसे स्थितियों में हमारा दायित्व यही है कि हम केवल तर्क, प्रमाण और संयमित भाषा के माध्यम से उसका उचित उत्तर प्रस्तुत कर दें। अभद्र भाषा और ईशनिंदा का उत्तर अभद्रता से नहीं दिया जा सकता — उसका सर्वोत्तम उत्तर तो यही है कि सत्य को मर्यादा, विनम्रता और ज्ञान के साथ प्रस्तुत किया जाए। यही इस्लामी दृष्टिकोण है — और वास्तव में यही उन अभद्र टिप्पणीयों और ईशनिंदा का सबसे प्रभावशाली और उच्च नैतिक उत्तर भी है।

पंडित साहब, न केवल पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ और उन के अनुयायियों ने, बल्कि सभी ईश्वरीय दूतों और उनके सच्चे अनुयायियों ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि शैतान मनुष्यों को पथभ्रष्ट करता है, और एक बुरा व्यक्ति दूसरे को भी बुराई के मार्ग पर ले जाता है। यही शिक्षा हमें सभी धर्मों में मिलती है कि बुराई संक्रामक होती है — यदि मनुष्य सजक न रहे, तो वह स्वयं भी

उसके चपेट में आ सकता है।

इस प्रंसग में, पंडित जी का कृत्य भी एक प्रकार का शैतानी कार्य है — लोगों को भ्रमित करने और सत्य से दूर करने का प्रयास। समाज को चाहिए कि वह अपनी बुद्धि और विवेक का प्रयोग करें तथा ऐसे बहकावे से सतर्क रहे।

पंडित ने एक आयत से कुछ अंश दूसरी आयत के कुछ भाग लेकर, बीच के अंशों को जानबूझकर छोड़कर, और फिर उन्हें इस प्रकार जोड़कर प्रस्तुत किया कि पूरी आयत का अर्थ ही विकृत हो गया। यह तो एक गंभीर बौद्धिक बेईमानी है — वह भी एक सन्यासी द्वारा, जो भगवा वस्त्र धारण कर सत्य और धर्म का उपदेश देता है। छल और धोखाधड़ी का ऐसा प्रयत्न किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का हथकंडा केवल एक अशिक्षित और अनभिज्ञ समाज में ही चल सकता हैं, परंतु एक शिक्षित और विवेकशील समाज में यह कदापि स्वीकार्य नहीं होंगे।

यदि आयत 88 को ही संपूर्ण रूप से पढ़ा जाए, तो पंडित की मक्कारी और आपत्ति का उत्तर स्वयं स्पष्ट हो जाता है। यह आयत मुनाफ़िक़ों (कपटियों) के विषय में है, और मुसलमानों को यह समझाया जा रहा है कि उनके प्रति किसी प्रकार की शंका या दुविधा न रखें। वे वास्तव में धोखेबाज़ हैं और उनके बार-बार के दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप ईश्वर ने उनके मार्ग को उन्हीं पर वापस फेर दिया है। आयत का सार यह है कि यदि कोई व्यक्ति सत्य को ठुकराकर भटकाव के मार्ग को अपनाता है, तो ईश्वर भी उसे उसी मार्ग पर भटकने देता है, जैसा कि इसी सूरह के कुछ आगे जा कर कहा गया है — "और हम उन्हें उन्हीं के हाल पर छोड़ देते हैं" (सूरह निसा, 4:115)। यह एक प्रकार का ईश्वरीय दंड है, जो उनके कर्मों के कारण उन्हें प्राप्त होता है। इस दंड के अंतर्गत ईश्वर उन्हें विशेष मार्गदर्शन प्रदान नहीं करता। इसके पश्चात आयत यह स्पष्ट करती है (मुसलमानों से) कि जिस व्यक्ति के कुकर्मों पर ईश्वर ने मोहर लगा दी है, वह व्यक्ति सीधे मार्ग पर कदापि नहीं आ सकता — अर्थात, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है; वह भली-भाँति जानता है कि कौन सच्चे मन से मार्ग चाहता है और कौन नहीं। अतः ईश्वर मुसलमानों से कहता है कि उन मुनाफ़िक़ों की गुमराही का शाक्षी वह स्वयं है, क्योंकि उन के मन में ईमानदारी नहीं हैं। इसलिए उन्हें मनाने या समझाने में अपना मूल्यवान समय व्यर्थ न करें; बल्कि जिस प्रकार अन्य लोगों को सत्य का संदेश पहुँचाते रहे हो, उसी प्रकार उन्हें भी सच्चाई की तरफ बुलाते रहो। यदि वे अपनी करतूतों से पश्चताप करके लौट आएँ, तो निश्चित रूप से ईश्वर क्षमाशील और दयावान है।

यह हम पूर्व भी स्पष्ट कर चुके हैं कि ईश्वर का यह दंड स्थायी नहीं बल्कि अस्थायी है; यदि वे सत्य की ओर पहल करें, सद्कर्म करें और अपनी गलतियों पर सच्चे मन से पश्चाताप करें, तो ईश्वर उन्हें क्षमा कर देता है।

शेष शैतान के भटकने का उत्तर क्रमांक 33 और 11 पर दिया जा चुका है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

60. और अपने हाथों को न रोकें तो उन को पकड़ लो और जहाँ पाओ मार डालो। मुसलमान को मुसलमान का मारना योग्य नहीं। जो कोई अनजाने से मार डाले बस एक गर्दन मुसलमान का छोड़ना है और खून बहा उन लोगों की ओर सौंपी हुई जो उस कौम से होवें, और तुम्हारे लिये दान कर देवें, जो दुश्मन की कौम से। और जो कोई मुसलमान को जान कर मार डाले वह सदैव काल दोज़ख में रहेगा, उस पर अल्लाह का क्रोध और लानत है। 4: 91-92-93 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये महा पक्षपात की बात कि जो मुसलमान न हो उस को जहाँ पाओ मार डालो और मुसलमानों को न मारना। भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित्त और अन्य को मारने से बहिश्त मिलेगा ऐसे उपदेश को कुए में डालना चाहिये। ऐसे-ऐसे पुस्तक ऐसे-ऐसे पैग़म्बर ऐसे-ऐसे खुदा और ऐसे-ऐसे मत से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं। ऐसों का न होना अच्छा और ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रह कर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिये क्योंकि उस में असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। और जो मुसलमान को मारे उस को दोज़ख मिले और दूसरे मत वाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले। अब कहो इन दोनों मतों में से किस को मानें किस को छोड़ें? किन्तु ऐसे मूढ़ प्रकल्पित मतों को छोड़ कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिये है कि जिस में आर्य्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है; सर्वोत्तम है।

उत्तर:

युद्ध की आज्ञा किन लोगों के विरुद्ध है और झूठे आरोप का खंडन

यह एक अत्यंत दुखद एवं चिंताजनक तथ्य है कि पवित्र क़ुरआन जैसी ईश्वरीय ग्रँथ के बारे में लोगों को गुमराह करने के लिए आधी-अधूरी आयतें पेश की जाती हैं। यह आचरण तो कभी भी महर्षि का नहीं हो सकता। ऐसा काम केवल वे लोग करते हैं जिनके स्वभाव में छल, कपट और पक्षपात भरा होता है। अब पूरी आयत के भाव को समझिए —

पवित्र क़ुरआन यहाँ एक विशेष प्रकार के कपटियों (मुनाफ़िक़ों) का उल्लेख कर रहा है, जो मौखिक रूप से कहते थे कि वे मुसलमानों से युद्ध नहीं चाहते, बल्कि शांति चाहते हैं। परंतु वास्तव में वे मुसलमानों के विरुद्ध गुप्त रूप से षड्यंत्र रचते रहते थे। उनका शांति का दिखावा मात्र एक रणनीति थी, ताकि मुसलमान उनकी साजिशों से बेखबर रहें और उचित अवसर पाते ही वे पीछे से वार कर सकें। अर्थात वे शांति के नाम पर छिपे शत्रु थे — जो मेल-मिलाप का दिखावा करते हुए अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे, ताकि मौका मिलते ही आक्रमण कर सकें।

यहाँ एक रोचक तथ्य यह है कि ठीक इसी प्रकार की रणनीति का उल्लेख सत्यार्थप्रकाश (षष्ठम समुल्लास, पृ. 132) में मनुस्मृति के हवाले से कही गई है कि —

"जब यह जान लो कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगी, तब शत्रु से मेल कर के उचित समय तक धीरज करें..."

सरल शब्दों में इसका आशय यही है कि — शत्रु से दिखावटी मेल-जोल बनाए रखकर उसे धोखे में रखो और उचित अवसर आने पर आक्रमण कर दो।

जब यह नीति पंडित जी स्वयं उद्धृत करते हैं, तब उन्हें इसमें कोई नीचता या पक्षपात नज़र नहीं आती। परंतु जब क़ुरआन मुसलमानों को आर्यों जैसे कपटियों से सावधान रहने और उनके विश्वासघात के प्रति सतर्क एवं दृढ़ रहने का उपदेश देता है, तो उसे ही वह दोषपूर्ण ठहराने लगते हैं! क्या यह दोहरा मापदंड नहीं है?

अब ज़रा विचार कीजिए — यदि पवित्र क़ुरआन अपने अनुयायियों को आर्यों जैसे कपटियों से सावधान रहने और उनकी साजिशों से बचने की शिक्षा देता है तो इसमें अनुचित क्या है? छद्म वेशधारी शत्रुओं से सावधान रहना और उनके विश्वासघात

के उत्तर में दृढ़ता दिखाना, आत्मरक्षा का एक स्वाभाविक एवं न्यायसंगत सिद्धांत है। विश्व का कोई भी शासन-दर्शन नहीं है, जो अपने अनुयायियों को आत्मरक्षा के अधिकार से वंचित रखता हो। क्या स्वयं दयानन्द सरस्वती इस प्रश्न पर हमें संतुष्ट कर सकते हैं?

झूठ का पर्दाफ़ास —

अब पंडित जी द्वारा लगाए गए एक अन्य भ्रामक आरोप पर दृष्टिपात करते हैं। पंडित जी कहते है कि — "भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित और अन्य को मारने से बहिश्त (स्वर्ग) मिलेगा।"

यह एक स्पष्ट तोड़-मरोड़ है। संबंधित आयत में "अन्य को मारने से स्वर्ग मिलने का कोई उल्लेख नहीं है। आयत स्पष्ट रूप से दो स्थितियों का वर्णन करती है —

1. भूलवश युद्ध में किसी मुसलमान के मारे जाने पर उसके लिए प्रायश्चित निर्धारित है।
2. किसी ऐसे व्यक्ति (काफिर) के मारे जाने पर जिससे सन्धि (शांति समझौता) हो, तो उसके परिवार वालों को खून बहा (रक्त धन) देना अनिवार्य है।

स्पष्ट है कि यह आदेश उन शत्रु गुटों के लिए है जो अत्याचारी है, न कि प्रत्येक गैर-मुसलमान के लिए एक सामान्य नियम।

पंडित जी ने एक और आदर्शवादी बात कही है कि वेदोक्त मत में आर्य मार्ग अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और दस्यु अर्थात दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है। किंतु यह बात स्वयं पंडित के ही कथन से खंडित होती है। सत्यार्थप्रकाश (अष्टम समुल्लास, पृ. 186) में वे स्वयं लिखते हैं —

"जो अर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहलाते हैं... आर्य्यावर्त्त से भिन्न पूर्व, उत्तर, पश्चिम आदि दिशाओं में रहने वालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है और दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में रहने वालों का नाम राक्षस है।"

अब बताइए — क्या कोई तर्कसंगत व्यक्ति यह स्वीकार कर सकता है कि मात्र किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में जन्म लेने के आधार पर कोई व्यक्ति स्वतः ही श्रेष्ठ (आर्य) अर्थात धार्मिक, विद्वान, आप्त पुरुष और दूसरा दुष्ट, म्लेच्छ, असुर या राक्षस बन जाता है?

क़ुरआन जहाँ काफिर, मुशरिक, मुनाफिक आदि जैसे शब्दों का प्रयोग व्यक्ति के कर्म, विश्वास और चिरित्र के आधार पर करता है, वहीं वैदिक़ों के यहाँ श्रेष्ठता और दुराचार का आधार मात्र जन्मस्थल और भूगोल के आधार पर है।

क्या किसी विशेष भूभाग में जन्म लेने मात्र से कोई मनुष्य अधर्मी और दुष्ट ठहर सकता है? आस्था और सद्गुण के स्थान पर भूगौलिक क्षेत्र और जन्मभूमि को अच्छे-बुरे का आधार बनाना कौन-सी ईश्वरीय व्यवस्था है?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

61. और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिस ने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया; अवश्य हम उनको दोज़ख में भेजेंगे। 4: 115 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये खुदा और रसूल की पक्षपात की बातें! मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो खुदा के नाम से ऐसी

हम न लिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे, आनन्द भोग न होगा। इसी से विदित होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन बिगाड़ने में। इस से ये अनाप्त थे। इन की बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता।

उत्तर:

सन्यासी द्वारा पैग़म्बर ﷺ पर बहुत बड़ा झूठा आरोप

पंडित साहब इस्लाम-विरोधी प्रवृत्ति के कारण सन्यासी होकर भी सत्यानाशी बने हुए हैं। यह उनका एक और छल-कपट और झूठ है — लोगों को गुमराह करने के लिए रचा गया एक षड्यंत्र। वे पवित्र क़ुरआन की आयत का एक अंश छिपा कर, केवल आधा हिस्सा प्रस्तुत करते हैं, ताकि अपनी कुटिल नियत किसी पर प्रकट न हो सके और जनमानस को भ्रमित किया जा सके।

वास्तव में, उस आयत का संदर्भ कुछ इस प्रकार है — एक कपटी (मुनाफ़िक़) व्यक्ति जो मुसलमान तो बन गया था, परंतु उसके मन में पुराने कुफ़्र (अविश्वास) की जड़े अब भी मौजूद थीं। वह सुबह-शाम मुसलमानों के साथ उठता-बैठता, उनके बीच रहता, सब कुछ सुनता और देखता था, फिर भी ईश्वर और उसके दूत के बताए मार्ग के बजाय उसके विरुद्ध आचरण करता था। अपने भीतर सुधार लाने के बजाय वह अपने कुकर्मों को उचित ठहराता, उन्हें बुरा नहीं मानता और ईश्वर तथा उसके दूत का विरोध करता था। ऐसे लोग ही तो नर्क के पात्र हैं।

यदि इस आयत की पृष्ठभूमि पर ध्यान दिया जाए तो दयानन्द का पक्षपात का आरोप न केवल झूठा सिद्ध होता है बल्कि स्वयं ईश्वर और उसके दूत के निर्णयों को झुठलाने जैसा है। यह आयत दरअसल एक वास्तविक प्रसंग पर आधारित है — जिसमें एक यहूदी और एक कथित मुसलमान के बीच विवाद हुआ था। ईश्वर के दूत ने न्यायपूर्वक यहूदी के पक्ष में फैसला सुनाकर न्याय स्थापित किया। उस पराजय से क्षुब्ध होकर वह कपटी मुसलमान मुर्तद (धर्मत्यागी) हो गया और कहने लगा, "ये कैसा ईश्वर और उसका दूत है जो अपने ही अनुयायी के विरुद्ध निर्णय देता है!"

इस प्रकार आयत का भाव बिल्कुल स्पष्ट है, किंतु कलियुग के इस "काग़ज़ी महर्षि" की समझ पर धूल जमी हुई है। वह उस पवित्रतम व्यक्तित्व — समस्त जगत के उपकारक, सत्य और संयम के प्रतीक, पैग़म्बर-ए-संसार मुहम्मद ﷺ पर ऐसा निराधार आरोप लगाता है जो इतिहास के विपरीत ही नहीं, बल्कि सत्य का गला घोंटने के समान है।

जिस महान व्यक्ति ने अपने जीवनभर कभी पेट भरकर भोजन नहीं किया, भूख की तीव्रता में पेट पर पत्थर बाँधे रखे, जिसके घर में कई-कई दिन तक चूल्हा नहीं जलता था; जो बादशाह होते हुए भी अपने कपड़ों में स्वयं पैबंद लगाते, अपनी जूती स्वयं सीते; जिसके घर में सोना-चाँदी टिक ही नहीं पाती थी — क्योंकि जो कुछ मिलता, वह सब लोगों की भलाई के लिए दान कर देते थे, जिसने अपने जीवन के अंत में कोई निजी संपत्ति नहीं छोड़ी और गर्व से कहा — "अल-फ़क़्रु फ़ख़्री" — ऐसे महान और पवित्र व्यक्ति पर यह आरोप लगाना कि उन्होंने (मआज़ अल्लाह) भोग-विलास के लिए लोगों को धोखा दिया, अत्यंत निंदनीय और जघन्य असत्य है।

यदि वास्तव में वे धन या सुख-संपत्ति के इच्छुक होते, तो मक्का के कुरैश सरदारों द्वारा दिए गए धन, पद और विवाह के

प्रस्तावों को स्वीकार कर लेते। परंतु उन्होंने हर प्रकार के लोभ और प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अपने मिशन पर अडिग रहे। इस काग़ज़ी सन्यासी द्वारा लगाए गए ऐसे झूठे आरोपों से ईश्वर की पनाह! वही इससे निपट लेगा।

चूँकि यहाँ आयत के अर्थों पर कोई वस्तुनिष्ठ आपत्ति नहीं की गई, बल्कि केवल भ्रम फैलाने का प्रयास है। अतः अब आगे बढ़ते हैं।

वास्तव में, बर्तन के भीतर जो मैल होता है, वही बाहर निकलता है। जिस प्रकार यह सन्यासी स्वयं स्वार्थ से ग्रसित होकर मनुस्मृति के नाम पर झूठे श्लोक गढ़ता है और वेद के नाम से असत्य मंत्र रचकर अपना स्वार्थ साधता है, उसी प्रकार दूसरों पर भी अपने जैसे ही आचरण का अनुमान करता है। एक कहावत है — “बुरा व्यक्ति दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है।” ठीक वैसे ही इस पंडित ने भी इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ को अपनी ही तरह कपटी और स्वार्थी मानने की भूल की है।

पंडित द्वारा गढ़ा गया मनुस्मृति का श्लोक देखों, स.प. (पन्चम समुल्लास, पृ. 113) —

"विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥मनु०॥

नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवें।"

और यजुर्वेद के नाम से रचा गया मंत्र के लिए देखों, स.प. (अष्टम समुल्लास, पृ. 184) —

"मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त"

न पूरे मनुस्मृति में इस प्रकार का कोई श्लोक मिलता है, और न ही पूरे यजुर्वेद में इस प्रकार का कोई मंत्र मिलता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

62. जो अल्लाह फ़रिश्तों किताबों रसूलों और कयामत के साथ कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है। निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफ़िर हुए फिर-फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्र में अधिक बढ़े। अल्लाह उन को कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा। 4: 136 & 137 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है? क्या लाशरीक कहते जाना और उस के साथ बहुत से शरीक भी मानते जाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है? क्या तीन बार क्षमा के पश्चात् खुदा क्षमा नहीं करता? और तीन वार कुफ्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी बार से आगे नहीं दिखलाता? यदि चार-चार बार भी कुफ्र सब लोग करें तो कुफ्र बहुत ही बढ़ जाये।

उत्तर:

तौहीद और शिर्क एक इस्लामी शब्दावली

शिर्क और तौहीद शुद्ध रूप से इस्लामी शब्दावली है। इन शब्दों की गहन अवधारणाओं — जैसे व्यक्तित्व में शिर्क, गुण या गुणों में शिर्क और उपासना में शिर्क — से ये लोग अभी कहाँ परिचित होंगे? ये तो अभी कुछ वर्षों पहले ही तो मूर्तिपूजा, लिंग और योनि की उपासना जैसी अनेक प्रकार की बहुदेववादी मान्यताओं से बाहर निकले ही हैं। ऐसे में, इन्हें शिर्क और उसके भेद-प्रभेद की सूक्ष्मताओं का ज्ञान कैसे हो सकता है? ये तो बस अभी मुसलमानों से सुनकर ही जान पाए हैं कि ईश्वर

यकता (अद्वितीय) है और शिर्क घोर निंदनीय कर्म है, वरना इससे पहले इन्हें तौहीद और शिर्क जैसे शब्दों का क्या पता था? पंडित जी, मुसलमान एकमात्र परम अद्वितीय ईश्वर — अल्लाह — को ही अपना परमात्मा और उपास्य मानते हैं। फ़रिश्तों को हम केवल ईश्वर के आज्ञाकारी सेवक और दास समझते हैं। रसूलों को उसके संदेशवाहक मानते हैं, जिन्हें ईश्वर ने अपनी वाणी और आदेश पहुँचाने के लिए चुना। ईश्वरीय ग्रंथों को उसी की अवतरित वाणी मानते हैं।

अब आप ही बताइए — इस समग्र विश्वास प्रणाली में हमने किसे ईश्वर या परमात्मा का दर्जा दिया? ईश्वर के किन गुणों में हमने किसी और को उसका साझी बनाया? और उपासना में हमने किसे ईश्वर के साथ शरीक ठहराया — कि हम पर यह शिर्क का आरोप लगाया जाए?

मुर्तद का बार-बार ईमान और कुफ़्र

आयत में कुफ़्र की कोई संख्यात्मक सीमा नहीं गिनाई गई है, बल्कि चेतावनी दी गई है। आयत में उस व्यक्ति की मानसिक द्वंद्व को दर्शाया गया है जो कभी ईमान लाता है, कभी इंकार (कुफ़्र) करता है —बताया गया है कि यदि इनका अंत इसी स्थिति पर होती है — तो ईश्वर ऐसे लोगों को ज़बरदस्ती मार्ग नहीं दिखता और न ही ऐसे लोग क्षमा किये जायेंगे।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

63. निश्चय अल्लाह बुरे लोगों और काफ़िरों को जमा करेगा दोज़ख में। निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उन को वह धोखा देता है। ऐ ईमान वालो! मुसलमानों को छोड़ काफ़िरों को मित्र मत बनाओ। 4: 140-142-144 क़ुरआन.

समीक्षकः- मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोजख में जाने का क्या प्रमाण? वाह जी वाह! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा खुदा हम से अलग रहे किन्तु जो धोखेबाज़ हैं उन से जाकर मेल करे और वे उस से मेल करें। क्योंकि — "यादृशी शीतलादेवी तादृशः खरवाहनः।" जैसे को तैसा मिले तभी निर्वाह होता है। जिस का खुदा धोखेबाज़ है उस के उपासक लोग धोखेबाज़ क्यों न हों? क्या दुष्ट मुसलमान हो उस से मित्रता और अन्य श्रेष्ठ मुसलमान भिन्न से शत्रुता करना किसी को उचित हो सकती है?

उत्तर:

मुसलमान स्वर्ग में क्यों जाएंगे और काफ़िर क्यों नहीं

मुसलमानों के स्वर्ग में जाने और अन्य के न जाने के विषय में हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि स्वर्ग या नर्क का निर्णय केवल ईश्वर के न्यायिक व्यवस्था के अनुसार होता है। वही अंतिम रूप से तय करता हैं कि कौन स्वर्ग का अधिकारी होगा और कौन नर्क का। इस न्यायिक सिद्धांत का सार सूरह अल-अस्र (103:1-3) की तीन आयतों में स्पष्ट रूप से वर्णित है, जहाँ ईश्वर कहता हैं —

"समय साक्ष्य है! निश्चय ही मनुष्य घाटे में है। सिवाय उनके, जो ईमान लाए, सत्कर्म किए, और एक-दूसरे को सत्य की शिक्षा दी तथा धैर्य का उपदेश देते रहे।"

यह आयत इस तथ्य को रेखांकित करती है कि ईमान, सत्कर्म, सत्य का मार्ग और धैर्यपूर्ण जीवन ही मनुष्य को ईश्वर की कृपा से स्वर्ग का अधिकारी बना सकते हैं।

ईश्वर न धोखा खाता है, न धोखा देता है

आयत का मूल भाव यह है कि मुनाफिक़ (कपटी) ईश्वर को धोखा देने का प्रयास करते हैं। यहाँ उनके कपटपूर्ण इरादों का उल्लेख अवश्य है — किंतु यह दावा कि 'ईश्वर उनके धोखे में आ जाता है' एक सर्वथा निराधार और झूठा आरोप है। क्योंकि आयत में ऐसा कोई शब्द या संकेत नहीं पाया जाता; यह तो पंडित की अपनी मनगढ़त व्याख्या है, जिसे लोगों को भ्रमित करने के लिए गढ़ा गया है।

इसी प्रकार, 'व-हुवा खादिअउहुम' का अर्थ यह कदापि नहीं है कि ईश्वर उन्हें धोखा देता है। इसका वास्तविक तात्पर्य यह है कि ईश्वर उनकी चालाकियों और कुटिल योजनाओं को उन्हीं पर पलट देता है। अर्थात, उनकी बुरी योजनाएँ अंततः उन्हीं के लिए विनाशकारी सिद्ध होती हैं। यह उनके छल या धोखे की सज़ा है — वह जैसा बीज बोते हैं, वैसा ही उन्हें फल प्राप्त होता है।

यदि गहराई से विचार करें, तो कपटियों का मूल धोखा क्या है? वे हृदय से ईमान नहीं लाते, किंतु केवल मौखिक दावा करके स्वयं को मुसलमान सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। क्या सर्वज्ञ ईश्वर उनके केवल दिखावटी दावों पर ही विश्वास कर लेता है? कदापि नहीं! स्वयं ईश्वर स्पष्ट रूप से घोषणा करता है — "वास्तव में, वह मोमिन नहीं है।" अतः स्पष्ट है कि वह उनके धोखे में आता ही नहीं है। बल्कि ईश्वर कहता है — "वे अपने आप को ही धोखा दे रहे हैं।" यानी, उनका यह पाखंड और छल अंततः उन्हीं के अपने विनाश का कारण बनता है (सूरह बकरा)। संक्षेप में, इस आयत की व्याख्या (तफ्सीर) यही है कि न तो ईश्वर किसी को धोखा देता है, और न ही वह किसी के धोखा में आता है। वह तो न्यायकारी रूप से प्रत्येक प्राणी का उसके कर्मों का फल प्रदान करता है। क़ुरआन का ईश्वर हर प्रकार के दोष से पूर्णतः पवित्र है। वह मायावी इन्द्र की भाँति छल-कपट नहीं करता। इस तथ्य के प्रमाण (क्रमांक 52) पहले ही प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

मुनाफिक़ों या शत्रुओं से मित्रता

क़ुरआन की संबंधित आयत में अरबी शब्द वली एक बहुआयामी शब्द है, जो विभिन्न संदर्भों में — जैसे सरपरस्त, सहयोगी, मित्र अथवा मार्गदर्शक को दर्शाता है। आयत का मूल उद्देश्य मुसलमानों को उन लोगों के साथ गहरे राजनीतिक, सैन्य या विचारधारात्मक गठजोड़ बनाने से सावधान करना है, जो सामूहिक रूप से इस्लाम और मुसलमानों के शत्रु हैं।

इस संदर्भ में वली से तात्पर्य उस विशेष प्रकार की मित्रता से है जो विभिन्न प्रकार के जोखिमों को जन्म दे सकती है —

1. धार्मिक जोखिम — जहाँ शत्रु मुसलमानों के ईमान को कमज़ोर करने अथवा उन्हें धर्म से विमुख करने का प्रयास करें।
2. राजनीतिक/सामाजिक जोखिम — जहाँ गोपनीय जानकारी के दुरुपयोग से मुसलमानों की सुरक्षा या आर्थिक स्थिति को नुकसान पहुँचाने का खतरा हो।
3. शारीरिक जोखिम — जहाँ अति निकटता के कारण जान-माल को संकट में डालने वाली परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकें।

ये वे विशिष्ट परिस्थितियाँ हैं, जिनमें क़ुरआन मुसलमानों को हर्बी काफिर (यानी सक्रिय रूप से शत्रुता रखने वाले अहिंसक लोगों) के साथ वली का संबंध रखने से मना करता है।

यह आयत शान्तिप्रिय गैर-मुस्लिमों के साथ संबंध, मेल-जोल और भलाई करने का विरोध नहीं करती। इसी प्रकार क़ुरआन

किसी भी शांतिप्रिय गैर-मुस्लिम के साथ मानवीय, व्यवहार, न्याय और उपकार करने से भी नहीं रोकता। इसकी स्पष्ट पुष्टि सूरह मुम्तहिना (60:8-9) में होती है —

"ईश्वर तुम्हें उन लोगों के साथ सद्यवहार और न्याय करने से नहीं रोकता है, जो तुमसे धर्म के मामले में नहीं लड़े और न तुम्हें घरों से निकाला है। निःसन्देह ईश्वर न्याय करने वालों से प्रेम करता है। वास्तव में, ईश्वर तुम्हें केवल उन्हीं लोगों से मित्रता करने से रोकता है, जिन्होंने तुमसे धर्म के कारण युद्ध किया, तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निष्कासन में सहयोग दिया। और जो ऐसे लोगों से मित्रता रखते हैं, तो वही अत्याचारी हैं।"

इस प्रकार, इस्लाम ने उन सभी गैर-मुस्लिमों के साथ शांति, सम्मान और उनके अधिकारों की रक्षा करने का आदेश दिया है, जो मुसलमानों के विरुद्ध युद्धरत नहीं है, और न ही धर्म के मामले में उन्हें प्रताड़ित करते हैं। आयत में निषेध केवल उन विशेष शत्रुतापूर्ण परिस्थितियों में गहरी वफादारी और गठजोड़ से है, न कि सामान्य मानवीय व्यवहार से।

इस विषय पर पूर्व ही क्रमांक 50 में उत्तर दिया जा चुका है। यहाँ विस्तृत विवरण प्रस्तुत करके पंडित के सभी निराधार आरोपों का पूरी तरह खंडन किया गया है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

64. ऐ लोगो! निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ खुदा की ओर से पैगम्बर आया। बस तुम उन पर ईमान लाओ। अल्लाह माबूद अकेला है। 4: 170- 171 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या जब पैग़म्बरों पर ईमान लाना लिखा तो ईमान में पैग़म्बर खुदा का शरीक अर्थात् साझी हुआ वा नहीं। जब अल्लाह एकदेशी है, व्यापक नहीं, तभी तो उस के पास से पैग़म्बर आते जाते हैं तो वह ईश्वर भी नहीं हो सकता। कहीं सर्वदेशी लिखते हैं, कहीं एकदेशी। इस से विदित होता है कि कुरान एक का बनाया नहीं किन्तु बहुतों ने बनाया है।

उत्तर:

वक़्ता की शिर्क के बारे में गहन अज्ञानता स्पष्ट है

इस एक आपत्ति से ही आप व्यक्ति की अज्ञानता की पराकाष्ठा का अनुमान लगा सकते हैं। पंडित का यह कहना कि —

"जब पैग़म्बरों पर ईमान लाना लिखा है तो ईमान में पैग़म्बर खुदा का शरीक साझी हुआ या नहीं?"

यह तर्क घोर अज्ञानता पर आधारित है, क्योंकि पैग़म्बर पर ईमान लाने का अर्थ यह नहीं है कि उसे ईश्वर का समकक्ष माना जाए, बल्कि यह स्वीकार करना है कि वह ईश्वर का दूत है।

इसी प्रकार, ईश्वर पर ईमान लाने का अर्थ है — यह स्वीकार करना कि वही एकमात्र पूजनीय, उपास्य और समस्त सृष्टि का स्वामी है।

स्पष्ट है कि ये दोनों स्वीकारोक्तियाँ भिन्न स्तरों और भिन्न प्रकृति की हैं। शिर्क (साझी ठहराना) तो तब होता जब किसी पैग़म्बर या सृष्टि को भी ईश्वर के समान ही स्वामित्व, पूज्यता और इश्वरीय गुणों वाला मान लिया जाए। परंतु, पैग़म्बरों को उसे दूत के रूप में स्वीकार करना या विश्वास करना, उसे ईश्वर का साझी बनाना नहीं है, बल्कि ईश्वर के आदेश का पालन करना है।

ईश्वर स्थान मुक्त है; तथा शब्दों के आधार पर भौगोलिक स्थान का भ्रम

पंडित ने भाषा और दर्शन — दोनों ही स्तरों पर बौद्धिक आलस्य का परिचय दिया है। "ईश्वर की ओर से" जैसे शब्द-समूह का सीधा-साधा अर्थ यह लगा लेना कि ईश्वर किसी भौगोलिक स्थान पर है, जहाँ से वह अपने दूत भेजता है, एक गंभीर भूल है। वास्तव में, इस मुहावरे का तात्पर्य यह है कि वह अभिव्यक्ति या संदेश ईश्वर द्वारा प्रदत्त या नियुक्त है।

संभव है कि आर्यों की सीमित बुद्धि में यह बात सहजता से न समा सके, इसलिए वो अपने ही घर के उदाहरणों से समझने का प्रयास करें।

पंडित शिव शंकर शर्मा ऋग्वेद (8.77.10) का भाष्य इस प्रकार करते हैं —

"वह ईश्वर आपके राज्य अपरिमित भैंस, गौ, अश्व, मेष और हाथी पशु देता है और दूध में पका भात तथा जल से युक्त मेघ देता है।"

इसी प्रकार, भाष्यकार आर्यमुनि — ऋग्वेद (8.21.18) का भाष्य करते हैं —

"वह चित्र-सम्राट सहस्त्रों प्रकार के पदार्थों को देता हुआ, वृष्टि के समान अपनी प्रजा की वृद्धि करता है।"

दोनों ही मंत्रों के भाष्य में "वह" सर्वनाम का प्रयोग हुआ है। भाषा का थोड़ा-सा भी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति जानता है कि "वह" शब्द का प्रयोग दूर स्थित किसी व्यक्ति या वस्तु को इंगित करने के लिए होता है। किंतु यदि कोई इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाल ले कि ईश्वर किसी एक विशिष्ट स्थान पर सीमित है, तो उसे चरम बुद्धिहीनता ही कहा जा सकता है।

प्रचलित शब्दावली — श्रेष्ठता और महिमा का भाव को व्यक्त करता है

ईश्वर और मनुष्य के बीच कोई स्थानगत दूरी या भौतिक फासला नहीं होता। उनके बीच केवल महिमा, सम्मान और सत्ता के स्तर का अंतर है। ईश्वर वह सत्ता जो समस्त सृष्टि से परे है — जिसे हम अपनी सीमित इंद्रियों और बुद्धि से पूर्णतः नहीं पा सकते। वह अपनी महानता, शान और महिमा के कारण मनुष्य से ऊँचा और श्रेष्ठ है। इसी भाव को व्यक्त करने के लिए ईश्वर की ओर से भेजा गया, अवतरण, नाज़िल होना या उतरना जैसे मुहावरे प्रयुक्त किये जाते हैं।

इस विषय को समझने के लिए अत्यधिक बुद्धि लगाने की आवश्यकता नहीं है। सामान्य स्तर पर भी विचार किया जाए तो बात स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण के तौर पर — पैग़म्बर न तो आकाश से धरती पर उतरता है, और न ही वह ऊपर जाकर वह्य (संदेश) ले कर आता है — फिर भी उसे रसूल अर्थात भेजा गया व्यक्ति कहा जाता है। यह उपाधि उसे उस संदेश के कारण मिलती है जो उसपर प्रकट होता है और जिसे वह लोगों तक पहुँचाता है। इन सब बातों की उपेक्षा करते हुए केवल शब्द के आधार पर यह मान लेना कि ईश्वर किसी विशिष्ट स्थान पर स्थित है — अत्यंत ही अबौद्धिक और सतहि समझ को दर्शाता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह माइदा

65. तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू, सूअर का मांस जिस पर अल्लाह के विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे, लाठी मारे, ऊपर से गिर पड़े, सींग मारे और दरन्दे का खाया हुआ॥ 5:3 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं? अन्य बहुत से पशु तथा तिर्य्यक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे? इस वास्ते यह मनुष्यों की कल्पना है; ईश्वर की नहीं। इस से इस का प्रमाण भी नहीं।

उत्तर:

क़ुरआन में वर्णित निषिद्ध वस्तुएँ — संपूर्ण सूची नहीं, बल्कि प्रमुख उदाहरण

क़ुरआन में जिन वस्तुओं को हराम (निषिद्ध) कहा गया है, वे हराम की पूर्ण सूची नहीं हैं, बल्कि कुछ प्रमुख उदाहरण मात्र हैं। इस्लामी शरीअत (क़ानून) केवल क़ुरआन पर आधारित नहीं है, बल्कि यह हदीस (पैग़म्बर मुहम्मद के कथन और आचरण), इज्मा (इस्लामी विद्वानों की सर्वसम्मत राय), और क़ियास (तर्कसंगत विवेचना) पर भी आधारित है।

इस्लामी सिद्धांत है: "अल-अस्लु-फिल-अश्या अल-इबाहा" — अर्थात मूल रूप से हर वस्तु जायज़ (हलाल) मानी जाती है, जब तक कि कोई शरई प्रमाण उसे हराम सिद्ध न कर दे।

इस सिद्धांत से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी चीज़ तब तक हलाल है, जब तक शरीअत उसे हराम न ठहराए — चाहे वह स्पष्ट रूप से हो या किसी सूक्ष्म इशारे में उसका निषेध पाया जाए।

इस संदर्भ में पाठकों को यह समझना भी आवश्यक है कि यह आयत (5:3) मुख्य रूप से उन झूठे और मनगढ़ंत धार्मिक मान्यताओं का खंडन करती है, जिन्हें मुशरिक़, यहूदी और ईसाई समुदायों ने अपनी-अपनी मान्यताओं में गढ़ लिया था — जैसे उन्होंने अपने ऊपर कुछ चीज़ों को स्वयं ही हराम-ओ-हलाल कर लिया था। अतः यह आयत एक सिद्धांतात्मक मार्गदर्शन है, न कि पूर्ण निषेध सूची।

इसी परिप्रेक्ष्य में यह धारणा भी भ्रामक है कि कोई धार्मिक ग्रंथ तभी प्रमाणिक होता है जब उसमें प्रत्येक विषय का संपूर्ण और विस्तृत उल्लेख हो। यदि इस मापदंड को स्वीकार कर लिया जाए, तो फिर अन्य धर्मों — विशेषकर आर्य समाज की अनेक धार्मिक प्रथाएँ — भी प्रमाणित नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि वेदों में भी मुख्यतः प्रतीकात्मक भाषा और सूक्तियाँ मिलती हैं, न कि विस्तृत विधि-विधान।

वास्तव में, धर्मग्रंथों की शैली यह होती है कि वे मूलभूत सिद्धांतों को प्रस्तुत करते हैं और प्रतिनिधि उदाहरणों के माध्यम से नियमों की दिशा स्पष्ट करते हैं। जैसे क़ुरआन एक संपूर्ण जीवन प्रणाली की बुनियाद रखता है, जिसे नबी की सुन्नत और हदीसों के माध्यम से विस्तार से समझा जाता है।

उसी प्रकार, वेदों में यज्ञ (हवन) का उल्लेख तो मिलता है, परंतु किस अवसर पर कौन-सा यज्ञ किस विधि से किया जाए — इसका विशद विवरण ब्राह्मण ग्रंथों और श्रुति-स्मृतियों में प्राप्त होता है। इसी तरह, युद्ध जैसे विषयों से संबंधित निर्देशों को भी प्रतीकात्मक या सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिनकी विस्तृत व्याख्या स्मृतियों के माध्यम से की जाती है।

इस आधार पर यह कहना कि यदि कोई बात किसी एक ग्रंथ में संपूर्ण रूप से न हो तो वह ईश्वर की नहीं, मनुष्य की कल्पना है — एक अधूरी, सीमित और सतही समझ पर आधारित है।

क्रमांक 34 का भी उत्तर देखें...

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

66. और अल्लाह को अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्तों में भेजूंगा। 5: 12 क़ुरआन.

समीक्षकः- वाह जी! मुसलमानों के खुदा के घर में कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा। जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता? और उन को क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ा के तुम को स्वर्ग में भेजूंगा? यहां विदित होता है कि खुदा के नाम से मुहम्मद साहेब ने अपना मतलब साधा है।

उत्तरः

विस्तृत उत्तर के लिए क्रमांक 40 एवं 50 देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

67. जिस को चाहता है क्षमा करता है जिस को चाहे दुःख देता है। जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया। 5: 18-20 क़ुरआन.

समीक्षकः- जैसे शैतान जिस को चाहता पापी बनाता वैसे ही मुसलमानों का खुदा भी शैतान का काम करता है! जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोज़ख में खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ, जीव पराधीन है। जैसी सेना सेनापति के आधीन रक्षा करती और किसी को मारती है, उस की भलाई बुराई सेनापति को होती है; सेना पर नहीं।

उत्तरः

विस्तृत उत्तर के लिए क्रमांक 15, 11, 33 एवं 41 देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

68. आज्ञा मानो अल्लाह की और आज्ञा मानो रसूल की। 5: 92 क़ुरआन.

समीक्षकः- देखिये! यह बात खुदा के शरीक होने की है। फिर खुदा को 'लाशरीक' मानना व्यर्थ है।

उत्तरः

विस्तृत उत्तर के लिए क्रमांक 55, 57 एवं 64 देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

69. अल्लाह ने माफ़ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उस से बदला लेगा। 5: 95 क़ुरआन.

समीक्षकः- किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा देके बढ़ाना है। पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है किन्तु पापवर्द्धक है। हां! आगामी पाप छुड़वाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे, छोड़े नहीं, तो भी कुछ नहीं हो सकता।

उत्तरः

विस्तृत उत्तर के लिए क्रमांक 15 देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अनाम

70. और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई परन्तु वही उस की ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा कि जैसे अल्लाह उतारता है। 6: 93 क़ुरआन.

समीक्षक:- इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास खुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहेब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं, मुझ को भी पैग़म्बर मानो। इस को हटाने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहेब ने यह उपाय किया होगा।

उत्तर:

सार्थक संवाद तभी संभव है जब उसमें तर्क और विवेक का समावेश हो

धर्मों के बीच सार्थक संवाद तभी संभव है जब तर्क को तथ्यों की कसौटी पर कसा जाए और विवेक को पूर्वाग्रहों से मुक्त रखा जाए। परंतु बिना प्रमाण के केवल जब अनुमान, कल्पना और व्यंग्य के आधार पर गंभीर आरोप लगाए जाते हैं, तो वह न तो विद्वत्ता कहलाती है और न ही धर्म के प्रति निष्ठापूर्ण आलोचना। उदाहरण के तौर पर — पंडित का यह आरोप कि "पैग़म्बर मुहम्मद (स) ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ऐसा उपाय किया होगा", — तो यह उतना ही अनुचित होगा, जितना यह कि अथर्ववेद (18.2.2, पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी) के भाष्य से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में अग्नि ने प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए ऋग्वेद की रचना की होगी। फिर, वायु ने उसकी प्रसिद्धि देखकर यजुर्वेद रच डाला, और आदित्य ने ईर्ष्या में सामवेद की रचना कर दी। अंततः, अंगिरा ने भी इस धंधे की महत्ता देखकर कुछ मंत्रों और तंत्र-सूत्रों को एकत्र कर अथर्ववेद बना डाला।

यदि इसी तरह के आधारहीन अनुमान को स्वीकार कर लिया जाए, तो कोई भी यह कह सकता है कि वेदों की रचना ईर्ष्या और व्यापारिक स्वार्थ से प्रेरित थी — और यह सम्पूर्ण वैदिक परंपरा को मनगढ़ंत तथा स्वार्थपूर्ण सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होगा। स्पष्ट है कि इस प्रकार की कल्पनाएँ न तो विद्वत्ता की पहचान हैं और न ही न्यायसंगत दृष्टिकोण। यदि पंडित जी ऐसी काल्पनिक धारणाओं में उलझने के बजाय, आयत के मूल संदेश पर ध्यान देते, तो निश्चित रूप से उन्हें कुछ सार्थक शिक्षा प्राप्त हो सकती थी।

उक्त आयत में विशेष रूप से उन लोगो के प्रति चेतावनी दी गई है जो ईश्वर के नाम पर असत्य का प्रचार करते हैं। उन असत्य के प्रचारकों की श्रेणियाँ कुछ इस प्रकार से है —

प्रथम श्रेणी — वे लोग, जो ईश्वर के नाम पर झूठ का सहारा लेते हैं। ऐसे प्रचारक ईश्वर की शिक्षाओं के विपरीत बहुदेववाद या मिथ्या सिद्धांत गढ़ते हैं — चाहे वे मूर्ति-पूजा की हो या ईश्वर के अतरिक्त अन्य कोई शाश्वत एवं अविनाशी सत्ताएँ विद्यमान का सिद्धांत हो, जबकि ईश्वर वाणी में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

द्वितीय श्रेणी — वे लोग, जो सच्चे संदेशवाहकों (रसूलों) का मुकाबला करने के लिए झूठे दावे प्रस्तुत करते हैं। ये कहते हैं कि हमें योग या ध्यान के माध्यम से गुप्त ज्ञान प्राप्त हुआ है या हमें वेदों के सच्चे अर्थ ईश्वरीय प्रेरणा से ज्ञात हुए हैं — जबकि यह केवल मानवीय कल्पना होती है।

तृतीय श्रेणी— वे लोग, जो ईश्वर की वाणी में अपनी निजी विचारों को मिलाकर उसे ईश्वरीय बताते हैं, साथ ही जो असल ईश्वर वाणी है उसका मजाक उड़ाते हैं और उसकी निंदा करते हैं।

पवित्र क़ुरआन इन कृत्यों को गंभीर अपराध बताते हुए इस आयत के अंत में एक दृश्य प्रस्तुत करता है और कहता है — "जब अत्याचारी मृत्यु की पीड़ा में घिरे होंगे, तो फ़रिश्ते अपने हाथ फैलाकर कहेंगे — अपने प्राण निकालो, आज तुम्हें अपने झूठ के कारण अपमानजनक दंड दिया जाएगा।"

इतिहास इस सत्य का साक्षी रहा है कि जो लोग ईश्वर के नाम पर झूठ गढ़ते और सच्चाई का मज़ाक उड़ाते हैं, उनका अंत सदैव अपमानजनक होता है। चाहे वह अतीत के झूठे नबी मुसैलमा हों, या आधुनिक युग में सन्यासी या ब्रह्मचारी का रूप धरकर योगविद्या के झूठे दावे करने वाले लोग — सभी के दावे अतंतः सत्य के सामने ठीक नहीं पाए। जिस व्यक्ति ने ब्रह्मचारी द्वारा चार सौ वर्ष तक जीवित रहने का दावा किया था, वह मात्र उनसठ वर्ष की आयु में ही बीमारियों और विष जैसी संदेहास्पद परिस्थितियों में इस संसार से विदा हो गया।

सत्य सदैव अतंतः विजयी होती है। जैसे अतीत में असत्य के दावेदारों का पर्दाफ़ाश हुआ, वैसे ही सन 1883 में भी सत्यता को प्रमाणित होते हुए देखा गया।

सत्य का मार्ग आधारहीन अनुमानों, कल्पनाओं और व्यंग्यों से नहीं, बल्कि विवेक, ईमानदारी और तर्क से निर्मित होता है। धर्मों के बीच संवाद तभी फलदायी एवं सार्थक हो सकता है जब हम अपने मतभेदों को तथ्यों और विवेक की कसौटी पर कसें — न कि झूठे आरोपों और आधारहीन कल्पनाओं, अनुमानों के सहारे किसी की निंदा करने में अपनी ऊर्जा खर्च करें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह आराफ़

71. अवश्य हम ने तुम को उत्पन्न किया, फिर तुम्हारी सूरतें बनाई। फिर हम ने फरिश्तों से कहा कि आदम को सिजदा करो, बस उन्होंने सिजदा किया परन्तु शैतान सिजदा करने वालों में से न हुआ। कहा जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किस ने रोका कि तूने सिजदा न किया, कहा मैं उस से अच्छा हूँ, तूने मुझ को आग से और उस को मिट्टी से उत्पन्न किया। कहा बस उस में से उतर, यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उस में अभिमान करे। कहा उस दिन तक ढील दे कि कबरों में से उठाये जावें। कहा निश्चय तू ढील दिये गयों से है। कहा बस इस की कसम है कि तूने मुझ को गुमराह किया, अवश्य मैं उन के लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा। और प्रायः तू उन को धन्यवाद करने वाला न पावेगा। कहा उस से दुर्दशा के साथ निकल, अवश्य जो कोई उन में से तेरा पक्ष करेगा तुम सब से दोज़ख को भरूंगा। 7: 11-12-13-14-15-16-17-18 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब ध्यान देकर सुनो खुदा और शैतान के झगड़े को। एक फ़रिश्ता, जैसा कि चपरासी हो, था। वह भी खुदा से न दबा और खुदा उस के आत्मा को पवित्र भी न कर सका। फिर ऐसे बागी को जो पापी बना कर ग़दर करने वाला था उस को खुदा ने छोड़ दिया। खुदा की यह बड़ी भूल है। शैतान तो सब को बहकाने वाला और खुदा शैतान को बहकाने वाला होने से यह सिद्ध होता है कि शैतान का भी शैतान खुदा है। क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुझे गुमराह किया। इस से खुदा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयों का चलाने वाला मूल कारण खुदा हुआ। ऐसा खुदा मुसलमानों ही का हो

सकता है, अन्य श्रेष्ठ विद्वानों का नहीं। और फ़रिश्तों से मनुष्यवत् वार्तालाप करने से देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानों का खुदा है। इसी से विद्वान् लोग इसलाम के मज़हब को पसन्द नहीं करते।

उत्तर:

बुराई की उत्पत्ति — ईश्वर नहीं, स्वतंत्र इच्छा का परिणाम

बुराई की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं, बल्कि सजीव प्राणियों की स्वतंत्र इच्छा से होती है। आयतों में ईश्वर और शैतान के बीच कोई झगड़ा नहीं दर्शाया गया है, और न ही ईश्वर के साथ उसका कोई झगड़ा संभव है। ईश्वर ने मनुष्यों और जिन्नों को स्वतंत्र इच्छाशक्ति प्रदान की है, ताकि वे अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी बन सकें। यदि ईश्वर केवल भलाई का ही सर्जक होता और बुराई की कोई संभावना ही न होती, तो यह सृष्टि एक यांत्रिक एवं अर्थहीन प्रणाली बनकर रह जाती। ऐसी स्थिति में न तो परीक्षा का कोई औचित्य रह जाता, न न्याय की आवश्यकता, और न ही आत्मिक विकास की कोई संभावना। उदाहरण के तौर पर, एक लोहार चाकू बनाता है, पर वह इस बात के लिए उत्तरदायी नहीं होता कि कोई व्यक्ति उस चाकू से हत्या कर दे। उपकरण का दुरुपयोग करने वाला ही अपराधी होता है, न कि उसका निर्माता। ठीक इसी प्रकार, ईश्वर ने शैतान को भी स्वतंत्र इच्छा प्रदान की है, किंतु शैतान ने स्वेच्छा से गुमराही का मार्ग चुना।

शैतान का आरोप — तूने मुझे गुमराह किया

पंडित का यह तर्क कि चूँकि शैतान स्वयं कहता है — तूने मुझे गुमराह किया — इसलिए बुराई का मूल कारण ईश्वर है। किंतु यह तर्क न केवल दुर्बल है, बल्कि न्यायबोध के भी प्रतिकूल है। यदि किसी अपराधी द्वारा न्यायालय में किया गया दोषारोपण ही सत्य मान लिया जाए, तो न्यायालयों का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। शैतान का यह कथन एक दोषारोपण मात्र है, न कि कोई प्रामाणिक सत्य। जैसे कोई अपराधी अपने अपराध का दोष न्यायाधीश पर मढ़ने का प्रयास करे, तो उससे न्यायाधीश दोषी नहीं हो जाता। शैतान की गुमराही का वास्तविक कारण उसका अहंकार और ईर्ष्या थी, जैसा कि वह स्वयं स्वीकार करता है — मैं उससे बेहतर हूँ। यही अज्ञानता उसकी पतन का कारण बना।

शैतान को मोहलत दिए जाने पर आपत्ति

ईश्वर का शैतान को खुला छोड़ देना उसे दंड से मुक्त करना नहीं है, बल्कि यह परीक्षा की व्यवस्था का एक भाग है। यह मोहलत शैतान की गुमराही को स्पष्ट रूप से प्रकट करने का एक अवसर है, न कि उस पर कोई विशेष कृपा या भूल। यह एक न्यायसंगत व्यवस्था है, जिसमें प्रत्येक प्राणी को अपने कर्मों द्वारा स्वयं को प्रमाणित करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। यदि शैतान को तुरंत नष्ट कर दिया जाता, तो उसकी आंतरिक विद्रोही प्रवृत्ति पूरी तरह उजागर नहीं हो पाती। इसी प्रकार, यदि प्रत्येक पाप का फल तत्काल मिलने लगे, तो परीक्षा, सुधार और चेतावनी की समस्त व्यवस्था ही निरर्थक हो जाएगी। यदि पंडित का मत यह है कि दुष्टों को तुरंत दंड मिलना चाहिए, तो उन्हें यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि आज संसार में अधर्मी लोग जीवित क्यों हैं? ईश्वर कुकर्मों पर उन्हें तुरंत दंडित क्यों नहीं करता? क्या वह भूल गया है या उसे भूलने की बीमारी है? या फिर अधर्मियों का सृजन ही उसकी भूल थी?

ईश्वर की न्यायप्रियता और स्वतंत्र इच्छा का सिद्धांत

ईश्वर न तो शैतान के पापों में सहभागी है, और न ही उसकी गुमराही का कारण। वास्तव में, ईश्वर ने प्रत्येक प्राणी — मनुष्य और जिन्न — को स्वतंत्र इच्छा के साथ सृजित किया है। यही उसकी न्यायप्रियता, दयालुता और महानता का प्रमाण है। शैतान का विद्रोह उसके अपने अहंकार, ईर्ष्या और दुराग्रह का परिणाम है। ईश्वर ने उसे मोहलत दी, वह कोई कृपा या भूल नहीं थी बल्कि एक पूर्ण और न्यायसंगत परीक्षा की व्यवस्था का अंग थी। इस प्रकार, बुराई की उत्पत्ति ईश्वर से नहीं, बल्कि सजीव प्राणियों की स्वतंत्र इच्छा के दुरुपयोग से होती है। ईश्वर का कार्य न्याय की स्थापना करना है, और इस न्याय के लिए स्वतंत्र इच्छा का अस्तित्व आवश्यक है। यही सृष्टि की सार्थकता और ईश्वर की योजना की परिपूर्णता का प्रमाण है।

बिना इंद्रियों के इंद्रियों वाले कर्म — ईश्वर कैसे करता है

पंडित दयानन्द द्वारा इस्लाम पर की गई आपत्तियों की एक लंबी सूची है, जिनमें अधिकांश तर्कहीन और सूझ-बूझ से रहित है। उदाहरण के तौर पर, उनकी यह आपत्ति देखिए कहते है कि चूंकि ईश्वर फ़रिश्तों और मनुष्यों से संवाद (वार्तालाप) करता है, इसलिए वह देहधारी है। और इसी के आधार पर वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि विद्वान लोग इस्लाम धर्म को पसंद नहीं करते।

यह तो सर्वविदित है कि विद्वान वर्ग का झुकाव किस धर्म की ओर है, और गली-चौराहों के अल्पज्ञानी विचारक किधर हैं — परंतु हम इस प्रकार की कटाक्षों में पड़े बिना मूल आपत्ति की विवेचना करेंगे।

पंडित का यह कहना कि यदि ईश्वर मनुष्यों और फ़रिश्तों से वार्तालाप करता है तो वह देहधारी ठहरता है — तो क्या यही तर्क स्वयं उनके वैदिक सिद्धांतों पर भी लागू नहीं होता?

वेदों में ईश्वर को "सर्वद्रष्टा" और "सर्वश्रुत" कहा गया है, और वह भी निराकार रहते हुए। उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (8.13.10) में कहा गया है —

"हे विद्वन्! आप सर्वश्रुत और सर्वद्रष्टा चेतयिता विज्ञानी परमात्मा की स्तुति कीजिये।" भाष्यकार शिव शंकर शर्मा

अर्थववेद (8.5.14) में कहा गया है —

"सब देखनेवाले परमेश्वर ने तुझे उत्पन्न किया है, सर्वद्रष्टा ईश्वर ने तुझे यथावत् भेजा है।" भाष्यकार पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी

जब वैदिक ईश्वर के विषय में यह स्वीकार किया जाता है कि वह "सर्वद्रष्टा" और "सर्वश्रुत" है — बिना शरीर के — तो फिर यही सिद्धांत ईश्वर के संवाद करने पर क्यों नहीं लागू हो सकता?

यदि यह कहा जाए कि "ईश्वर का मनुष्यों से संवाद करना" उसे देहधारी बना देता है, तो फिर वेदों में वर्णित ईश्वर का प्राणियों को "देखना-सुनना" भी उसी तर्क से ईश्वर को शरीरधारी भी ठहरना चाहिए। परंतु जब आप यह मानते हैं कि ईश्वर अपनी असीम शक्ति से बिना इंद्रियों के भी देख और सुन सकता है, तो फिर वही ईश्वर अपनी उसी सर्वशक्तिमत्ता से संवाद क्यों नहीं कर सकता?

यही तो तर्क में दोहरापन और पक्षपात है — एक ओर वे निराकार ईश्वर को सर्वद्रष्टा और सर्वश्रुत मानते हैं, और दूसरी ओर

उसी निराकार सत्ता के संवाद को अस्वीकार कर देते हैं। वास्तव में, ईश्वर के संवाद करने को शरीरधारी से जोड़ना ही तर्कहीन है। ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता और असीम चेतना को मानवीय सीमाओं में बाँध देना न केवल एक गंभीर भूल है, बल्कि यह हमारी उस अज्ञानता को भी उजागर करता है जो अनन्त सत्ता की व्यापकता को समझने में असमर्थ रहती है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

72. निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिस ने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया। फिर करार पकड़ा अर्श पर। दीनता से अपने मालिक को पुकारो। 7: 54 & 56 कुरआन.

समीक्षकः- भला! जो छः दिन में जगत् को बनावे, (अर्श) अर्थात् ऊपर के आकाश में सिंहासन पर आराम करे वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी हो सकता है? इस के न होने से वह खुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा खुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है? ये सब बातें अनीश्वरकृत हैं। इस से कुरान ईश्वरकृत नहीं हो सकता। यदि छः दिनों में जगत् बनाया, सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा और अब तक सोता है वा जागा है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा और ऐश करता फिरता है।

उत्तरः

छः दिनों में सृष्टि की रचना; शक्ति का नहीं, चिंतन का विषय

आकाश और पृथ्वी जैसी विशाल एवं जटिल सृष्टि का छः दिनों में निर्माण, ईश्वर की सर्वशक्तिमानता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाता — बल्कि यह स्वयं उसके दिव्य कार्य-प्रणाली (सुन्नत) का ही एक अंग है। यदि ईश्वर चाहता तो "कुन-फ़यकुन" कहकर एक क्षण में समस्त ब्रह्मांड की रचना कर सकता था। किंतु उसने सृष्टि को एक क्रमिक, व्यवस्थित और उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया के रूप में रचा — ताकि मानव उसमें चिंतन करे, उसकी गहराई को समझे, और यह जान सके कि रचनात्मकता, समयबद्धता तथा योजना का जीवन मे कितना महत्व है।

यहाँ छः दिन से अभिप्राय हमारे 24 घंटे वाले सांसारिक दिनों से नहीं है। बल्कि ये सृष्टि के छः विशिष्ट चरण या अवस्थाएँ हैं। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है ईश्वर का कार्य केवल शक्ति-प्रदर्शन मात्र नहीं, बल्कि गहन ज्ञान, सूक्ष्म योजना और स्पष्ट उद्देश्य पर आधारित है। सृष्टि के निर्माण में लगी यह अवधि ईश्वर के लिए नहीं, बल्कि मनुष्य के लिए है — ताकि वह उस प्रक्रिया से सिख ले, चिंतन करें और ब्रह्मांड की व्यवस्था में निहित ज्ञान को समझ सके। निःसन्देह, ईश्वर एक पल में भी यह सब कुछ रच सकने की असीम शक्ति रखता है, परंतु उसने समय और क्रम का चयन इसलिए किया, ताकि उसकी रचना में बुद्धिमत्ता, व्यवस्था और उद्देश्य की झलक मानव के लिए प्रकट हो सके।

इस्तवा अला अल अर्श और उसकी व्याख्या

इस्तिवा अला अल-अर्श अरबी भाषा का एक बहुअर्थी शब्द-समुच्चय है। इसका शब्दिक अर्थ होता है —किसी वस्तु का किसी अन्य से ऊँचा होना, किसी वस्तु पर स्थापित होना, या किसी वस्तु पर अधिकार एवं नियंत्रण स्थापित करना। इसके साथ ही अन्य अर्थों में यह संतुलन, परिपक्वता और पूर्णता का भाव भी निहित है। अतः इसका अर्थ सदा संदर्भ के अनुसार ही निर्धारित किया जाता है — विशेष रूप से तब, जब यह शब्द ईश्वर के लिए प्रयुक्त होता है।

पवित्र क़ुरआन में जब यह उल्लेख होता है कि "ईश्वर अर्श पर इस्तिवा है", तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि ईश्वर किसी सिंहासन पर मनुष्य की भाँति बैठा हुआ है। बल्कि इसका आशय यह होता है कि ईश्वर की सत्ता, प्रभुत्व, ज्ञान और गुण समस्त सृष्टि पर व्याप्त हैं।

वह अपनी महानता, शक्ति और अधिकार में संपूर्ण सृष्टि से सर्वोच्च है — अपनी महिमा के स्तर से, न कि स्थान या दूरी के स्तर पर।

यह आयत अद्वैतवाद के मत का खंडन करती है, जो यह मानता है की संसार का प्रत्येक अंश ईश्वर है या संसार स्वयं ईश्वर का अंग है (जैसा कि मनुस्मृति 1:8 में देखा जा सकता है)। पवित्र क़ुरआन इस विचार का प्रतिकार करते हुए स्पष्ट करता है कि ईश्वर ने आकाशों और धरती की रचना की और वह अपनी सृष्टि से पूर्णतः अलग, उससे महान और श्रेष्ठ है। यह संसार न तो ईश्वर का कोई अंश है, और न ही ईश्वर इस संसार का कोई अंग, बल्कि वह अपनी रचना से सर्वथा पृथक एवं उच्च है।

प्रलय बाद निक्कमा ईश्वर सुखपूर्वक सोता है

क़ुरआन में वर्णित है कि इस ब्रह्मांड को परमात्मा ने छः चरणों में पूर्णता तक पहुँचाया, परंतु इसके पश्चात न तो वह थकता है और न ही उसे विश्राम की आवश्यकता होती है —

"निश्चय ही हमने आकाशों और पृथ्वी को तथा जो कुछ इनके बीच है, छः दिनों (चरणों) में बनाया, और हमें कोई थकावट नहीं छुई।" (क़ुरआन 50:38; 46:33; 2:255)

इस सत्य के विपरीत, आर्यों का मानना है कि वर्तमान समय परमात्मा के दिन का है, और जब उसे निद्रा आएगी तो वह समय परमात्मा के रात्रि का होगा। आर्यों की प्रमाणिक ग्रंथ मनुस्मृति में परमात्मा के विश्राम की बात कुछ इस प्रकार से करता है। मनु जी कहते हैं —

"जब वह परमात्मा जागता है तब समस्त संसार चेष्टायुक्त हो जाता है, और जब यह शान्त आत्मा सोता है तब यह समस्त संसार प्रलय को प्राप्त हो जाता है।" (मनुस्मृति 1:52)

आगे मनुस्मृति में वर्णित है —

"उस सर्वव्यापक परमात्म के आश्रय में जब एक साथ ही सब प्राणी चेष्टाहीन होकर लीन हो जाते हैं तब यह सब प्राणियों का आश्रयस्थान परमात्मा सृष्टि संचालन के कार्यों से निवृत्त हुआ-हुआ सुखपूर्वक सोता है।" (मनुस्मृति 1:54)

मनुस्मृति के अनुसार, जब परमात्मा जागता है तब सृष्टि सक्रिय हो जाती है, और जब वह विश्राम करने को जाता है तब संपूर्ण ब्रह्मांड प्रलय की स्थिति में चली जाती है। यह रात्रि काल अत्यंत दीर्घ माना गया है — लगभग 4 अरब 32 करोड़ (4,320,000,000) वर्ष तक समस्त संसार और ईश्वर निष्क्रिय अवस्था में रहेगी।

ईश्वर को ऊँची आवाज़ या धीमी आवाज़ से पुकारना

पंडित को शायद बधिर का अर्थ नहीं पता। बधिर वह होता है जिसमें सुनने की शक्ति ही न हो, या जिसे बुलाने पर भी वह सुनता न हो। किंतु हमारा ईश्वर तो 'समीउल अलीम' है (सूरह निसा, 4:148)। वह न केवल हमारे मुख से निकले शब्दो को, बल्कि हमारे हृदय की गहराइयों में छिपी पुकार को भी सुनता और जानता है (सूरह मुल्क, 67:13)। अतः, हमारा ईश्वर

कदापि बहरा नहीं है।

पंडित ने जिस आयत को प्रमाण दिया है, उसी सूरह की आयत 55 में ख़ुफ़िया शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है छिपकर या धीरे से पुकारो। यह आदेश स्वयं इस तथ्य का प्रमाण है कि ईश्वर धीमी से धीमी आवाज़ भी सुन लेता है, जबकि कोई बहरा तो ऊँची आवाज़ भी नहीं सुन पाता।

हाँ! समाजी जैसे बरसाती मेंढकों को अवश्य शोर मचा कर पढ़ने का आदेश दिया गया है। देखों ऋग्वेद (7.103.1) — भाष्यकार हरिशरण सिद्धान्तालंकार

"जैसे वर्ष भर पड़े रहनेवाले जलवासी मेंढक मेघ से दी हुई वाणी को खूब ऊँचे-ऊँचे बोलते है, वैसे ही व्रत का आचरण करने वाले वर्षभर तप करते हुए वेद के जानने वाले विद्वान ज्ञान आनन्द में मग्न होकर प्रभु की दी हुई वेद वाणी का उत्तम रीति से प्रवचन किया करें।"

स्पष्ट है कि इस आदेश के पीछे का कारण यही है कि उनका ईश्वर श्रवण-शक्ति से हीन है, जो भक्तों के लिए यह विधान बनाया गया है कि वे ऊँचे स्वर में पाठ करके वेद का प्रचार करें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

73. मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते। 7: 74 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह बात तो अच्छी है परन्तु इस से विपरीत दूसरे स्थानों में जिहाद करना काफ़िरों को मारना भी लिखा है। अब कहो यह पूर्वापर विरुद्ध नहीं है? इस से यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहेब निर्बल हुए होंगे तब उन्होंने यह उपाय रचा होगा और जब सबल हुए होंगे तब झगड़ा मचाया होगा। इसी से ये बातें परस्पर विरुद्ध होने से दोनों सत्य नहीं हैं।

उत्तर:

इस्लाम में युद्ध एवं जिहाद की अवधारणा

यह बात पहले (क्रमांक 32 में) भी स्पष्ट किया जा चुका हैं कि इस्लाम की शिक्षा यह नहीं है कि केवल मतभेद के आधार पर काफ़िरों — अर्थात इस्लाम को न मानने वाले लोगों — से युद्ध किया जाए। बल्कि युद्ध की अनुमति केवल विशेष परिस्थितियों में ही दी गई है। और वह परिस्थिति तब आती है जब कोई समुदाय मुसलमानों पर अत्याचार करे, उनके अधिकारों का हनन करें, उन्हें उनके धर्म के कारण सताए, या धरती पर अन्याय और उपद्रव (फ़साद) फैलाएँ।

पवित्र क़ुरआन में संधर्ष की अनुमति इन्हीं शर्तों के आधार पर है, इसलिए इसमें कोई विरधाभास नहीं है। यदि अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध आत्मरक्षा में किया गया संघर्ष को ही फ़साद (उपद्रव) कह दिया जाए, तो फिर विश्व का कोई भी धर्म, समाज अथवा राष्ट्र इससे अछूता नहीं रह जाता। पवित्र क़ुरआन में जिन आयतों में झगड़ा मत करो कहा गया है, वहाँ झगड़े से तात्पर्य — अन्याय, अत्याचार, दमन और अराजकता से है — जिसे क़ुरआन ने फ़साद फ़ी-अल-अर्द (धरती में उपद्रव) कहा है।

इसके विपरीत, जिहाद का अर्थ केवल शस्त्र उठाना नहीं है। क़ुरआन की दृष्टि में जिहाद एक व्यापक अवधारणा है, जिसका अर्थ है — प्रत्येक प्रकार की बुराई, अन्याय, और दमन के विरुद्ध संघर्ष — चाहे वह संघर्ष शस्त्र के माध्यम से हो, वाणी के

द्वारा हो, अथवा आत्मिक प्रयासों के रूप में हो। यह एक व्यापक और उच्च नैतिक प्रयास है, न कि किसी निर्दोष के विरुद्ध हिंसा। जो व्यक्ति जिहाद जैसे पवित्र सिद्धांत को अराजकता और अन्याय से जोड़ता है, वह या तो क़ुरआन की शिक्षाओं को समझता नहीं है, या फिर जानबूझकर भ्रम फैलाता है।

इसी प्रकार, यह दावा भी पूरी तरह से असत्य है कि जब पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ कमज़ोर स्थिति में हुए होंगे, तब उन्होंने उपद्रव न करने की शिक्षा दी, और जब वह सामर्थ्यवान हुए तो उन्होंने उपद्रव करने की आज्ञा दी। यह इतना बड़ा झूठ है जो ऐतिहासिक तथ्यों और पैग़म्बर ﷺ के पूर्ण जीवन-चरित्र के स्पष्ट विपरीत है। क्योंकि पैग़म्बर ﷺ की जीवन यात्रा आरंभ से अंत तक न्याय, दया, संयम और मानव कल्याण पर आधारित रही है। उनका पूरा जीवन, चाहे मक्का की कठिन परिस्थितियाँ हों या मदीना की राजनीतिक स्थिरता, सिद्धांतों और नैतिकता की एकरूपता का अद्वितिय उदाहरण है। अतः इसमें कोई विरोधाभास नहीं है कि एक स्थान पर फ़साद से रोका गया और दूसरे स्थान पर आज्ञा दी गई — ग़लत व्याख्या है। क़ुरआन का सिद्धांत स्पष्ट है — जहाँ अत्याचार हो, वहाँ संघर्ष किया जाए। और जहाँ शांति व न्याय हो वहाँ शांति ही अपनाई जाए।

क़ुरआन किसी व्यक्ति को केवल उसके काफिर होने के आधार पर कत्ल करने का आदेश कदापि नहीं देता। बल्कि, यदि उनमें से कोई समूह फसादी प्रवृत्ति का हो और अत्याचार करने पर तुला हो, तो एक न्यायपूर्ण समुदाय के रूप में मुसलमानों का यह अधिकार और कर्तव्य दोनों है कि वे उस फसाद के विरुद्ध संघर्ष करें। इसका उद्देश्य न केवल स्वयं को उस उपद्रव से बचाना है, बल्कि उन सभी लोगों की सहायता करना भी है — चाहे वे किसी भी मत के हों — जो इस अत्याचार के शिकार बन रहे हों।

वेदों में युद्ध की अवधारणा

वेदों में युद्ध को कई नामों से संबोधित किया गया है। उन्हीं में एक प्रमुख शब्द रण है। केवल ऋग्वेद में ही यह शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। सामान्य तौर पर रण शब्द का मूल अर्थ खुशी, आनंद, प्रसन्नता या हर्ष है, जबकि व्यवहारिक प्रयोग में इसका अर्थ युद्ध, संग्राम अथवा लड़ाई है। इस प्रकार वेदों में युद्ध को एक आनंददायक, उत्सापूर्ण अथवा प्रिय कार्य समझा जाता है, ऐसे में शत्रुओं को परास्त करना एक प्रिय कार्य माना जा सकता है। इसी भावना को वैदिक ईश्वर इन्द्र ने स्वयं अपने मुख से ऋग्वेद के एक मंत्र (10.48.7) में अभिव्यक्त किया है — इस मंत्र में यह भाव प्रकट हुआ है कि जो लोग इन्द्र की सत्ता, सामर्थ्य और वेदों के धर्म-सिद्ध मार्ग को नहीं मानते, वे निंदनीय है और ऐसे शत्रु पराजित योग्य है। यह मंत्र स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आर्यों के यहाँ युद्ध कोई अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष नहीं बल्कि अन्य वर्ग के लोगों को दमन, अप्रिय लोगो के विरुद्ध कार्रवाई तथा अत्याचार पर आधारित एक साधन है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

74. बस एक ही बार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष। 7: 107 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब इस के लिखने से विदित होता है कि ऐसी झूठी बातों को खुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे। जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान् नहीं थे क्योंकि जैसे आंख से देखने को और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता। इसी से ये

इन्द्रजाल की बातें हैं।

उत्तर:

मौजिज़ा और जादू (इंद्रजाल) — दो बिल्कुल भिन्न चीज़ें

जादू एक छलावे पर आधारित कला है। यह ऐसा दृश्य भ्रम होता है, जिसे मनुष्य अपनी चालाकी, भ्रम प्रयोग और हाथ की सफाई से उत्पन्न करता है। इसका उद्देश्य लोगों की आँखों को धोखा देना, उन्हें भ्रमित करना, और असली सच से दूर रखना होता है। अतः इसकी नींव पूर्णतः झूठ, भ्रम और छलावे पर टिकी होती है।

इसके एकदम विपरीत, मौजिज़ा वह असाधारण घटना होती है जो मनुष्य की शक्ति और समझ से परे होती है। मौजिज़ा केवल और केवल ईश्वर द्वारा घटित और प्रकट होता है। यह न तो किसी चाल, तकनीक, प्रयोग या भ्रम का परिणाम होता है, और न ही इसे कोई साधारण मनुष्य सिख या दोहरा सकता है।

हज़रत मूसा (अ.) की लाठी का अजगर बन जाना इसी का एक उदाहरण है। फ़िरऔन के दरबार में जब अनेक जादूगरों ने अपनी रस्सियों और लाठियों को जादू के प्रभाव से साँप जैसा दिखाया, तब हज़रत मूसा (अ.) ने ईश्वर के आदेश से अपनी लाठी फेंकी। वह लाठी सचमुच एक जीवित, विशाल अजगर में परिवर्तित हो गई — और उसने उन सभी जादुई साँपों को निगल लिया। इस दृश्य को देखकर वहाँ उपस्थित जादूगर स्तब्ध रह गए। वे स्वयं जादू की हर कला और सीमा से भली-भाँति परिचित थे, इसलिए उन्होंने तुरंत पहचान लिया कि यह घटित दृश्य कोई जादू या इंद्रजाल नहीं, बल्कि हज़रत मूसा की लाठी वास्तविक रूप से जीवित प्राणी में परिणत हो गई थी। अतः उसे ईश्वर की ओर से प्रकट हुआ सच्चा मौजिज़ा मान कर सजदे में गिर पड़े और ईमान ले आए। क़ुरआन ने इसी ऐतिहासिक क्षण का वर्णन इन शब्दों में किया है —

"तो सब जादूगर सजदे में गिर पड़े और बोले — हम ईमान लाते हैं मूसा और हारून के रब पर।" (सूरह ताहा, 20:70)

अर्थात, जो लोग स्वयं इस कला में निपुण थे, उन्होंने स्पष्ट रूप से पहचान लिया कि यह कोई मानव-निर्मित भ्रम या छल नहीं, बल्कि ईश्वर की शक्ति का एक सच्चा प्रमाण (मौजिज़ा) है। परंतु जो जादू से अज्ञानी है वह आज आपत्ति कर रहे हैं।

पंडित दयानन्द जैसे कुछ लोग मौजिज़ों को इंद्रजाल या भ्रम कहकर इसलिए अस्वीकार कर देते हैं। क्योंकि वे न तो मौजिज़े की वास्तविक प्रकृति को समझ पाते हैं और न ही ईश्वर की असीम शक्ति को स्वीकार करते हैं।

शेष मौजिज़ा के विषय में अधिक जानकारी के लिए क्रमांक 14 और 16 भी देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

75. बस हम ने उन पर मेह का तूफान भेजा। टीढ़ी, चिचड़ी और मैढक और लोहू। बस उन से हम ने बदला लिया और उन को डुबो दिया दरियाव में। और हम ने बनी इसराईल को दरियाव से पार उतार दिया। निश्चय वह दीन झूठा है कि जिस में वे हैं और उन का कार्य्य भी झूठा है। 7: 133-136-138-139 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये! जैसा कोई पाखण्डी किसी को डरावे कि हम तुझ पर सर्पों को काटने के लिये भेजेंगे। ऐसी ही यह भी बात है। भला! जो ऐसा पक्षपाती कि एक जाति को डुबा दे और दूसरी को पार उतारे वह अधर्मी खुदा क्यों नहीं! जो दूसरे मतों को कि जिन में हज़ारों क्रोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा, उस से परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता

है? क्योंकि किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते। यह इकतर्फी डिगरी करना महामूर्खा का मत है। क्या तौरेत ज़बूर का दीन, जो कि उन का था; झूठा हो गया? वा उन का कोई अन्य मज़हब था कि जिस को झूठा कहा और जो वह अन्य मज़हब था तो कौन सा था कहो कि जिस का नाम कुरान में हो।

उत्तर:

चेतावनी का उद्देश्य सुधार और मार्गदर्शन

यह एक सुविचारित बौद्धिक छल है कि क़ुरआन की आयतों के असंदर्भित, खंडित अंशों को उठाकर मनमानी व्याख्याएँ गढ़ी जाती हैं और फिर उन्हीं निर्मित व्याख्याओं पर आपत्तियाँ खड़ी की जाती है। जबकि वास्तविक आयतों का अर्थ यह है कि मिस्रवासियों पर आए तूफ़ान, टिड्डी दल और रक्त रोग जैसी प्राकृतिक विपदाएँ, उनके अत्याचार और दम्भ के विरुद्ध ईश्वरीय चेतावनियाँ थीं; क्योंकि वे सीमा लाँघ चुके अपराधी बन गए थे। अब इन ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक घटनाओं की तुलना किसी तथाकथित पाखण्डी की "साँपों से काटने" की धमकी से करना निरर्थक ही नहीं, गंभीर मूर्खता है।
यह घटना न केवल क़ुरआन, बल्कि बाइबल में भी स्पष्ट रूप से वर्णित है। इसमें कोई ऐसा तथ्य नहीं जो बुद्धि-विवेक के विरुद्ध हो। क्या आज भी संसार में भीषण तूफ़ान, महामारियाँ, फसलों को नष्ट करने वाले टिड्डी दल, अथवा अन्य व्यापक विपदाएँ नहीं आतीं? इतिहास में अनेक सभ्यताएँ अपने ही अन्याय और अहंकार के कारण पतन का शिकार हुई हैं। मुख्य बिंदु यह है कि ये विपदाएँ मिस्रवासियों के स्वयं के कुकर्मों का परिणाम थीं, और उन्हें चेताने के लिए भेजी गईं थी — ताकि वे अपने कुकर्मों पर विचार करें और सत्य के मार्ग की ओर लौटें। चेतावनी देना पाखण्ड नहीं, बल्कि दया और न्याय का रूप है। जैसे कोई माता-पिता अपने बच्चों को गलत मार्ग से लौटने हेतु समझाते हैं, वैसे ही ईश्वर मनुष्य को सुधार का अवसर देता है, ताकि वे अपनी गलतियों को समझकर सही मार्ग अपना सकें और अहंकार, अत्याचार एवं मूर्तिपूजा का परित्याग कर सत्य की ओर लौट सकें।

इस पर ईश्वर का पक्षपात होने का आरोप लगाना अनुचित है। स्वयं दयानन्द ने वेद मंत्र के भावार्थ में यह स्पष्ट लिखा है कि ईश्वर अधर्मियों को आशीर्वाद नहीं देता। प्रश्न यह है कि अधर्मियों को आशीर्वाद न देना पक्षपात नहीं है, तो फिर क़ुरआन के संदर्भ में यह आरोप क्यों? इसी प्रकार, यह कहना कि पापों के परिणाम का उल्लेख करना भय दिखाना है, यह भी अनुचित है। यदि कोई व्यक्ति आग में हाथ डालने से पहले चेताया जाए तो यह भय दिखाना नहीं, बल्कि उपकार है। चेतावनी का उद्देश्य विनाश नहीं बल्कि सुधार और मार्गदर्शन है। यह ऐसा ही है जैसे आर्यों के मत में ईश्वर पापियों को दुःखद योनियों में जन्म का भय दिखाकर डराता है, तो क्या इसे पाखण्ड कहेंगे? निश्चित ही नहीं। चेतावनी देना पाखण्ड नहीं, बल्कि दया और न्याय का एक रूप है; यह विनाश से पूर्व सुधार का अंतिम अवसर है।

पूरे प्रसंग का सार यह है कि फ़िरऔन के समय, जब विपदाएँ आई, तब उसके ज्योतिषियों ने अपने समुदाय के लोगों को इसे विभिन्न देवताओं का प्रकोप बताया। जब सभी मनुहार विफल रहीं, तो फ़िरऔन ने मूसा (अ.) को चुनौती दी कि यदि तुम्हारा ईश्वर सच्चा है तो प्रार्थना करके इन विपदाओं को हटा दो। मूसा (अ.) की प्रार्थनाओं से ये आपदाएँ कई बार दूर हुईं। क़ुरआन ने इन्हीं प्रार्थनाओं को स्पष्ट निशानियाँ (आयात-ए-मुफ़स्सलात) कहा है। किंतु फ़िरऔन और उसकी समुदाय अपने

बहुदेववादी अंधविश्वास में इतनी डूबी थी कि स्वयं रखी हुई कसौटी पर खरे उतरने के बावजूद उन्होंने सत्य को अस्वीकार कर दिया।

इसी प्रकार, यह कहना कि "जो दूसरे मत को झूठा कहे, वही स्वयं झूठा है", एक स्व-विरोधी तर्क है। फ़िरऔन और मूसा का यह प्रसंग न केवल मुसलमानों, बल्कि ईसाइयों और यहूदियों द्वारा भी मान्य है, जिनकी संख्या विश्व में आर्यों एवं हिंदुओं से कही अधिक है। यदि इन समुदाय के मत को पाखण्ड कहा जाए, तो यह स्वयं के मत को पाखण्ड ठहराना होगा। इसलिए इस तरह के तर्क केवल समाज मंदिर के मूर्खों के यहाँ ही मान्य होगा विद्वानों के यहाँ इस तरह के तर्क हास्यपद है। इसी प्रकार, यह भी स्पष्ट रहे कि क़ुरआन की इस आयत में न यहूदियों के दीन (धर्म या मत) को झूठा कहा गया है और न ही ईसाइयों के दीन को; बल्कि फ़िरऔन और उसकी क़ौम द्वारा पूजे जाने वाले बहुदेववादी मार्ग को झूठा कहा गया है, जो ईश्वर प्रदत्त नहीं, बल्कि मानव निर्मित था। अब ऐसे ईश्वर-विहीन, अनेकेश्वरवादी मत को यदि झूठा न कहा जाए, तो क्या सच्चा कहा जाए?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

76. बस तू मुझ को अलबत्ता देख सकेगा, जब प्रकाश किया उस के मालिक ने पहाड़ की ओर उस को परमाणु-परमाणु किया। गिर पड़ा मूसा बेहोश। 7: 143 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता। और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो खुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता? सर्वथा विद्या विरुद्ध होने से यह बात मानने योग्य नहीं।

उत्तर:

ईश्वर का प्रकाश और नज़र न आना व्यापकता का प्रमाण नहीं

यह अत्यंत खेदजनक स्थिति है कि पंडित ने अपनी आपत्ति में मात्र एक-दो को छोड़कर लगभग सभी आयतों को काट-छाँट कर केवल कुछ अंशों को ही प्रस्तुत किया और फिर उन्हीं अपूर्ण अंशों पर आपत्ति जताई। ऐसा क्यों किया जाता है, यह बात अब जनसामान्य के सामने स्पष्ट हो चुकी है। आइए, सबसे पहले संबंधित पूरी आयत को देखें —

"और जब मूसा (अ.) हमारे निर्धारित समय पर आए और उनके रब ने उनसे बातचीत की, तो मूसा ने कहा — ऐ मेरे पालनहार! मुझे अपना दर्शन करा दो, मैं तुझे देखना चाहता हूँ। ईश्वर ने फरमाया — तू मुझे कदापि नहीं देख सकता। परंतु पर्वत की ओर देख, यदि वह अपनी स्थान स्थिर रहा तो तू भी मुझे देख सकेगा। जब उनके पालनहार ने उस पर्वत पर अपनी ज्योति प्रकट की, तो वह उसे चूर-चूर कर डाला और मूसा (अ.) मूर्छित होकर गिर पड़े। जब उन्हें होश आया तो बोले — तू महान और पवित्र है! मैं तेरी तरफ पलटता हूँ और मैं सबसे पहले ईमान लाने वाला हूँ।"

यह आयत स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि ईश्वर ने मूसा (अ.) को प्रारंभ में ही स्पष्ट चेतावनी दे दी थी कि "तू मुझे कदापि नहीं देख सकता" फिर भी, हज़रत मूसा के दृढ़ आग्रह पर ईश्वर ने उनकी इस मानवीय जिज्ञासा और भ्रम को दूर करने के लिए ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किया, जो मानवीय क्षमताओं की सीमा को दर्शाता है। पर्वत पर ईश्वरीय प्रकाश के प्रकट होते ही वह टुकड़े-टुकड़े हो गया और मूसा (अ.) मूर्छित हो गए। यह घटना इस मौलिक सत्य को प्रमाणित करती है कि ईश्वर के

सार-स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से देख पाना किसी भी सृजित प्राणी की सामर्थ्य से परे है। हाँ, उसकी महिमा, उसके प्रताप और उसकी निशानियों को देखा-समझा जा सकता है।

अब आते हैं ईश्वर का व्यापक होना, और देखा न जा सकने के तर्क पर — पंडित का यह तर्क कि जो देखा जा सकता है, वह व्यापक नहीं हो सकता। यह तर्क न केवल अपूर्ण है, बल्कि तार्किक दृष्टि से भी दोषपूर्ण है। देखा जाना और व्यापक होना — यह दोनों ही किसी वस्तु की सीमा या सर्वव्यापकता का निर्णायक मापदंड नहीं हैं। एक सरल उदाहरण लें — आत्मा। आत्मा को न तो आँखों से देखा जा सकता है, न ही उसे छुआ जा सकता है, और न ही उसका कोई भौतिक आकार है। फिर भी, धार्मिक मान्यताओं के अनुसार, आत्मा एक सीमित सत्ता है, जो एक शरीर तक ही सीमित रहती है। इससे सिद्ध होता है कि किसी वस्तु का दिखाई न देना स्वतः ही उसकी सर्वव्यापकता का प्रमाण नहीं है।

इस्लामी दृष्टिकोण से, ईश्वर निश्चित रूप से सर्वव्यापी है, जैसा कि सूरह मुजादिला (58:7) और सूरह हदीद (57:4) में कहा गया है। परंतु उसकी वास्तविक सत्ता और कैसे होने का ज्ञान हमारी सीमित बुद्धि और समझ से पूरी तरह परे है। उसकी व्यापकता हमारी भौगोलिक या भौतिक व्यापकता जैसी नहीं है; यह उसकी महिमा और ज्ञान के अनुरूप एक पूर्णतया अद्वितिय व्यापकता है।

अब मौजिज़े क्यों नहीं होते

मौजिज़ा विशेष रूप से ईश्वर के नबियों की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए प्रकट किए जाते थे। चूँकि इस्लाम के अनुसार नबी की श्रृंखला हज़रत मुहम्मद ﷺ पर पूर्ण हो चुकी, इसलिए मौजिज़े का अब प्रकट होना भी बंद हो गया।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

77. और अपने मालिक को दीनता डर से मन में याद कर, धीमी आवाज़ से सुबह को और शाम को। 7: 205 क़ुरआन.

समीक्षक:- कहीं-कहीं कुरान में लिखा है कि बड़ी आवाज़ से अपने मालिक को पुकार और कहीं-कहीं धीरे-धीरे मन में ईश्वर का स्मरण कर। अब कहिये! कौन सी बात सच्ची? और कौन सी झूठी? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीत के समान होती है। यदि कोई बात भ्रम से विरुद्ध निकल जाय उस को मान ले तो कुछ चिन्ता नहीं।

उत्तर:

क़ुरआन में प्रयुक्त उद्‌उ (पुकारना) शब्द की गलत समझ

पंडित को एक सामान्य भ्रांति हुई है कि क़ुरआन ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए ऊँची आवाज़ का आदेश देता है। इस आपत्ति (जैसे कि पंडित द्वारा प्रस्तुत आपत्ति क्रमांक 72 में) का आधार सूरह अल-आराफ की आयत 56 में प्रयुक्त अरबी शब्द "उद्‌उ" को गलत समझना है। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ केवल "पुकारना" या "आह्वान करना" है। अरबी भाषा में उद्‌उ ध्वनि की तीव्रता (Volume) को नहीं, बल्कि केवल क्रिया — यानी ईश्वर को पुकारने के कार्य को व्यक्त करता है।

इस शब्द के सही प्रकृति को समझने के लिए इसी सूरह की पहले वाली आयत (7:55) को देखना अत्यंत स्पष्टकारी है —

उद्‌उ रब्बकुम तज़र्रुअं व ख़ुफ़्यह

"अपने पालनहार को विन्रमता और गुप्त रूप से पुकारो।"

यदि उद्उ का अर्थ वास्तव में जोर से पुकारना होता, तो उसका ख़ुफ़्यह (गुप्त रूप से, धीमे स्वर में) जैसे शब्द के साथ प्रयोग एक स्पष्ट विरोधाभास उत्पन्न करता। किंतु क़ुरआन ने इन दोनों शब्दों को एक साथ रखकर यह स्पष्ट कर दिया कि उद्उ का स्वर की ऊँचाई-नीचाई से कोई सीधा संबंध नहीं है। यह तो एक भावपूर्ण आह्वान की मात्र क्रिया को दर्शाता है, जिसका स्वरूप संदर्भ के अनुसार गुप्त या प्रकट हो सकता है।

इस प्रकार, यह सिद्ध होता है कि क़ुरआन की दृष्टि में प्रार्थना का सार विनम्रता, समर्पण और हृदय की गहराई से जुड़ा हुआ है, न कि आवाज़ की ऊँचाई या नीचाई से। अतः यह दावा करना कि क़ुरआन ऊँची आवाज़ में प्रार्थना का आदेश देता है, एक मिथ्या धारणा है, जो अरबी भाषा के शब्दों के सूक्ष्म अर्थ और क़ुरआनिक संदर्भों की गहन समझ के अभाव में पैदा होती है। पूरे क़ुरआन में एक भी ऐसा स्पष्ट आदेश नहीं दिखाया जा सकता जहाँ दुआ या प्रार्थना को अनिवार्य रूप से ऊँचे स्वर में करने का निर्देश दिया गया हो।

इस विषय में एक और सामान्य भ्रांति को दूर करना आवश्यक है। क़ुरआन में कहीं-कहीं सार्वजनिक संदर्भों में ऊँचे स्वर में पुकारने का उल्लेख अवश्य (जैसे नमाज़ के लिए बुलाना)। प्रश्न यह उठता है कि क्या यह एक विरोधाभास है? बिल्कुल नहीं! क्योंकि विरोधाभास तब होता है जब एक ही संदर्भ और परिस्थितियों में परस्पर विरोधी निर्देश दिए गए हों। किंतु जब एक स्थान पर निर्देश एक व्यक्तिगत, आत्मिक प्रार्थना के लिए है, जहां गोपनीयता और विनम्रता केंद्र में है, और दूसरी जगह संदर्भ एक सार्वजनिक घोषणा या सामूहिक आह्वान का है, तो इसे विरोधाभास नहीं, बल्कि संदर्भ के अनुसार भिन्नता कहा जाएगा।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अन्फाल

78. प्रश्न करते हैं तुझ को लूटों से कह लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के और डरो अल्लाह से। 8: 1 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें करावें और खुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है और अल्लाह का डर बतलाते और डाकादि बुरे काम भी करते जायें और 'उत्तम मत हमारा है' कहते लज्जा भी नहीं। हठ छोड़ के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें इस से अधिक कोई बुराई दूसरी होगी?

उत्तर:

रणधन और वेद

इससे अधिक खेदजनक और बुरा क्या हो सकता है कि एक पंडित बिना गहन अध्ययन, संदर्भ का ज्ञान और विषय की वास्तविक समझ के, ईश्वर, उसके दूत ﷺ और पवित्र व्यक्तियों पर लांछन लगाने का दुस्साहस करे।

विवाद जिस आयत पर है, वह अन्फाल के शब्दार्थ से जुड़ा है — और आश्चर्य यह है कि जिसने आपत्ति उठाई, उसे स्वयं मालूम तक नहीं कि अन्फाल होता क्या है। अन्फाल, अरबी के शब्द नफल से निकला है, जिसका शाब्दिक अर्थ है — "युद्ध में प्राप्त संपत्ति, जिसे इस्लामी परिभाषा में माल-ए-गनीमत कहा जाता है।" और क्योंकि यह सूरह मुख्य रूप से बद्र के युद्ध के बाद प्राप्त माल-ए-गनीमत और उसके न्यायपूर्ण वितरण पर आधारित है — इसलिए इसका नाम ही सूरह अन्फाल रखा

गया।

अब देखिए आयत क्या कहती है —

"वे तुमसे अन्फाल (युद्ध में प्राप्त संपत्ति) के विषय में पूछते है। कह दो — यह माल-ए-गनीमत ईश्वर और उसके दूत का है। अतः ईश्वर से डरो, आपस में मेल-मिलाप बनाए रखो, और ईश्वर तथा उसके दूत की आज्ञा का पालन करो, यदि तुम सच्चे ईमान वाले हो।"

यह आयत बद्र के उस युद्ध से संबंधित है, जो अत्याचार, उत्पीड़न, सामाजिक अस्तित्व और जीविका की रक्षा के लिए अनिवार्य हो चुका था। मुसलमानों को इससे पहले ही यह शिक्षा दी जा चुकी थी कि — चोरी, डकैती, निर्दोषों की हत्या, और किसी की इज्ज़त, धन या जीवन को क्षति पहुँचाना कठोर पाप है। लेकिन जब युद्ध के बाद माल-ए-गनीमत प्राप्त हुआ, तो प्रश्न उठा — इसका मालिक (स्वामी) कौन? क्या यह माल वैध है या अवैध? किसे कितना हिस्सा? कुछ ने कहा — जिसने पाया उसका। कुछ ने कहा युद्ध तो सबने लड़ा — हिस्सा सबको मिलना चाहिए। कुछ तर्क देने लगे कि हमने कठिन मोर्चा सँभाला — हम अधिक हक़दार है। परंतु उन्होंने आपस में विवाद करने के बजाएँ — ईश्वर के दूत ﷺ से पूछा कि आप ईश्वर से पूछे कि वह क्या आदेश देता है?

ईश्वर का उत्तर अत्यंत न्यायपूर्ण और संतुलित तौर से दिया गया कि — "माल-ए-गनीमत ईश्वर और उसके रसूल का है" — अर्थात, यह व्यक्तिगत लाभ की वस्तु नहीं बल्कि समाज, ज़रूरतमंदों और कल्याण के लिए ईश्वर के निर्देश के अनुसार विभाजित होगा। आयत 8:41 में इसका स्पष्ट विवरण है — इसमें यतीमों, विधवाओं, गरीबों और हित-संस्थाओं का हक़ निर्धारित किया गया।

अब पंडित जी के आश्चर्य का विषय देखिए। उन्हें आश्चर्य तब होना चाहिए था जब उनके अपने शास्त्रों में इससे कहीं अधिक चौंकाने वाले विधान मौजूद हैं। किंतु विडंबना यह है कि अपने ग्रंथों में ऐसी बातें पढ़कर उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की, परंतु जैसे ही क़ुरआन ने किया वे आश्चर्यचकित होने लगे। क्या यह उनकी दोहरी मानसिकता को प्रकट करने के लिए यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है?

सत्यार्थप्रकाश (षष्ठम समुल्लास, पृष्ठ 126) में पंडित जी स्वयं लिखते हैं — "इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि जो-जो लड़ाई में जिस-जिस भृत्य वा अध्यक्ष से रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन-धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियाँ (हे भाग्यवान! यह क्या?) तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तेल आदि के कुप्पे जीते हों वही उस-उस का घर्षण करें।"

वास्तव में, यह नीति मनुस्मृति (7:96-97) पर आधारित है —

"लड़ाई में जिसने जो रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन, धान्य, गाय आदि पशु, स्त्रियाँ और इसी प्रकार के अन्य सब द्रव्य तथा घी-तैल आदि के कुप्पे जीते हुए पदार्थों को सोहलवाँ भाग राजा को देवें, यह वेद की घोषणा है।"

वेदों में भी माल-ए-गनीमत का स्पष्ट उल्लेख मिलता है —

अथर्ववेद (6.66.3) — "शत्रु लोग निहत्थे हो जावें, उन के अंगों को हम शिथिल करते हैं। हे सेनापति इन्द्र! उन के सब धनों को सैकड़ों प्रकार से हम बाँट लेवें।" क्षेमकरणदास त्रिवेदी

अथर्ववेद (5.20.3) — "तू शत्रुओं की पृथिवी को चाहता हुआ तथा उनके धनों को जीतता हुआ शब्द कर।" विश्वनाथ विद्यालंकार

अथर्ववेद (5.20.10) — "धन जितने वाला, अधिक बलवान, संग्राम का जितने वाला। हे दुन्दुभि! भूमि चाहता है तू शत्रु का धन वश में कर के नृत्य कर।" क्षेमकरणदास त्रिवेदी

अथर्ववेद (5.20.4) — "तू वैरियों का धन लाकर भर दे।" क्षेमकरणदास त्रिवेदी

अब आते हैं उस कथन पर कि "जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें करावें और खुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें"

अथर्ववेद (20.75.2) — "हे बल के स्वामी इन्द्र! (परमेश्वर), उस यज्ञ के न करने वाले मनुष्य को तूने शासन में किया है, और आनन्द करते हुए तूने बड़ी पृथिवी से इन (यज्ञ न करने वाली) प्रजाओं को लूटा है।" क्षेमकरणदास त्रिवेदी

अब कहिए — कौन लूट मचावे और कौन डाकू के कर्म करें और करावें फिर भी ईमानदार बनें?

क़ुरआन की शिक्षाएँ मानवता को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने का मार्ग दिखाती हैं। और सच्चा सत्यान्वेषी वर्ग वेदों के इन्हीं जैसी शर्मनाक शिक्षाओं को छोड़कर सच्चे ईश्वर की शरण में आ रहे है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

79. और काटे जड़ काफ़िरों की। मैं तुम को सहाय दूंगा। साथ सहस्र फ़रिश्तों के पीछे पीछे आने वाले। अवश्य मैं काफ़िरों के दिलों में भय डालूंगा। बस मारो ऊपर गर्दनों के मारो उन में से प्रत्येक पोरी (सन्धि) पर। 8: 7-9-12 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह जी वाह! कैसा खुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन। जो मुसलमानी मत से भिन्न काफ़िरों की जड़ कटवावे। और खुदा आज्ञा देवे उन की गर्दन पर मारो और हाथ पग के जोड़ों को काटने का सहाय और सम्मति देवे ऐसा खुदा लंकेश से क्या कुछ कम है? यह सब प्रपञ्च कुरान के कर्त्ता का है, खुदा का नहीं। यदि खुदा का हो तो ऐसा खुदा हम से दूर और हम उस से दूर रहें।

उत्तर:

वेद युद्ध और विनाश का मूल स्रोत

जिहाद, युद्ध और फ़रिश्तों की सहायता जैसे विषयों पर हम पूर्व में ही विस्तार से प्रकाश डाल चुके हैं (देखें: क्रमांक 2, 32, 36, 37, 53, 54, 60, 73)। किंतु यहाँ जिस प्रकार से कुछ आयतों को तोड़-मरोड़कर तथा मनमाने ढंग से प्रस्तुत किया गया है, उसका स्पष्टीकरण अत्यंत आवश्यक है।

सूरह अन्फाल की आयत 7 के अंतिम भाग पर जो आपत्ति उठाई गई है, उसके प्रारंभिक भाग को जानबूझकर छोड़ दिया गया है, ताकि आपत्तिकर्ता की बेईमानी सामने न आ सके। यह सूरह अपने आरंभ से ही युद्ध के संदर्भ से जुड़ी हुई है और बद्र के युद्ध से संबंधित है। यह युद्ध उस समय हुआ जब मुसलमानों ने अत्याचार सहने के पश्चात अपना घर-बार छोड़कर मक्का से मदीना का कूच किया था। परंतु मक्का के काफिरों ने उन्हें वहाँ भी चैन से नहीं रहने दिया और मदीना वासियों को मुसलमानों के विरुद्ध भड़काने के साथ-साथ उन्हें धमकियाँ भी देने लगे कि यदि उन्होंने मुसलमानों का साथ नहीं छोड़ा तो वे उन्हें नष्ट करके उनकी स्त्रियों को रखैल बना लेंगे। अंततः, बद्र नामक स्थान पर मात्र 313 मुसलमानों ने एक हज़ार सशस्त्र

काफिरों को परास्त कर दिया। इन्हीं आक्रमणकारी अत्याचारियों के संदर्भ में, जो निर्वासित और निहत्थे मुसलमानों को समाप्त करने आए थे, ईश्वरीय निर्णय यह बताया गया कि "इनकी जड़ काट दी जाए।" यह कितनी बड़ी बेईमानी है कि पूरे ऐतिहासिक संदर्भ को अनदेखा करके केवल आयत के अंतिम वाक्य को उठाकर यह आरोप लगाया जाता है कि इस्लाम काफिरों की जड़ काटने का आदेश देता है। यह मक्कारी, झूठ और फ़रेब का एक लघु उदाहरण मात्र है।

इसके पश्चात, आपत्तिकर्ता पंडित ने ईश्वर और उसके सच्चे दूत के विषय में जो गुस्ताखी (निंदा) की है, उसके संदर्भ में नीचे दिए गए वेदों के हवाले स्वयं पढ़कर निर्णय कीजिए कि कौन लंकेश्वर (रावण) से कम नहीं — वेदों का परमेश्वर अथवा मुसलमानों का ईश्वर?

इन निर्देशों को पढ़ते समय यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आर्य समाज के विश्वासानुसार, यह मार-धाड़ की शिक्षा ईश्वर ने लगभग एक अरब बत्तीस करोड़ वर्ष पूर्व, सृष्टि के आरंभ में, श्रेष्ठ आर्य लोगों को दिया था —

1. "धर्म के द्वेषी शत्रुओं को निरन्तर जलाइये" (यजुर्वेद 13.12 — दयानन्द सरस्वती)
2. "तू शत्रुओं को इस प्रकार निर्मूल कर दे, जैसे कि वायु वृक्षों को निर्मूल कर डालता है। इन्हें पाँव तले रौंद डाल, दूर भगा दे। इनके गौ, अश्व और पुरुषों को जीवित मत छोड़।" (अथर्ववेद 10.1.17 — हरिशरण सिद्धान्तालंकार)
3. "हे नरो! धावा करो, जीतो! तुम्हारी भुजाएँ प्रचण्ड (कट्टर) होवें। हे तीखे बाण वाले! हे कट्टर हथियारों वाले, हे कट्टर भुजाओं वाले वीरों! निर्बल धनुषवाले, निर्बल (शत्रुओं) को मारो।" (अथर्ववेद 3.19.7 — क्षेमकरणदास त्रिवेदी)
4. "शत्रुओं की सेना को मुग्ध कर दे, कर्तव्या कर्तव्य के ज्ञान से रहित कर दे, और निहत्थे कर दे।" (अथर्ववेद 3.1.1 — विश्वनाथ विद्यालंकार)

(यहाँ 'मोहयतु' या मोहनास्त्र का उल्लेख है, जो एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र, पदार्थ या रणनीति थी जिससे शत्रु को पराजित किया जाता था। उदाहरणार्थ, अथर्ववेद 3.1.5 देखें।)

5. "हे शत्रु-विद्रावक सेनापते! तू शत्रुओं की सेना को मूढ़ बना दे। मोहनास्त्र के प्रयोग से वे चेतनाशून्य हो जाएँ अथवा प्रबल मार-काट से वे घबरा जाएँ। अग्नि की तथा वायु की प्रबल गति से, अर्थात आग्नेयास्त्र के प्रबल आक्रमण से उन शत्रुओं को विविध दिशाओं में खदेड़कर नष्ट कर दे।" (हरिशरण सिद्धान्तालंकार)

(यहाँ 'आग्नेयास्त्र' का वर्णन है, जो एक प्रकार का प्राचीन अस्त्र था जिससे आग निकलती थी, ठीक आज के तोपों और बंदूकों की भाँति।)

ये है वो शिक्षाएँ जो आर्यों को दिया गया है उनलोगों के विरुद्ध जो वेदों को और वेदों के ईश्वर को नहीं मानते। विचारणीय बात यहाँ यह भी है कि आर्यों के अनुसार वेद ही वह ज्ञान है जिससे समस्त मानवजाति ने शिक्षा प्राप्त की है। यदि वेदों में इस प्रकार की विनाशकारी अस्त्र-विद्या का ज्ञान न होता, तो क्या यह संभव था कि मानवजाति के हाथों में इतने घातक हथियार कभी आ पाते?

यदि कहा जाए कि वेदों में अस्त्र-विद्या नहीं है, तो यह सिद्ध होता है कि वेदों के बाहर भी ज्ञान विद्यमान है, और वेद उन शिक्षाओं को देने में असमर्थ रहे है। और यदि कहा जाए कि वेदों में यह ज्ञान है, तो फिर इन विनाशकारी हथियारों का दोष

सीधे तौर पर वैदिक ईश्वर को जाता है, क्योंकि यदि उसने यह शिक्षा न दी होती तो मानव उन्हें बनाने में सक्षम ही न हो पाता। इससे सिद्ध होता है कि संसार में व्याप्त तमाम उथल-पुथल और युद्धों की बुराई का मूल स्रोत वैदिक ईश्वर द्वारा प्रदत्त प्रेरणा है।

ऐसे में, ऐसा ईश्वर और ऐसी शिक्षाएँ हम मनुष्यों से सदैव दूर रहें, और हमें उससे सदैव दूर रहना चाहिए, जिससे मानवजाति को हानि के सिवाय कुछ प्राप्त नहीं होगा।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

80. अल्लाह मुसलमानों के साथ है। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार करो वास्ते अल्लाह के और वास्ते रसूल के। ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाह की रसूल की और मत चोरी करो अमानत अपनी की। और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करने वालों का है। 8: 19-20-27-30 कुरआन.

समीक्षक:- क्या अल्लाह मुसलमानों का पक्षपाती है, जो ऐसा है तो अधर्म करता है। नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि भर का है। क्या खुदा बिना पुकारे नहीं सुन सकता। बधिर है? और उस के साथ रसूल को शरीक करना बहुत बुरी बात नहीं है? अल्लाह का कौन सा खजाना भरा है जो चोरी करेगा? क्या रसूल और अपने अमानत की चोरी छोड़कर अन्य सब की चोरी किया करे? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियों का हो सकता है? भला! जो मकर करता और जो मकर करने वालों का संगी है वह खुदा कपटी, छली और अधर्मी क्यों नहीं? इसलिये यह कुरान खुदा का बनाया हुआ नहीं है। किसी कपटी छली का बनाया होगा। नहीं तो ऐसी अन अन्यथा बातें लिखित क्यों होतीं?

उत्तर:

ईश्वर की कृपा और कोप का आधार ईमान और सद्कर्म

यदि ईश्वर समस्त सृष्टि भर का है, तो वह केवल आर्यों को ही आशीर्वाद क्यों देता है, दस्युओं को क्यों नहीं? (ऋग्वेद 1.39.2) — देखों आप ने स्वयं कहा हुआ है — सत्यार्थप्रकाश अष्टमसमुल्लास (पृ. 186) "आर्य नाम धार्मिक पुरुषों का है, और उनसे विपरीत अधार्मिक हैं।"

हम पहले भी यह स्पष्ट कर चुके हैं कि ईश्वर सभी मनुष्यों का सृष्टा है। वह किसी देश, जाती, नस्ल या समुदाय के रूप में किसी का पक्ष नहीं लेता, और न ही किसी के साथ अन्याय करता है। ईश्वर की कृपा या कोप केवल दो आधारों पर निर्भर करते हैं — ईमान (विश्वास एवं समर्पण) तथा सद्कर्म (धर्माचरण)।

इसका अर्थ यह है कि ईश्वर अपने भक्तों की सहायता किसी पक्षपात या जातिगत भेदभाव के कारण नहीं, बल्कि उनके धर्ममय आचरण के कारण होती है। अब इसमें समस्या क्या है?

(इस विषय का शेष उत्तर क्रमांक 53 पर भी देखें।)

वेदों का ईश्वर बधिर है

क्या ईश्वर बिना पुकारे सुन नहीं सकता? इस प्रश्न का उत्तर क्रमांक 72 और 77 में दिया गया है। परंतु, यदि पंडित के इसी कथन (तर्क) को वेदों पर लागू किया जाए, तो निश्चित रूप से वेदों का ईश्वर बधिर सिद्ध होगा। अथर्ववेद (4.24.7) में यह मंत्र

प्रार्थना के रूप में आई है — "मैं परमेश्वर की स्तुति करता हूँ, और उसे बार-बार पुकारता हूँ (सहायतार्थ), वह हमें पापासुर से मुक्त करें।" — विश्वनाथ विद्यालंकार

अब प्रश्न यह उठता है — जब वेदों में स्वयं ईश्वर की स्तुति और पुकार का उल्लेख है, तो इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि बिना पुकारे वेदों का ईश्वर सुन नहीं सकता। तो पंडित जी, बताइए — क्या आपका ईश्वर बधिर है, जो उसे सुनाने के लिए बार-बार पुकारना पड़ता है?

शिर्क' के विषय में पहले ही पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है (क्रमांक 24, 55, 57, 62 और 64); अतः इस पर अब अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

ईश्वर और उसके दूत की खयानत (विश्वासघात) का अर्थ

पंडित ने 'अमानत' शब्द देखकर यह समझ लिया कि यहाँ रुपये-पैसे, सोने-चाँदी जैसी चीज़ों की चर्चा हो रही है, जबकि वास्तव में यहाँ अमानत से तात्पर्य उन आदेशों (नियमों) से है, जिन्हें ईश्वर ने मनुष्यों को धर्म के रूप में प्रदान किया है। ईश्वर और उसके दूत से विश्वासघात करने का अर्थ यह है कि ईश्वर और उसके आदेशों को स्वीकार करने के बाद भी उसका उल्लंघन करना या उन्हें अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से न अपनाना। इसी प्रकार अपनी अमानतों में विश्वासघात का आशय यह है कि मनुष्य को अपने ऊपर सौंपे गए उत्तरदायित्वों से मुख नहीं मोड़ना चाहिए और न ही उनके पालन में कोई लापरवाही बरतनी चाहिए। इसका सार यह है कि एक भक्त को स्वयं पर अन्याय करने से बचना चाहिए और अपने कर्तव्यों के प्रति ईमानदार रहना चाहिए।

यदि पंडित साहब पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विचार करते, तो उन्हें यह बात बहुत आसानी से समझ में आ जाती कि चूँकि ईश्वर समस्त संसार का पालनहार है, इसलिए उसके आदेश किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं बल्कि समस्त मानवता के लिए है। सूरह बकरा (2:188) में कहा गया है —

"और तुम एक-दूसरे की संपत्ति को अन्यायपूर्वक मत खाओ, और न ही शासकों को इस उद्देश्य से रिश्वत दो कि तुम दूसरों के संपत्ति का कुछ हिस्सा पापपूर्वक हड़प सकों।"

इस आयत में स्पष्ट रूप से यह निर्देश दिया गया है कि चाहे वह किसी अपने का धन हो या पराये का, उसे बेईमानी या छल से प्राप्त नहीं किया जाना चाहिए।

चूँकि इन आदेशों का पालन करने के लिए क़ुरआन में विश्वास रखने वाले ही बाध्य हैं, इसलिए उन्हें यह बात स्पष्ट रूप से समझाया जा रहा है कि उनके कथन और आचरण — दोनों में सच्चाई और ईमानदारी होनी चाहिए। ऐसा न हो कि मुँह से कुछ कहा जाए और व्यवहार में कुछ और करे।

वल्लाहु ख़ैरुल माकिरीन

पंडित द्वारा प्रस्तुत आयत में भी ईश्वर के लिए 'भला मकर' शब्द स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि जो चीज़ स्वभाव से बुरी हो, उसपर भला (ख़ैर) शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। जैसा कि मैंने पहले कहा था शब्द मकर अपने आप में तटस्थ (Neutral) है और इसे सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों संदर्भों में प्रयोग किया

जा सकता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि 'अल्लाह' नाम स्वयं उस सर्वोच्च सत्ता का नाम है जिसमें सारे उत्कृष्ट गुण विद्यमान हैं। अतः उसकी ओर किसी भी प्रकार की बुराई को जोड़ना क़ुरआन और इस्लाम की शिक्षाओं के पूर्णतः विपरीत और विरुद्ध है। अलबत्ता, आर्यों का ईश्वर इन्द्र के संदर्भ में छल-कपट और मक्कारी का जो विवरण प्राप्त होता है, वह उदाहरण मात्र पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है — इसके लिए क्रमांक 52 का उत्तर देखें।

••••••••••••••••••••••••••••••••••

81. और लड़ो उन से यहां तक कि न रहे फ़ितना अर्थात् बल काफ़िरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के। और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पाँचवाँ हिस्सा उस का और वास्ते रसूल के। 8: 39-41 क़ुरआन.

समीक्षक:- ऐसे अन्याय से लड़ने लड़ाने वाला मुसलमानों के खुदा से भिन्न शान्तिभङ्गकर्ता दूसरा कौन होगा? अब देखिये यह मज़हब कि अल्लाह और रसूल के वास्ते सब जगत् को लूटना लुटवाना लुटेरों का काम नहीं है? और लूट के माल में खुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाई में बट्टा लगाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पैगम्बर संसार में ऐसी उपाधि और शान्तिभङ्ग करके मनुष्यों को दुःख देने के लिये कहां से आया? जो ऐसे-ऐसे मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता।

उत्तर:

फ़ितने के विरुद्ध संघर्ष

पंडित द्वारा प्रस्तुत आयत में भी यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि यहाँ फ़ितना (उपद्रव) के विरुद्ध संघर्ष की बात की जा रही है। आयत के अनुसार, अशांति और उपद्रव को समाप्त करने अथवा शांति स्थापित करने के लिए संघर्ष करना ही ईश्वर के मार्ग में लड़ना बताया गया है (विस्तृत विवरण क्रमांक 32 पर देखें)। इस संघर्ष को अन्याय कहना अथवा शांति भंग करने वाला बताना, वास्तव में उपद्रवियों (अत्याचारियों) एवं अपराधियों का समर्थन करने के समान है, जबकि आयत का उद्देश्य अशांति के विरुद्ध खड़े होने का संदेश देना है।

आयत में युद्ध संबंधी निर्देश देते हुए धार्मिक लोगों से कहा गया है कि वे उपद्रवियों से उस समय तक संघर्ष करें, जब तक कि वे अपने उपद्रव बंद नहीं कर देते। इसका उद्देश्य शांति को स्थापित करना अथवा धर्म के कारण दिए जा रहे अत्याचार को रोकना है। इसी प्रकार, आयत में दीन (धर्म) ईश्वर का हो जाने का अर्थ यह है कि धार्मिक आस्था, कर्मकांडों एवं विश्वास के पालन में शत्रुओं द्वारा किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न होने पाए। यह किसी प्रकार की आक्रमक योजना नहीं, बल्कि शांति स्थापना हेतु एक रक्षात्मक उपाय है।

दूसरे की संपत्ति पर नज़र रखने वाले

माल-ए-गनीमत (अन्फाल) के संबंध में पूर्व में क्रमांक 78 में विस्तारपूर्वक उत्तर दिया जा चुका है। संक्षेप में, जो लोग दूसरों की संपत्ति और धन पर नज़र रखते हैं तथा रात-दिन उन्हें लूटने की चिंता में लगे रहते हैं, ऐसे लोग जबतक इस भूमि में

मौजूद हैं, तब तक धरती कभी भी शांति का केंद्र नहीं बन सकता — देखों ऋग्वेद 3.53.14 — दयानन्द सरस्वती।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

82. और कभी देखे तू जब काफ़िरों को फ़रिश्ते कब्ज करते हैं, मारते हैं, मुख उन के और पीठें उन की और कहते चखो अज़ाब जलने का। हम ने उन के पाप से उन को मारा और हम ने फ़िराओन की कौम को डुबा दिया। और तैयारी करो वास्ते उन के जो कुछ तुम कर सको। 8: 50-54-60 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्यों जी! आजकल रूस ने रूम आदि और इंग्लैण्ड ने मिश्र की दुर्दशा कर डाली; फ़रिश्ते कहां सो गये? और अपने सेवकों के शत्रुओं को खुदा पूर्व मारता डुबाता था यह बात सच्ची हो तो आजकल भी ऐसा करे जिस से ऐसा नहीं होता इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं? अब देखिये! यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्न मत वालों के लिये दुःखदायक कर्म करो। ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक दयालु की नहीं हो सकती। फिर लिखते हैं कि खुदा दयालु और न्यायकारी है। ऐसी बातों से मुसलमानों के खुदा से न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं।

उत्तर:

मृत्यु के फ़रिश्तें को युद्ध से जोड़ना आयत के अर्थ से घोर अज्ञानता

हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि पंडित को वक़्ता के कथन की समझ नहीं थी। यदि उन्हें समझ होती, तो मृत्यु कि घटना को किसी विशेष युद्ध से नहीं जोड़ रहे होते।

जिस प्रकार पंडित जी स्वयं वेदों के अध्ययन के लिए आवश्यक मानते हैं — कि वेदों को गुरु के मार्गदर्शन में ही पढ़ना और समझना चाहिए — यदि उन्होंने क़ुरआन के संदर्भ में भी वही नज़रिया अपनाया होता, तो आज वे इस प्रकार उपहास का पात्र नहीं बन रहे होते।

अब हमारे लिए यह एक दुविधा है कि हम मूल आयत का वास्तविक विषय समझाएँ, या फिर बताएँ कि सांसारिक युद्धों में फ़रिश्तों के उतरने-न उतरने के पीछे क्या तथ्य है? आयत स्पष्ट रूप से कहती है कि काफ़िरों की मृत्यु के समय, जब फ़रिश्ते उनकी आत्मा निकालते हैं, तो वह अवस्था उनके लिए अत्यंत पीड़ादायक होती है। निश्चित ही पंडित जी ने भी इस कठोर सत्य का सामना किया होगा। मृत्यु के दूत का यह विचार लगभग सभी प्रमुख धर्मों में मिलता है; जैसे हिन्दू धर्म में यमदूत इसी भूमिका में हैं।

इसी आयत के बाद वाली आयत में स्पष्ट किया गया है कि मृत्यु के समय की यह दयनीय स्थिति उनके अपने कुफ़्र और पापों का ही परिणाम होती है। किंतु पंडित जी, जिन्हें आयत का अर्थ समझ ही नहीं आया, वे रूस, लंदन, इंग्लैंड, फ्रांस जैसे अगड़म-बगड़म निरर्थक आपत्तियाँ करने में लगे हुए थे।

रक्षा के निर्देश को सांप्रदायिक दमन का आधार बताना, सन्यासी का कपट

यदि पंडित के अनुयायियों से पूछा जाए कि स्वयं पंडित जी द्वारा प्रस्तुत आयत में "भिन्न मत वालों के लिए दुःखदायक कर्म करो" जैसा कोई बात आखिर है कहाँ? क्या स्वप्न में वे शब्द पन्नों से सरक कर कहीं खो गए? क्या सियाही सुख गई थी, इसलिए लिखे नहीं जा सके? या फिर अगले संस्करण में गलती सुधार के नाम पर इन शब्दों को जोड़ने की तैयारी है?

बहरहाल, सत्य यह है कि आयत के मूल पाठ में ऐसे कोई शब्द नहीं हैं, और न ही उर्दू अनुवाद में यह मौजूद है, जिसके आधार पर देवनागरी में यह अनुवाद किया गया है। आयत का वास्तविक अर्थ है — शत्रुओं के मुकाबले के लिए स्वयं को तैयार रखो और अपनी क्षमता के अनुसार जितनी भी तैयारी संभव हो — चाहे वह हथियारों से हो, घोड़ों से हो या सैनिकों से — करके रखो। यह तैयारी शत्रुओं से आत्मरक्षा के लिए है, न कि उन पर आक्रमण करने के लिए।

कुछ इसी प्रकार का भाव हमें वेदों में भी स्पष्ट रूप से मिलता है। उदाहरण के तौर पर —

ऋग्वेद (1.39.2) "हे धार्मिक मनुष्यो! तुम्हारे आग्नेय आदि अस्त्र और तलवार, धनुष् बाण, भुसुंडी शतघ्नी (तोप) आदि शस्त्र अस्त्र शत्रुओं को व्यथा करनेवाले युद्ध और रोकने बांधने और मारने रूप कर्मों के लिये स्थिर दृढ़ चिरस्थायी दृढ़ बड़े-बड़े उत्तम युक्त प्रशस्त सेना अतिशय करके स्तुति करने योग्य व व्यवहार को सिद्ध करनेवाली हो और पूर्वोक्त पदार्थ कपट आदि अधर्माचरण युक्त दुष्ट मनुष्यों के कभी मत हों।" — दयानन्द सरस्वती

ऋग्वेद (1.66.4) "राजा युद्ध के लिए भेजी या तैयारी हुई सेना के समान शत्रु के हृदय में भय को उत्पन्न करे और राष्ट्र में बल की वृद्धि करें।" — जयदेव शर्मा

अथर्ववेद (11.9.24) "हे सेनापते! तू शत्रुओं को दिखला। शत्रुओं के लिए दिखला। शत्रु को यह स्पष्ट हो जाए कि हम इन्हें घेरकर भूखा नहीं मार सकते। उन सबको और युद्ध के विशाल आयोजनों को शत्रुओं के लिए दिखा, जिससे वे युद्ध की पूरी तैयारी व सभी के सहयोग को देखकर युद्ध का उत्साह छोड़ दें।" — हरिशरण सिद्धान्तालंकार

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

83. ऐ नबी किफ़ायत है तुझ को अल्लाह और उन को जिन्होंने मुसलमानों से तेरा पक्ष किया। ऐ नबी रग़बत अर्थात् चाह चस्का दे मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के, जो हों तुम में से २० आदमी सन्तोष करने वाले तो पराजय करें दो सौ का। बस खाओ उस वस्तु से कि लूटा है तुमने हलाल पवित्र और डरो अल्लाह से वह क्षमा करने वाला दयालु है। 8: 64-65-69 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला यह कौन सी न्याय, विद्वत्ता और धर्म की बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहें अन्याय भी करे उसी का पक्ष और लाभ पहुँचावे? और जो प्रजा में शान्तिभङ्ग करके लड़ाई करे करावे और लूट मार के पदार्थों को हलाल बतलावे और फिर उसी का नाम क्षमावान् दयालु लिखे यह बात खुदा की तो क्या किन्तु किसी भले आदमी की भी नहीं हो सकती। ऐसी-ऐसी बातों से कुरान ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता।

उत्तर:

ईश्वर पर विश्वास की शिक्षा और आर्यों के ईश्वर का पक्षपात

यह आयत भी बद्र के युद्ध से संबंधित है, जिसका विस्तृत विवरण हम अपने पूर्ववर्ती उत्तरों में पहले ही दे चुके हैं। यह आयत उन्हीं संघर्षों का उल्लेख करती है, जिनमें अत्याचार के विरोध खड़े होने वाले, सत्य के पक्ष में दृढ़ रहने वाले और ईश्वर के दूत (धर्म) का साथ देने वाले लोगों की बात की गई है। आयत यह संदेश देती है कि ऐसे लोगों को केवल ईश्वर को ही अपनी सहायता के लिए पर्याप्त समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यह आयत पीड़ितों के समर्थन और अन्याय के विरोध की घोषणा

करती है। इसे अन्याय कहना, वास्तव में न्याय का गला घोंटने के समान है। आयत में कहीं से भी अन्याय का पक्ष लेने का संकेत नहीं मिलता।

वास्तविक पक्षपात तो तब होता है जब किसी समुदाय को किसी विशेष स्थान में रहने के कारण, उसके अन्यायपूर्ण द्वेष के बावजूद उसका पक्ष लिया जाए, और उस द्वेष के प्रभाव में आकर दूसरों के अन्न, जल और ओषधीय पदार्थों को भी शत्रुओं के समान अर्थात विषतुल्य बना दिया जाए। जैसा कि यजुर्वेद (20.19 — दयानन्द सरस्वती) में कहा गया है — "जो हमारा द्वेष करे और जिसका हम द्वेष करें, उसके लिए ये सब (अन्न-जल-ओषधियाँ) शत्रुओं के समान होवें।"

वेद की ऐसी बातों से स्पष्ट होता है कि यह ईश्वर का वचन नहीं, बल्कि द्वेषग्रस्त ब्राह्मणों की रचना है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह तौबा

84. सदा रहेंगे बीच उस के, अल्लाह समीप है उस के पुण्य बड़ा। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत पकड़ो बापों अपने को और भाइयों अपने को मित्र जो दोस्त रखें कुफ्र को ऊपर ईमान के। फिर उतारी अल्लाह ने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपने के और ऊपर मुसलमानों के और उतारे लश्कर नहीं देखा तुम ने उन को और अज़ाब किया उन लोगों को और यही सज़ा है काफ़िरों को। फिर-फिर आवेगा अल्लाह पीछे उस के ऊपर। और लड़ाई करो उन लोगों से जो ईमान नहीं लाते। 9: 22-23-26-29 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला जो बहिश्तवालों के समीप अल्लाह रहता है तो सर्वव्यापक क्योंकर हो सकता है? जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टिकर्त्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता। और अपने माँ, बाप, भाई और मित्र को छुड़वाना केवल अन्याय की बात है। हां! जो वे बुरा उपदेश करें; न मानना परन्तु उन की सेवा सदा करनी चाहिये। जो पहिले खुदा मुसलमानों पर बड़ा सन्तोषी था; और उनके सहाय के लिए लश्कर उतारता था सच हो तो अब ऐसा क्यों नहीं करता? और जो प्रथम काफ़िरों को दण्ड देता और पुनः उसके ऊपर आता था तो अब कहाँ गया? क्या विना लड़ाई के ईमान खुदा नहीं बना सकता? ऐसे खुदा को हमारी ओर से सदा तिलाञ्जलि है, खुदा क्या है एक खिलाड़ी है?

उत्तर:

सन्यासी द्वारा आयतों को मनमाने ढंग से जोड़कर एक मनगढ़त अर्थ गढ़ना

यहाँ पंडित ने फिर से कपटपूर्ण ढंग से बात को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है। आयत वास्तविक में कहती है — "स्वर्गवासी स्वर्ग में सदैव रहेंगे, और निश्चित रूप से उनके लिए ईश्वर के ओर से महान प्रतिफल है।" लेकिन पंडित ने आयत के पहले भाग के कुछ शब्दों को काटकर, दूसरे भाग के कुछ अंशों के साथ जोड़ दिया, और इस प्रकार एक मनगढ़त वाक्य बनाकर निराधार आपत्ति खड़ी कर दी। जबकि पूरी क़ुरआन में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि "ईश्वर स्वर्ग के समीप या पास रहता है।" आयत का आशय केवल यह है कि स्वर्गवासी लोगों को ईश्वर के पास से महान प्रतिदान मिलेगा — न कि वह स्वयं स्वर्ग में या उसके पास कहीं निवास करता है।

मुसलमानों की सहायता के लिए लश्कर उतारता था इसका उत्तर क्रमांक 53 में दिया जा चुका है।

इस्लाम में शारीरिक रिश्तों की तुलना धार्मिक रिश्तों की महत्ता

आपत्ति में कहा गया है कि "लोगों को अपने माँ, बाप, भाई, मित्र को छुड़वाना अन्याय की बात है।" निःसन्देह, इस्लाम ने शारीरिक रिश्तों की तुलना में धार्मिक रिश्ते और ईमान को अधिक महत्व दिया है। इस आयत में जिस बात पर अधिक ज़ोर दिया गया है, वह यह है कि "यदि वे ईमान को कुफ़्र पर प्राथमिकता दें" — अर्थात जब कोई व्यक्ति अच्छाई को बुराई पर वरीयता देता है, तब धार्मिक मामलों में उसे वली (अर्थात घनिष्ठ मित्र या सहयोगी) न बनाने की बात कही गई है। (वली शब्द का विस्तृत अर्थ संदर्भ क्रमांक 63 में देखा जा सकता है।) किंतु सामान्य संदर्भ में निर्देश दिया गया है — "अपने माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करो" (सूरह लुक़मान, 31:15)। इन दोनों ही बातों पर पंडित जी ने स्वयं हस्ताक्षर कर रखे हैं। इसी प्रकार इन दोनों ही बातों में कोई विरोध भी नहीं। अर्थ यह हुआ कि — सांसारिक मामलों में अपने मात-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करो, और उनका आदर करो; किंतु धार्मिक मामलों में, यदि वे तुम्हें कुफ़्र या शिर्क की ओर बुलाएँ, तो उनकी बात न मानों और न उस मार्ग पर चलों।

धार्मिक रिश्ते की महत्ता को अगली आयत में इतना ज़ोर दिया गया है कि — यदि आवश्यकता पड़े तो संसार की सबसे प्रिय वस्तुओं को भी धर्म (सत्य) के लिए कुर्बान कर दो। इसके बिना किसी भी समाज या समुदाय को सच्चा धार्मिक नहीं बनाया जा सकता। अब ज़रा सोचिए — क्या आर्य समाज के लोग भी धर्म और सत्य के लिए सत्याग्रह नहीं करते? यह अलग विषय है कि यह सिद्धांत वेदों में वर्णित है भी या नहीं। पर मूल भाव यह है कि — जब सच्चाई के पक्ष में डटे रहना और बुराई से निरंतर दूरी बनाना आवश्यक हो, तो यदि इस मार्ग में परिवार ही आ जाए, तो क्या केवल रिश्तेदारी के नाते हमें सत्य का साथ छोड़ देना चाहिए? बिल्कुल भी नहीं।

यह सोचना ही एक असंगत और दुर्बल तर्क है — ऐसी घटिया तर्क किसी विवेकशील या विद्वान व्यक्ति के मुख से निकल ही नहीं सकती।

संसार का उद्देश्य — मनुष्य के लिए एक परीक्षा स्थल

इस्लामी दृष्टिकोण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इस्लाम का मूल सिद्धांत दावत है — अर्थात नम्रता, बुद्धिमत्ता और सद्भावना के साथ लोगों को सत्य की ओर आमंत्रित करना है, न कि किसी को बलपूर्वक धर्म परिवर्तन के लिए विवश करना। पवित्र क़ुरआन स्वयं इस सिद्धांत को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करती है —

"दीन में कोई जबरदस्ती नहीं है।" (सूरह बकरा, 2:256)

यह आयत इस तथ्य को सिद्ध करता है कि इस्लाम में दूसरे मत के लोगों को जबरदस्ती मुसलमान बनाना पूर्णतः वर्जित है। इस्लाम का लक्ष्य मनुष्य के हृदय और बुद्धि में सत्य के प्रकाश को जगाना है।

इस्लामी दृष्टि में यह संसार एक परीक्षा स्थल है। ईश्वर ने मनुष्य को स्वतंत्र इच्छा-शक्ति प्रदान की है, ताकि वह विवेक से काम लेते हुए स्वेच्छा से सत्य को स्वीकार या अस्वीकार करे। यदि ईश्वर चाहता, तो समस्त मानवजाति को विवश करके ईमानवाला बना सकता था, किंतु ऐसा करने से मनुष्य की स्वतंत्रता और इस लोक-परीक्षा का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता। क़ुरआन इस तथ्य को और सुदृढ़ करते हुए कहता है —

"और यदि आपका पालनहार चाहता, तो धरती में जितने भी लोग हैं, सबके सब अवश्य ईमान ले आते। तो क्या आप लोगों को बलपूर्वक विवश करेंगे कि वे ईमान ले आएँ?" (सूरह यूनुस, 10:99)

यह आयत इस प्रश्न का सीधा उत्तर है कि इश्वरीय शक्ति के बावजूद, मनुष्य को चयन की स्वतंत्रता प्रदान की गई है, ताकि परीक्षा की सार्थकता बनी रहे और प्रतिफल पूर्णतः न्याय के आधार पर प्रदान किया जा सके।

इस्लाम मे संघर्ष (जिहाद) का विधान केवल विशिष्ट परिस्थितियों में आत्मरक्षा और अत्याचार के विरुद्ध दिया गया है। इसका उद्देश्य किसी को जबरदस्ती मुसलमान बनाना कदापि नहीं है। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि इस्लाम बहुत से स्थानों पर शांति और दावत के माध्यम से फैला, न कि तलवार के बल पर।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

85. और हम बाट देखने वाले हैं वास्ते तुम्हारे यह कि पहुँचावें तुम को अल्लाह अज़ाब अपने पास से वा हमारे हाथों से। 9: 52 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या मुसलमान ही ईश्वर की पुलिस बन गये हैं कि अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथ से अन्य किसी मत वालों को पकड़ा देता है? क्या दूसरे क्रोड़ों मनुष्य ईश्वर को अप्रिय हैं? मुसलमानों में पापी भी प्रिय हैं? यदि ऐसा है तो अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा की सी व्यवस्था दीखती है। आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं वे भी इस निर्मूल अयुक्त मत को मानते हैं।

उत्तर:

सन्यासी का आयत पर तीन झूठ और कपटियों का चिरित्र

पंडित के लिए यह असंभव कार्य बन चुका है कि वे क़ुरआन पर झूठ बोले बिना कोई आपत्ति कर सकें। जिस आयत पर आपत्ति की गई है, उसमें न तो यह कहा गया है कि "मुसलमान ईश्वर के पुलिस है", न ही यह कहा गया है कि "दूसरे करोड़ों मनुष्य ईश्वर को अप्रिय है", और न ही यह कि "मुसलमानों में पापी भी ईश्वर को अप्रिय हैं।" इस प्रकार, एक ही प्रश्न में तीन मनगढ़त दावों के सहारे लोगों को भ्रमित करने का एक निष्फल प्रयास किया गया।

वास्तव में, इस आयत का संदर्भ कपटियों (मुनाफिकों) से संबंधित है। उसी प्रसंग में कहा गया है कि मुसलमान यदि युद्ध में मारे जाते हैं, तो वह उनके लिए कल्याणकारी है; और यदि वे विजयी होते हैं, तब भी वह उनके लिए भलाई का कारण है, दोनों ही स्थितियों में उनके लिए भलाई है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मुसलमानों का संघर्ष सांसारिक लाभ, सत्ता या श्रेष्ठता दिखाने के लिए नहीं, बल्कि वे सत्य को स्थापित और न्याय की रक्षा करने के लिए होता है।

इसके विपरीत, कपटियों के लिए केवल दुःख और विनाश है। यदि वे अपनी साजिशों और छल-कपट के कारण मुसलमानों की मृत्यु का कारण बनते हैं, तो उनके इस दुष्कर्म के लिए उन्हें ईश्वर की ओर से दंड अवश्य मिलेगा, जिसे वे किसी भी प्रकार टाल नहीं सकते। और यदि मुसलमान विजय प्राप्त करते हैं, तो भी उन कपटियों को उनकी साजिशों के लिए दंडित किया जाएगा।

प्रश्न यह है कि ऐसे लोग दंड के पात्र क्यों न हों? जो लोग दो समुदायों के बीच युद्ध की आग भड़काते हैं, जो छल-कपट से

साजिशें रचकर दूसरों के मृत्यु का कारण बनते हैं — ऐसे लोग दंड के अधिकारी क्यों न हों?
निश्चित रूप से, ऐसे कपटी और षड्यंत्रकारी लोग दंड के योग्य हैं — क्योंकि वे उपद्रव फैलाने वाले, पीठ में छुरा घोंपने वाले और समाज में अशांति के मूल कारण हैं।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

86. प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमान वालों से और ईमानवालियों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उन के से नहरें सदैव रहने वाली बीच उस के और घर पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा। बस ठट्ठा करते हैं उन से, ठट्ठा किया अल्लाह ने उन से। 9: 72 & 79 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह खुदा के नाम से स्त्री पुरुषों को अपने मतलब के लिये लोभ देना है। क्योंकि जो ऐसा प्रलोभन न देते तो कोई मुहम्मद साहेब के जाल में न फंसता। ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं। मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया ही करते हैं परन्तु खुदा को किसी से ठट्ठा करना उचित नहीं है। यह कुरान क्या है बड़ा खेल है।

उत्तर:

स्वर्ग सत्कर्मों का प्रतिफल है, लोभ नहीं

अच्छे कर्मों के प्रतिफल को प्रलोभन कहना घोर मूर्खता है। वेदों में (अ. 4.11.6 — हरिशरण सिद्धान्तालंकार और ऋ. 9.113.7-11 — आर्य मुनि) क्या यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि सत्कर्म करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है? क्या यह नहीं बताया गया कि अच्छे कर्म से पुनर्जन्म में उत्तम योनि, श्रेष्ठ और सुखद जीवन प्राप्त होती है? इसी प्रकार, क्या ब्रह्मचर्य, सत्य, संयम और श्रेष्ठ आचरण से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त नहीं होता, जहाँ जीव परम-शांति और परम-आनंद का अनुभव करता है?
तो फिर क्या ये सब लोगों को प्रलोभन देकर जाल में फाँसने के लिए कहें गए है? वास्तविकता यह है कि क़ुरआन ने यह सब कोई प्रलोभन या जाल में फाँसने के लिए नहीं बल्कि यह अच्छे कर्मों और ईमान का उचित प्रतिफल है।

कपटियों की हँसी को ईश्वर उन पर पलट देगा

यह न तो पहली और न ही आखिरी घटना है, जब पंडित ने किसी क़ुरआनी आयत को अधूरा प्रस्तुत किया हो या उसकी भाषा और अभिव्यक्त शैली को समझने की भूल की हो। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिसकी चर्च मैं अपने उत्तरों में बार-बार करता आया हूँ; इसलिए इन त्रुटियों और मक्कारियों को बार-बार उजागर करने की आवश्यकता नहीं है। अतः हमें तो बस इतना अफसोस रहा है कि काश पंडित जी इस्लाम के किसी योग्य विद्वान की संगति में रहे होते, तो संभव था कि ऐसी त्रुटियों और मक्कारियों से स्वयं को बचा पाते।
अब आइए, संबंधित आयत का मर्म समझें। आयत बताती है कि कपटी (मुनाफ़िक) उन दानशील मुसलमानों का उपहास करते हैं जो अपनी क्षमता के अनुसार दान करते हैं — भले ही वह राशि कितनी भी छोटी क्यों न हों। साथ ही, वे निर्धन मुसलमानों की गरीबी और उनकी सद्भावना का भी मज़ाक उड़ाते हैं। इस नीच और तुच्छ आचरण के प्रत्युत्तर में ईश्वर कहता है कि वह उनकी इसी हँसी को उनपर पलट देगा — अर्थात उन्हें उसका दंड देगा।

इस स्थिति को एक उदाहरण से समझें — मान लीजिए कोई व्यक्ति किसी गरीब को यह कहकर चिढ़ाता है, "देखो, इनके पास पहनने के लिए अच्छे कपड़े तक नहीं हैं," या फिर, "इसके पास खुद खाने को नहीं है, और दान देकर शेखी बघार रहा है।" और थोड़े ही समय में वही व्यक्ति स्वयं ऐसी विपत्ति में फंस जाता है कि उसके पास पहनने को कपड़े और खाने को अनाज तक नहीं बचता। ऐसे में, स्वाभाविक रूप से वही हँसी उसी पर वापस लौट आती है और वह स्वयं हँसी का पात्र बन जाता है।

ठीक इसी प्रकार, परलोक में ईश्वर इन कपटियों की वही दशा करेगा, जिससे वे सबके सामने हँसी के पात्र बन जाएंगे। क़ुरआन ने इसी दंड की स्थिति को ईश्वर की हँसी की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति से संबोधित किया है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

87. परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया उन्होंने साथ धन अपने के तथा जानों अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है। और मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उन के, बस वे नहीं जानते। 9: 88 & 93 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये मतलबसिन्धु की बात! कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे बुरे हैं! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है? जब खुदा ने मोहर ही लगा दी तो उन का अपराध पाप करने में कोई भी नहीं किन्तु खुदा ही का अपराध है क्योंकि उन बिचारों को भलाई से दिलों पर मोहर लगा के रोक दिये; यह कितना बड़ा अन्याय है!!!

उत्तर:

ईश्वर पर विश्वास करने वालों के प्रति गलत धारणा

जो लोग ईश्वर पर विश्वास रखते हैं और उसकी वाणी पर चलने का प्रयास करते हैं — उनके इस आचरण को तुच्छ समझना — और इसके विपरीत, नास्तिकों या ईश्वर को अस्वीकार करने वालों को श्रेष्ठ मानना — यह स्वार्थी और संसार-परस्त लोगों की मानसिकता है। वास्तव में, ऐसे लोग अत्यंत संकीर्ण बुद्धि वाले और अज्ञान से ग्रस्त होते हैं।

ईश्वर का दिलों पर मोहर लगाना

यह आपत्ति भी आयत के संदर्भ को अनदेखा करके केवल एक वाक्य को पकड़कर आरोप लगाने पर आधारित है। वास्तविकता यह है कि उनके दिलों पर मोहर लगना उनके स्वयं के जमा किए हुए कुकर्मों का दंड था, न कि इसका कारण। यह नहीं कि ईश्वर ने पहले मोहर लगा दी और फिर वे पाप करने पर मजबूर हो गए। दिलों पर मोहर लगाने के विषय को विस्तार से जानने के लिए क्रमांक 5 देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

88. ले माल उनके से खैरात कि पवित्र करे तू उन को अर्थात् बाहरी और शुद्ध करे तू उन को साथ उन के अर्थात् गुप्त में। निश्चय अल्लाह ने मोल ली हैं मुसलमानों से जानें उन की और माल उन के के बदले, कि वास्ते उन के बहिश्त है। लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाह के बस मारेंगे और मर जावेंगे। 9: 103 & 111 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह जी वाह मुहम्मद साहेब! आपने तो गोकुलिये गुसांइयों की बराबरी कर ली क्योंकि उन का माल लेना और

उन को पवित्र करना यही बात तो गुसांइयों की है। वाह खुदा जी! आपने अच्छी सौदागरी लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य गरीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा और उन अनाथों को मरवा कर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से दया और न्याय से मुसलमानों का खुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगा के बुद्धिमान् धार्मिकों में घृणित हो गया।

उत्तर:

दान और ज़कात सभी ईश्वरीय दूतों की शिक्षा

पंडित ने यहाँ अपनी ही संस्कृति की अर्थी निकाल दी है। विवेक और बुद्धि तो पहले ही से उनके पास नहीं थी, परंतु अब इस सस्ती और हल्की लेखनी से उन्होंने मानवता को भी तिलांजलि दे दी। पैग़म्बर ﷺ की तुलना गोकिलये से करना और ईश्वर की शान में भद्दी टिप्पणीयाँ करना — यही दो काम उन्हें खूब भली-भांति आती हैं। किंतु वे भूल जाते हैं कि आसमान पर थूका अपने ही मुंह पर गिरता है।

सदका या दान का सिद्धांत सभी धर्मों में पाया जाता है। धनवानों से धन लेकर गरीबों, अनाथों और यतीमों की सहायता करना, अथवा धर्म के प्रचार-प्रसार पर उसे खर्च करना — यह मनुष्यों को उसे धन के मोह से पवित्र करता है और उसे स्वर्ग का भागी बनाता है। हैसियतमंद लोगों से धन लेकर गरीबों या ज़रूरतमंदों पर खर्च करना केवल ईश्वर के दूत ﷺ से ही ख़ास नहीं, बल्कि समस्त इस्लाम (सभी नबियों) का एक सार्वभौमिक सिद्धांत है। हर युग में समुदाय का सरदार इस धन को सार्वजनिक कोष (बैतूलमाल) में एकत्र करता था, जहाँ से गरीबों, अनाथों और ज़रूरतमंदों की आवश्यकताओ के अनुसार उसे वितरित किया जाता था।

जिस आयत पर आपत्ति की गई है और जिसको आधार बना कर ईश्वर के दूत ﷺ पर आरोप लगाया है, उसके संदर्भ को भी अब थोड़ा समझ लीजिए। यह आयत उस समय अवतरित हुई जब कपटियों द्वारा मुसलमानों को धोखे का सामना करना पड़ा। उनकी चाल इतनी सशक्त थी कि मुसलमानों के एक छोटे समूह (हदीस के अनुसार संख्या लगभग दस व्यक्ति) उसके प्रभाव में आ गए। जब उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ, तो उन्होंने स्वयं को एक खंभे से बाँध लिया और नबी ﷺ के समक्ष क्षमा-याचना करते हुए प्रतिज्ञा की कि जब तक रसूल ﷺ स्वयं उन्हें इस बंधन से मुक्त नहीं करेंगे, वे वही बँधे रहेंगे। अंततः, आप ﷺ ने ईश्वरीय आदेश पर उन्हें मुक्त किया। मुक्त होते ही वे अपना सारा धन लेकर आए और निवेदन किया — 'हे ईश्वर के दूत! इसी धन-दौलत के मोह के कारण हम संघर्ष में आपके साथ पूरी तरह नहीं जुड़ पाए। अतः आप इसे ईश्वर के मार्ग में लोगों में बाँट दीजिए, हम इसे अपने पास नहीं रखना चाहते।' इस पर आप ﷺ ने कहा कि मुझे तुम्हारे धन लेने का निर्देश नहीं दिया गया है। इसी अवसर पर यह आयत अवतरित हुई है कि "उनके धन में से दान लो, जिससे तुम उन्हें पवित्र करो और उनका उत्थान करो।" अर्थात, उन्हें उनके धन के मोह रूपी रोग से उन्हें मुक्ति दिलाओ और उनके लिए प्रार्थना करो; निश्चय ही तुम्हारी प्रार्थना उनके लिए शांति का स्रोत है। यह ईश्वर की कृपा थी जो उनके पश्चाताप और सुधार के इरादे को स्वीकार करते हुए उनके लिए शुद्धि का मार्ग बन गई।

इस पूरे ऐतिहासिक और आध्यात्मिक संदर्भ को जाने बिना, इसकी तुलना गोकिलये जैसी तुच्छ चीज़ों से करना न केवल अज्ञानता है, बल्कि सत्य के प्रति द्वेष का स्पष्ट प्रमाण है।

वेद में ज़कात देने वालों के लिए प्राप्त होने वाला पद

मैं ने कहा था, आसमान पर थूका अपने ही मुंह पर आता है। कुछ इस प्रकार का सत्य जो क़ुरआन में हमने दर्शाया है वो वेदों में भी वर्णित है, जिन्हें स्वयं आर्य समाजियों ने भाष्य किया है —

"दक्षिणा देने वाले द्युलोक में उच्च स्थान में स्थित होते हैं। इन्हें उत्कृष्ट लोक में जन्म प्राप्त होता है अथवा उत्कृष्ट ज्ञान के प्रकाश में स्थित होते हैं। ये जो घोड़ा को दान करते हैं, वे सूर्य के साथ होते हैं, इनका सूर्य लोक में जन्म होता है। स्वर्ण का दान करने वाला अमृतत्व का सेवन करते हैं, रोगों से इनकी असमय में ही मृत्यु नहीं हो जाती। हे सौम्य स्वभाव वाले पुरुष! तू यह स्मरण रख कि उत्तम वस्त्रों को देने वाले लोग आयुष्य को बढ़ाने वाले होते हैं। वस्त्रदान मनुष्य को दीर्धजीवी बना देता है।

ये कुत्सित गतिवाले पुरुष न दान देते हैं और ना ही प्रभु की भावना को अपने में भर पाते हैं। वे कवारि पुरुष प्रभु की प्रीणित नहीं कर पाते। प्रभु की प्रसन्नता इसी में है कि प्रभु से दिए गए धन को हम प्रभु के प्राणियों के हित में प्रयुक्त करें। सो अब बहुत से वे उन्नतिपथ पर चलने वाले पुरुष पवित्र दान की वृत्तिवाले होते हैं। पाप के भय से वे देते ही हैं। उन्हें यह विश्वास होता है की धन का दान न करेंगे तो धनासक्त होकर पाप में फँस जाएँगे। इसलिए दान देते हुए ये लोग उस प्रभु को प्रीणित करते हैं।" (ऋग्वेद — 10.107.2-3 और 4-11 भी देखें — हरिशरण सिद्धान्तालंकार)

यह है वैदिक परंपरा में दान की महत्ता। दान से आत्मा न केवल स्वर्ग के उच्च स्थान को प्राप्त होती है, बल्कि उसे उत्कृष्ट लोक में जन्म मिलता है। और धन के मोह से पाप में फँसने के भय के कारण, लोग सन्यासियों को धन देकर स्वयं को इस पाप से दूर एवं पवित्र रखते हैं।

और फिर गोकिलये के गोसाईं की बराबरी तो यह है सन्यासी जी, जिसने मनुस्मृति के नाम पर एक झूठी और जाली श्लोक गढ़कर लिख दिया हो कि — "नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात सन्यासियों को देवें (स.प., पन्चम समुल्लास, पृ. 113)। वास्तविकता यह है कि अपवित्र व्यक्ति पवित्र व्यक्तियों के विषय में भी अपने ही तरह आंकलन करने लगता है।

प्राण और माल खरीदने का अर्थ

पंडित जी को यहाँ उर्दू अनुवाद "खरीद लिया" से भ्रम उत्पन्न हुआ है, जबकि अरबी भाषा में "इश्तरा" शब्द का अर्थ मात्र किसी वस्तु को धन देकर खरीदना ही नहीं होता, बल्कि किसी वस्तु के बदले दूसरी वस्तु लेना, किसी विकल्प को चुनना या अपनाना भी होता है। उदारहण के तौर पर — जब क़ुरआन यह कहता है कि "वे लोग जिन्होंने परलोक के बदले सांसारिक जीवन को खरीद लिया है", तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वे पहले परलोक के मालिक थे और उसे बेचकर उन्होंने संसार हासिल कर लिया, बल्कि इसका आशय है कि उन्होंने परलोक की अपेक्षा सांसारिक जीवन को अधिक महत्त्व दिया और उसी को प्राथमिकता के रूप में चुन लिया।

इसी प्रकार एक और अन्य आयत में उल्लेख है कि "उन्होंने मार्गदर्शन के बदले गुमराही को खरीद लिया", अर्थात उन्होंने सत्य और मार्गदर्शन को अपनाने के बजाय भटकाव और भ्रांति का चयन किया। ठीक इसी प्रकार, जब ईश्वर यह कहता है

कि "हमने मोमिनों से उनकी प्राण और धन खरीद लिए हैं", तो इसका तात्पर्य यह है कि यदि मोमिन अपने प्राण और धन को धर्म के मार्ग में लगाने के लिए तैयार हैं, तो उसके बदले ईश्वर ने भी उनके लिए स्वर्ग का वादा कर दिया है (मनु. 7.95)। इस संदर्भ को देखते हुए, पंडित द्वारा लगाए गए सभी आरोप निराधार है। इस्लाम में युद्ध केवल अत्याचार के विरुद्ध, आत्म-रक्षा अथवा पीड़ितों की सहायता जैसी विशेष परिस्थितियों में ही मान्य है। इसलिए ऐसे आरोप जो जानबुझकर भ्रांति फैलाने के उद्देश्य से लगाये जाते हैं, वे केवल ईर्ष्या, द्वेष और दुष्प्रचार पर आधारित होते हैं, और यह निंदनीय हैं।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

89. ऐ लोगो जो ईमान लाये हो लड़ो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफिरों से और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे दृढ़ता। क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं बीच हर वर्ष के एक बार वा दो बार। फिर वे नहीं तोबा करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं। 9: 123 & 126 क़ुरआन.

समीक्षक:- देखिये! ये भी एक विश्वासघात की बातें खुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहें पड़ोसी हो वा किसी के नौकर हों जब अवसर पावें तभी लड़ाई वा घात करें। ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी कुरान के लेख से। अब तो मुसलमान समझ के इन कुरानोक्त बुराइयों को छोड़ दें तो बहुत अच्छा है।

उत्तर:

विश्वासघात का पाठ वेदों ने पढ़ाया, इस्लाम ने नहीं

पंडित ने यहाँ सचमुच झूठ बोलने में अद्भुत निपुणता दिखाई है। आयत मात्र इतना कहती है कि — "ऐ ईमान लाने वालों! अपने निकट के काफ़िरों से युद्ध करो।" इसमें न तो विश्वासघात का कोई उल्लेख है, न ही पड़ोसियों या नौकरों की चर्चा है, और न ही अवसर देखकर वार करने का कोई निर्देश। आपत्ति में जो भी अतिरिक्त बातें जोड़ी गई हैं — वे पूरी तरह से मनगढ़ंत, निराधार और मिथ्या हैं।

वास्तव में यह आयत संपूर्ण सूरह तौबा के मूल भाव को सारांशित करती है। इस सूरह में बार-बार काफ़िरों और कपटियों (मुनाफिकों) द्वारा किए गए अत्याचारों, संधि-उल्लंघनों और विध्वंसक गतिविधियों का सतत वर्णन आया है। परिस्थितियाँ इस मुकाम पर पहुँच चुकी थी कि इन लगातार उभरते खतरों को दृढ़ता से समाप्त करना आवश्यक हो गया था, क्योंकि विदेशी शक्तियाँ सक्रिय हो चुकी थी। यदि आंतरिक विद्रोह को अनदेखा कर केवल बाहरी आक्रमणों से निपटने की प्रयास किया जाता, तो एक नवस्थापित राज्य का अंत उसी प्रारम्भिक अवस्था में हो सकता था। इसलिए यह आवश्यक था कि जिन स्थानों में काफ़िरों की ओर से संधि भंग और विद्रोही गतिविधियाँ चल रही थी वहाँ उस साँप के डंक को तोड़ दिया जाए, जिससे हानि की आशंका थी — ताकि एक स्थिर और सुरक्षित नींव रखी जा सके।

यह आयत उन सभी परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है, जिसपर हम लगातार चर्चा करते आए हैं। आयत का आशय बिल्कुल स्पष्ट है — जो युद्ध पर उतारू (अग्रसर) है, उसके साथ अब किसी भी प्रकार की नरमी नहीं दिखाई जाएगी, बल्कि उसे उनके अपराध की कठोरतम दंड दिया जाएगा।

इससे पहले यह (आयत 9:4 में) स्पष्ट किया जा चुका था कि जो काफिर मुशरिक अपनी संधियों पर कायम हैं, उनके साथ

समझौता की अवधि पूरी की जाएगी।

अब जहाँ तक विश्वासघात और अवसर देखकर वार करने की बात है — तो मुसलमानों को ऐसी शिक्षा ईश्वर ने कभी नहीं दी — किंतु वैदिक मत की शिक्षाओं का स्वर कुछ यही है। पंडित दयानन्द स्वयं सत्यार्थप्रकाश के षष्ठम समुल्लास (पृ. 132-133) में मनु का हवाला देते हुए बहुत गर्व से लिखा है —

"जब यह जान लें कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगी, तभी शत्रु से मेल करके उचित समय तक धैर्य रखें।"

वाह पंडित जी! विश्वाघात और अवसरवाद की इससे स्पष्ट शिक्षा और क्या हो सकती है? पहले शत्रु से मेल-जोल का ढोंग रचो, और जब अनुकूल अवसर मिले, तब पीठ पीछे वार कर दो। क्या यही वेदों की वो महान नीति है?

और सुनिए —

"जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यंत प्रसन्न, उन्नतशील और श्रेष्ठ जान पड़े, और शत्रु का बल अपने से विपरीत निर्बल हो जाए, तब शत्रु की ओर युद्ध करने जाए।"

इस नीति का तो भला हो — जब शत्रु निर्बल हो जाए, तभी युद्ध करो! आधुनिक परिभाषा में इसे कायरता कहा जाता है। सशक्त प्रतिद्वंद्वी से नहीं, बल्कि दुर्बल शत्रु पर टूट पड़ो — यह किस ईश्वरीय प्रेरणा का परिणाम है, पंडित जी?

आगे और सुनिए —

"जिसका आश्रय लेवे, उस पुरुष के कर्मों में दोष देखे, तो वहाँ भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशंक होकर करे।"

वाह-जी-वाह! शरण में गए व्यक्ति के कर्म यदि दोषपूर्ण लगें, तो उसके विरुद्ध भी निर्भय होकर युद्ध छेड़ दो। विश्वासघात का इससे अधिक नग्न और निर्लज्ज समर्थन और कही मिसाल मिलेगी?

और फिर मुसलमानों पर विश्वाघात और छल का आरोप लगाने का साहस करते हों!

पंडित जी, कभी कभार जरा आईना भी देख लेना चाहिए। इसलिए अगली बार जब किसी को नैतिकता का उपदेश देने बैठें, तो पहले स्वयं अपने ग्रंथों में वर्णित इन नीतियों पर एक दृष्टि अवश्य डाल लीजिएगा। वरना ऐसा न हो कि घाट और विश्वासघात की मूल परिभाषा ही आपको पुनः सीखनी पड़े।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह यूनुस

90. निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिस ने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के। फिर करार पकड़ा ऊपर अर्श के, तदबीर करता है काम की। 10: 3 क़ुरआन.

समीक्षक:- आसमान आकाश एक और बिना बना अनादि है। उस का बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह कुरानकर्त्ता पदार्थविद्या को नहीं जानता था? क्या परमेश्वर के सामने छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो 'हो मेरे हुक्म से और हो गया' जब कुरान में ऐसा लिखा है फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते। इससे छः दिन लगना झूठ है। जो वह व्यापक होता तो ऊपर अर्श के क्यों ठहरता? और जब काम की तदबीर करता है तो ठीक तुम्हारा खुदा मनुष्य के समान है क्योंकि जो सर्वज्ञ

है वह बैठा बैठा क्या तदबीर करेगा? इस से विदित होता है कि ईश्वर को न जानने वाले जंगली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा।

उत्तर:

आकाश या आसमान की वास्तविकता

यदि कोई व्यक्ति चारों वेदों का संस्कृत में गहन अध्ययन करे, तो उसे कही भी यह धारणा नहीं मिलेगी कि आकाश या आसमान अनादि हैं। इसी प्रकार, प्रकृति और जीवात्मा जैसी अन्य सत्ताओं के अनादि होने का भी कोई ठोस, स्पष्ट और निर्विवाद पुष्टि वेदों में उपलब्ध नहीं है। किंतु आर्य भाष्यकारों ने इन अवधारणाओं को वेदों से सिद्ध करने का प्रयास अवश्य किया है, परंतु यह सिद्धांत वेद-वाक्यों में प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता, बल्कि खींच-तान कर स्थापित किया गया तथ्य है। इसलिए इस बात को समझना आवश्यक है कि यह निष्कर्ष स्वयं वेदों के नहीं, बल्कि भाष्यकारों के व्यख्याओं पर आधारित हैं।

रही बात क़ुरआन की, तो यहाँ आसमान से तात्पर्य पृथ्वी के ऊपर विद्यमान समस्त सृष्टि से है। और यदि केवल नभ को ही आसमान या आकाश माना जाए, तो भी पंडित दयानन्द ने स्वयं अपनी भाष्यभूमिका में स्पष्ट शब्दों में लिखा है —

"उस समय अस्त् शून्य नाम आकाश अर्थात् जो नेत्रों से देखने में नहीं आता, सो भी नहीं था। (कुछ ही आगे लिखते है) जो सब स्थूल जगत के निवास का स्थान है' सो भी नहीं था।" (ऋग्वेद-भाष्यभूमिका, सृष्टिविद्या, पृ. 93)

जैसा कि मैं ने कहा, आसमान या आकाश के अनादि होने का विचार वेदों का नहीं, बल्कि दयानन्द का व्यक्तिगत मत है, जो वेदों के ही कथन के विपरीत है। इसकी पुष्टि के लिए देखों ऋग्वेद 10.129.1-2 भाष्यकार ब्रह्ममुनि एवं हरिशरण सिद्धान्तालंकार।

कुन-फयकून का अर्थ

इस्लामी सिद्धांत में कुन फयकून ईश्वर की रचनात्मक गति का संकेत नहीं देता, बल्कि उसकी परम इच्छा और संप्रभुता का अभिव्यक्ति है। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर यदि चाहे, तो किसी भी वस्तु को एक ही क्षण में अस्तित्व प्रदान कर सकता है; और यदि उसकी इच्छा हो तो वही वस्तु करोड़ो वर्षों की क्रमिक विकास-प्रक्रिया से भी उत्पन्न हो सकती है। दोनों ही तरीके उसकी सुन्नत (प्रकृति) का अंग हैं — इनमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

इस विषय पर क्रमांक 72 में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है। 'इस्तिवा अला अल-अर्श के विषय में इस्लामी दृष्टिकोण भी वहीं स्पष्ट किया गया है, इसलिए पुनः अनावश्यक चर्चा की आवश्यकता नहीं है।

वैदिक ईश्वर का चिंतन-मनन (सोच-विचार)

पंडित की यह आपत्ति कि — "जो कार्य की तदबीर करता है, वह मनुष्य के समान है, क्योंकि जो सर्वज्ञ होगा, वह तदबीर क्यों करेगा?" — वास्तव में यह वेदों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप पर ही प्रश्नचिह्न लगाती है। यदि पंडित दयानन्द जी वेदों के ईश्वर को सचमुच सर्वज्ञ मानते हैं, तो फिर यह प्रश्न पंडित से भी किया जा सकता है कि वेद स्वयं ईश्वर के संदर्भ में तदबीर का उल्लेख क्यों करता हैं? उदाहरण के तौर पर —

"उस समष्टि पुरुष परमात्मा के मन अर्थात मनन सामर्थ्य से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ।" (यजुर्वेद 31.12 — ब्रह्ममुनि परिव्राजक) इस्लामी दृष्टिकोण से ईश्वर की तदबीर का अर्थ है — सृष्टि का प्रबंधन करना, व्यवस्था बनाए रखना तथा कार्य-प्रणाली का संचालन करना। यह मनुष्यों की तरह अनिश्चितता, अज्ञान या अनुभवहीनता के कारण किया जाने वाला विचार-मंथन नहीं है। ईश्वर का तदबीर उसकी सर्वज्ञता एवं पूर्ण ज्ञान, और पूर्ण नियंत्रण पर आधारित है; इसमें न कोई संशय होता है, और न ही किसी प्रकार की अनुभवहीनता।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

91. शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के। 10: 57 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या यह खुदा मुसलमानों ही का है? दूसरों का नहीं? और पक्षपाती है जो मुसलमानों ही पर दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं। यदि मुसलमान ईमानदारों को कहते हैं तो उन के लिये शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानों से भिन्नों को उपदेश नहीं करता तो खुदा की विद्या ही व्यर्थ है।

उत्तर:

क़ुरआन की दया सम्पूर्ण मानवता के लिए है

एक बार फिर पंडित जी ने वही पुरानी चाल चलते हुए, आधी-अधूरी आयत लेकर झूठ फैलाने का प्रयास किया है। उनकी यह रणनीति स्पष्ट है — चूँकि पूरी आयत का अर्थ स्पष्ट करने से उनकी आपत्ति का आधार ही समाप्त हो जाता है, इसलिए वे आयत के एक अंश को तोड़-मरोड़ कर पेश करते हैं। संदर्भ सहित उक्त आयत का पूरा भावार्थ इस प्रकार है —

"हे मनुष्यों! तुम्हारे पालनहार की ओर से तुम्हारे पास मागर्दर्शन आया है — एक ऐसा मार्ग जो तुम्हारे ह्रदयों में व्याप्त रोगों (अविश्वास, कटप, ईर्ष्या-द्वेष, अनैतिकता आदि) के लिए शिफ़ा (सर्वोत्तम उपचार) है। यह शिक्षा तुम्हें सच्चे ईश्वर की ओर, विवेक और नैतिक अनुशासन की ओर मोडती है तथा अच्छाई-बुराई की पहचान प्रदान करती है, ताकि तुम सच्ची सफलता प्राप्त कर सको। जो कोई इस पर विश्वास करता है, उसके लिए यह मार्गदर्शन एक पूर्ण मार्गदर्शक है — जो उसे सत्य के पथ पर अग्रसर करता है, और यह उस पर ईश्वर की कृपा है।"

कितनी स्पष्टता से पवित्र क़ुरआन ने घोषणा की है कि यह समस्त मानवजाति के लिए शिक्षा और शिफ़ा है। जैसा कि हम पहले क्रमांक 43 में स्पष्ट कर चुके है कि इस्लाम मार्गदर्शन को दो स्पष्ट श्रेणियों में विभाजित करता है —

1. सामान्य मार्गदर्शन — यह संपूर्ण मानवजाति के लिए है। यह वह सार्वभौमिक संदेश है जो प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और सदाचार की ओर आमंत्रित करता है।

2. विशिष्ट मार्गदर्शन — यह उन लोगों के लिए है जो इस सार्वभौमिक सत्य को स्वीकार करते हैं, पश्चाताप करते हैं और अपने जीवन को धर्म के अनुसार ढालने का सच्चा प्रयास करते हैं।

लेकिन, यदि कोई व्यक्ति इस सत्य को स्पष्ट रूप से ठुकराकर अपने दुष्कर्मों पर अड़ा रहता है, और उसी को अपना मार्ग बना लेता है, तो वह स्वयं ही अपने लिए कृपा का द्वार बंद कर लेता है। ऐसे में उस पर इश्वरीय कृपा का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ पक्षपात जैसी कोई अवधारणा नहीं।

ईमानदारी बनाये रखने के लिए शिक्षा आवश्यक है

ईमानदारों को शिक्षा की आवश्यकता नहीं — यह कथन न केवल हास्यास्पद है, बल्कि मानव-स्वभाव और सामाजिक यथार्थ दोनों की पूर्ण अनदेखी करता है। ऐसा दावा केवल वही व्यक्ति कर सकता है जिसे मानवीय मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है।

मनुष्य एक सीमित और अपूर्ण प्राणी के रूप में सृजित हुआ है। उसकी स्मरणशक्ति सीमित है, इच्छाएँ अनंत हैं और भावनाएँ प्रायः उसके तर्क पर हावी हो जाती हैं (पंडित स्वयं को ही देख लें)। जीवन में अनेक ऐसे पल आते हैं जहाँ सत्य और असत्य, उचित और अनुचित, कर्तव्य और प्रलोभन के बीच चयन करना अत्यंत जटिल होता है। ऐसे क्षणों में केवल ईमानदार होने के दावे भर से काम नहीं चलता। मनुष्य को निरंतर मार्गदर्शन एवं शिक्षा की आवश्यकता होती है। यह समझना आवश्यक है कि ईमानदारी कोई स्थिर और एकबारगी प्राप्त होने वाली अवस्था नहीं, बल्कि एक निरंतर चलने वाली साधना है। यह आवश्यक नहीं कि एक ईमानदार व्यक्ति हर परिस्थिति में सही निर्णय ही ले। परिस्थितिजन्य दबाव, सामाजिक प्रभाव और मानसिक विश्रांति उसे विचलित कर सकते हैं। इसलिए उसे अपनी ईमानदारी को बनाए रखने के लिए लगातार शिक्षा और स्मरण दिलाते रहने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा का कार्य केवल अज्ञान को दूर करना ही नहीं, बल्कि अहंकार को भी नष्ट करना है। कितनी बार कोई विद्वान व्यक्ति यह मान बैठता है कि उसने सब कुछ जान लिया है — और यही भ्रम उसके पतन का कारण बनता है। शिक्षा उसे निरंतर यह एहसास दिलाती है कि ज्ञान की यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। यदि ईमानदारी केवल एक अस्पष्ट भावना मात्र रह जाए और उसकी जड़े बौद्धिक समझ एवं नैतिक बल से न जुड़ी हों, तो संकट के समय वह डगमगा सकती है। शिक्षा ही है जो इस भावना को तर्क, अनुभव और मूल्यों की दृढ़ नींव प्रदान करके उसे संकटों में भी टिकाऊ बनाती है।

सच्चाई यह है की सबसे अधिक मार्गदर्शन और शिक्षा की आवश्यकता उसी को होती है जो ईमानदार और सदाचार पर निरंतर बना रहता है, ताकि उसकी ईमानदारी समय की कसौटी पर खरी उतर सके और वह समाज के लिए एक प्रेरणादायक आदर्श बन सके।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह हूद

92. परीक्षा लेवे तुम को, कौन तुम में से अच्छा है कर्मों में। जो कहे तू! अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्यु के। 11: 7 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब कर्मों की परीक्षा करता है तो सर्वज्ञ ही नहीं। और जो मृत्यु पीछे उठाता है तो दौड़ा सुपुर्द रखता है और अपने नियम जो कि मरे हुए न जीवें उस को तोड़ता है। यह खुदा को बट्टा लगता है।

उत्तर:

परीक्षा का वास्तविक उद्देश्य

निःसंदेह, जो सर्वज्ञ है उसे परिणामों का पहले से ही ज्ञान होता है। परंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या केवल सर्वज्ञता के आधार

पर ही ईश्वर किसी को दंडित कर सकता है? यह कह कर कि "तुम्हें तो ऐसा करना ही था, इसलिए यह दंड स्वीकार करो?"
'परीक्षा' शब्द अपने भीतर दो प्रमुख अर्थ समेटे हुए है। प्रथम — किसी व्यक्ति की स्थिति, प्रवृत्ति और चरित्र की जाँच करना। दूसरा — उस व्यक्ति की अच्छाई या बुराई को इस प्रकार स्पष्ट करना कि वह स्वयं उसके लिए भी निर्विवाद रूप से प्रकट हो जाए। कभी परीक्षा दोनों ही उद्देश्यों से ली जाती है, और कभी केवल एक से; यह परीक्षा लेने वाले के ज्ञान पर निर्भर करता है।

स्पष्ट है कि जब परीक्षक ईश्वर हो, तो पहले अर्थ की आवश्यकता ही नहीं रहती। क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है — वह प्रकट और अप्रकट, सब उसके ज्ञान में है। इसलिए ईश्वर की परीक्षा का उद्देश्य जाँच करना नहीं, बल्कि उसकी परीक्षा का एकमात्र उद्देश्य मनुष्यों को उसके अपने कर्मों से अवगत कराना होता है। न्याय तभी पूर्ण होता है जब व्यक्ति को अपनी नियत और आचरण को क्रियाओं के माध्यम से प्रकट करने का अवसर मिले। केवल ईश्वर का पूर्वज्ञान पर्याप्त नहीं, कर्म का प्रत्यक्ष प्रमाण आवश्यक है, ताकि दंड या पुरस्कार पर किसी प्रकार का संदेह न बचे। इसी कारण ईश्वर परीक्षा लेता है — ताकि न्याय पारदर्शी, निष्पक्ष और निर्विवाद रहे।

अब इतनी सूक्ष्म और गहन बात तथाकथित आर्यों की सतही समझ में कैसे आ सकती थी।

मृतकों को पुनर्जीवित करना

यह पहली बार हमें सुनने में आया है कि मृतकों को जीवित करना ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध है, जबकि क़ुरआन और हदीस में मृतकों के पुनर्जीवित होने का स्पष्ट उल्लेख है। प्रस्तुत आयत भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है। यदि क़ुरआन में इसके विपरीत कोई प्रमाण होता, तो दयानन्द को अवश्य ही उसे प्रस्तुत करना चाहिए था। परंतु पंडित का आशय वही विचित्र तर्क से है कि — "क्योंकि हमने आज तक ऐसा होते नहीं देखा," — तो इस पर हम विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि "आज तक तो हमने भी प्रलय के बाद अग्नि, वायु, अंगिरा और आदित्य को सृष्टि के विरुद्ध युवावस्था में जन्म लेते हुए भी नहीं देखा।"

इसके अतिरिक्त, पंडित के मतानुसार, ईश्वर मृत्यु के बाद जीवात्मा को पुनर्जन्म प्रदान करता है — अर्थात जिसे एक बार मृत्यु दी जा चुकी है, उसे फिर से जीवित करता है — साथ ही, प्रलय की अवस्था में ईश्वर तथा जीवात्मा दोनों ही चार अरब वर्षों तक दौरासुपुर्द रहते हैं।

यदि पंडित का यह तर्क सही माना जाए, तो पंडित का ईश्वर अपने ही नियम तोड़ता है, क्योंकि उसने भी मरे हुए जीवित किया है। यह तर्क वास्तव में वैदिक ईश्वर की ही सत्ता और सिद्धांत का बट्टा लगाता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

93. और कहा गया ऐ पृथिवी अपना पानी निगल जा और ऐ आसमान बस कर और पानी सूख गया। और ऐ कौम यह है कि निशानी ऊंटनी अल्लाह की वास्ते तुम्हारे, बस छोड़ दो उस को बीच पृथिवी अल्लाह के खाती फिरे। 11: 44 & 64 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या लड़केपन की बात है! पृथिवी और आकाश कभी बात सुन सकते हैं? वाह जी वाह! खुदा के ऊंटनी भी है तो ऊंट भी होगा? तो हाथी घोड़े, गधे आदि भी होंगे? और खुदा का ऊंटनी से खेत खिलाना क्या अच्छी बात है? क्या ऊंटनी पर

चढ़ता भी है? जो ऐसी बातें हैं तो नवाबी की सी घसड़पसड़ खुदा के घर में भी हुई।

उत्तर:

ईश्वर का आदेश संसार की प्रत्येक वस्तु सुनती और उसका पालन करती है

पंडित जी, ईश्वरीय व्यवस्था को मनुष्य की सीमित दृष्टि से आँकना वास्तव में लड़कपन की बात है। यह आयत हज़रत नूह (अ.) के प्रसंग से संबंधित है, जहाँ ईश्वर के आदेश पर धरती और आकाश ने उसकी आज्ञा का पालन किया। इससे यह सत्य प्रकट होता है कि संसार का प्रत्येक कण न ईश्वर द्वारा निर्धारित नियमों से संचालित होता है, बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड उसी के सीधे नियंत्रण में है। परंतु आश्चर्य तो यह है कि इतनी सरल और साथ ही गूढ़ बात भी पंडित की समझ से बाहर रही।

स्थिति तो यह है कि इस प्रकार की बातें केवल क़ुरआन में ही नहीं, बल्कि वेदों में भी स्पष्ट रूप से मिलती है। उदहारण के तौर पर —

सामवेद के मंत्र 1040 (आचार्य रामनाथ वेदालंकार के भाष्य) पर ध्यान दीजिए — "हे सोम! अर्थात जगत के स्रष्टा परमात्मा! आपके आदेश से विशाल, प्रवाहमयी नदियाँ गति करती हैं..."

सामवेद मंत्र 597 (आचार्य रामनाथ वेदालंकार) में कहा गया है —

"जगदीश्वर ही आदेश वचन होते ही नियुक्त हो जाने वाले भूमि-आकाश, दिन-रात, शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष, प्राण-अपान, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय, ऋक्-साम रूप घोड़ों को एक साथ संयुक्त करने वाले हैं।"

इतना ही नहीं, वेदों में संस्कृत में नदियों को उनके नाम लेकर संबोधित किया गया है तथा उनसे जल प्रदान करने की याचना की गई है। उदाहरण के तौर पर देखें ऋग्वेद 10.75.5 (ब्रह्ममुनि परिव्राजक) —

(गङ्गे) हे गमनशील समुद्र तक जानेवाली नदी! (यमुने) हे अन्य नदी में मिलनेवाली नदी! (सरस्वति) हे प्रचुर जलवाली नदी! (शुतुद्रि) हे शीघ्र गमन करनेवाली या बिखर-बिखर कर चलनेवाली नदी! (परुष्णि) हे परुष्णि-परवाली भासवाली-दीप्तिवाली इरावती कुटिलगामिनी (असिक्न्या) कृष्णरङ्गवाली नदी के स्थल (मरुद्वृधे) हे मरुतों वायुओं के द्वारा बढ़नेवाली फैलनेवाली नदी (वितस्तया) अविदग्धा अर्थात् अत्यन्त ग्रीष्म काल में भी दग्ध शुष्क न होनेवाली नदी के साथ (आर्जीकीये) हे विपाट्-किनारों को तोड़-फोड़नेवाली नदी (सुषोमया) पार्थिव समुद्र के साथ (मे स्तोमं सचत-आ-शृणुहि) मेरे अभिप्राय को या मेरे लिये अपने-अपने स्तर को सेवन कराओ तथा मेरे लिये जलदान करो

यदि पंडित की ही भाषा में कहें, तो उपर्युक्त सभी मंत्र उनकी दृष्टि में लड़कपन से भरे हैं, क्योंकि भला नदी, भूमि, आकाश आदि कब हमारी भाषा, पुकार और आदेश सुनने और समझने की क्षमता रखते हैं?

ईश्वर की ऊँटनी कहे जाने का कारण

इस्लाम की मान्यता के अनुसार ईश्वर ही समस्त ब्रह्मांड का एकमात्र स्वामी (मालिक) है। यह अवधारणा अपने आप में इतनी स्पष्ट एवं पूर्ण है कि अन्य सभी धारणाएँ इसके समक्ष तार्किक दृष्टि से दुर्बल और कमज़ोर प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि पंडित इस विचार से असहज महसूस करता है — क्योंकि वैदिक दर्शन में ईश्वर के साथ-साथ जीव और प्रकृति को भी सनातन (अनादि) माना गया है। प्रश्न यह उठता है कि यदि जीव और प्रकृति ईश्वर से पृथक् एवं स्वतंत्र सत्ताएँ हैं, तो फिर ईश्वर

स्वयं को संपूर्ण सृष्टि का एकमात्र स्वामी कैसे कह सकता है? वह उन्हें अपना कैसे कह सकता है? किसी ऐसी वस्तु पर स्वामित्व का दावा करना, जो वास्तव में उसकी है ही नहीं, एक प्रकार का अन्याय एवं अनैतिकता होगी।

इसके विपरीत, इस्लाम का दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट और सुसंगत है। इस्लाम के अनुसार ईश्वर ने अपनी परम शक्ति एवं सामर्थ्य से इस समस्त सृष्टि को अस्तित्व में लाया है। जो सत्ता किसी वस्तु को अस्तित्व में लाती है, स्वाभाविक रूप से वही उसका वास्तविक और निर्विवाद स्वामी भी होता है। अतः ईश्वर ही इस ब्रह्मांड का एकमात्र मालिक है, और उन सब को अपना कहना पूर्ण रूप से तर्कसंगत भी है।

क़ुरआन में वर्णित हज़रत सालेह (अ.) और उनकी ऊँटनी की घटना, सत्य को स्वीकार करने वालों के लिए एक स्पष्ट प्रमाण एवं शिक्षाप्रद प्रसंग है। इस घटना में ऊँटनी का विशेष रूप से उल्लेख इसलिए है क्योंकि वह कोई साधारण ऊँटनी नहीं, बल्कि ईश्वर की ओर से नियुक्त की गई एक निशानी के रूप में थी। उसकी महत्ता को रेखांकित करने के लिए ही उसे ईश्वर की ऊँटनी कहा गया।

हज़रत सालेह (अ.) ने अपने समुदाय को मूर्ति पूजा और बहुदेववाद का परित्याग करके, केवल एक ईश्वर की उपासना का आह्वान किया। वर्षों तक उन्होंने अपने लोगों को सत्य, सदाचार और नैतिक जीवन की शिक्षा दी और लोगों को ईश्वरीय दंड से सावधान किया। किंतु उनकी समुदाय ने न सिर्फ उनकी बातों को ठुकराया, बल्कि उनका उपहास भी उड़ाया। उन्होंने कहा, तुम्हारी बातें सुनकर तो लगता है कि तुम जादू के प्रभाव में हो या पागल हो गए हो। तुम्हारी इन उलझी हुई बातों को हम कैसे मान लें, जबकि तुम हमारे जैसे एक साधारण मनुष्य हो। अंततः, उन्होंने हज़रत सालेह को एक चुनौती दे डाली — यदि तुम सच्चे हो, तो वह दंड लेकर आओ जिसकी तुम हमे चेतावनी दे रहे हो। उनकी इस हठधर्मिता और अविश्वास के उत्तर में, ईश्वर ने एक ऊँटनी को नियुक्त किया। हज़रत सालेह (अ.) ने अपनी समुदाय को स्पष्ट चेतावनी देते हुए कहा — यह ऊँटनी ईश्वर की ओर से एक निशानी है। इसे कोई क्षति न पहुँचाओ, वरना तुम्हें एक भयानक दंड ग्रस्त करेगा। यह ऊँटनी उनके लिए एक परीक्षा और दया व दंड के बीच का अंतिम अवसर थी। यदि वे इसे स्वीकार करके ईश्वर की ओर लौट आते, तो उन्हें ईश्वर क्षमा कर सकता था। दुर्भाग्यवश, उनकी दुष्टता इतनी प्रबल थी कि उन्होंने उस ऊँटनी को मार डाला। इस स्पष्ट अवज्ञा के बाद भी, ईश्वर ने उन्हें तत्काल दंडित नहीं किया, बल्कि तीन दिन की अंतिल मोहलत दी, ताकि वे पश्चाताप कर सकें। किंतु वे अपने ज़िद पर अड़े रहे और इस अंतिम चेतावनी को भी ठुकरा दिया। अतंतः, वही प्रलयकारी दंड आया, जिससे वे सावधान किए गए थे।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

94. और सदैव रहने वाले बीच उस के जब तक कि रहें आसमान और पृथिवी। और जो लोग सुभागी हुए बस बहिश्त के सदा रहने वाले हैं; जब तक रहें आसमान और पृथिवी। 11: 107-108 क़ुरआन.

समीक्षकः- जब दोज़ख और बहिश्त में कयामत के पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किस लिए रहेगी? और जब दोजख और बहिश्त के रहने की आसमान पृथिवी के रहने तक अवधि हुई तो सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़ख में, यह बात झूठी हुई। ऐसा कथन अविद्वानों का होता है; ईश्वर वा विद्वानों का नहीं।

उत्तर:

अरबी मुहावरा; आकाश और धरती कायम हैं

आयत का उद्देश्य वर्तमान सृष्टि की किसी निश्चित अवधि को बताना या उसे किसी से जोड़ना नहीं है। "जब तक आकाश और धरती कायम हैं" — यह वाक्य अरबी के उस प्रचलित मुहावरे के अनुरूप है, जो किसी चीज़ के सदैव बने रहने की तरफ संकेत करता है। यह ठीक वैसा ही है जैसे हिंदी में कहा जाता है — "जब तक सूरज-चाँद रहेगा।" ऐसे मुहावरे किसी निर्धारित समय-सीमा का संकेत नहीं देते, बल्कि किसी स्थिति की निरंतरता और स्थायित्व को व्यक्त करते है। क़ुरआन स्वर्ग और नर्क की अनंतता को स्पष्ट रूप से उल्लेख करता है, और यह भी बताता है कि जो लोग उनमें प्रवेश करेंगे, वे सदैव वही रहेंगे।

इसलिए आयत और क़ुरआन की शिक्षाओं के बीच किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है। जो विरोधाभास होने की बात कही जाती है, वह वास्तव में पंडित द्वारा ग्रहण की गई अपनी भ्रांति है — न कि क़ुरआन में किसी प्रकार की त्रुटि।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह यूसुफ

95. जब यूसुफ ने अपने बाप से कहा कि ऐ बाप मेरे मैंने एक स्वप्न में देखा। 12: 4 से 59 क़ुरआन.

समीक्षक:- इस प्रकरण में पिता पुत्र का संवादरूप किस्सा कहानी भरी है इसलिये कुरान ईश्वर का बनाया नहीं। किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है।

उत्तर:

यूसुफ की कथा में रसूल ﷺ के जीवन का उल्लेख

पंडित का यह दावा मात्र गुमान और अटकलों पर आधारित हैं — यह कोई ईश्वरीय वचन नहीं। ईश्वर के लिए यह कोई बाध्यता नहीं कि वह हमारे मार्गदर्शन के लिए अतीत की किसी घटना का वर्णन करें, या भविष्य की घटनाओं की सूचना दें। मानव को दिशा दिखाने के लिए, ईश्वर जिसे उचित समझता है, उसी माध्यम से मार्गदर्शन करता है।

क़ुरआन में हज़रत याक़ूब, हज़रत यूसुफ़ और ईश्वर के अन्य प्रिय बंदों का उल्लेख केवल पुरानी कहानियों के रूप में नहीं है, बल्कि उनमें गहन नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षाओं के स्रोत के रूप में किया गया है। इन वृत्तांतों में भविष्य की सटीक पूर्वसूचना भी निहित है — कि पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ और उनके अनुयायियों पर भी वैसी ही विपत्तियाँ आएंगी, जैसी उनसे पूर्व के लोगों पर आ चुकीं हैं। इसका उद्देश्य यह सिखाना है कि ऐसे संकटों में हिम्मत न हारकर, धैर्य और दृढ़ता के साथ उनका सामना किया जाए। यह बात स्वयं इस बात का प्रमाण है कि क़ुरआन ईश्वरीय वचन है, क्योंकि केवल ईश्वर ही अतीत, वर्तमान और भविष्य — तीनों कालों की समस्त घटनाओं का पूर्णज्ञ है।

यदि केवल "किस्से-कहानियों" के दायरे में ही बात की जाए, तो वेदों में भी ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं। संभव है कि वे ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित न हों, किंतु कल्पना पर तो अवश्य आधारित हैं — और सनातन धर्म के विद्वान स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। उदहारण के तौर पर — यम और यमी का संवाद (ऋग्वेद 10.10), अप्सरा उर्वश और पुरुरवा का

संवाद (ऋग्वेद 10.95), लोपामुद्रा और अगस्त्य का संवाद (ऋग्वेद 1.179), तथा इन्द्र और इंद्राणी का संवाद (ऋग्वेद 10.86) — ये सभी वेदों में वर्णित हैं।

अब यदि सनातन विद्वानों के ही दृष्टिकोण से तुलना की जाए, तो आर्य समाज की स्थिति क्या है कि उनके मत को ही अंतिम सत्य मान लिया जाए? क्या दयानन्द को अपने ही वचन स्मरण नहीं — "जिस धर्म के हज़ारों अनुयायी हों, उन्हें झूठा बताकर स्वयं को सच्चा बताना — उससे बड़ा झूठा और कौन हो सकता है? यदि वे भूल गए हैं, तो उन्हें यह याद कर लेना चाहिए।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह राद

96. अल्लाह वह है कि जिस ने खड़ा किया आसमानों को विना खम्भे के देखते हो तुम उस को। फिर ठहरा ऊपर अर्श के। आज्ञा वर्तने वाला किया सूरज और चांद को। और वही है जिस ने बिछाया पृथिवी को। उतारा आसमान से पानी बस बहे नाले साथ अन्दाजे अपने के। अल्लाह खोलता है भोजन को वास्ते जिस को चाहे और तंग करता है। 13:2-3-17-26 क़ुरआन.

समीक्षक:- मुसलमानों का खुदा पदार्थविद्या कुछ भी नहीं जानता था। जो जानता तो गुरुत्व न होने से आसमान को खम्भे लगाने की कथा कहानी कुछ भी न लिखता। यदि खुदा अर्शरूप एक स्थान में रहता है तो वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं हो सकता। और जो खुदा मेघविद्या जानता तो आकाश से पानी उतारा लिखा पुनः यह क्यों न लिखा कि पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया। इससे निश्चय हुआ कि कुरान का बनाने वाला मेघ की विद्या को भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे बुरे कामों के सुख दुःख देता है तो पक्षपाती अन्यायकारी निरक्षर भट्ट है।

उत्तर:

आसमानों के अदृश्य स्तंभ

अरबी भाषा में "समाअ" (आसमान) शब्द का प्रयोग एक नहीं, बल्कि कई सार्थक संदर्भों में किया जाता है। यह एक बहुअर्थी शब्द है, लेकिन पंडित और उनके अनुयायी इस तथ्य से पूर्णतः अनभिज्ञ है।

समाअ के कुछ प्रमुख अर्थ इस प्रकार हैं, जो वर्तमान प्रसंग से सीधे जुड़े हुए हैं —

कभी इसका अर्थ "छत्र" या "आवरण" होता है।

कभी यह "ऊँचाई" या "बुलंदी" के लिए प्रयुक्त होता है।

कई बार यह किसी ऐसी वस्तु का द्योतक होता है जो किसी अन्य वस्तु के ऊपर स्थित हो। उदहारण के तौर पर, जो वस्तु नीचे है वह "ज़मीन" (अर्द) कहलाती है, लेकिन ऊपर स्थित वह वस्तु आसमान कहलाती है।

इसी प्रकार, यह शब्द किसी सतह या संरचना के ऊपरी हिस्से के लिए भी प्रयुक्त होता है।

इसका सुंदर उदाहरण अरबी के एक प्रसिद्ध कवि के इस शेर में मिलता है, जहाँ वह एक घोड़े का वर्णन करते हुए कहता है — "वा अहमरु कद्दीबाज़ि अम्मा समाअतुहू फरय्युन वा अम्मा अर्ज़ुहू फमहूलुन"

अर्थात — वह मखमल-सा लाल है; उसका ऊपरी भाग ताज़ा और मुलायम है, जबकि निचला भाग दुबला और कठोर है।

इन उदहारण से यह स्पष्ट है कि "समाअ" शब्द का सही अर्थ पूर्णतः उसके प्रसंग पर निर्भर करता है।

जब हम क़ुरआन की आयत पर दृष्टिपात करते हैं, जहाँ सूर्य, चंद्रमा और तारों की चर्चा है, तो संदर्भ स्पष्ट हो जाता है। आयत बताती है कि ये सभी खगोलीय पिंड एक व्यवस्था के अधीन हैं, और ईश्वर ने ही उन्हें नियंत्रित किया हुआ है और प्रत्येक एक निर्धारित मार्ग पर स्थिरतापूर्वक गतिमान है। यह दर्शाता है कि यह संपूर्ण ब्रह्मांड न केवल ईश्वरीय आदेश से अस्तित्व में आया, बल्कि उसी की व्यवस्था से सुचारू रूप से संचालित भी हो रहा है।

इसी संदर्भ में मनुष्य यह अवलोकन करता है कि जहाँ एक साधारण छत भी बिना सहारे खड़ी नहीं रह सकती, वहीं आसमान अर्थात सूर्य, चंद्रमा और तारे — जिन्हें वह अपनी खुली आँखों से देखता है — बिना किसी दृश्यमान सहारे कैसे स्थित हैं? वास्तव में, यहाँ गुरुत्वाकर्षण जैसी एक अदृश्य शक्ति की ओर सूक्ष्म संकेत है, जिसके माध्यम से ईश्वर ने इस विशाल सृष्टि को संतुलित रखा है। यदि यह शक्ति क्षणभर के लिए भी विद्यमान न रहे, तो यह समस्त व्यवस्था चरमरा कर टूट जाए; ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराने लगें या धरती पर आ गिरें।

इस प्रकार, यह आयत ईश्वर की असीम शक्ति, उसकी अतुल्य बुद्धिमत्ता (हिकमत) और सूक्ष्म योजना का वर्णन करती है। यह इस तथ्य की ओर भी इशारा करती है कि उसकी सृष्टि की समग्रता को मानवीय बुद्धि के पैमाने से पाना असंभव है।

अर्श से संबंधित इस्लामी मत और उसकी व्याख्या क्रमांक 72 में देखें।

पृथ्वी से पानी का ऊपर चढ़ाना और आयत का अर्थ

किसी स्थान पर किसी विषय का उल्लेख न होने से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि लेखक या वक्ता उस विषय से अनभिज्ञ था। पंडित द्वारा उठाए गए प्रश्न का स्पष्ट उत्तर क़ुरआन के अन्य स्थलों पर मिलता है; जैसे सूरह रूम (30:48) और सूरह हिज्र (15:22)। विशेष रूप से सूरह रूम (30:48) में अरबी शब्द "फ़-तुसीरु" का सटीक अर्थ वाष्प (हवा में मौजूद जल की गैसीय अवस्था) को नीचे से ऊपर की ओर उठाना है। पंडित जी की आपत्ति थी कि "पृथ्वी से पानी को ऊपर चढ़ाया" क्यों नहीं लिखा। किंतु, उल्लेखित आयत में यही अर्थ स्पष्ट रूप से अंतर्निहित है कि जल को पृथ्वी से आकाश की ओर उठाया जाता है।

अब उस आयत का संदर्भ, जिस पर आपत्ति की गई है। आयत का वास्तविक भाव यह है कि अधर्मी लोग भले ही कुछ समय के लिए सुखी और सफल प्रतीत हों, किंतु उनकी यह स्थिति क्षण भर की होती है। इस सत्य को समझाने के लिए वर्षा के पश्चात नालों, नदियों, झीलों और समुद्र में बनने वाले झाग की उपमा दी गई है — जो थोड़े समय में नष्ट हो जाता है। ठीक उसी प्रकार, अधर्मियों का सांसारिक सुख और प्रतिष्ठा अस्थायी है और उनका अंतिम परिणाम बुरा ही होगा।

पंडित दयानन्द ने इस उपमा को मेघ-विद्या जैसी आप्रासंगिक बातों से जोड़ दिया — वाह रे हमारी किस्मत, किन 'महान' बुद्धिजीवियों से हमारा सामना हुआ है।

कभी-कभी लगता है कि इस प्रकार की अज्ञानपूर्ण आपत्तियों का उत्तर देना समय की बर्बादी है; लेकिन क्या करें, तथ्यों को स्पष्ट करना भी आवश्यक है ताकि भ्रांत धारणाओं का खंडन हो सके।

अच्छे और बुरे कर्मों का उत्तर पहले भी कई स्थानों पर दिया जा चुका है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

97. कह निश्चय अल्लाह गुमराह करता है जिस को चाहता है और मार्ग दिखलाता है तर्फ अपनी उस मनुष्य को रुजू करता है। 13: 27 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब अल्लाह गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद हुआ? जब कि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात् बहकाने से बुरा कहाता है तो खुदा भी वैसा ही काम करने से बुरा शैतान क्यों नहीं? और बहकाने के पाप से दोज़खी क्यों नहीं होना चाहिये?

उत्तर:

विस्तृत उत्तर के लिए कृपया क्रमांक 11 और 71 देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

98. इसी प्रकार उतारा हम ने इस कुरान को अर्बी में, जो पक्ष करेगा तू उन की इच्छा का पीछे इस के आई तेरे पास विद्या से। बस सिवाय इस के नहीं कि ऊपर तेरे पैग़ाम पहुँचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना। 13: 37-40 क़ुरआन.

समीक्षक:- कुरान किधर की ओर से उतारा? क्या खुदा ऊपर रहता है? जो यह बात सच्च है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है। पैगाम पहुँचाना हल्कारे का काम है और हल्कारे की आवश्यकता उसी को होती है जो मनुष्यवत् एकदेशी हो। और हिसाब लेना देना भी मनुष्य का काम है; ईश्वर का नहीं क्योंकि वह सर्वज्ञ है। यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्य का बनाया कुरान है।

उत्तर:

क़ुरआन का अवतरण

क़ुरआन के अवतरण का मूल भाव यह है कि यह ईश्वरीय आदेश से पैग़ंबर मुहम्मद ﷺ पर उतारा गया। इस दिव्य ज्ञान को लाने वाले फ़रिश्ते जिब्रील (अ.) थे, जिनका वास आकाश में माना जाता है। वे ईश्वर की आज्ञा के अनुसार ही नबी ﷺ पर क़ुरआन की आयतों का नज़ूल करते थे।

यहाँ उतारने (नज़ूल) का प्रयोग ईश्वर के किसी भौतिक दिशा या स्थान का बोध नहीं कराता। यह केवल आदेश के पालन और ज्ञान के हस्तांतरण की प्रक्रिया को दर्शाता है, न कि ईश्वर के किसी विशिष्ट स्थान में रहने या किसी दिशा से स्वयं आने को। इसे एक उदाहरण से समझें, यदि कोई कहे — "मैं प्रतिदिन दयानन्द साहब को वेदों के मंत्र भेजता हूँ," तो भेजने शब्द से यह निर्धारित नहीं होता कि मंत्र ऊपर से भेजा गया या नीचे से। यह केवल इंगित करता है कि मंत्र एक स्रोत से दूसरे तक पहुँचा। इसी प्रकार, यदि कहा जाए — "दयानन्द जी ने अपने शिष्य को सत्यार्थप्रकाश तोहफ़े में दिया," तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से जाकर पुस्तक दी; वे किसी सेवक या अन्य माध्यम से भी यह पुस्तक भिजवा सकते है।

ठीक यही सिद्धांत क़ुरआन के नज़ूल पर भी लागू होता है। ईश्वर ने जिब्रील (अ.) को क़ुरआन पहुँचाने का आदेश दिया, और संदेशवाहक ने आदेशानुसार अपना कार्य किया। इस पूरी प्रक्रिया में ईश्वर के लिए "उपर", "नीचे", "दाएँ", या "बाएँ" जैसी किसी भौतिक दिशा की कल्पना करना तर्कहीन है, क्योंकि ईश्वर स्थान, दिशा और सीमाओं से परे है।

संदेश पहुँचाना निश्चित रूप से संदेशवाहक का कार्य है — इसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। लेकिन यह कहना कि संदेशवाहक की उपस्थिति ईश्वर के एकदेशी होने का प्रमाण है, तर्कसम्मत नहीं है। यदि इस तर्क को स्वीकार कर लिया जाए, तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि जब मानवजाति को वेद का ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा जैसे ऋषियों के माध्यम से प्राप्त हुए, तब वैदिक ईश्वर भी एकदेशी था। क्या इस निष्कर्ष को स्वयं दयानन्द स्वीकार कर सकते है? स्पष्ट है कि इस प्रकार की आपत्ति न तो तार्किक है और न ही किसी प्रमाण पर आधारित — यह केवल कल्पना पर आश्रित है।

मृत्यु के बाद पारदर्शी न्यायिक प्रक्रिया का अभाव आर्य मत की कमी

हिसाब लेने का अर्थ यहाँ प्रतिफल प्रदान करना है। यह एक पारदर्शी न्यायिक प्रक्रिया का नाम है, जिसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक व्यक्ति के सामने उसके कर्मों का पूरा एवं स्पष्ट लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाए और वह स्वयं उसे देख-समझ सके। यही वह सिद्धांत है जिसके तहत गवाह, प्रमाण और निर्णय — सब कुछ — सबके सामने खुले तौर पर रखा जाता है। निःसन्देह, सर्वज्ञ ईश्वर के लिए ऐसी किसी औपचारिक प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं; किंतु सीमित बुद्धि वाले मनुष्य के लिए यह अनिवार्य है कि वह स्पष्ट रूप से अपनी आँखों से देख ले कि उसके साथ पूर्ण न्याय हुआ है। क़ुरआन में इसी मौलिक तथ्य को अनेक स्थानों पर विस्तार से समझाया गया है, जैसे —

- (सूरह अल-कहफ़ 18:49)
- (सूरह अल-इसरा 17:13-14)
- (सूरह अल-जालज़ला 99:6-8)

वास्तव में, यह पूरी अवधारणा आर्यसमाजी चिंतन में पूरी तरह से समझ में इसलिए नहीं आती, क्योंकि उनकी विचारधारा में मृत्यु के बाद की इस प्रकार की कोई सुस्पष्ट न्यायिक व्यवस्था ही नहीं है। इसलिए जब उनके यहाँ जीव को मृत्यु के पश्चात दूसरी योनियाँ मिलती है, तो उसे यह तक ज्ञात नहीं होता कि उसे प्राप्त होने वाला फल (सुख या दुःख) उसके किस विशेष कर्म का परिणाम है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह इब्राहिम

99. और किया सूर्य चन्द्र को सदैव फिरने वाला। निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करने वाला है। 14: 33-34 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या चन्द्र, सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षों का दिन रात होवे। और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करने वाला है तो कुरान से शिक्षा करना व्यर्थ है। क्योंकि जिन का स्वभाव पाप ही करने का है तो उन में पुण्यात्मता कभी न होगी और संसार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं। इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती।

उत्तर:

ईश्वर द्वारा प्रदान किए गए साधन और संसाधन

मनुष्य के जीवन के लिए जिन-जिन साधनों और संसाधनों की आवश्यकता होती है, वे सभी ईश्वर ने अपनी कृपा से उसके लिए उपलब्ध कर दिए हैं। मनुष्य इन्हीं उपहारों से लाभ उठाता है और इन्हीं पर उसके जीवन की संपूर्ण व्यवस्था आधारित है। स्वाभाविक रूप से अपेक्षित था कि मनुष्य अपने पालनहार का आभारी बने, उसके उपकारों को पहचाने और कृतज्ञता के साथ उसका अनुसरण करे। लेकिन वास्तविकता यह है कि मनुष्य अक्सर अकृतज्ञ हो जाता है और उन नेमतों की क़द्र नहीं करता, जिन पर उसका अस्तित्व टिका हुआ है।

इन आयतों का उद्देश्य कोई खगोलीय या वैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत करना नहीं है, बल्कि मानव का ध्यान ईश्वर के असंख्य उपकारों की ओर आकर्षित करना और उसके भीतर कृतज्ञता की भावना जागृत करना है। इसी संदर्भ में धरती और आकाश की व्यवस्था का ज़िक्र भी उपदेश के रूप में किया गया है — ताकि मनुष्य समझ सके कि यह विशाल प्रणाली किसी संयोग का परिणाम नहीं, बल्कि एक महान सत्ता की योजना और हिकमत का हिस्सा है।

हर खगोलीय पिंड का अपनी कक्षा में तैरना

जहाँ तक पृथ्वी की गति का प्रश्न है, क़ुरआन ने इस ओर स्पष्ट संकेत दिए हैं। सूरह यासीन की आयतें देखिए —

"और उनके लिए रात और दिन के आवर्तन में भी निशानी है। जब रात, दिन को ढक लेती है और वह (दिन का प्रकाश) हट जाता है। और सूर्य अपने निर्धारित मार्ग पर चल रहा है — यह प्रबल, सर्वज्ञ ईश्वर का निर्धारित किया हुआ नियम है। और चाँद के लिए भी हमने चरण निर्धारित किए, यहाँ तक कि वह खजूर की मुड़ी हुई सूखी टहनी के समान दिखाई देने लगता है। न सूर्य के लिए संभव है कि वह चंद्रमा को पकड़ ले, और न रात दिन से आगे बढ़ सकती है। सभी (आकाशीय पिंड) एक निश्चित कक्षा में तैर रहे हैं।" (36:37–40)

यह आयत स्पष्ट रूप से ब्रह्मांड की हर वस्तु — सूर्य, चंद्रमा और पृथ्वी पर रात-दिन का परिवर्तन (जो उसकी गति के बिना संभव नहीं) — सबकी निरंतर गति की ओर संकेत करती है।

क़ुरआन में इसी मौलिक सत्य को अन्य स्थानों पर भी दोहराया गया है। उदाहरण के तौर पर —

"और वही है जिसने रात और दिन तथा सूर्य और चंद्रमा को बनाया। प्रत्येक अपनी-अपनी कक्षा में तैर रहा है।" (सूरह अंबिया 21:33)

"निश्चय ही रात और दिन के आवर्तन में, और उन सब चीज़ों में जिन्हें ईश्वर ने आकाशों और धरती में पैदा किया है, सोच-विचार करने वालों के लिए निशानियाँ हैं।" (सूरह यूनुस 10:6)

एक विशिष्ट समूह की चेतावनी को छल से सार्वभौमिक बताना

पंडित ने आयत के संदर्भ और उसके उद्देश्य को अनदेखा कर के एक ऐसा अर्थ थोपने का प्रयास किया है, जो उस आयत का मूल भाव ही नहीं है। इसे कुछ सरल उदाहरणों से समझें —

क़ुरआन की संबंधित आयत विशेष रूप से उन लोगों को संबोधित है, जो सत्य को अस्वीकार करते हैं और ईश्वर के प्रति

कृतघ्नता दिखाते हैं। यहाँ उन्हीं की मानसिकता और कर्मों का वर्णन है, न कि समस्त मनुष्य की प्रकृति का। यदि क़ुरआन मनुष्य को केवल नकारात्मक रूप से देखता, तो वह यह कदापि नहीं कहता कि मनुष्य एक 'सर्वोत्तम रचना' अर्थात ज्ञानवान, सक्षम, इच्छाशक्ति-सम्पन्न, वाक्शक्ति से युक्त, सुनने-देखने वाला, विचार-विमर्श और तर्क करने में सक्षम बनाया गया है, जैसा कि सूरह अत-तीन (95:4) में वर्णित है।

स्पष्ट है कि क़ुरआन का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट है — मनुष्य की प्रकृति में अच्छाई और बुराई दोनों की क्षमता विद्यमान है। और उसकी असल परीक्षा यही है कि वह किस मार्ग का चुनाव करता है।

किंतु, पंडित ने यहाँ जो छल किया है, वह यह है कि आयत में एक विशिष्ट समूह के बारे में कथन को, संपूर्ण मानवजाति पर लागू कर दिया, जबकि आयत का संदर्भ पूर्णतः उन्हीं लोगों से संबंधित है जो सत्य को ठुकराते हैं। यह ठीक वैसा ही है, जैसे कोई यह कहे कि "दवा मनुष्य के लिए फायदेमंद है," और आपत्तिकर्ता इस से यह निष्कर्ष निकाल लें कि यहाँ समस्त मानवजाति के लिए बात हो रही है। स्पष्ट है कि आपत्तिकर्ता ने मूल कथन का अर्थ पूरी तरह से विकृत कर दिया। वास्तविक अर्थ तो यह है कि जो व्यक्ति बीमार है, उसके इलाज के लिए दवा आवश्यक और लाभकारी है। यह कथन दवा हर किसी के लिए है नहीं कह रहा।

ठीक इसी प्रकार, क़ुरआन की यह आयत जो मनुष्य को अन्यायी कहती है, वह समस्त मानवजाति के लिए नहीं है, बल्कि एक विशिष्ट समूह के लिए कही गई है, जो उस आयत के संदर्भ से सीधे सम्बंध रखता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह हिज्र

100. बस जब ठीक करूँ मैं उस को और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनी से। बस गिर पड़ो वास्ते उस के सिजदा करते हुए। कहा ऐ रब मेरे, इस कारण कि गुमराह किया तू ने मुझ को अवश्य जीनत दूंगा मैं वास्ते उन के बीच पृथिवी के और गुमराह करूंगा। 15: 29 से 39 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो खुदा ने अपनी रूह आदम साहेब में डाली तो वह भी खुदा हुआ और जो वह खुदा न था तो सिजदा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करने में अपना शरीक क्यों किया? जब शैतान को गुमराह करने वाला खुदा ही है तो वह शैतान का भी शैतान बड़ा भाई गुरु क्यों नहीं? क्योंकि तुम लोग बहकाने वाले को शैतान मानते हो तो खुदा ने भी शैतान को बहकाया और प्रत्यक्ष शैतान ने कहा कि मैं बहकाऊंगा। फिर भी उस को दण्ड देकर कैद क्यों न किया? और मार क्यों न डाला?

उत्तर:

वस्तु को ईश्वर से मंसूब करना उसकी महत्ता को दर्शाना है

यह तथ्य पूर्व में भी स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी वस्तु को ईश्वर की ओर संबंधित (मंसूब) करना या उसे अपना बताना, वास्तव में उसकी महत्ता, विशिष्टता और सम्मान को दर्शाने के लिए होता है। इस्लामी दृष्टिकोण से आत्मा ईश्वर की ही एक सृष्टि है। जब आयत में कहा गया कि हमने आदम में अपनी आत्मा फूँकी, तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि ईश्वर ने अपनी दिव्यता (उलूहियत) का कुछ अंश आदम (अ.) में प्रवेश करा दिया। बल्कि, इसका वास्तविक अर्थ यह है कि ईश्वर ने

अपने रची गई एक आत्मा को हज़रत आदम (अ.) में प्राणस्वरूप प्रविष्ट कर दी।

इस आयत का मूल उद्देश्य मानव जाति की श्रेष्ठता तथा उसके विशिष्ट स्थान को प्रकट करना है — यह कि ईश्वर ने उसे अपनी सर्वोत्तम कृतियों में से एक के रूप में सृजा, और उसे बुद्धि, विवेक तथा नैतिक उत्तरदायित्व का वह महान दर्जा प्रदान किया, जो अन्य किसी सृष्टि को प्राप्त नहीं है। मानव की इसी अद्वितीय प्रतिष्ठा के प्रतीक के रूप में आत्मा को ईश्वर की ओर संबंधित किया गया, ताकि उसकी विशिष्टता, श्रेष्ठता, गरिमा और महत्ता स्पष्ट रूप से प्रकट हो सके।

यदि इतनी सरल और सीधी एवं स्पष्ट बात समझ में नहीं आती, तो कम से कम अपने द्वारा ही कही गई इस बात पर ही चिंतन कर लो — "जहाँ-जहाँ (अर्थ) असम्भव होता है, वहाँ-वहाँ लक्षणा (अर्थ) होती है।" (ऋग्वेद भाष्यभूमिका, विषय वेदोत्पत्ति, पृ. 13)।

शिर्क के विषय पर पहले ही पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, अतः उसकी पुनरावृत्ति यहाँ अनावश्यक है। हज़रत आदम (अ.) को सज्दा करने के आदेश के संबंध में — जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि ईश्वर ने आदम को संपूर्ण सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ एवं उत्तम स्थान प्रदान किया है। इस विशिष्टता और उच्चता को केवल वचनों तक सीमित न रखकर, उसे प्रत्यक्ष रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस उद्देश्य से ईश्वर ने फ़रिश्तों को आदेश दिया कि वे आदम (अ.) को सज्दा करें।

यह सज्दा किसी इबादत (उपासना) के अर्थ में नहीं, बल्कि सम्मान, आदर और मानव की गरिमा की एक सार्वभौमिक घोषणा के रूप में था। अतः यह किसी भी प्रकार से शिर्क नहीं कहलाता। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि आप ने स्वयं उपदेश-मंजरी (पृ. 40) में कहा है — "आचार्य और अतिथि — इनका पूजन अर्थात सत्कार करना ही है। इसी प्रकार मनु स्मृति में भी स्त्री को पूजनीय कहा गया है।" स्पष्ट है कि जिस प्रकार आपने यहाँ पूजा का आशय उपासना नहीं, बल्कि सत्कार और सम्मान से लिया है, यदि यही शब्द परमेश्वर के लिए प्रयुक्त होता तो उसका अर्थ उपासना होता। ठीक उसी प्रकार, उक्त आयत में प्रयुक्त सज्दा को भी उसके विशिष्ट संदर्भ में ही समझना चाहिए — अर्थात सम्मान और आदर का भाव, न कि उपासना या शिर्क।

शैतान से जुड़ी बातें क्रमांक 11, 71 एवं अन्य स्थानों पर पूर्व में ही वर्णित की जा चुकी हैं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह नहल

101. और निश्चय भेजे हम ने बीच हर उम्मत के पैग़म्बर। जब चाहते हैं हम उस को, यह कहते हैं हम उस को हो! बस हो जाती है। 16: 36 & 40 क़ुरआन.

समीक्षक:- जो सब कौमों पर पैग़म्बर भेजे हैं तो सब लोग जो कि पैग़म्बर की राय पर चलते हैं वे काफ़िर क्यों? क्या दूसरे पैग़म्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हारे पैग़म्बर के? यह सर्वथा पक्षपात की बात है। जो सब देश में पैग़म्बर भेजे तो आर्यावर्त में कौन सा भेजा? इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं। जब खुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा, वह जड़ कभी नहीं सुन सकती। खुदा का हुक्म क्योंकर बजा सकेगा? और सिवाय खुदा के दूसरी चीज नहीं मानते तो सुना किस ने? और हो कौन गया? ये सब अविद्या की बातें हैं। ऐसी बातों को अनजान लोग मानते हैं।

उत्तर:

ईश्वर द्वारा मानवता के मार्गदर्शन हेतु पैग़म्बरों का भेजना

ईश्वर ने मानवता का मार्गदर्शन करने के लिए हर समुदाय में पैग़म्बर भेजे। किंतु लोगों ने अलग-अलग प्रतिक्रिया दी — किसी ने उन्हें स्वीकार किया, किसी ने अस्वीकार कर दिया। जिन्होंने अपने युग के पैग़म्बर को माना, वे मुसलमान अर्थात ईश्वर के धर्म को स्वीकार करने वाले लोग कहलाए; और जिन्होंने उनका इनकार किया, वे काफ़िर या आपकी भाषा में अधर्मी कहलाए।

पैग़म्बरों का प्रमुख कार्य मानव समाज में फैले मतभेदों को दूर करना तथा सही और ग़लत के बीच अंतर स्पष्ट करना था। परंतु अधिकांश लोगों ने सत्य को ग्रहण करने के स्थान पर पैग़म्बरों का विरोध किया और उनकी शिक्षाओं के प्रति शत्रुता का भाव रखा। उदाहरण के तौर पर, हिंदुओं के संदर्भ में देखें — वेदों में निहित एकेश्वरवादी शिक्षाओं को मूर्तिपूजा में परिवर्तित कर दिया। और जब आपने उन्हें शुद्ध धार्मिक शिक्षा की ओर बुलाया, तो उन्होंने उसे स्वीकार करने के बजाए विवाद और विरोध का मार्ग चुना तथा आपके शत्रु बन बैठे।

इस्लाम के अनुसार, ईश्वरीय शिक्षाओं के विकृत हो जाने, मानवीय विचलन, सामाजिक-मानसिक विकास तथा नवाचारों (बिद्अत) के उत्पन्न होने के कारण लोगों के लिए सही मार्ग की पहचान कठिन हो गई। इसलिए ईश्वर ने अपने नबियों को भेजकर धर्म की पुनः स्थापना की तथा समाज में घर कर गई विकृतियों का सुधार किया। किंतु जिस प्रकार हिंदू आपके विरोधी बने, उसी प्रकार प्रत्येक युग में लोग नबियों के विरोधी हो गए और उनकी शिक्षाओं को ठुकरा दिया। अतः, जिन्होंने पैग़म्बरों के संदेश को अस्वीकार किया, क़ुरआन ने उन्हें काफिर की संज्ञा दी — अर्थात आपकी भाषा में अधर्मी या नास्तिक। क्योंकि ईश्वर का अंतिम संदेश (क़ुरआन) तथा अंतिम पैग़म्बर ﷺ उसी धर्म का अंतिम श्रृंखला है इसलिए उसे मानना सम्पूर्ण मानवता पर अनिवार्य है। अतः, जो इसे स्वीकार करेगा, वह ईश्वर के धर्म को स्वीकार करने वाला होगा और जो अस्वीकार करेगा वह ईश्वर के धर्म का अस्वीकार करने वाला होगा।

पंडित जी, इस्लाम ने मुसलमानों को स्पष्ट आदेश दिया है कि वे पूर्ववर्ती नबियों का अनादर न करें। वास्तव में, वह व्यक्ति मुसलमान कहलाने का अधिकारी ही नहीं, जो पूर्व नबियों का आदर नहीं करता।

जहाँ तक आर्यों में नबी भेजे जाने का प्रश्न है, क़ुरआन में स्पष्ट कहा गया है —

"और (ऐ रसूल) हमने तुमसे पहले बहुत से रसूल भेजे उनमें से कुछ का वर्णन हमने तुमसे किया और कुछ का वर्णन नहीं किया।" — (सूरह ग़ाफ़िर, 40:78)

अतः निश्चित रूप से आर्यों में भी कोई न कोई नबी अवश्य आया होगा। जैसे — महात्मा बुद्ध अथवा वेदों में वर्णित कुछ ऋषि। संभव है कि वे ईश्वरीय दूत रहे हों या नबियों के अनुयायी। किंतु चूँकि यह पूर्णतः स्पष्ट नहीं है, इसलिए हम निश्चित रूप से यह दावा नहीं करते कि अमुक ऋषि ही वह नबी थे, जिनका क़ुरआन में उल्लेख है।

पुराणों में मनु की कथा — विशेषकर जल-प्रलय का प्रसंग — क़ुरआन और बाइबिल में वर्णित हज़रत नूह (अ.) की घटना से मिलता-जुलता प्रतीत होता है। उसी प्रकार, श्रीकृष्ण और कंस का प्रसंग, फ़िरऔन और मूसा (अ.) की घटना से साम्य

रखता है। ये समानताएँ संकेत देती है कि आर्यों में भी नबी आए और उन्होंने अपने समुदाय को सत्य की ओर बुलाया। परंतु अन्य समुदायों की तरह यहाँ भी कुछ लोगों ने उन्हें स्वीकार किया और कुछ ने विरोध किया।

जहाँ तक इन घटनाओं की ऐतिहासिकता का प्रश्न है — बहुत सी कथाएँ मिलावटों सी प्रतीत होती हैं और यही कारण है कि हम उन्हें स्पष्ट रूप से नबी नहीं कह पाते। जैसा कि आप भी मानते हैं, पुराणों की अनेक घटनाएँ ऐतिहासिक प्रतीत होती हैं, तो अनेक में मिलावट भी है। संभव है इन्हीं विकृतियों के कारण बहुत-सी मूल संदेश लुप्त हो गए हो। इस्लाम का सिद्धांत यह है कि जो बातें क़ुरआन से मेल खाती हैं, हम उन्हें सत्य कहते हैं; और जो विपरीत हैं, उन्हें स्वीकार नहीं करते।

शेष आपत्तियों के उत्तर के लिए क्रमांक 93 और 28 देखें।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

102. और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां पवित्रता है उस को — और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें। कसम अल्लाह की अवश्य भेजे हम ने पैग़म्बर। 16: 57 & 63 क़ुरआन.

समीक्षक:- अल्लाह बेटियों से क्या करेगा? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहिये, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं? इस का क्या कारण है बताइये? कसम खाना झूठों का काम है, खुदा की बात नहीं। क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो झूठा होता है वही कसम खाता है। सच्चा सौगन्ध क्यों खावे?

उत्तर:

ईश्वर के लिए कल्पित देवियाँ

पंडित ने एक बार फिर छल से काम लिया है। 'अल्लाह बेटियों से क्या करेगा?' जैसी भ्रामक टिप्पणी प्रस्तुत कर के पवित्र क़ुरआन की स्पष्ट आयत का दुरुपयोग किया है। यह कृत्य न केवल उनके मन में क़ुरआन के प्रति छिपी ईर्ष्या को उजागर करता है, बल्कि उनके तर्क के दिवालियापन को भी प्रकट करता है।

मूल आयत यह कहती है कि अरब के मूर्तिपूजक ईश्वर के लिए बेटियाँ ठहराते थे। आश्चर्य की बात यह है कि पंडित का यह प्रश्न मुसलमानों से हैं, जबकि यह प्रश्न तो उन्हें अपने मूर्तिपूजक "भाई-बंधुओ" से पूछना चाहिए, जिनकी वे अपने ग्रन्थ चौदहवें समुल्लास में लगातार पैरवी करते आए हैं। वही लोग तो ईश्वर के लिए देवियाँ — अर्थात बेटियाँ — गढ़ते और उनकी पूजा करते थे।

पवित्र क़ुरआन इसी कुप्रथा का खंडन करता है और स्पष्ट शब्दों में घोषणा करता है — "सुब्हानहु" — अर्थात, वह इन सब बातों से पवित्र और मुक्त है। यह शब्द उस सर्वोच्च सत्य को दर्शाता है कि लोग जो भी अजीबो-गरीब बातें ईश्वर से जोड़ रहे हैं, वह उन सबसे पवित्र है।

इस आयत का ऐतिहासिक संदर्भ अत्यंत स्पष्ट है। उस समय के अरब मूर्तिपूजक 'लात', 'उज्जा' और 'मनात' जैसी देवियों को ईश्वर की बेटियाँ मानते थे। उनका विरोधाभास यह था कि वे स्वयं बेटियों के जन्म को अपने लिए शर्म समझते थे, जबकि बेटे उनके लिए गर्व का प्रतीत थे। क़ुरआन की यह आयत उनकी उसी विरोधाभास मानसिकता पर करारा प्रहार करती है, और कहती है कि "इनकी मानसिकता देखो! जिस बेटी को ये स्वयं अपने लिए अवांछित और नापसंद करते हैं, उसे ईश्वर के लिए

ठीक समझते हैं। और जिस बेटे को वे स्वयं के लिए पसंद करते हैं, उसे ईश्वर के लिए साझीदार बनाने से इनकार करते हैं। यह कैसी अजीब और दयनीय सोच है! जाहिल और अज्ञानी लोग अपने ही बनाई हुई विरोधाभासी मान्यताओं में फँसे हुए है और फिर उसी के आधार पर ईश्वर के बारे में कपोल-कल्पनाएँ गढ़ रहे हैं।"

पंडित जी का यह प्रहार इस ऐतिहासिक तथ्य को जानबूझकर अनदेखा करके किया गया एक शरारतपूर्ण प्रयास है, ताकि सत्य को तोड़-मरोड़कर पेश किया जा सके।

झूठे लोग कसम खाते हैं

"कसम खाना झूठों का काम है" — पंडित जी, का यह तर्क निःसन्देह दिलचस्प है, पर यदि इस फ़िलॉसफ़ी को सच मान लिया जाए, तो पूरा का पूरा प्रशांसिनक और न्यायिक तंत्र ही झूठों का अड्डा सिद्ध हो जाएगा!

ज़रा सोचिए —

जब अदालत में किसी गवाह को 'सच बोलने की कसम' दिलाई जाती है, तो क्या उस जज पर यह आरोप लगाया जाएगा कि वह एक झूठों वाला काम करवा रहा है?

क्या गवाह केवल इसलिए झूठा माना जाएगा क्योंकि उसने शपथ लेकर सच बोलने का वचन दिया?

इसी प्रकार प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति या अन्य संवैधानिक पदों पर असीन लोग जब संविधान की रक्षा और राष्ट्र सेवा की शपथ लेते हैं — तो क्या वे भी उसी क्षण झूठे हो जाते हैं? और क्या देश की सुरक्षा की शपथ लेने वाले सैनिक भी पंडित के नज़र में कसमखोर झूठे कहलाएँगे?

वास्तव में, कसम या शपथ का मूल उद्देश्य किसी बात की गंभीरता, महत्त्व और सत्यतनिष्ठा को रेखांकित करना होता है। यह एक तरह का rhetorical device है, जो कथन की गंभीरता को बढ़ाता है। जब ईश्वर "कसम" खाता है, तो वह किसी सत्य या सिद्धांत पर विशेष बल देने का तरीका होता है — अर्थात, वह बात अत्यंत महत्वपूर्ण और पूर्णत: सत्य है।

पंडित जी ने एक और बहुत बड़ी तार्किक भूल की है। कहते है कि "बहुधा संसार में ऐसा देखने को मिलता है कि जो झूठा होता है, वही कसम खाता है।" यदि किसी चीज़ के दुरुपयोग के आधार पर उसके उचित उपयोग को ही गलत ठहरा दिया जाए, तो फिर तो इस तर्क से यह भी कहा जा सकता है कि चूंकि चोर अक्सर ताला तोड़ते हैं, इसलिए अच्छे लोगों का ताला लगाना ही गलत है!

क्या यह तर्क स्वीकार किया जा सकता है?

अतः पंडित जी और उनके अनुयायियों से वित्रम निवेदन है कि अगली बार इस प्रकार का तर्क प्रस्तुत करने से पहले राष्ट्रपति भवन, संसद और उच्च्य न्यालय जैसी संस्थाओं पर यही आरोप लागू कर के देख लें। तभी पता चलेगा कि यह तर्क कितना ठोस है — और कहा जा कर ढह जाता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

103. ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उन के और कानों उन के और आंखों उन की के और ये लोग वे हैं बेखबर। और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जावेंगे। 16: 108-111 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब खुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे बिचारे विना अपराध मारे गये क्योंकि उन को पराधीन कर दिया। यह कितना बड़ा अपराध है? और फिर कहते हैं कि जिस ने जितना किया है उतना ही उस को दिया जायगा; न्यूनाधिक नहीं। भला! उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु खुदा के कराने से किये। पुनः उन का अपराध ही न हुआ। उन को फल न मिलना चाहिये। इस का फल खुदा को मिलना उचित है। और जो पूरा दिया जाता है तो क्षमा किस बात की जाती है? जो क्षमा की जाती है तो न्याय उड़ जाता है। ऐसा गड़बड़ाध्याय ईश्वर का कभी नहीं हो सकता किन्तु निर्बुद्धि छोकरों का होता है।

उत्तर:

प्रश्न में "दिलों पर मोहर लगने" के विषय को पुनः से उठाया गया है। इस संदर्भ में स्पष्ट करना आवश्यक है कि पवित्र क़ुरआन में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि लोगों के दिलों और कानों पर बिना किसी कसूर या अवज्ञा के मोहर लगा दी जाती है।

यदि संबंधित आयतों को उनके प्रसंग सहित पढ़ी जाए, तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि ऐसी मोहर उनके दुष्कर्मों, हठधर्मिता और निरंतर अविश्वास का स्वाभाविक परिणाम है। इस विषय पर क्रमांक 5 में पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है; अतः इस पर पुनः अनावश्यक बहस करना केवल पृष्ठ भरने और पाठकों का समय नष्ट करने जैसा होगा।

इसी प्रकार, यह सिद्धांत भी स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके सत्कर्मों का बदला बढ़-चढ़कर मिलेगा। ईश्वर की क्षमा व्यवस्था इस न्याय-सिद्धांत के विरुद्ध नहीं जाती। किसी को क्षमा कर देना शायद पंडित दयानन्द जी के शब्दावली में 'अन्याय' कहलाता हो, किंतु ईश्वर के न्याय-तंत्र के संदर्भ में यह धारणा उचित नहीं। यह विचारणीय है कि दयानन्दी समाज के लोग भी अपने परिवार, समाज तथा अपनी दैनिक जीवन में दूसरों की त्रुटियों को क्षमा करते होंगे — तो क्या वे भी उसी तर्क से अन्याय कर रहे होते हैं?

शेष विस्तृत उत्तर के लिए देखे क्रमांक 25, 58, 15 और 50।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह बनी इस्राइल

104. और किया हमने दोज़ख को वास्ते काफ़िरों के घेरने वाला स्थान। और हर आदमी को लगा दिया हम ने उस को अमलनामा उस का बीच गर्दन उस की के और निकालेंगे हम वास्ते उस के दिन कयामत के एक किताब कि देखेगा उस को खुला हुआ। और बहुत मारे हम ने कुरनून से पीछे नूह के। 17: 8-13-17 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि काफ़िर वे ही हैं कि जो कुरान, पैग़म्बर और कुरान के कहे खुदा, सातवें आसमान और नमाज़ आदि को न मानें और उन्हीं के लिये दोज़ख होवे तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरे क्योंकि कुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्य के मानने वाले सब बुरे कभी हो सकते हैं? यह बड़ी लड़कपन की बात है कि प्रत्येक की गर्दन में कर्मपुस्तक! हम तो किसी एक की भी गर्दन में नहीं देखते। यदि इस का प्रयोजन कर्मों का फल देना है तो फिर मनुष्यों के दिलों, नेत्रों आदि पर मोहर रखना और पापों का क्षमा करना क्या खेल मचाया है? कयामत की रात को किताब निकालेगा खुदा तो आज कल वह किताब कहां है? क्या साहूकार की बही समान लिखता रहता है? यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्वजन्म नहीं तो जीवों के

कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्म की रेखा क्या लिखी? जो विना कर्म के लिखा तो उन पर अन्याय किया क्योंकि विना अच्छे बुरे कर्मों के उन को दुःख-सुख क्यों दिया? जो कहो कि खुदा की मरजी, तो भी उसने अन्याय किया। अन्याय उस को कहते हैं कि विना बुरे भले कर्म किये दुःख सुखरूप फल न्यूनाधिक देना और उस समय खुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तेदार सुनावेगा? जो खुदा ही ने दीर्घकाल सम्बन्धी जीवों को विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी हो गया। जो अन्यायकारी होता है वह खुदा ही नहीं हो सकता।

उत्तर:

ईश्वरीय सत्यों को न मानने वाला व्यक्ति अविश्वासी तथा नास्तिक है

अब तो हम पाठकों से भी क्षमा के प्रार्थी हैं, क्योंकि उनका बहुमूल्य समय बार-बार एक ही तरह के प्रश्न पर व्यर्थ हो रहा है। पर हम करें भी तो क्या करें? वही प्रश्न बार-बार भिन्न-भिन्न रूपों में सामने रख दिया जाता है। यदि उत्तर न दिया जाएँ तो आरोप लगाया जाएगा कि हमारे प्रश्नों का उत्तर दिया ही नहीं गया। इसी विवशता के कारण हमें बार-बार पूर्व में दिए गए उत्तरों की ओर ध्यान दिलाना पड़ता है। पर यह भी आखिर कब तक किया जाए? इसलिए मजबूर होकर हमें उन्हीं बातों को नए ढंग से प्रस्तुत करना पड़ता है, ताकि पाठकों की जिज्ञासा बनी रहे।

पंडित जी! जब मनु जी वेद को न मानने वालों को नास्तिक कहते है, तो क़ुरआन के अनुसार ईश्वर व उसके उपदेशों को न मानने वाले को काफ़िर कहने पर आपत्ति क्यों होती है? आप स्वयं ऋग्वेद (1.4.5) का भाष्य करते हैं —

"जो परमेश्वर की सेवा को धारण किए हुए हैं, वे ही हम लोगों के लिए सब विद्याओं का उपदेश करें। और जो नास्तिक वेद निन्दक हैं, वे हमारे निवास स्थान से दूर हो जाएँ, बल्कि किसी देश में भी न रहें।"

परंतु, पंडित जी! आपने यह तो स्पष्ट ही नहीं किया कि यदि वेदों को न मानने वाले सभी देशों से दूर हो जाएँ, तो वे जाएँ कहाँ? और यह भी कि केवल आप्त या धार्मिक पुरुष ही उपदेश देने योग्य क्यों माने गए? नास्तिक अर्थात वेद को न मानने वाले व्यक्ति को उपदेश देने से क्यों रोका गया? क्या वेद को न मानने वाले व्यक्ति अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं रख सकता? क्या वह सदाचार की शिक्षा नहीं दे सकता? यदि दे सकता है, तो फिर उसे क्यों अयोग्य ठहराया गया? यदि नही दे सकता, तो क्या यह पक्षपात नहीं है?

क़ुरआन की परिभाषा में काफिर वह है जो ईश्वर को और क़ुरआन को नहीं मानता, जिसे क़ुरआन ने अच्छा कहा है उसे अच्छा और सच्चा तथा जिसे बुरा कहा है उसे बुरा और झूठा नहीं जानता है।

अब आप बताइए — जो वेदों को मानते हैं, वे आपकी दृष्टि में अच्छे हैं या बुरे? और यदि वेद को न मानने वाला व्यक्ति भी बिना वेद के अच्छा हो सकता है, धर्मात्मा बन सकता है, तो फिर वेद की आवश्यकता ही क्या रह जाती है?

हर एक की गर्दन में नामा-ए-आमाल का भाव

हर व्यक्ति के गले में "नामा-ए-आमाल" (कर्मों का लेखा-जोखा) होने का भाव यह है कि मनुष्य के किए हुए कर्म उससे कभी अलग नहीं हो सकता। अर्थात् उसकी प्रत्येक क्रिया का सटीक लेखा रखा जाता है। यह एक मुहावरा है, जिसका आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के परिणाम का स्वयं उत्तरदायी है और उन कर्मों के प्रभाव से बच नहीं सकता।

इसी तरह, क़यामत के दिन "किताब-ए-मंशूर" (खुली हुई किताब) से तात्पर्य भी यही है कि उस समय हर व्यक्ति के कर्म स्पष्ट रूप से उसके सामने प्रकट कर दिए जाएँगे। वह अपने सारे कार्य को साफ़-साफ़ देख और पहचान लेगा। न उससे कुछ छिपेगा और न ही कुछ छूटेगा।

क़ुरआन ने इन्हीं तथ्यों को अत्यंत सरल और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है, ताकि संबोधित व्यक्ति आसानी से समझ सके और उसके ह्रदय पर गहरा प्रभाव पड़े।

वास्तव में, आयत का आशय यही था। परंतु पंडित ने उसका जो अर्थ प्रस्तुत किया है, वह उनके निजी आग्रहों से परिपूर्ण है। ख़ैर, हम न तो यह बहस करना चाहते है कि आयत की वास्तविक मंशा क्या थी, और न ही यह याद दिलाना चाहते हैं कि पंडित ने अपनी पुस्तक की भूमिका में क्या लिखा है।

हम तो केवल पंडित जी और उनके अनुयायियों से यह प्रश्न पूछना चाहते हैं कि वेदों में मनुष्य के शरीर में तीन फंदे बँधे होने की जो बात कही गई है — क्या उन्होंने वास्तव में किसी मनुष्य में वे फंदे देखे हैं? यदि हाँ, तो कृपया बताएँ वह कौन व्यक्ति है जिसके शरीर में ऐसे तीन फंदे बंधे हुए हैं?

जी हाँ! वेदों में भी इसी प्रकार की बातें मिलती हैं। मैं यह नहीं कहता कि उनका भाव क़ुरआन के समान ही है, लेकिन शरीर में "फंदों" के बँधे होने का उल्लेख स्पष्ट है। उदाहरण के तौर पर —

अथर्ववेद (4.16.6), भाष्यकार विश्वनाथ विद्यालंकार:

"हे वरुण! तेरे जो फंदे, सात सात विविध प्रकार से स्थित है शरीर में विशेषतया जो बंधे हुए हैं, और जो कि शरीर को हिंसित कर रहे हैं; सब असत्य बोलने वाले को काट दें, और जो सत्यवक्ता है, उसे छोड़ दें।"

इसके अतिरिक्त, अथर्ववेद (7.83.3) और अथर्ववेद (18.4.69) में भी इसी प्रकार के संकेत मिलते है।

यह जानकर लोगों को बड़ा आश्चर्य होगा कि आर्यों का ईश्वर मानों अपने अनुयायियों के कर्मों का हिसाब-किताब बताने से बहुत घबराता है। यदि उसका न्याय-तंत्र वास्तव में न्यायपूर्ण होता, तो उसे न तो किसी से छुपाने की आवश्यकता होती और न ही किसी प्रकार का भय रहता। और सबसे महत्वपूर्ण बात — जब किसी आत्मा के कर्म पूरी तरह शुद्ध हो जाते हैं और वह मोक्ष प्राप्त कर लेती हैं, तब उसे पुनः इस संसार के बंधन में भेजने का कोई ठोस आधार शेष नहीं रह जाता। परंतु, इसके उपरांत भी आर्यों का ईश्वर आत्माओं को पुनः संसार में भेज देता है — पंरतु किस आधार पर? जब जन्म का आधार केवल कर्म है और कर्म उसने किए ही नहीं, तो फिर उसे दुःख क्यों दिया जाता है?

एक मत यह भी है कि जिस प्रकार सांसारिक शासन प्रजा में फूट डालकर कायम रहते हैं, उसी प्रकार आर्यों के ईश्वर की सत्ता लोगों के बुरें कर्मों के कारण ही स्थापित रहती है। यहाँ तक कि घास का एक तिनका भी तब तक रचा नहीं जा सकता, जब तक पहले से पापी और पाप मौजूद न हों। उदाहरण के तौर पर — दूध-घी की प्रचुरता तभी संभव है जब पूर्व में पाप हुआ हो, क्योंकि यदि संसार पाप मुक्त हो जाए तो गाय की योनि ही कैसे प्राप्त होगी? और यदि गाय है ही नहीं, तो दूध-दही कहाँ से आएगा?

इसी प्रकार, मान लीजिए किसी व्यक्ति ने धान चुराया और परमात्मा ने उसे चूहे का शरीर प्रदान किया। परंतु प्रश्न यह है कि

क्या चूहे को अपने पूर्व जन्म का अपराध स्मरण है? बिल्कुल नहीं! फिर यह कहकर समाधान बताया जाता है कि चूहे का कर्तव्य है कि वह मान ले कि उसने अवश्य ही धान चुराया होगा, इसलिए वह चूहा बना। इस प्रकार परमात्मा बिना कुछ स्पष्ट किए, बिना कोई प्रमाण दिखाए, किसी को भंगी, चमार, बढ़ई या लोहार बनाकर दंड दे देता है। और इसी प्रकार उसकी सत्ता बनी अथवा चलती रहती है।

यह तो मानो अंधेर नगरी का चौपट राजा है, जो बिना अपराध बताए और बिना सबूत दिखाए ही सज़ा सुना देता है। पहला अन्याय तो यही है कि बिना अपराध स्पष्ट किए सज़ा देना। दूसरा अन्याय यह कि आर्यों को भंगी-चमार बनाकर यूरोपीय आदि देशों एवं अनार्यों के बीच पैदा करना, ताकि वे वेदों की आज्ञा या शिक्षा सुन ही न सकें। तीसरा अन्याय यह कि एक सामान्य मनुष्य को चूहा, बिल्ली, गाय, गधा, सुअर बना देना, जो ब्राह्मणों के घर में रहते हुए भी वेद की आवाज़ सुनकर भी उसका अर्थ नहीं समझ सकते। और चौथा अन्याय यह कि उनसे उनके कर्मबोध एवं ज्ञानेंद्रियों की शक्ति छीन लेना, ताकि वे नेकी और बदी का भेद ही न समझ सकें। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि लोगों के दिल, कान और आँखों पर मुहर लगाना ही इस व्यवस्था का मूल मकसद है, और इसका दायित्व आर्यों के ईश्वर पर है।

पंडित जी, निःसन्देह ईश्वर दुकानदारों की भाँति रोजनामचा नहीं लिखता और न ही उसके पास कागजों की कोई पुस्तक या रजिस्टर है। फिर भी उसके ज्ञान के कोष में प्रत्येक वस्तु का पूर्ण लेख विद्यमान है। किंतु, वैदिक ईश्वर की स्थिति देखिए कि जब फैसले की घड़ी आती है, तो प्राणियों का निर्णय एक जुआड़ी के समान पाँसा फेंक कर करता है। यह हमारा कथन नहीं, देखों अथर्ववेद (4.16.5) में कहा गया है —

"द्युलोक और पृथिविलोक के मध्य जो भी प्राणी वर्त्तमान हैं — जो हमारे सम्मुख या हमसे पर वर्त्तमान हैं — उन सबको वरुण राजा भली प्रकार देखता हैं। प्राणियों के नेत्रस्पन्दादि सर्व व्यवहार (आँखों के कम्पन) इस वरुण के गिने हुए हैं। जैसे जुआड़ी अपनी जय के लिए जुए के पांसों को फेंकता है, वैसे ही सब प्राणियों के पुण्य-पाप कर्मों के फलों को वरुण राजा देता हैं।" (अच्युतानंद सरस्वती)

कर्मफल का निर्णय किस्मत (पांसों) के भरोसे — जिसका जैसा पांसा पड़ा, वैसा ही उसका भविष्य निर्धारित हो गया। कभी कोई चूहा, कभी बिल्ली, साँप, बिच्छू सब पांसा भरोसे। यही आवागमन, और कर्मफल सिद्धांत की वास्तविक कहानी है। मुसलमानों का ईश्वर कोई जुआड़ी नहीं है। वह मनुष्य के कर्मों के अनुसार खुल कर एवं न्यायसंगत ढंग से प्रतिफल प्रदान करता है। उसके लिए किसी को क्षमा कर देना या अधिक प्रदान करना अन्याय नहीं, बल्कि उसकी दयालुता एवं कृपा है। प्रलय के दिन प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना नामा-ए-आमाल देख सकेगा और अपने कर्मों की सूक्ष्मतम बारीकियों को भली-भाँति जान लेगा। उसे किसी लेखाकार या साक्षी की आवश्यकता नहीं होगी। और तब प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण विश्वास हो जाएगा कि उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय नहीं हुआ, बल्कि वही प्राप्त हो रहा है जो उसके कर्मों का यथार्थ प्रतिफल है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

105. और दिया हमने समूद को ऊंटनी प्रमाण। और बहका जिस को बहका सके। जिस दिन बुलावेंगे हम सब लोगों को

साथ पेशवाओं उन के बस जो कोई दिया गया अमलनामा उस का बीच दहिने हाथ उस के। 17: 59-64-71 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह जी! जितनी खुदा की साश्चर्य निशानी हैं उन में से एक ऊंटनी भी खुदा के होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है। यदि खुदा ने शैतान को बहकाने का हुक्म दिया तो खुदा ही शैतान का सरदार और सब पाप कराने वाला ठहरा। ऐसे को खुदा कहना केवल कम समझ की बात है। जब कयामत की रात अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने कराने के लिये पैग़म्बर और उन के उपदेश मानने वालों को खुदा बुलावेगा तो जब तक प्रलय न होगा तब तक सब दौरा सुपुर्द रहे और दौरा सुपर्द सब को दुःखदायक है जब तक न्याय न किया जाय। इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है। यह तो पोपांबाई का न्याय ठहरा। जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जब तक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों तब तक उन को दण्ड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये। वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरा सुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया। ऐसा न्याय का काम नहीं हो सकता। न्याय तो वेद और मनुस्मृति का देखो जिस में क्षण मात्र विलम्ब नहीं होता और अपने-अपने कर्मानुसार दण्ड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं। दूसरा पैग़म्बरों को गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है। भला! ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करने वाला ईश्वर कभी हो सकता है? कभी नहीं।

उत्तर:

साधारण सी दिखने वाली ऊँटनी भी ईश्वर के अस्तित्व की एक स्पष्ट निशानी

निःसन्देह! ऊँटनी भी ईश्वर की अद्भुत निशानियों में से एक है और वह एक परीक्षा का साधन भी बनी। देखने में साधारण प्रतीत होने वाली रचना वास्तव में अत्यंत जटिल और विलक्षण प्रणाली का नमूना है, जो एक सर्वशक्तिमान सृष्टा के अस्तित्व की ओर संकेत करती है — जैसा कि क़ुरआन की सूरह गाशियाह (88:17) में ध्यान दिलाया गया है। क़ुरआन लोगों को इसी सामान्य सी दिखने वाली, किंतु चमत्कारिक वास्तविकता पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है, ताकि वे ब्रह्मांड में व्याप्त ईश्वरीय ज्ञान और व्यवस्था को पहचान सकें। यह कोई समस्या नहीं, बल्कि एक स्पष्ट एवं तार्किक प्रमाण है। वस्तुतः समस्या पंडित की अपनी समझ है, जो इस गहन चिंतन के आह्वान को समझे बिना ही आपत्ति कर रहा हैं।

जहाँ तक समुद की ऊँटनी का प्रश्न है, उसका विस्तृत उत्तर क्रमांक 93 में पहले ही दिया जा चुका है।

ईश्वर ने शैतान को भी स्वतंत्रता प्रदान किया है

ईश्वर ने मनुष्य तथा जिन्नात (इब्लीस या शैतान एक जिन्न था) को सही और गलत के बीच चयन करने की मौलिक स्वतंत्रता (Free Will) प्रदान की है। यही स्वतंत्रता अच्छे और बुरे की कसौटी पर परखे जाने का वास्तविक आधार है। ईश्वर किसी को बुराई करने का "आदेश" नहीं देता; बल्कि वह नियम के तहत कर्म की "छूट" या "अवसर" प्रदान करता है, ताकि उसकी परीक्षा का सिद्धांत पूर्ण हो सके।

जब यह स्वतंत्रता सभी को प्राप्त है, तब स्वाभाविक है कि जैनियों को भी वही स्वतंत्रता प्राप्त है। यदि आर्य समाज यह मानता है कि मूर्ति पूजा जैसी प्रथाएँ आर्यों के बीच जैनियों के प्रभाव से आईं, तो उसके पीछे भी वही ईश्वरीय प्रदान की हुई स्वतंत्रता कार्यरत है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है — यदि यही स्वतंत्रता मनुष्य के भटकने या दूसरों को भटकाने का कारण बनती है, तो क्या इस आधार पर ईश्वर को पापों का उत्पादक या समस्त पापों का मुखिया कह देना उचित होगा? निश्चय ही नहीं। ऐसा आरोप ईश्वर की न्यायव्यवस्था, उसके द्वारा दिए गए उत्तरदायित्व और मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा — इन सबको अनदेखा करना है। स्पष्ट है कि ऐसा विचार तर्कसंगत नहीं, बल्कि अज्ञान की उपज है।

पंडित दयानन्द ने जिस अवसर या छूट को ईश्वर का आदेश बताकर प्रस्तुत किया है, वह सरासर संदर्भ से किया गया एक खिलवाड़ है। क़ुरआन की किसी भी आयत में यह नहीं कहा गया है कि ईश्वर ने शैतान को मनुष्य को बहकाने का आदेश दिया या उसे मनुष्यों को बहकाने के लिए उत्पन्न किया।

ईश्वर की ओर से दी गई स्वतंत्रता मनुष्य को जिम्मेदार बनाती है, मुक्त नहीं। वही स्वतंत्रता — यदि सही दिशा में उपयोग की जाए — उसे ऊँचा उठाती है, और यदि दुरुपयोग हो, तो वही उसके पतन का कारण बनती है। अतः दोष स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि उसके प्रयोग का है।

जीवों के साथ शिध्र न्याय करना वेदों के सिद्धांतों के भी विरुद्ध है

दौरासुपुर्द का उत्तर के लिए देखें क्रमांक 18 और 46।

जहाँ तक पंडित द्वारा प्रतिपादित 'शीध्र न्याय' (तत्काल न्याय) की अवधारणा का प्रश्न है, तो यह पूरी तरह विरोधाभासी है। उदहारण के तौर पर, धान चुराने वाला व्यक्ति तुरंत चूहा नहीं बन जाता; पथभ्रष्ट करने वाला जैनी तुरंत सुअर या किसी अन्य रूप में परिवर्तित नहीं हो जाता; और दुष्कर्म करने वाला ब्राह्मण तत्क्षण शुद्र या किसी अन्य योनि में उत्पन्न नहीं हो जाता। इसी प्रकार पंडित की ऋग्वेद भाष्यभूमिका तथा छान्दोग्य उपनिषद (5.10.5-10) में वर्णित है कि — आत्मा पहले वायु मंडल में विचरती है, फिर वर्षा के रूप में पृथ्वी पर आती है। इसके बाद सब्जियों और अन्न में प्रवेश करती है, और अंततः उन सब्जियों को खाने वाले के शरीर में पहुँचती है। अब प्रश्न उठता है कि — यहाँ शिध्र दंड कहा मिला? वर्षा से बीज अंकुरित होने, पौधे बनने, अन्न या सब्जी के पकने, फिर उस अन्न को खाकर वीर्य बनने, और अंततः उस वीर्य से गर्भाधान एवं गर्भ में शिशु बनने की पूरी प्रक्रिया में वर्षों का समय लग जाता है। अतः यह प्रश्न स्वयं पंडित की मान्यता के साथ स्पष्ट विरोधाभास रखता है।

पैग़म्बरों की पवित्रता और उम्मतियों के विरुद्ध गवाही

सभी समुदायों की पहचान उनके अपने नबियों के नाम से ही होती है। ऐसी स्थिति में यदि नबी स्वयं अपनी उम्मत या समुदाय के अपराधियों और पापियों के विरुद्ध साक्ष्य दें, तो इसमें अनुचित क्या है? विशेष रूप से तब, जब वही लोग अपने कर्मों का बचाव करने के लिए नबियों को ही अपने समान ठहराने लगे, और उन्हें भी दोषी सिद्ध करते हों।

ये लोग तर्क देते आए हैं कि, "यदि हमने कोई पाप कर भी लिया, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? हमारे पूर्वज — अमुक नबी या ऋषि — भी तो ऐसे ही कार्य करते थे, बल्कि हमारी पवित्र पुस्तकों में, जो इन्हीं नबियों पर अवतरित या प्रकाशित हुईं थी, ऐसे आचरण को वैध ही बताया गया है।"

इस प्रकार, इन अनुयायियों ने अपने ही नबियों और ऋषियों पर दोषारोपण किया तथा पवित्र ग्रंथों में मनमाने परिवर्तन कर

दिए। उन्होंने अपने स्वार्थनुसार मनगढ़ंत व्याख्याएँ प्रस्तुत किए, ताकि अपने पापों को ढँक सकें और दूसरों को भ्रामित कर सकें। ऐसे स्थिति में, यदि नबी स्वयं गवाही दें कि "हमारी शिक्षा कभी ऐसी न थी; यह तो इनके तथाकथित धर्मगुरूओं की स्वार्थपूर्ण करतूतें हैं", तो इससे नबियों की निर्दोषिता एवं पवित्रता सिद्ध हो जाएगी और इन लोगों के सारे बहानों का स्पष्ट खंडन हो जाएगा।

नबी यह भी कहेंगे कि "वास्तव में, ये लोग हमारे अनुयायी कभी थे ही नहीं। ये तो अपनी इच्छाओं और वासनाओं के दास थे। इन्होंने वेद आदि पवित्र ग्रंथों का गलत अनुवाद किया और अपने समझ तथा मन की बातों को उन भाष्यों में प्रस्तुत करके लोगों को भ्रमित किया।

इसी के साथ यह बात भी बार-बार यह स्पष्ट की गई हैं कि यद्यपि ईश्वर सर्वज्ञ है, तथापि अपराधी को अपने अपराध का ज्ञान होना चाहिए। उसके सामने उसके बहानों का पर्दाफाश आवश्यक है, ताकि उसे ईश्वर के न्याय और दंड-विधान का वास्तविक बोध हो सके।

कोई भी ग्रंथ जो इन सहज और स्पष्ट तथ्यों का ज्ञान नहीं देता और इसके विपरीत एवं विरुद्ध शिक्षा देता है — वह कभी ईश्वरीय नहीं हो सकती। वास्तव में, ऐसे ग्रंथ का लेखक कोई विवेकशील व्यक्ति भी नहीं हो सकता।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह कहफ

106. ये लोग वास्ते उन के हैं बाग़ हमेशह रहने के, चलती हैं नीचे उन के से नहरें, गहना पहिराये जायेंगे बीच उस के कंगन सोने के से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाहि की से और ताफ़ते की से तकिये किये हुए बीच उस के ऊपर तख़्तों के। अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की। 18: 31 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह जी वाह! क्या कुरान का स्वर्ग है जिस में बाग़, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं। भला! कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे तो यहां से वहाँ मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है सिवा अन्याय के, वह यह कि कर्म उन के अन्त वाले और फल उन का अनन्त। और जो मीठा नित्य खावे तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है। जब सदा वे सुख भोगेंगे तो उन को सुख ही दुःखरूप हो जायगा। इसलिये महाकल्प पर्यन्त मुक्तिसुख भोग के पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है।

उत्तर:

स्वर्ग का वास्तविक स्वरूप और ऊब जाने की धारणा

प्रत्येक मनुष्य के भीतर यह सहज या प्राकृतिक रूप से यह आकांक्षा निहित है कि उसका जीवन सदैव सुख, शांति, आनंद और सुविधा से परिपूर्ण रहे। परंतु संसार की वास्तविकता यह है कि यहाँ सुख-दुख, स्वास्थ्य-रोग, अमीरी और गरीबी — सब कुछ एक-दूसरे के साथ चलतें है। जीवन की यह मिली-जुली स्थिति मनुष्य को यह अनुभव कराती है कि उसकी आकांक्षाएँ और इच्छाएँ इस लोक में पूर्ण नहीं बल्कि अधूरी रह जाती हैं। वह एक ऐसे जीवन की कामना करता है जहाँ न मौत हो, न बीमारी, न किसी तरह का दुःख और न ही कोई कमी। यह मनुष्य के हृदय की गहरी पुकार है, और इसी पुकार का नाम या

उत्तर स्वर्ग है।

पवित्र क़ुरआन स्वर्ग का वर्णन करते हुए कहता है — 'वहाँ न कोई थकान होगी, न कोई भय, न कोई दुःख' — सूरह फातिर (35:34-35)। दूसरी शब्दों में, मनुष्य की वे स्वाभाविक आकांक्षाएँ, जो इस संसार में अपूर्ण रह गईं, स्वर्ग उसे पूरी कर देगा। इसी प्रकार, मनुष्य के अंदर न्याय की प्रबल भावना भी निहित है। जब उस पर अत्याचार होता है, तो उसका हृदय गवाही देता है कि अत्याचारी और पीड़ित को न्याय मिलना चाहिए। परंतु इस संसार में यह आदर्श पूर्ण रूप से संभव नहीं हो पाता। अनेक अत्याचारी दंड से बच निकलते हैं, और असंख्य पीड़ित दुःख व यातना में ही जीवन बिता देते हैं। यदि मृत्यु ही अंतिम सत्य है, तो न्याय का सिद्धांत अधूरा रह जाता।

इस्लाम इसका उत्तर देता है कि वास्तविक एवं पूर्ण न्याय परलोक में होगा। उस दिन प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों का पूरा-पूरा प्रतिफल मिलेगा। स्वर्ग और नरक इसी न्याय की पूर्णता और कर्मों का परिणाम हैं। क़ुरआन मनुष्य की इसी स्वाभाविक चेतना को संबोधित करता है। वह कहता है कि तुम संसार में पूर्ण सुख चाहते हो, किंतु यह संसार सीमित है। इसलिए ईश्वर ने एक ऐसा लोक रचा है, जहाँ कोई दुःख नहीं होगा।

अतः पवित्र क़ुरआन में वर्णित स्वर्ग की कोई भी बात अतार्किक नहीं है। प्रथम तो यह है कि वह मानवीय आकांक्षा की पूर्ति का स्थान है। दूसरी, क़ुरआन मानवजाति से उसी भाषा में संवाद करता है, जिसे वह समझती है। मनुष्य की सोच एवं कल्पना उसके भौतिक अनुभवों तक सीमित है। हम जिस सुख की कल्पना कर सकते हैं, वह इसी संसार के सुखों से प्रेरित है। किंतु स्वर्ग का सुख इन सबसे कहीं अधिक परिपूर्ण, उत्कृष्ट और भिन्न है, जिसका वास्तविक स्वरूप इस लोक में बताना असंभव है। क़ुरआन में स्वर्ग की वस्तुओं का वर्णन वास्तव में उस अनन्त और अदृश्य आंनद की केवल झलक दिखाने के लिए है, जो मनुष्य की समझ से परे है। यह एक ऐसी भाषा है जिसे हर कोई, चाहे वह किसी युग या पृष्ठभूमि का हो, सामान्य जन और विद्वान समान रूप से समझ सकते हैं।

क़ुरआन में स्वर्ग का यह वर्णन उसकी गुणवत्ता को बताता है, न कि उसकी सामग्री की सूची प्रस्तुत करता है। यह बताता है कि वहाँ कोई दुःख नहीं होगा, मनुष्य उस सुख से कभी ऊबेगा नहीं, न उसे थकान होगी और न दुःख, बल्कि वह पूर्ण संतोष और शांति में होगा। आप ﷺ ने इसी संदर्भ में फ़रमाया — ईश्वर कहता है, "मैंने अपने नेक बंदों के लिए वह आनंद तैयार किया है, जिसे किसी आँख ने नहीं देखा, किसी कान ने नहीं सुना और न ही किसी मानव-हृदय ने उसकी कल्पना की है।" (सहीह बुख़ारी)

इससे स्पष्ट है कि क़ुरआन का वर्णन उस वास्तविकता की एक सरल समझ है, जिसकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते। और पंडित जी ने जिन बातों की ओर इशारा किया है, वे केवल बहारी रूपक हैं, जबकि स्वर्ग का वास्तविकता इन सुखों से कई अधिक गहरा है, इसमें एक — ईश्वर की प्रसन्नता और उसकी निकटता को प्राप्त करना। यह वह आध्यत्मिक आनंद है, जिसकी तुलना किसी भी अन्य सुख से नहीं कि जा सकती। इसलिए यह कहना कि "मीठी वस्तु यदि नित्य खाई जाए तो कुछ दिनों बाद विष समान प्रतीत होने लगेगी", यह केवल सांसारिक दृष्टिकोण है। जबकि स्वर्ग का जीवन हमारी सांसारिक प्रकृति से परे है। ईश्वर ने स्वर्ग को इस प्रकार से रचा है कि वहाँ का आनंद कभी भी उबाऊ या अप्रिय नहीं होगा। और जहाँ ईश्वर

की प्रसन्नता और निकटत्व प्राप्त हो वहाँ कोई ऊब सकता है? यह आनंद निरन्तर बढ़ता रहेगा और प्रत्येक क्षण अनन्त रूपों में प्रकट होता रहेगा। वहाँ मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क पूर्ण संतुष्ट और तृप्त रहेगा।

"कर्म सीमित हैं, और फल अनन्त" — इस विषय पर पंडित ने जो आपत्तियाँ उठाई हैं, वे किसी वेदमत अर्थात ईश्वरीय प्रकाशना पर आधारित मत नहीं है। पं० देवेन्द्रनाथ द्वारा संकलित जीवन चरित्र तथा फर्रुखाबाद आर्य समाज का इतिहास से यह ज्ञात होता है कि पंडित दयानन्द सरस्वती भी लम्बे समय तक अनन्त मुक्ति के मत के ही समर्थक थे। किंतु, जब सांख्य दर्शन में उन्हें "सान्त मुक्ति" का संकेत मिला, तब उनका मत परिवर्तित हुआ (जीवन चरित्र, भाग-2, पृ. 602-603)। अतः यह एक शुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण है, कोई ईश्वरीय प्रकाशना नहीं। इसके विपरीत, मुसलमानों का मत ईश्वरीय वचन — क़ुरआन — पर आधारित है। इस विषय का तर्कसंगत उत्तर भी हमने पूर्व में, क्रमांक 19 में विस्तार से दे रखा हैं।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

107. और यह बस्तियां हैं कि मारा हम ने उन को जब अन्याय किया उन्होंने और हम ने उन के मारने की प्रतिज्ञा स्थापन की। 18: 59 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला! सब बस्ती भर पापी कभी हो सकती है? और पीछे से प्रतिज्ञा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उन का अन्याय देखा तो प्रतिज्ञा की, पहिले नहीं जानता था। इस से दयाहीन भी ठहरा।

उत्तर:

अत्याचारियों का नाश और धर्मनिष्ठ लोगों का संरक्षण

आर्यावर्त के आसपास पूरी दुनिया में अनेक बस्तियाँ हैं, जिन्हें पंडित ने म्लेच्छ, दस्यु, राक्षस, असुर और अनार्य देश बताया है। पंडित का यह भी कहना है कि वहाँ के रहने वाले सभी लोग भी म्लेच्छ, दस्यु, राक्षस, असुर और अनार्य हैं। परंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या वहाँ के सभी लोग वास्तव में बुरें ही है, जिन्हें आपने ऐसे नाम दिए हैं? और क्या आर्यावर्त में केवल नेक लोग ही रहते है, जो इस क्षेत्र का नाम श्रेष्ठ, सभ्य और कुलीनों का देश बताते हों?

क़ुरआन की आयत का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है — हमने अत्याचार करनेवालों को नष्ट किया। इसमें यह नहीं कहा गया है कि किसी क्षेत्र के सभी लोग बुरें हैं। बल्कि बात यह है कि जब किसी समुदाय में अत्याचार बढ़ जाता है, और अत्याचारी सत्ता व समाज पर हावी हो जाते हैं, तब ईश्वर उनकी ताक़त और प्रभुत्व को समाप्त कर देता है। एक प्रश्न यह उठता है कि अत्याचारियों के बीच रहनेवाले कब से नेक कहलाने लगें? वास्तविकता यह है कि नेक लोग ईश्वर की ओर से बचा लिए जाते हैं (क़ुरआन)। यदि कोई न बच पाए, तो वह वास्तव में नेक थे ही नहीं। क्योंकि यदि नेक होता, तो अत्याचारियों को उनके अत्याचार से रोकता, उन्हें समझाता और न मानने पर उनसे अलग हो जाता।

पंडित ने यहाँ भी आयत का अर्थ बिगाड़ दिया है। आयत कहती है कि हमने पूर्व भी अत्याचारियों की बस्तियों को नष्ट किया था और आगे भी ऐसा करेंगें। मकसद यह बताना है कि यह ईश्वर की तयशुदा व्यवस्था है — वह बस्तियों और राज्यों में रहने वाले अत्याचारियों के प्रभुत्व को नष्ट कर देता है। पाठकों को आयत का संदर्भ यदि समझना है तो इसे मक्का के पृष्ठभूमि में देखें। वास्तव में यहाँ मक्का के बहुदेववादियों के बारे में भविष्यवाणी की गई है कि जो लोग हज़रत मुहम्मद ﷺ पर अत्याचार

कर रहे हैं, उनका अत्याचार बहुत जल्द समाप्त होगा और पूरे अरब में मुसलमानों का वर्चस्व स्थापित होगा। परंतु पंडित ने आयत को न समझकर आपत्ति की कि ईश्वर का पापियों के पाप देखने के बाद उन्हें नष्ट करना यह दर्शाता है कि वह सर्वज्ञ नहीं। मानों उनके अनुसार, ईश्वर को पाप होने से पहले ही लोगों को नष्ट कर देना चाहिए, ताकि उसकी सर्वज्ञता सिद्ध हो सके।

हाय रे हमारी किस्मत! किस तरह के अक़्ल के कूड़े से टकराने की नौबत आ गई...

यानी, अपराधियों को अपराध से पहले ही दंड दिया जाए। यदि यही तर्क है तो फिर यह प्रश्न वैदिक ईश्वर पर भी खड़ा होता है। वह भी तो सर्वज्ञ हैं। उसे तो संसार बनाना ही नहीं चाहिए था, अपनी सर्वज्ञता के आधार पर ही जीवात्मा को मोक्ष और दंड देता रहता।

ऐसे तर्कों से सामना होने पर हँसी के साथ-साथ दुःख भी होता है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

108. और वह जो लड़का, बस थे माँ बाप उस के ईमान वाले, बस डरे हम यह कि पकड़े उन को सरकशी में और कुफ्र में। यहां तक कि पहुँचा जगह डूबने सूर्य्य की, पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़ के। कहा उन ने ऐ जुलकरनैन! निश्चय याजूज माजूज फिसाद करने वाले हैं बीच पृथिवी के। 18: 80-86-94 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला! यह खुदा की कितनी बेसमझ है। शङ्का से डरा कि लड़के के माँ बाप कहीं मेरे मार्ग से बहका कर उलटे न कर दिये जावें। यह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती। अब आगे की अविद्या की बात देखिये कि इस किताब का बनाने वाला सूर्य को एक झील में रात्रि को डूबा जानता है, फिर प्रातःकाल निकलता है। भला! सूर्य्य तो पृथिवी से बहुत बड़ा है। वह नदी वा झील वा समुद्र में कैसे डूब सकेगा? इस से यह विदित हुआ कि कुरान के बनाने वाले को भूगोल खगोल की विद्या नहीं थी। जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिख देता। और इस पुस्तक को मानने वालों को भी विद्या नहीं है। जो होती तो ऐसी मिथ्या बातों से युक्त पुस्तक को क्यों मानते? अब देखिये खुदा का अन्याय! आप ही पृथिवी को बनाने वाला राजा न्यायाधीश है और याजूज माजूज को पृथिवी में फ़साद भी करने देता है। यह ईश्वरता की बात से विरुद्ध है। इस से ऐसी पुस्तक को जङ्गली लोग माना करते हैं; विद्वान् नहीं।

उत्तर:

घटना में ख़िज़्र के डर का उल्लेख और आर्यों को घटना से सीखने वाली चीज

मैं ने पूर्व में भी यह कहा है कि दयानन्द को वक़्ता के कथन (कलाम) की सही समझ नहीं थी, और इस आपत्ति के बाद तो कहना पड़ रहा है कि उन्हें कथन के संदर्भ की भी समझ नहीं थी। आपत्ति में कहा गया है — "ईश्वर कितना बेसमझ है कि इस शंका से डरा हुआ है।" जबकि आयत में यह डर ईश्वर को नहीं, बल्कि हज़रत ख़िज़्र (अ.) को हुआ है।

यदि आर्यों के लिए हज़रत ख़िज़्र (अ.) की घटना से कोई बात संबंधित है तो वह केवल इतना ही है — मान लीजिए, किसी सज्जन व्यक्ति के पुत्र की हत्या हो जाए। उसकी मृत्यु से न सिर्फ उसे दुःख पहुँचता है, बल्कि उसकी पत्नी, बच्चे, माता-पिता और मित्र — सभी दुःखी होते हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों हुआ? सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर ने उस निर्दोष व्यक्ति को

बचाया क्यों नहीं? आर्यों का पारंपरिक उत्तर यह है कि वह व्यक्ति अपने किसी पूर्व जन्म के पापों के कारण मारा गया। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि उसके परिवार और मित्रों को दुःख क्यों हुआ? इसका उत्तर भी यही दिया जाता है कि यह सब उनके पूर्व जन्मों का फल है। यदि दुःख का कारण पूर्वजन्म के कर्मों पर टिका है, तो फिर सांसारिक कानूनों और अदालतों का क्या अर्थ रह जाता है? कोई हत्यारा यह तर्क दे सकता है कि उसने किसी को जानबूझकर नहीं मारा, बल्कि ईश्वर ने ही उसे उसके हाथों मरवाया है। यदि हम ऐसा तर्क मान लें, तो अपराध और दंड दोनों ही अर्थहीन हो जाते हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि संसार की कोई अदालत ऐसे तर्क को स्वीकार नहीं करता, और स्वयं वैदिक न्यायलय भी ऐसे बहानों को न मानते हुए अपराधी को दंड देता है।

अब ज़रा सोचिए — कई बार लोगों को बिना किसी व्यक्तिगत कारण के भी दुःख पहुँचता है। जैसे भूकंप में मासूम लोग मारे जाते हैं, युद्ध में पूरी फौज तबाह हो जाती हैं। इन घटनाओं के कारण कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व का ही इनकार कर देते है, और कुछ लोग पुनर्जन्म को समाधान मान लेते हैं। लेकिन ख़िज़्र (अ.) की घटना हमें यह शिक्षा देती है कि हर दुःख किसी अज्ञात पिछले जन्म की सज़ा नहीं होता। अक्सर दुःख और मुसीबतें हमें आगे की सफलता के लिए तैयार करती हैं। छात्र पढ़ाई में मेहनत करता है — वह दुःख उसके लिए कोई दंड नहीं, बल्कि उसके उज्जवल भविष्य की तैयारी होती है। उसी तरह असफलता भी किसी पुराने पाप की सज़ा नहीं, बल्कि आने वाली सफलता की राह बनाने वाली कड़ी बनती है। असल बात यह है कि हार के अंदर भी सफलता का बीज छिपा होता है। समझदार व्यक्ति वही है जो दुःख और असफलता को पाप की सज़ा समझकर हार नहीं मानता; बल्कि उन्हें आगे बढ़ने की तैयारी समझता है। जैसे साइकिल सीखने वाला हर गिरावट को नाकामी नहीं, बल्कि सफलता की ओर उठाया गया एक कदम मानता है।

यही दुःख और मुसीबत का दर्शन है, जो क़ुरआन में ख़िज़्र (अ.) की घटना से हमें शिक्षा दी गई है। यानी तक़दीर के हर काम में मनुष्य की भलाई और तरक्की छिपी होती है। हमारी यह अल्पज्ञता है कि हम परेशानी (दुःख) को किसी पूर्वजन्म के अज्ञात पापों से जोड़कर बैठ जाते है। यही सोच ने भारत में हीनभावना और पिछड़ापन को पैदा किया, और यूरोप में नास्तिकता को।

सूर्योदय और सूर्यास्त का दृष्टिगत अनुभव

यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि पंडित दयानन्द जैसे वैदिक विद्वान ने एक साधारण दृश्य के वर्णन को खगोलविद्या से जोड़कर ईश्वर और धर्मग्रंथ की निंदा करने का प्रयास किया। उनका यह आरोप मूलतः क़ुरआन में वर्णित एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है।

वस्तुतः, क़ुरआन में हज़रत ज़ुल-करनैन की कथा में, उनके व्यक्तिगत दृष्टिगत अनुभव का यथावत वर्णन है कि उन्होंने सूर्य को एक गहरे पानी के स्रोत में डूबते हुए देखा। यह ठीक उसी प्रकार का भाषाई प्रयोग है, जैसा हम अपने दैनिक जीवन में सूर्योदय या सूर्यास्त जैसे शब्दों से करते हैं। यह एक सर्वमान्य भाषाई शैली है, जो दृश्यमान घटना को व्यक्त करती है, न कि खगोलीय सिद्धांत को। आश्चर्य की बात यह है कि इस शैली का प्रयोग खगोलशास्त्री, वैज्ञानिक और शिक्षित लोग (स.प. तृतीय समुल्लास, पृ. 43) भी करते हैं — तो क्या कोई यह साहस कर सकता है बोलने की; यह सभी लोग अज्ञानी है इन्हें

खगोलविद्या का कुछ भी नहीं पता? निश्चित रूप से नहीं।

मूल प्रश्न यह है कि एक मनुष्य के इस सामान्य दृष्टिगत अनुभव के वर्णन को, ईश्वर के ज्ञान की कसौटी पर कसना और उसे अज्ञानता का प्रमाण मान लेना, कहाँ तक तर्कसंगत है? इतनी स्पष्ट और सरल बात होने के बाद भी यदि कोई व्यक्ति आरोप लगा रहा है तो यह उसकी कोई भूल नहीं बल्कि पूर्वाग्रह से उत्पन्न हठधर्मिता का परिणाम है।

रोचक तथ्य यह है कि यदि पंडित दयानन्द इस सामान्य भाषिक शैली को ही अवैज्ञानिक मानते हैं, तो आवश्यक है अपने ग्रंथों पर भी दृष्टि डालनी चाहिए।

ऋग्वेद (7.55.7) — इस मंत्र में 'समुद्र' शब्द स्पष्ट उल्लिखित है। भाष्यकार जयदेव शर्मा के अनुसार यहाँ मंत्र में राजा की तुलना समुद्र से निकलने वाले सहस्त्रकिरण सूर्य से की गई है। परंतु, यदि पंडित दयानन्द के भाष्य को देखा जाए तो उन्होंने अपने भाष्य में समुद्र शब्द का अर्थ ही बदलकर अंतरिक्ष कर दिया और लिखा — जैसे सूर्य अंतरिक्ष से ऊपर जाता है।

अब समाजियों से कुछ सीधा प्रश्न है —

जब मूल मंत्र में समुद्र शब्द स्पष्ट रूप से उपस्थित है तो उसके अर्थ को अंतरिक्ष में परिवर्तन क्यों किया गया? क्या वैज्ञानिक दृष्टि से अंतरिक्ष में ऊपर या नीचे का कोई सार्थक अस्तित्व है? विज्ञान की दृष्टि से तो यह पूर्ण रूप से निराधार तथ्य है। सूर्य अंतरिक्ष में कौनसी दिशा में कितना ऊपर जाता है? और यह कौनसी खगोलविद्या का ज्ञान है? यदि पंडित दयानन्द के इस भाष्य को सही मान लिया जाए तो यह कहना पड़ेगा कि ईश्वर जी को खोगलविद्या का कुछ भी पता नहीं था, यदि पता होता तो ऐसी अविद्या की बात कदापि नहीं करता। यही मंत्र अथर्ववेद (4.5.1) पर भी आया है, देखों पंडित जयदेव शर्मा को।

इसी प्रकार, अथर्ववेद (2.32.1 और 1.22.1) में मान्य भाष्यकार पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी और विश्वनाथ विद्यालंकार — दोनों ने सूर्य के संदर्भ में उदय और अस्त शब्दों का स्पष्ट प्रयोग किया है। यदि क़ुरआन में सूर्यास्त की बात आने से अवैज्ञानिक है, तो वेदों में सूर्योदय और सूर्यास्त वैज्ञानिक कैसे?

इसी प्रकार, अथर्ववेद (7.81.1 और 13.2.11) में "अर्णवम्" शब्द स्पष्ट रूप से समुद्र या विशाल जलराशि के अर्थ में प्रयुक्त होता है, परंतु आर्य भाष्यकारों ने इसका अर्थ भी अंतरिक्ष या आकाश बताने का प्रयास किया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि वेदों में भी सूर्योदय और सूर्यास्त जैसे शब्द स्वाभाविक भाषिक शैली के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। और, जो लोग अपने ही ग्रंथों में उपस्थित शब्दों और अर्थों में परिवर्तन कर उन्हें वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास करते हैं, वे यदि किसी अन्य धर्मग्रंथ के संदर्भों में मनमानी व्याख्या करके आरोप लगाएँ, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं रह जाती।

याजूज और माजूज का उपद्रव

आपत्ति में निहित असंगति और मूर्खता पर विचार कीजिए। प्रश्न यह उठाया गया है — यदि ईश्वर पृथ्वी का स्रष्टा, शासक और न्यायाधीश है, तो वह याजूज-माजूज को पृथ्वी में उपद्रव व अशांति करने (की स्वतंत्रता) क्यों देता है?

सर्वप्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि पंडित जी स्वयं क्या मानते हैं? क्या वे वास्तव में स्रष्टा, राजा एवं न्यायाधीश के रूप में ईश्वर को स्वीकार नहीं करते? निश्चित रूप से वह भी स्वीकार करते है।

दूसरे, यह तथ्य भी विचारणीय है कि आर्यसमाज की मान्यताओं के अनुसार, प्राचीन काल में आर्यों ने भारत भूमि में आकर

शरण ली और अनार्यों के साथ उन्होंने अनेक युद्ध किए। अब प्रश्न यह है — यदि ईश्वर सचमुच इस सृष्टि का सर्वशक्तिमान शासक और न्यायाधीश है, तो वह पृथ्वी पर युद्ध, अशांति और अत्याचारों का ऐसा वातावरण क्यों बनने देता है? इस धरती ने अनेक युद्ध देखें हैं और यह सबकुछ उस सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान ईश्वर की उपस्थिति में ही घटित होता रहा है। फिर भी, वह इन्हें रोकने में असमर्थ क्यों रहा?

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह मरयम

109. और याद करो बीच किताब के मर्यम को, जब जा पड़ी लोगों अपने से मकान पूर्वी में। बस पड़ा उन से इधर पर्दा, बस भेजा हम ने रूह अपनी को अर्थात् फ़रिश्ता, बस सूरत पकड़ी वास्ते उस के आदमी पुष्ट की। कहने लगी निश्चय मैं शरण पकड़ती हूँ रहमान की तुझ से, जो है तू परहेजगार। कहने लगा सिवाय इस के नहीं कि मैं भेजा हुआ हूं मालिक तेरे के से, ताकि दे जाऊं मैं तुझ को लड़का पवित्र। कहा कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का नहीं हाथ लगाया मुझ को आदमी ने, नहीं मैं बुरा काम करने वाली। बस गर्भित हो गई साथ उस के और जा पड़ी साथ उस के मकान दूर अर्थात् जंगल में। 19: 16-17-18-19-20 से 23 क़ुरआन.

समीक्षकः- अब बुद्धिमान् विचार लें कि फ़रिश्ते सब खुदा की रूह हैं तो खुदा से अलग पदार्थ नहीं हो सकते। दूसरा यह अन्याय कि वह मरियम कुमारी के लड़का होना। किसी का संग करना नहीं चाहती थी परन्तु खुदा के हुक्म से फरिश्ते ने उस को गर्भवती किया। यह न्याय से विरुद्ध बात है। यहां अन्य भी असभ्यता की बातें बहुत लिखी हैं उन को लिखना उचित नहीं समझा।

उत्तरः

फरिश्ता जिब्राईल मात्र शुभसूचना देने वाले थे

ईश्वर द्वारा किसी वस्तु या जीव को अपनी ओर संबंधित (मंसूब) करना या उसे अपना कहना — इस विषय पर उत्तर के लिए क्रमांक 93 और 100 देखें।

पंडित दयानन्द ने एक अत्यंत गंभीर आरोप लगाया है और स्पष्ट रूप से झूठ बोल कर लोगों को भ्रामित करने का एक असफल प्रयास किया है। उनका पहला झूठ यह है कि मरियम (अ.) किसी का संग नहीं करना चाहती थीं। प्रथम तो यह है कि इस तरह का वर्णन न केवल संबंधित आयत में, बल्कि संपूर्ण क़ुरआन में कहीं भी वर्णित नहीं है। दूसरी, आयत में हज़रत मरियम कहती हैं — "मेरे लिए पुत्र कैसे हो सकता है, जबकि किसी पुरुष ने मुझे स्पर्श तक नहीं किया है और न मैं कभी अस्ती रही हूँ?" — यह कथन उनकी नैतिक और शारीरिक पवित्रता की घोषणा है, न कोई वैवाहिक निर्णय। पवित्र मरियम यह भी फ़रिश्ते से कहती है कि "यदि वह ईश्वर से डरता है तो उनसे दूर रहे। इससे उनका उद्देश्य केवल अपनी पवित्रता की रक्षा करना था। संभव है पंडित ने यह बात किसी अप्रमाणिक स्रोत से सुन ली हो और बिना प्रमाण के ही ऐसी ऊटपटाँग बातें प्रस्तुत कर दी।

दूसरा झूठ यह है कि "आयत में और भी असभ्यता है"। यह आरोप तो पूरी तरह मनगढ़त और पंडित की कुंठा को दर्शाती

है। आयत में किसी तरह की कोई अश्लीलता या असभ्यता नहीं पाई जाती।

यदि किसी को इस पवित्र और मर्यादित वर्णन में भी विकृति दिखाई पड़ रही है, तो इसका कारण केवल एक दूषित दृष्टि और मानसिकता है, जो पवित्र वर्णन में भी विकार ढूँढ़ रही है।

तीसरा और पंडित का सबसे बड़ा झूठ एवं अपमानजनक आरोप यह है कि "ईश्वर के अदेश से फ़रिश्ते ने मरियम को गर्भवती किया"। यह आरोप बिल्कुल क़ुरआन की स्पष्ट शिक्षा के पूर्णतः विपरीत है। यदि आयतों को थोड़ा भी ध्यान लगा कर पढ़ी जाए, तो यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाता है कि फ़रिश्ता (जिब्राइल अ.) की भूमिका केवल पुत्र की शुभ सूचना देने तक सीमित थी। फरिश्ता कहता है — "हे मरियम! निःसन्देह ईश्वर तुम्हें एक पवित्र पुत्र की शुभ सूचना देता है।" इसके बाद पवित्र मरियम (अ.) को प्रश्न और आशंका आती है, जिसका उत्तर यह दिया जाता है — "यह तुम्हारे परमेश्वर के लिए अत्यंत सरल है।" अर्थात यह कार्य ईश्वर की सीधी शक्ति और इच्छा से घटित होने वाला एक मौजिज़ा है, न कि किसी फ़रिश्ते की क्रिया। क़ुरआन ने स्वयं इसकी तुलना हज़रत आदम (अ.) की उत्पत्ति से किया है, जो ईश्वर की परम शक्ति और सामर्थ्य से उत्पन्न हुए थे।

वास्त्व में पंडित ने आयत के संदर्भ को बीच से काटकर चालाकी भरा प्रयास किया ताकि लोगों में भ्रम उत्पन्न की जा सके। उन्होंने "फ़ा-हमलतहु" शब्द को गलत ढंग से भी प्रस्तुत किया है। इसका सही अर्थ है — "फिर पवित्र मरियम ने उस (मसीह) को अपने गर्भ में धारण किया।" यह संपूर्ण क्रिया ईश्वरीय शक्ति द्वारा घटित हुई, जिसे पंडित ने फ़रिश्ते द्वारा घटित बता दिया। जबकि फ़रिश्ते का दायित्व केवल शुभ सूचना का देना था। अतः, यह आरोप निराधार होने के साथ-साथ आयत के स्पष्ट अर्थ एवं संदर्भ के साथ खिलवाड़ है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

110. क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हम ने शैतानों को ऊपर काफ़िरों के बहकाते हैं उन को बहकाने कर। 19: 83 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब खुदा ही शैतानों को बहकाने के लिये भेजता है तो बहकने वालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उन को दण्ड हो सकता और न शैतानों को। क्योंकि यह खुदा के हुक्म से सब होता है। इस का फल खुदा को होना चाहिये। जो सच्चा न्यायकारी है तो उस का फल दोजख आप ही भोगे और जो न्याय को छोड़ के अन्याय को करे तो अन्यायकारी हुआ। अन्यायकारी ही पापी कहाता है।

उत्तर:

शैतान का प्रभाव और मनुष्यों को बहकाना ईश्वर की ओर से नहीं

आयत में जिस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, वह यह है कि शैतान का प्रभाव केवल “काफ़िरों” पर होता है, जैसा कि सूरह नहल (16:99-100) में स्पष्ट है और हम पूर्व (क्रमांक 11) में भी यह स्पष्ट कर चुके हैं। यह आयत कहीं भी यह नहीं कहती कि “सभी लोगों पर शैतान का नियंत्रण है।” क़ुरआन के अनुसार शैतान का प्रभाव केवल उन्हीं पर होता है जो स्वयं कुफ़्र — अर्थात सत्य का इनकार और दुराचरण — में डूबे रहते हैं।

इस तथ्य को इस प्रकार से समझें कि जब मनुष्य सत्य से दूर होकर दुष्कर्मों या अज्ञान का चयन करता है, तो वह अपने आपको उसी अंधकार के छेत्र में पहुँचा देता है, जहाँ शैतानी प्रभाव स्वाभाविक रूप से सक्रिय हो जाते हैं। इसी तथ्य की ओर पंडित दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में जैन और बौद्ध विचारधाराओं के प्रसंग में संकेत किया है। वे लिखते है — "जिन्होंने वेद का विरोध किया, वे अवश्य अविद्या के अंधकार में फँसकर सुख के स्थान पर दुःख ही भोगते हैं।" (द्वादश समुल्लास, पृ. 330)

और आगे पृ. 333 पर वे कहते है —

"वेद और ईश्वर का विरोध करने का उन्हें यही फल मिला।"

यदि हम अथर्ववेद (20.129.12) पर विश्वनाथ विद्यालंकार का भाष्य देखें, तो पंडित दयानन्द की कही बात और भी स्पष्ट हो जाती है। भाष्य में लिखा है —

"वह परमेश्वर सांसारिक इच्छाओं के वशवर्ती मनुष्य की हिंसा करता है, या उसकी उद्भुत हो सकने वाली आध्यात्मिक शक्तियों पर आवरण (पर्दा) डाल देता है।"

इसका आशय यह है कि जब मनुष्य सांसारिक वासनाओं में फँस जाता है, तो ईश्वर उसकी अंतर्निहित आध्यात्मिक प्रगति की शक्तियों को प्रकट नहीं होने देता। परिणामस्वरूप, उसका विवेक आच्छादित हो जाता है और वह उन्नति के मार्ग से वंचित रह जाता है।

क़ुरआन ने इसी तथ्य को एक भिन्न ढंग से प्रस्तुत किया है। बताया गया है कि जब कोई व्यक्ति सत्य के मार्ग का विरोध करता है या उसे छोड़ देता है, तो वह अज्ञान और अंधकार में फँस जाता है। ऐसे में शैतान (बुरी संगते) उस पर हावी हो जाते है, और वह स्वयं अपने ऊपर अत्याचार करने वाला होता है।

अब रही यह आपत्ति की — "शैतान को ईश्वर ही बहकाने के लिए भेजता है, तो बहकने वालों का कोई दोष नहीं, और न तो उन्हें दंड मिलना चाहिए, और न शैतान को" — प्रथम बात तो यह है कि यह आयत की गलत व्याख्या हैं। दूसरी, मनुष्य और जिन्न — दोनों को ईश्वर ने स्वतंत्र इच्छा के साथ उत्पन्न किया है। वे अच्छे या बुरें मार्ग में से किसी एक का चुनाव कर सकते हैं और अपने कर्मों के लिए पूर्णतः स्वयं उत्तरदायी हैं। अतः यह कहना कि उनका कोई दोष नहीं, बिल्कुल ही निराधार और असंगत तथ्य है।

तीसरी महत्वपूर्म बात यह है कि पंडित दयानन्द अरबी भाषा से अपरिचित थे और उन्हें उसका कुछ ज्ञान नहीं था, जिसके कारण उन्हें एक शब्द के अर्थ को लेकर भ्रांति हुई। आयत में प्रयुक्त "इरसाल" शब्द का अर्थ केवल "भेजना" ही नहीं, बल्कि "खुला छोड़ देना", "अनुमति देना" या "न रोकना" भी होता है। अतः आयत का सही अर्थ यह है — "क्या तुम नहीं देखते की हमने शैतानों को खुला छोड़ दिया है (उन्हें रोकते नहीं), तो वे लोगों को बहकाते हैं।" वास्तव में यह उन लोगों के अपने चुनावों एवं कर्मों का प्रतिफल है, जिसे वे भोगते हैं। इसमें ईश्वर की ओर से किसी प्रकार की जबरदस्ती या अन्याय नहीं है। इस्लाम स्पष्ट कहता है कि जो लोग मार्गदर्शन को स्वीकार करते हैं, ईश्वर उन्हें अपनी विशेष सुरक्षा एवं सहायता प्रदान करता है। किंतु जो लोग अस्वीकार करते हैं, उन्हें उनकी ही स्थिति में छोड़ देता है। ऐसे लोग अपनी इच्छाओं और भ्रमों में

भटकते रहते हैं, और यही भटकाव उन्हें शैतान के प्रभाव क्षेत्र में पहुँचा देता है।

इसके बावजूद, ईश्वर की दया एवं करुणा यह कहती है कि यह स्थिति स्थायी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति पश्चाताप (तौबा) करे और सच्चे मन से क्षमा मांगे, तो ईश्वर की दया तुरंत उसकी ओर उन्मुख होती है। वह उसे पुनः मार्गदर्शन का आशीर्वाद देता है और उसके लिए प्रगति के द्वार खोल देता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह ताहा

111. और निश्चय क्षमा करने वाला हूँ वास्ते उस मनुष्य के तोबाः की और ईमान लाया और कर्म किये अच्छे, फिर मार्ग पाया। 20: 82 क़ुरआन.

समीक्षकः- जो तोबाः से पाप क्षमा करने की बात कुरान में है यह सब को पापी कराने वाली है क्योंकि पापियों को इस से पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है। इस से यह पुस्तक और इस का बनाने वाला पापियों को पाप करने में हौसला बढ़ाने वाले हैं। इस से यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इस में कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता।

उत्तरः

पाप-क्षमा; न केवल क़ुरआन बल्कि सभी मतों की सार्वभौमिक शिक्षा

यह विचार कि पाप क्षमा नहीं होते, पंडित दयानन्द की केवल व्यक्तिगत कल्पना है, न कि कोई ईश्वरीय वचन। सत्यार्थ प्रकाश में जहाँ उन्होंने पाप क्षमा न होने की बात कही है, वहाँ उन्होंने कोई वेद-प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। जबकि पंडित जी का स्पष्ट दावा है कि "हमारा मत वेद का मत है अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है, उस-उस का हम यथावत् करना, छोड़ना मानते हैं" (तृतीय समुल्लास, पृ. 65-66)। हमने पहले ही वेदमंत्रों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि वेदों में पापों के क्षमा होने का स्पष्ट वर्णन है।

वास्तव में, तौबा (पश्चाताप) और सज़ा — दोनों का मूल उद्देश्य एक ही है। इनका लक्ष्य किए गए कार्य को पलटना या मिटाना नहीं, बल्कि भविष्य में अपराध और पाप से व्यक्ति को बचाना तथा उसके दुष्प्रभावों से समाज को दूर रखना है। इस दृष्टि से, सच्चे मन से की गई तौबा वास्तव में भविष्य में पाप न करने का एक दृढ़ संकल्प है।

पंडित ने तौबा के इस वास्तविक एवं गहन अर्थ को ठीक प्रकार से न समझ पाने के कारण, न केवल वेद, बल्कि सभी ईश्वरीय ग्रंथों की उस सार्वभौमिक शिक्षा का भी इनकार कर दिया।

शेष उत्तर के लिए क्रमांक 15 देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अंबिया

112. और किये हम ने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे। 21: 31 क़ुरआन.

समीक्षकः- यदि कुरान का बनाने वाला पृथिवी का घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती। शंका हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती! इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है?

उत्तर:

पहाड़ों का उद्देश्य संतुलन एवं स्थिरता

अरबी भाषा का शब्द 'तमीद' जिसका मूल अर्थ "डगमगाना, लड़खड़ाना, अस्थिर होना या हिलना-डुलना" है। यह शब्द एक गंभीर अव्यवस्थित और अनियंत्रित अस्थिरता को दर्शाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक नाव तूफ़ान की उग्र लहरों में डगमगा जाती है।

क़ुरआन में इस शब्द का प्रयोग इस सूक्ष्म अर्थ के साथ किया गया है कि ईश्वर ने पहाड़ों को पृथ्वी के लिए एक स्थिरक (Stabilizer) के रूप में स्थापित किया है, ताकि पृथ्वी मनुष्यों के रहने के लिए एक सुरक्षित और संतुलित स्थान बनी रहे। आयत का यह कथन कि "धरती हिले न" यह हरगिज़ नहीं कहता कि पहाड़ पृथ्वी को पूर्णतः गतिहीन बना देते हैं। बल्कि, इसका यह अर्थ है कि पहाड़ उसे अत्यधिक और विनाशकारी रूप से डगमगाने से बचाते हैं। यह फर्क समझना जरूरी है, जिसे दयानन्द ने बड़ी चलांकि से इस फर्क के बीच के अंतर को मिटा दिया है।

आधुनिक भूविज्ञान क़ुरआन के इस वर्णन की पुष्टि भी करता है। पहाड़, केवल ऊपरी सतह पर दिखने वाला ढेर नहीं हैं, बल्कि उनकी गहरी जड़ें (Roots) पृथ्वी की भीतरी परत (मैंटल) में धंसी होती हैं। इस घटना को "आइसोस्टेसी (Isostasy)" का सिद्धांत कहा जाता है, जो बताता है कि किस प्रकार पृथ्वी की भूपर्पटी (Crust) अपने नीचे स्थित अधिक सघन मैंटल पर तैरती है, ठीक वैसे ही जैसे बर्फ का एक टुकड़ा पानी पर।

उदाहरण के तौर पर, हिमालय पर्वत की सतही ऊँचाई लगभग 8-9 किलोमीटर है, किंतु इसकी जड़ें ज़मीन के निचे लगभग 80 किलोमीटर तक गहरी धंसी हुई हैं, जबकि आस-पास के मैदानी इलाकों में भूपर्पटी की मोटाई मात्र 35-40 किमी है। यह गहरी जड़ें एक प्राकृतिक कील (Anchor) या स्थिरकारी (Stabilizer) का कार्य करती हैं।

पंडित जी का यह प्रश्न की "फिर ज़मीन भूकंप में क्यों डीग जाते है" तो इसका उत्तर सीधा और सरल यह है कि पहाड़ों का उद्देश्य पृथ्वी को सर्वथा गतिहीन कर देना नहीं है। यानी पहाड़ों का काम धरती को पूरी तरह स्थिर कर देना नहीं है। बल्कि, उनका काम है अत्यधिक अस्थिरता को कम करना और संतुलन बनाए रखना है। भूकंप टेक्टोनिक प्लेटों के खिसकने की एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। पहाड़ इस प्रक्रिया को रोकती नहीं हैं, बल्कि उसके प्रभाव को नियंत्रित और कम करने का काम करती है। वैज्ञानिक मानते है कि पर्वतों के बिना, टेक्टोनिक प्लेटों की सरकन और टकराव अधिक बार-बार, अधिक तीव्र और अत्यधिक विनाशकारी हो सकती थी। इस प्रकार, पहाड़ पृथ्वी को एक नियंत्रित अस्थिरता प्रदान करता हैं।

अतः, क़ुरआन की यह आयत न केवल सही है, बल्कि यह एक वैज्ञानिक मौजिज़ा है। आज का भू-विज्ञान जिस आइसोस्टेसी और पर्वतों के स्थिरकारी प्रभाव की बात करता है, उसका स्पष्ट और सुस्पष्ट वर्णन लगभग 1450 वर्ष पूर्व इस पवित्र ग्रंथ क़ुरआन में मिलता है। और यह तथ्य उसकी दिव्यता को बताती है, जिसे पंडित समझने और वेद बता पाने में असफल रहा।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

113. और शिक्षा दी हम ने उस औरत को और रक्षा की उस ने अपने गुह्य अङ्गों की। बस फूंक दिया हम ने बीच उस के रूह अपनी को। 21: 91 क़ुरआन.

समीक्षक:- ऐसी अश्लील बातें खुदा की पुस्तक में खुदा की क्या और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होतीं। जब कि मनुष्यों में ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है? ऐसी-ऐसी बातों से कुरान दूषित होता है। यदि अच्छी बात होती तो अति प्रशंसा होती; जैसे वेदों की।

उत्तर:

पवित्रता की रक्षा का उल्लेख अश्लीलता नहीं

आयत में किसी भी प्रकार की कोई अश्लीलता नहीं है। जैसा कि पहले भी यह स्पष्ट किया जा चुका है, अश्लीलता वस्तुतः उन्हीं के मन में निहित है, जो आयत को अश्लील ठहराते हैं। आयत कहती है —

"और वह स्त्री जिसने अपनी गुप्तांगों की रक्षा की और सदा अपने आपको पवित्र रखा, तो हमने उसके अंदर अपनी रूह फूँकी, और उसे और उसके बेटे (ईसा) को सारे संसार के लिए एक निशानी बना दिया।"

विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अपनी गुप्तांगों की रक्षा करना कोई अश्लील कार्य है? या फिर इस सद्गुण का उल्लेख करना ही अश्लीलता कहलाता है? यदि ऐसा ही माना जाए, तो ब्रह्मचर्य की परिभाषा क्या है — जिसका महिमामंडन स्वयं पंडित दयानन्द ने किया है? इसी प्रकार, आयत में रूह फूँकने का आशय ईश्वरीय शक्ति द्वारा हज़रत ईसा के अलौकिक जन्म से है। आयत में अश्लीलता का तनिक भी स्पर्श नहीं है।

वेदों की शिक्षाओं में अश्लील वर्णन

इसके विपरीत, जिन वेदों को पवित्र एवं दिव्य ज्ञान का स्रोत बताकर महिमामंडन किया जाता है, उनमें स्पष्ट एवं सीधा यौन विवरण मिलता है। उदाहरण के तौर पर —

यजुर्वेद (19.76) "पुरुष का लिंग स्त्री की योनि में प्रवेश करता हुआ वीर्य को विशेष कर छोड़ता है।" पंडित दयानन्द सरस्वती

ऋग्वेद (10.85.37) "जिस भूमि रूप स्त्री में बीज का वपन करते हैं, हम पुरुषों की कामना करती हुई दोनों जांघों का आश्रय लेती और पुरुष लोग जिसमें प्रजनन अंग को प्रवेश करावे।" पंडित जयदेव शर्मा

अथर्ववेद (14.2.38-39) "हे पोषक पति! उस पत्नी को... जिसमें उसकी कामना करते हुए हम लोग उपस्थेन्द्रिय का प्रहरण करें (यानी लिंग को बलपूर्वक योनि में डाले)।" क्षेमकरणदास त्रिवेदी

एक ओर पवित्र क़ुरआन की स्पष्ट और संयमित, गरिमामयी और नैतिकता से परिपूर्ण आयतें हैं, तो दूसरी ओर वेदों में वर्णित ये वासनात्मक अभिव्यक्तियाँ। अब निष्पक्ष रूप से निर्णय किया जाए कि वास्तविक अश्लीलता किसमें है।

इसी क्रम में, पंडित का यह आरोप कि "ऐसी अश्लील बातें किसी सभ्य मनुष्य की भी नहीं हो सकतीं" — अपने आप में विचारणीय है। आइए, स्वयं पंडित दयानन्द की शिक्षाओं पर दृष्टि डालते हैं।

पंडित द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय समुल्लास, पृ. 34) में एक अवैज्ञानिक एवं अत्यंत अशोभनीय उल्लेख मिलता है। इसमें स्त्री को स्तनपान न कराकर, स्तनों पर एक लेप लगाकर दूध रोकने की विधि बताई गई है, ताकि वह पुनः प्रजनन के लिए तैयार हो जाए। यह टिप्पणी न केवल अशोभनीय है बल्कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के भी सर्वथा विरुद्ध है। इसी

प्रकार यह भी कहा गया है कि बच्चे के जन्म से पहले स्त्री निर्बल हो जाती है, इसलिए वह शिशु को दूध पिलाने के लिए एक दाई रख लें या फिर गाय-बकरी का दूध पिलाए — विचारणीय यह है कि क्या वह दाई स्वयं उस प्रसव-पीड़ा से नहीं गुज़रती?

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान स्पष्ट रूप से बताता है कि माँ का दूध शिशु के लिए कम से कम दो वर्षों तक अमृततुल्य होता है। यह शिशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता और मानसिक विकास — दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक है। विज्ञान के अनुसार प्रारंभिक छः महीनों तक तो केवल माँ का दूध ही पर्याप्त और अनिवार्य माना जाता है। डॉक्टर इस अवधि में शिशु को पानी तक न देने की सलाह देते हैं।

ऐसे में यदि इन महीनों में माँ का दूध जानबूझकर रोक दिया जाए और शिशु को केवल गाय-बकरी के दूध पर निर्भर कर दिया जाए, तो यह शिशु के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ है, जिसका परिणाम अत्यंत घातक हो सकते है। हाँ, चिकित्सक यह अवश्य कहते हैं कि यदि किसी कारणवश माँ के स्तन से दूध पर्याप्त मात्रा में न उतर रहा हो, तो पूरक आहार (Supplements) के रूप में अन्य दूध दिया जा सकता है। परंतु शिशु को पूर्णतः उसी पर निर्भर कर देना — यह चिकित्सा विज्ञान के विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त, यदि किसी स्त्री के स्तनों में जबरन दूध रोका जाए, तो उसे स्तन-संबंधि अनेक रोगों और गंभीर पीड़ाओं का सामना करना पड़ सकता है। अब विचारिए — जिस दूध को विज्ञान शिशु के लिए सबसे बड़ा पोषण बताता है, उसी दूध को रोकने की विधि सिखाकर स्त्री को कुँवारी बनने जैसी शिक्षा क्यों दी जा रही है?

और फिर दूसरों पर यह आरोप लगाना कि ऐसी बाते सभ्य मनुष्य कि नहीं होती — क्या यह न्यायसंगत है? सच तो यह है कि इस प्रकार की बातें उन्हीं तथाकथित ब्रह्मचारी और सन्यासियों की पुस्तकों में मिलती है। इसी पुस्तक में नियोग के विषय में जो कुछ लिखा है, वह किसी से छुपा नहीं है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह हज

114. क्या नहीं देखा तूने कि अल्लाह को सिजदा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवी के हैं, सूर्य और चन्द्र तारे और पहाड़, वृक्ष और जानवर। पहिनाये आवेंगे बीच उस के कंगन सोने और मोती के और पहिनावा उन का बीच उसके रेशमी है। और पवित्र रख घर मेरे को वास्ते गिर्द फिरने वालों के और खड़े रहने वालों के। फिर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और पूरी करें भेंटें अपनी और चारों ओर फिरें घर कदीम के। ताकि नाम अल्लाह का याद करें। 22: 18-23-26-29-34 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला! जो जड़ वस्तु हैं, परमेश्वर को जान ही नहीं सकते, फिर वे उस की भक्ति क्योंकर कर सकते हैं? इस से यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता किन्तु किसी भ्रान्त का बनाया हुआ दीखता है। वाह! बड़ा अच्छा स्वर्ग है जहाँ सोने मोती के गहने और रेशमी कपड़े पहिरने को मिलें। यह बहिश्त यहां के राजाओं के घर से अधिक नहीं दीख पड़ता। और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता भी होगा फिर बुत्परस्ती क्यों न हुई? और दूसरे बुत्परस्तों का खण्डन क्यों करते हैं? जब खुदा भेंट लेता, अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा देता है और पशुओं को मरवा के खिलाता है तो यह खुदा

मन्दिर वाले और भैरव, दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुत्परस्ती का चलाने वाला हुआ क्योंकि मूर्तियों से मस्जिद बड़ा बुत् है। इस से खुदा और मुसलमान बड़े बुत्परस्त और पुराणी तथा जैनी छोटे बुत्परस्त हैं।

उत्तरः

आकाश ओ धरती का ईश्वर को सज्दा करना

पवित्र क़ुरआन में यह कहा गया है कि मनुष्य को आकाश और धरती की प्रत्येक वस्तु पर विचार करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक वस्तु ईश्वर द्वारा स्थापित नियमों का पालन कर रही है, या नियमों के अनुसार ही संचालित हो रही है। किंतु जिन लोगों में चिंतन और विवेक की क्षमता विकसित ही नहीं हुई है, उनके लिए इस तथ्य को समझ पाना वास्तव में कठिन है।
आयत में प्रयुक्त "सज्दा" शब्द का शाब्दिक अर्थ शारीरिक रूप से झुकना नहीं, बल्कि प्रकृति के नियमों के प्रति समर्पण और ईश्वरीय व्यवस्था में बँधे रहना है। मनुष्य द्वारा सिर झुकाकर किया जाने वाला सज्दा भी इसी समपर्ण तथा ईश्वरीय इच्छा के प्रति स्वीकृति का प्रतीक है। प्रश्न यह है कि क्या पंडित जी आकाश, धरती, सूर्य, चंद्रमा आदि को ईश्वर द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन मानते हैं या नहीं?
इसके बाद पंडित ने कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी है। अर्थात उन्होंने आयत 18 से छलांग लगाकर सीधे आयत 23 के अंतिम भाग को उठाया और उसपर आपत्ति जड़ दी। इस प्रकार की चालाकियां इसलिए अपनाई जाती है ताकि क़ुरआन का स्पष्ट और सुसंगत संदेश लोगों तक न पहुँच सके तथा भोले-भाले पाठकों के मन में भ्रम की स्थिति बनी रहें।
जहाँ तक स्वर्ग से संबंधित प्रश्नों का विषय है, उसका उत्तर हम पूर्व में अनेक स्थानों पर विस्तार से दे चुके है। वर्तमान में पाठकों के लिए इसका नवीनतम और स्पष्ट उत्तर क्रमांक 106 में देखा जा सकता हैं।

ईश्वर का मन्नत लेना और क़ाबा-परिक्रिमा का दर्शन

ईश्वर द्वारा किसी वस्तु को अपनी ओर मंसूब करने के उत्तर के लिए क्रमांक 93 और 100 देखें। इसी प्रकार बुत-परस्ती के विषय में क्रमांक 31 का अवलोकन करें।
जहाँ तक ईश्वर भेंट स्वीकार करता है, तो यह आरोप पूर्णतः नीराधार एवं असत्य है। क्योंकि नज़र (मन्नत) पूरी करने का तात्पर्य यह नहीं होता कि ईश्वर स्वयं भेंट लेता है, बल्कि इसका आशय यह है कि यदि किसी व्यक्ति ने खैरात या दान देने का इरादा किया हो और उसे मन्नत के रूप में माना हो, तो अब उसे चाहिए कि वह अपनी मन्नत पूरी कर लें।
काबा की परिक्रमा, अर्थात तवाफ़ एक प्रतीकात्मक अनुष्ठान है, जो मौन भाषा में दिया गया एक गहरा संदेश है। इसकी शिक्षा यह है कि जिस प्रकार किसी भी वृत्त का अस्तित्व उसके केंद्र बिंदु के बिना अपूर्ण है, ठीक उसी प्रकार यह परिक्रमा प्रतीक रूप में यह प्रकट करती है कि ईश्वर ही इस विशाल सृष्टि के विशाल वृत्त का एकमात्र, अटल और शाश्वत केंद्र है। अब बताए इसमें समस्या क्या है?

पशु क़ुर्बानी का दर्शन

हज के अवसर पर की जाने वाली पशु-कुर्बानी का वास्तविक दार्शनिक अर्थ यह है कि वह हज़रत इब्राहीम (अ.) और उनके

सुपुत्र हज़रत इस्माइल (अ.) के उस महान और अनुपम त्याग की स्मृति को ताज़ा करती है, जब एक पिता ने अपने पालनहार के आदेश पर अपनी सबसे प्रिय वस्तु — अपने पुत्र — को कुर्बान करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। वहीं पुत्र ने भी पूर्ण प्रसन्नता, धैर्य और रजामंदी के साथ अपने पालनहार के आगे सिर झुका दिया।

यद्यपि यह घटना ईश्वर की ओर से मात्र एक परीक्षा थी, किंतु इसके माध्यम से मानवजाति के लिए जो महान शिक्षा प्रकट हुई, वह यह है कि मनुष्य को अपने जीवन की सबसे मूल्यवान और प्रिय वस्तु को भी ईश्वर के मार्ग में क़ुर्बान करने का जज़्बा अपने भीतर पैदा करना चाहिए। यही वह सर्वोच्च भावना है, जो मनुष्य को ईश्वर के मार्ग में अपना समय, अपना धन (दान और सेवा के रूप में) और आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण तक अर्पित करने के लिए तैयार करती है।

यह भावना मनुष्य के भीतर पूर्ण समर्पण, आज्ञाकारिता और ईश्वर-भक्ति का भाव जाग्रत करती है। हज और कुर्बानी के ये सारे कर्म इस मूल सत्य की ओर संकेत करते हैं कि इस संसार में ईश्वर से बढ़कर कोई भी वस्तु प्रिय नहीं है। जो कुछ भी हमारे पास है — हमारी मोहब्बतें, हमारी संपत्तियाँ और हमारी सभी नेमतें — वे सब उसी की दी हुई अमानत है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह मोमिनून

115. फिर निश्चय तुम दिन कयामत के उठाये जाओगे। 23: 16 क़ुरआन.

समीक्षक:- कयामत तक मुर्दे कबरों में रहेंगे वा किसी अन्य जगह? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे? यह न्याय अन्याय है। और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से खुदा और मुसलमान पापभागी होंगे।

उत्तर:

मृत शरीर का दाह-संस्कार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक

यह विचार पंडित दयानन्द सरस्वती को शवदाह की विधि पर मंथन करते समय अवश्य सोचना चाहिए था कि जलते समय शरीर को कितना कष्ट (दुःख) सहना पड़ता होगा। ऐसी प्रक्रिया से निःसंदेह ईश्वर और आर्य — दोनों ही अन्यायी और पाप के भागी ठहरते है।

इस्लामी दृष्टि से मृत्यु के पश्चात आत्मा शरीर को त्यागकर आत्मलोक (बरज़ख़) में चली जाती है। इसी प्रकार का मत पंडित दयानन्द भी मानते हैं, तथा छन्दोग्य उपनिषद (5.10.1-5) में भी वर्णित है कि मूक्त आत्मा पितृलोक में वास करती है। पंडित के मतानुसार यद्यपि पितृलोक में स्थानाभाव (धक्का-मुक्की) के कारण आत्माओं को वहाँ से विस्थापित होना पड़ता है, तथापि यह सिद्धांत स्वीकार्य है कि मृत्यु के बाद आत्मा का शरीर से कोई सीधा संबंध नहीं रह जाता।

जहाँ तक शव के सड़ने का प्रश्न है, तो कब्रों में दफनाए गए शव भूमि के भीतर सड़कर मिट्टी में मिल जाते हैं और उनकी दुर्गंध भूगर्भ तक ही सीमित रहती है। यह समझना कठिन है कि पंडित ने भूमिगत दफन शवों की दुर्गंध कैसे अनुभव कर ली होगी। इसके विपरीत, शवदाह के समय उत्पन्न धुंए और जले हुए मांस के सूक्ष्म कण वायुमण्डल में फैल जाते हैं, जो वायु प्रदूषण तथा अनेक श्वसन-संबंधी रोगों का कारण बनते हैं। निरंतर ऐसी प्रदुषित वायु में सांस लेते रहने से लोगों की सुगंघने

की शक्ति इस हद तक अभ्यस्त हो जाती है कि उन्हें इस भयावह दुर्गंध का भी सही आभास नहीं रह जाता।

सत्यार्थप्रकाश में एक स्थान पर पंडित दयानन्द ने होम (यज्ञ) के महत्व पर प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया है —

प्रश्न: होम से क्या उपकार होता है?

उत्तर- सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धियुक्त वायु और जल से रोग होते हैं, रोग से प्राणियों को दुःख मिलता है, और सुगंधित वायु तथा जल से आरोग्य प्राप्त होता है, जिससे रोग नष्ट होकर सुख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न: जब ऐसा ही है तो केसर, कस्तूरी, सुगंधित पुष्प और उत्तर आदि को घर मे रखने से भी तो वायु सुगंधित होकर सुखदायी होगी।

उत्तर- उस सुगंध में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु को भीतर ला सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं होती। अग्नि ही वह सामर्थ्य रखती है, जिससे वायु और दुर्गंधयुक्त पदार्थ छिन्न-भिन्न और हल्के होकर बाहर निकल जाते हैं और पवित्र वायु का प्रवेश होता है। (तृतीय समुल्लास, पृ. 44)

फिलहाल मैं इस कथन के वैज्ञानिक पक्ष पर बात नहीं करता कि यह तथ्य कितना सही या गलत है। किंतु, यदि उपर्युक्त उत्तर पर गहन चिंतन किया जाए, तो एक महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है। वह यह है कि भारत में प्रतिदिन हजारों शवों का अग्नि के माध्यम से दाह-संस्कार किया जाता है। इस प्रक्रिया में अग्नि ही वह प्रमुख कारण बनती है जो जले हुए मांस के सूक्ष्म कण को वायुमण्डल में फैलाती है, जिससे वायु की शुद्धता नष्ट होती है और यह अनेक रोगों का कारण बनती है।

ईश्वर का धन्यवाद है कि यह प्रथा केवल मानव शवों तक ही सीमित है। यदि मृत पशुओं एवं अन्य जीवों के शवों को भी जलाने का विधान होता, तो ईंधन के भारी संकट के साथ-साथ वायु प्रदूषण का स्तर असहनीय हो जाता। व्यवहारिक रूप से देखा जाए तो स्वयं आर्यसमाजी भी मृत पशुओं के शवों को अग्नि में जलाने के स्थान पर भूमि में दफनाते ही हैं। यही प्रक्रिया यदि मनुष्य के शवों के लिए अपनाई जाए, तो यह कहीं अधिक उपयुक्त, व्यावहारिक और स्वास्थ्यकर है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह नूर

116. उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उन के ज़बानें उन की और हाथ उन के और पांव उन के साथ उस वस्तु के कि थे करते। अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का, नूर उस के कि मानिन्द ताक़ की है बीच उस के दीप हो और दीप बीच कंदील शीशों के हैं, वह कंदील मानो कि तारा है चमकता, रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के से, न पूर्व की ओर है न पश्चिम की, समीप है तेल उस का रोशन हो जावे जो न लगे ऊपर रोशनी के मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिस को चाहता है। 24: 24-35 क़ुरआन.

समीक्षक:- हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या है। क्या खुदा आगी बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता। हां! किसी साकार वस्तु में घट सकता है।

उत्तर:

निर्जीव वस्तुओं में चेतना प्रदान करने की ईश्वरीय सामर्थ्य

पाठकों के लिए यह समझना आवश्यक है कि आर्य समाज और इस्लाम में प्रकृति तथा ईश्वर के संबंध को लेकर मौलिक दार्शनिक अंतर पाया जाता है। आर्य समाज के दर्शन के अनुसार, प्रकृति भी ईश्वर की भाँति एक शाश्वत सत्ता है। इस दृष्टिकोण में प्रकृति का अस्तित्व और उसके गुण ईश्वर के पूर्ण नियंत्रणाधीन नहीं माने जाते। इसके विपरीत, इस्लामी दृष्टिकोण यह मानता है कि प्रकृति और उसके समस्त गुण ईश्वर की रचना हैं तथा उनका अस्तित्व पूर्णतः ईश्वर की असीम शक्ति पर निर्भर है। इस्लाम में ईश्वर को सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता माना गया है, और उसी ने प्रकृति को निर्जीव अवस्था में रचना की है, यदि वह चाहें तो उसी निर्जीव पदार्थ में चेतना का संचार कर दें।

यही वैचारिक भिन्नता इस निष्कर्ष तक पहुँचाती है कि वैदिक (आर्य समाज) परंपरा में ईश्वर सृष्टिक्रम और प्रकृति के नियमों के अधीन माना जाता है, जबकि इस्लाम में ईश्वर उन नियमों का रचयिता और नियंत्रक है। यहाँ यह समझना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ईश्वर की सत्ता — जिसे असीम शक्ति का स्वामी कहा जाता है — को केवल भौतिकी (Physics) के नियमों की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। बल्कि यह अवधारणा दार्शनिक क्षेत्र से संबंधित है।

पवित्र क़ुरआन में वर्णित परलोक वर्तमान भौतिकी नियमों के अंतर्गत नहीं आता। वह एक अलौकिक व्यवस्था होगी — एक नवसृष्टि — जिसके अपने विशिष्ट नियम होंगे। उस नई सृष्टि में निर्जीव वस्तुएँ भी ईश्वर की शक्ति से गवाही देंगी।

यदि हम आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलॉजी के उदाहरणों पर दृष्टि डालें, तो यह अवधारणा और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण के तौर पर — मोबाइल फोन, कंप्यूटर या सीसीटीवी कैमरे जैसे निर्जीव उपकरण — जिन्हें मानवों ने निर्मित किया है — हमारी वार्तालाप, संदेश और गतिविधियों को स्वतः दर्ज करके साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। जब मानव-निर्मित यंत्र ऐसी क्षमताएँ प्रदर्शित कर सकते हैं, तो स्वयं मानव के सृष्टिकर्ता ईश्वर के लिए यह कैसे असंभव हो सकता है कि वह निर्जीव पदार्थों को चेतना और वाणी प्रदान करे?

स्पष्ट है जहाँ आर्य समाज का दर्शन ईश्वर को प्रकृति के नियमों के अधीन देखता है, वहीं इस्लाम ईश्वर को उन नियमों का रचयिता मानता है। अतः यदि आधुनिक तकनीक जड़ पदार्थों से सूचना और साक्ष्य प्रस्तुत करा सकती है, तो ईश्वर की शक्ति पर संदेह करना वस्तुतः मानव समझ की सीमाओं को ही दर्शाता है।

टिप्पणी — शुक्र है कि पंडित ने AI जैसी सुपर-इंटेलिजेंस के बारे में नहीं सुना; अन्यथा असंभव है—असंभव है, कहते-कहते संभवतः वे अपने मानसिक संतुलन ही खो बैठते।

वेदों में ईश्वर के लिए प्रयुक्त 'प्रकाश' शब्द तथा आयत में प्रयुक्त 'नूर' शब्द का तात्पर्य

ऋग्वेद (3.62.10) के एक मंत्र का भाष्य पंडित दयानन्द ने स्वयं इस प्रकार किया है —

"उस सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने वाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी और सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता, प्रकाशमान, सबके प्रकाश करने वाले, सर्वत्र व्यापक अंतर्यामी...।"

क्यों पंडित जी ईश्वर कोई बल्ब, ट्यूबलाइट या बकॉल आपके आगी बिजुली है?

आपत्ति से स्पष्ट है कि पंडित जी ने शब्द "नूर" को भौतिक प्रकाश समझ लिया हैं।
खैर, पंडित के ऐसी ऊटपटाँग आपत्तियों से हमें कोई सरोकार नहीं, हमारा उद्देश्य तो पाठकों को मात्र समझाना है। वास्तव में, अरबी भाषा में शब्द "नूर" का अर्थ सिर्फ प्रकाश ही नहीं होता, बल्कि इसका प्रयोग मार्गदर्शन (हिदायत), ज्ञान और सत्य के लिए भी किया जाता है। आयत में "नूर" इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यानी ईश्वर हिदायत, ज्ञान और सत्य का स्रोत है, जो अज्ञानता के अंधकार को दूर करने वाला है। जैसा हम कहते है "ज्ञान प्रकाश है"। अब यदि आर्य समाज जैसी मोटी बुद्धि वाले किसी व्यक्ति से पाला पड़ जाए तो वह इसका यही अर्थ निकाल लेगा कि ज्ञान से बिजली निकल रही है। किंतु जो बुद्धिमान है, वे समझते हैं कि यहाँ "प्रकाश" से आशय अज्ञान के अंधकार को मिटाने वाली शक्ति से है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

117. और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से बस कोई उन में से वह है कि जो चलता है पेट अपने के। और जो कोई आज्ञा पालन करे अल्लाह की रसूल उस के की। कह आज्ञा पालन करे खुदा की रसूल उस के की और आज्ञा पालन करो रसूल की ताकि दया किये जाओ। 24: 45-52-56 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह कौन सी फ़िलासफ़ी है कि जिन जानवरों के शरीर में सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानी से उत्पन्न किये। यह केवल अविद्या की बात है। जब अल्लाह के साथ पैग़म्बर की आज्ञा पालन करना होता है तो खुदा का शरीक हो गया वा नहीं? यदि ऐसा है तो क्यों खुदा को लाशरीक कुरान में लिखा और कहते हो?

उत्तर:

जल जीवन की उत्पत्ति का मूलभूत स्रोत है

यदि पंडित से यह प्रश्न किया जाए कि आयत में तो "केवल पानी" से बनाए जाने की बात तो की ही नहीं गई, तो फिर यह विचार अरबी के किस मूल शब्द से निकाला गया?
मूल आयत का तात्पर्य अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि जीव-जंतु केवल पानी के ढेर से बने हैं। बल्कि इसका सार यह है कि पानी समस्त जीवन की मूलभूत आधारशिला और उत्पत्ति का अनिवार्य स्रोत है। आयत में प्रयुक्त वाक्यांश "मिन" का प्रयोग कारण, स्रोत या माध्यम के अर्थ में होता है — न कि अनन्य या एकमात्र घटक के रूप में। अतः यह कहना कि "केवल जल से" बनाया, बिल्कुल निराधार है।
आधुनिक जीवविज्ञान (Biology) और रसायनशास्त्र (Chemistry) दोनों ही इस तथ्य पर एकमत हैं कि जीवन की उत्पत्ति, संरचना और स्थायित्व जल पर निर्भर करता है। DNA, RNA और प्रोटीन जैसे जीवन के अधिकांश अणु जल के बिना अस्तित्वहीन हैं। कोशिका (Cell) का लगभग 70-80% जल से ही निर्मित है। अतः, पवित्र क़ुरआन का यह कथन कि "और हमने हर जीवित वस्तु को जल से बनाया" पूर्णतः सत्य पर आधारित है।
यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि आयत में 'जल से' कहा गया है, 'केवल जल से' नहीं। इस भाषाई मौजिज़ा का अर्थ यह है कि जल एक अनिवार्य तत्व, अनिवार्य माध्यम और आधार है, जिसके द्वारा ईश्वर ने अन्य तत्वों व रासायनिक यौगिकों को संयोजित करके जीवन की अद्भुत रचना की।

इसी प्रकार, क़ुरआन मनुष्य को ब्रह्मांड में व्याप्त ईश्वरीय निशानियों पर विचार करने का आह्वान करता है। लगभग 1450 वर्ष पूर्व, जब जीवन की उत्पत्ति के विषय में मानव ज्ञान सीमित था, तब क़ुरआन ने एक सार्वभौमिक वैज्ञानिक सत्य की ओर संकेत किया — कि जीवन का आधार जल है — जिसकी पुष्टि आधुनिक विज्ञान ने सैकड़ों वर्षों बाद कि है। यह तथ्य स्वयं ही क़ुरआन के ईश्वरीय ज्ञान होने का एक स्पष्ट प्रमाण है।

शिर्क से संबंधित उत्तरों के लिए क्रमांक 24, 55, 57, 62 और 64 देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह फुरकान

118. और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदली के और उतारे जावेंगे फ़रिश्ते। बस मत कहा मान काफ़िरों का और झगड़ा कर उन से साथ झगड़ा बढ़ा। और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उन की को भलाइयों से। और जो कोई तोबाः करे और कर्म करे अच्छे बस निश्चय आता है तरफ अल्लाह की। 25: 25-52-70-71 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बद्दलों के साथ फट जावे। यदि आकाश कोई मूर्त्तिमान् पदार्थ हो तो फट सकता है। यह मुसलमानों का कुरान शान्ति भङ्ग कर गदर झगड़ा मचाने वाला है। इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इस को नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्य का अदला बदला हो जाय। क्या यह तिल और उड़द की सी बात है जो पलटा हो जावे? जो तोबा करने से पाप छूटे और ईश्वर मिले तो कोई भी पाप करने से न डरे। इसलिये ये सब बातें विद्या से विरुद्ध हैं।

उत्तर:

आसमान के फटने का अर्थ

यह आयत सृष्टि के अनादि होने की धारणा का स्पष्ट रूप से खंडन करती है। क़ुरआन की अनेक आयतें इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि क़यामत (प्रलय) के दिन ब्रह्मांड की वर्तमान व्यवस्था और उसकी स्थिति मूलरूप से परिवर्तित हो जाएगी — 'आसमान के फटने' का अभिप्राय भी यही है। यह इस सत्य की ओर उजागर करता है कि ब्रह्मांड की वर्तमान व्यवस्था एक अस्थायी अवस्था मात्र है।

प्रलय के समय, समस्त सृष्टि — चाहे वह तारे, नक्षत्र हों या ग्रह — विनाश की प्रक्रिया में प्रवेश कर जाएगी और चारों ओर अभूतपूर्व उथल-पुथल मच जाएगी। उस समय आकाश का दृश्य ऐसा प्रतीत होगा मानो वह दहकती हुई भट्टी में पिघलता हुआ ताँबा हो।

वास्तव में, यह आयत संसार के अंत में उत्पन्न होने वाली उस विशिष्ट और भयावह अवस्था का अत्यंत सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है।

आसमान से संबंधित विषय पर पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है (क्रमांक 96 देखें), अतः यहाँ उसी को दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

क़ुरआन के साथ जिहाद-ए-कबीर

"जिहाद" शब्द सुनते ही पंडित जैसे लोगों के मन में शायद तलवारें लहराते या भाँजते हुए मुजाहिदों (योद्धाओं) का चित्र उभर आता है। किंतु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है।

क़ुरआन की यह आयत वास्तव में एक महान और व्यापक जिहाद की ओर संकेत करती हैं — जिसे जिहाद-ए-कबीर (बड़ा जिहाद) कहा गया है। यह जिहाद इल्म (ज्ञान), विवेक और संवाद के माध्यम से सत्य के प्रसार का आह्वान करता है। यही वह जिहाद है जो हम अपनी कलमों के माध्यम से लड़ रहे हैं। यह ऐसा शस्त्र है जो लोहे की तलवार या बंदूक की गोली से कहीं अधिक प्रभावशाली और घातक है। सत्य की यह धार इतनी तीक्ष्ण है कि यूरोप के पादरी हो या भारत के पंडित — विचलित हो उठते हैं। यही कारण है कि पंडित जैसा सन्यासी भी क़ुरआन पर निराधार और मिथ्या आरोप लगाने को विवश हो जाते हैं।

क्यों? क्योंकि यह शांति और सुलह का मार्ग है। यह झूठ और छल की पोल खोल देता है। स्पष्ट हृदय वाले निष्कपट लोग इसे सहज ही स्वीकार कर लेते हैं, जबकि कपटी व्यक्ति शत्रुता करने पर विवश हो जाते हैं।

बुराइयों के नेकियों में परिवर्तित होने का अभिप्राय

इस प्रश्न का उत्तर इतनी बार और इतने अलग-अलग स्थानों पर दिया जा चुका है, मानो कोई महाग्रंथ ही रचा जा रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि पंडित को यह प्रश्न इतना प्रिय हो गया है कि वे इसे बार-बार दोहराकर कंठस्थ करने में लगे हैं। पूछने वाले कि जिज्ञासा भी कमाल की है — एक ही धुन सवार है कि वही प्रश्न बार-बार पूछते रहो, और हमारी कृपा भी कम नहीं कि हर बार उसे नए अंदाज में समझा देते हैं। अब आप ही बताइए, इस एक प्रश्न को उन्होंने कितनी बार रटा होगा!

ख़ैर, तौबा (पश्चाताप) के माध्यम से पापों की क्षमा का सिद्धांत सुनते ही पंडित जी अत्यंत विचलित हो जाते हैं, जबकि यह बात न तो जटिल है और न ही अस्पष्ट। बिल्कुल यह एकदम सीधी और स्पष्ट है।

क़ुरआन में इस विषय में साफ-साफ कहा गया है —

"और वे लोग जो ईश्वर के साथ किसी दूसरे को साझी नहीं ठहराते, और न उस व्यक्ति की हत्या करते हैं जिसकी हत्या को ईश्वर ने वर्जित किया है — सिवाय न्यायसंगत कारण के — और न ही व्यभिचार करते हैं। और जो कोई भी ऐसा करेगा, वह अपने अपराध का दण्ड पाएगा। प्रलय के दिन उसके लिए कठोर यातना होगी और वह उसमें सदैव अपमानित रहेगा। किंतु जो व्यक्ति तौबा कर ले, ईमान लाए और सत्कर्म करे, तो ऐसे लोगों के बुरें कर्मों को ईश्वर भले कर्मों में बदल देगा। निःसन्देह, ईश्वर अत्यंत क्षमाशील और दयालु है।" सूरह फुरकान (25:69 से 71 तक)

बुराइयों को नेकियों से बदल देने का तात्पर्य यह है कि तौबा करने वाले व्यक्ति को भविष्य में अच्छे कर्म करने का विशेष साहस और प्रेरणा प्रदान की जाती है। यही नेकियाँ उसके पूर्व के पापों का प्रायश्चित का साधन बन जाती हैं। यह भी पहले (क्रमांक 111 पर) स्पष्ट किया जा चुका है कि तौबा और दंड, दोनों का उद्देश्य एक ही है — भविष्य में पाप करने से रोकना और आत्मा को शुद्ध करना।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अश-शुआरा

119. वही की हम ने तरफ मूसा की यह कि ले चल रात को बन्दों मेरे को, निश्चय तुम पीछा किये जाओगे। बस भेजे लोग फ़िरोन ने बीच नगरों के जमा करने वाले। और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुझ को है, बस वही मार्ग दिखलाता है। और वह जो खिलाता है मुझ को पिलाता है मुझ को। और उस पुरुष की आशा रखता हूँ मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे अपराध मेरा दिन कयामत के। 26: 52-53-78-79-82 क़ुरआन.

समीक्षक:- जब खुदा ने मूसा की ओर बही भेजी पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहेब की ओर किताब क्यों भेजी? क्योंकि परमेश्वर की बात सदा एक सी और बेभूल होती है और उस के पीछे कुरान तक पुस्तकों का भेजना पहिली पुस्तक को अपूर्ण भूलयुक्त माना जायगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं तो यह कुरान झूठा होगा। चारों का जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखते हैं उन का सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता। यदि खुदा ने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं तो वे मर भी जायेंगे अर्थात् उन का कभी नाश कभी अभाव भी होगा? जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता पिलाता है तो किसी को रोग होना न चाहिये और सब को तुल्य भोजन देना चाहिये। पक्षपात से एक को उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलता है; न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने पिलाने और पथ्य कराने वाला है तो रोग ही न होने चाहिये परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होते हैं। यदि खुदा ही रोग छुड़ा कर आराम करने वाला है तो मुसलमानों के शरीरों में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो खुदा पूरा वैद्य नहीं है यदि पूरा वैद्य है तो मुसलमानों के शरीरों में रोग क्यों रहते हैं? यदि वही मारता और जिलाता है तो उसी खुदा को पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है तो उस को कुछ भी अपराध नहीं। यदि वह पाप क्षमा और न्याय कयामत की रात में करता है तो खुदा पाप बढ़ाने वाला होकर पापयुक्त होगा। यदि क्षमा नहीं करता तो यह कुरान की बात झूठी होने से बच नहीं सकती है।

उत्तर:

हज़रत इब्राहीम के वचन ईश्वरीय ज्ञान की उच्चतम अवस्था

पवित्र क़ुरआन की आवश्यकता और इससे संबंधित आपत्तियों का उत्तर पहले ही दिया जा चुका है, क्रमांक 5, 14, 20, 22 और 55 देखें।

इसी प्रकार, उल्लेखित आयत में आत्मा के उत्पन्न होने के विषय में कोई चर्चा नहीं है; परंतु यदि मृत्यु संबंधी कोई प्रश्न शेष है, तो उसका उत्तर भी क्रमांक 12 में स्पष्ट रूप से दिया जा चुका है।

हज़रत इब्राहीम (अ.) के उन पावन वचनों — "वही मुझे खिलाता-पिलाता है और जब मैं बीमार होता हूँ तो वही मुझे स्वस्थ करता है" — का सार एक सच्चे भक्त की उस उच्चतम ईश्वरीय ज्ञान (मारिफत) की अवस्था को प्रकट करता है, जहाँ व्यक्ति प्रत्येक क्लेश को अपनी त्रुटि का प्रतिफल मानता है और प्रत्येक कल्याण को अपने सृष्टिकर्ता की अनुकंपा। यह अहंकार के पूर्ण विलोपन तथा प्रभु-प्रेम (इश्क़) के शिखर का दर्शन है।

अत्यंत खेद का विषय है कि इतनी सूक्ष्म एवं गहन आध्यात्मिक शिक्षा एक ऐसे अयोग्य पंडित के हाथ पड़ गई, जो न स्वयं उस रहस्य को समझ सका, न अपने अनुयायियों को ही उसका लाभ दिला पाया, बल्कि उल्टा उनके मार्ग में एक बाधा बन

गया है।

इस निराधार आपत्ति का उत्तर देना आवश्यक भी नहीं था, तथापि स्पष्टता के लिए ध्यान दें —

ईश्वर ने ही वे सभी मूल संसाधन — अन्न, जल, वायु, स्वास्थ्य एवं उपचार के साधन — प्रदान किए हैं। उसी की धरती सबको आश्रय देती है। सूर्य-चंद्र का प्रकाश, वर्षा की बूँदें, सांस के लिए वायु — यह सब ईश्वरीय रिज़्क़ है, जो पंडित और भंगी के बीच कोई भेद नहीं करती।

समस्या का आरंभ तब होता है, जब मनुष्य अत्याचार करके दूसरे का भी अधिकार छीन लेता है — छल, बल अथवा झूठे आख्यानों के द्वारा स्वयं को अधिकारी घोषित कर देता है। ज्ञान के अहंकार में डूबी एक विकृत ब्राह्मणवादी मानसिकता; सम्पूर्ण समाजिक व्यवस्था को विषम बना देता है। वही मानसिकता किसी को जन्म से शुद्र, किसी को अछूत, किसी को राक्षस, दस्यु या म्लेच्छ घोषित कर देता है। यह सब जन्म-मरण जैसे झूठे सिद्धांत का ही अभिशाप है।

ईश्वर ने किसी को जन्म से राजा या भिखारी नहीं बनाया। सभी मनुष्य निर्वस्त्र तथा खाली हाथ इस धरती पर आते हैं। न मोतियों की माला कोई लेकर आता है, न सत्ता, न थाली, और न ही तथाकथित पिछले जन्म की कोई कमाई। यह समाज, शासन और माता-पिता की गलत सामाजिक संरचनाओं और अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं का परिणाम है, जो किसी को जन्म के बाद राजा और किसी को दरिद्र, किसी को शुद्र, और किसी को म्लेच्छ बना देती है।

शेष आपत्तियों का उत्तर पूर्व में अनेक बार दिया जा चुका है।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

120. नहीं तू परन्तु आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों से। कहा यह ऊंटनी है वास्ते उस के पानी पीना है एक बार। 26: 154-155 क़ुरआन.

समीक्षक:- भला! इस बात को कोई मान सकता है कि पत्थर से ऊंटनी निकले! वे लोग जङ्गली थे कि जिन्होंने इस बात को मान लिया। और ऊंटनी की निशानी देनी केवल जङ्गली व्यवहार है; ईश्वरकृत नहीं। यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इस में न होतीं।

उत्तर:

ऊँटनी का पत्थर से निकल आना क़ुरआन का प्रसंग नहीं

यदि लोग पंडित द्वारा प्रस्तुत की गई आयत को ही ध्यानपूर्वक देखें, तो उसमें कहीं भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि ऊँटनी किसी पत्थर से निकली थी। यह कथन स्पष्ट रूप से लोगों को भ्रमित करने का प्रयास है और क़ुरआन के मूल पाठ के साथ छेड़छाड़ अथवा उसके अर्थ को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का उदाहरण है। आश्चर्य की बात यह है कि पंडित ने चौदहवें समुल्लास की भूमिका लिखते समय स्वयं यह स्पष्ट रूप से कहा है — "मुसलमानों के मत विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह केवल क़ुरआन के अभिप्राय पर आधारित है, अन्य ग्रंथों के मत पर नहीं (पृ. 423)।" परंतु वास्तविकता यह है कि ऊँटनी के पत्थर से निकलने का प्रसंग इस्राइलियात है, जिन्हें क़ुरआन के प्रसंग के रूप में प्रस्तुत करना सरासर गलत है।

किंतु, आर्यसमाजी विद्वानों का यह मत है कि "जवान-जवान पुरुष और स्त्रियाँ सीधे पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे — (अष्टम

समुल्लास, पृ. 184 तथा ऋग्वेद 10.18.10-11 — भाष्यकार प. ब्रह्ममुनि परिव्राजक)। प्रश्न यह उठता है कि जब धरती के गर्भ से युवावस्था में मनुष्य तथा संपूर्ण जीव-जंतु का पेड़ों की भांति उत्पन्न होना मानी जा सकती है, तो फिर ऊँटनी का पत्थर से निकलने की बात को क्यों नहीं मानी जा सकती?

निशानियों के संबंध में पहले ही क्रमांक 93 और 105 पर चर्चा की जा चुकी हैं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह नमल

121. ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूँ ग़ालिब। और डाल दे असा अपना, बस जब कि देखा उस को हिलता था मानो कि वह सांप है ऐ मूसा मत डर, निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर। अल्लाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का। यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर। 27: 9-10-26-31 क़ुरआन.

समीक्षक:- और भी देखिये अपने मुख आप अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त बनता है। अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं; खुदा का क्योंकर हो सकता है? तभी तो इन्द्रजाल का लटका दिखला जङ्गली मनुष्यों को वश कर आप जंगलस्थ खुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक में कभी नहीं हो सकती। यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आसमान का मालिक है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता है। यदि सरकशी करना बुरा है तो खुदा और मुहम्मद साहेब ने अपनी स्तुति से पुस्तक क्यों भर दिये? मुहम्मद साहेब ने अनेकों को मारे इस से सरकशी हुई वा नहीं? यह कुरान पुनरुक्त और पूर्वापर विरुद्ध बातों से भरा हुआ है।

उत्तर:

ईश्वर का आत्मप्रशंसा दम्भ नहीं

ईश्वर का अपने गुणों का वर्णन आत्मप्रशंसा नहीं, बल्कि मानवजाति के लिए आवश्यक मार्गदर्शन एवं शिक्षण है। मनुष्य जब अपने गुणों का वर्णन करता है, तो उसके पीछे प्रशंसा पाने का यश अर्जित करने की इच्छा हो सकती है। परंतु ईश्वर के संदर्भ में ऐसा ही सोचना उचित नहीं। क्योंकि उसका अपने गुणों का वर्णन करने का एकमात्र उद्देश्य अज्ञानता के अंधकार में भटक रहे मनुष्यों को सत्य के मार्ग की ओर निर्देशित करना है। यह ठीक वैसा ही है, जैसे कोई सच्चा और ईमानदार चिकित्सक अपने वास्तविक कौशल को छिपाता नहीं, बल्कि लोकहित के लिए प्रकट करता है, ताकि रोगी जान सकें कि वह उनके रोगों का उपचार करने में समर्थ है। इसे आत्मप्रशंसा नहीं कहा जाता, बल्कि रोगियों के हित में दी गई एक आवश्यक सूचना और अपने दायित्व का निर्वहन है।

यदि ईश्वर मौन रहें और अपने ज्ञान, दया, और शक्ति आदि जैसे गुणों से मानव को परिचित न कराएँ, तो मनुष्य अपनी सीमित बुद्धि के कारण प्रकृति, आत्माओं, वृक्षों, पत्थरों, नदियों अथवा पशुओं जैसी सृष्टियों में ही ईश्वरीय गुणों का आरोपण करने लगेगी या उन्हें ही ईश्वर मान लेगी। इसी मूलभूत भ्रम से मनुष्य को बचाने के लिए पवित्र क़ुरआन में ईश्वर ने अपने गुणों का स्पष्ट वर्णन किया है, ताकि मनुष्य उसके वास्तविक स्वरूप को पहचान सके और शिर्क तथा कुफ़्र जैसी गंभीर भ्रांतियों से दूर एवं सुरक्षित रह सके।

अतः इसी अज्ञान के अंधकार को मिटाने के लिए ज्ञान का दीपक जलाना न तो आत्मप्रशंसा है और न ही अहंकार। यह तो केवल ईश्वर की असीम करुणा, दया और मानवकल्याण की अभिवयक्ति है।

इसी प्रकार, पंडित का यह कथन कि — "अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुषों का भी काम नहीं है, तो फिर ईश्वर का क्योंकर हो सकता है?"

प्रथम तो यह तुलना ही अनुचित है, क्योंकि मनुष्य अपूर्ण है जबकि ईश्वर पूर्ण है। द्वितीय, वेदों में स्वयं ईश्वर ने अपनी प्रशंसा किया है। उदाहरण स्वरूप कुछ मंत्र प्रस्तुत हैं —

ऋग्वेद (10.48.7) — ब्रह्ममुनि परिव्राजक

"मैं अभिभूत करने वाला परमात्मा अकेला हूँ। एक निन्दक या नास्तिक वर्ग को भी मैं अभिभूत करता हूँ, अपने अधीन कर दंड देता हूँ। दो वर्गों को भी दंड देता हूँ। तीन नास्तिक वर्ग भी मेरा क्या कर सकते हैं और क्या करेंगे...?"

सामवेद (613) — रामनाथ वेदालंकार

"मैं परमात्मा सबका अग्रनायक और अग्नि के समान प्रकाशक होने से अग्नि नामवाला हूँ। स्वरूप से ही सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, वेदो का प्रकाशक तथा सब धनों का उत्पादक हूँ। मेरी आँख अर्थात देखने की शक्ति अत्यंत तीव्र है। मेरे मुख में अमृत है, मैं सदा अमृतत्व का आस्वादन करता रहता हूँ अर्थात अमर हूँ।..."

देखों ऋग्वेद (10.48.1) — जयदेव शर्मा और ऋग्वेद (10.27.10) — ब्रह्ममुनि परिव्राजक। ऐसे अनेक मंत्र वेदों में उपलब्ध हैं। यहाँ तो केवल उदहारणस्वरूप कुछ ही प्रस्तुत किए गए हैं। अब प्रश्न यह है — जब श्रेष्ठ पुरुष भी अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना उचित नहीं समझते, तो वैदिक ईश्वर या परमात्मा ऐसा क्यों करता है?

पूर्व में भी विस्तार से इसका उत्तर दिया गया है, देखें क्रमांक 5 और 10।

मौजिज़ा और इंद्रजाल से संबंधित आपत्तियों के उत्तर के लिए क्रमांक 74 देखें। और यदि मौजिज़ा से संबंधित अन्य आपत्तियों के उत्तरों को विस्तार से जानना चाहते हैं, तो क्रमांक 14, 16, 22 और 76 के उत्तर भी देख सकते हैं।

एकदेशी और अर्श से संबंधित उत्तरों के लिए क्रमांक 64 और 72 देखें।

मुहम्मद ﷺ पर आरोप ऐतिहासिक रूप से निराधार है

जहां तक पंडित द्वारा की गई असभ्य टिप्पणियों का प्रश्न है — हम ऐसे कथनों पर उसी स्तर पर उतरकर प्रतिक्रिया देना उचित नहीं समझते। हमारी पुस्तक में हमने अपने कथनों को केवल शिष्ट, तथ्यपरक और मर्यादित संवाद तक ही अपनी भाषा को सीमित रखा और प्रयोग किया है।

पंडित जी का यह कथन कि "मुहम्मद साहब ने अनेकों को मारा," यह ऐतिहासिक रूप से निराधार एवं अनुचित आरोप है। ऐसे दावों का मूल्यांकन निष्पक्ष ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया जाना आवश्यक है।

यदि हम सनातनधर्म के ग्रंथों का उदाहरण लें, तो महाभारत का युद्ध पांडवों और कौरवों के बीच हुआ एक भीषण संघर्ष था, जिसमें करोड़ो योद्धा मारे गए। इसी प्रकार, रामायण में श्री राम और रावण के मध्य हुए युद्ध में भी व्यापक विनाश होने की बात मिलती है। फिर भी, श्रीराम और श्रीकृष्ण को आदर्श, मर्यादापुरूषोत्तम और पूजनीय माना जाता है।

अब यदि हम हज़रत मुहम्मद ﷺ के जीवन को समग्रता में देखें, तो उनकी पैग़म्बरी लगभग 23 वर्षों में फैली हुई है। इसके पहले 13 वर्ष उन्होंने मक्का में बिताए, जहाँ उन्होंने एकेश्वरवाद, नैतिकता, सहिष्णुता और सत्य का शांतिपूर्ण प्रसार किया। इस काल में उन्होंने और उनके अनुयायियों ने गहन सामाजिक उत्पीड़न, यातना और आर्थिक बहिष्कार सहा, किंतु प्रतिकार में किसी प्रकार की हिंसा का सहारा नहीं लिया।

मक्का से मदीना हिजरत के पश्चात के 10 वर्षों की अवधि में कुछ सैन्य संघर्ष अवश्य हुए, परंतु वे सभी युद्ध परिस्थितिजन्य थे और मुख्यतः आत्मरक्षा, धार्मिक स्वतंत्रता तथा अत्याचार के विरुद्ध न्याय की स्थापना के लिए लड़े गए थे। प्रमाणिक ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार बद्र, उहुद, खंदक, ख़ैबर, हुनैन और अन्य छोटी झड़पों में कुल मिलाकर मारे गए लोगों की संख्या लगभग एक हज़ार से भी कम थी। उस युग के विशाल युद्धों और महाभारत, रामायण की तुलना में यह संख्या अत्यंत कम, बल्कि कुछ भी नहीं है।

अतः यह दावा कि मुहम्मद साहब ने अनेकों को मारा न तो ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है और न ही संदर्भ के न्यायसंगत विश्लेषण पर। वास्तविकता यह है कि हज़रत मुहम्मद ﷺ का संपूर्ण जीवन अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष, आत्मरक्षा के लिए, धार्मिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु था ﷺ न कि सत्ता, सरकशी या फ़साद के लिए।

क़ुरआन में पुनरुक्ति और विरोधाभास का आरोप

पंडित जी का दावा हैं कि पवित्र क़ुरआन में विषयों की पुनरुक्ति (दोहराव) है और उसमें विरोधाभास पाए जाते हैं। परंतु यह आरोप वास्तव में क़ुरआन की शैली और उद्देश्य को न समझ पाने का परिणाम है। निःसन्देह, क़ुरआन अपने संदेशों को आवश्यकता के अनुसार दोहराता है, और इसका उद्देश्य यह है कि संदेश मानव के हृदय और मस्तिष्क में गहराई तक उतर जाए, उसकी गंभीरता और महत्त्व स्पष्ट हो सके, और वह स्मृति में स्थायी रूप से सुरक्षित रह सके।

ऐसे में यह समझना कठिन है कि पंडित को इस दोहराव में आपत्ति क्यों है — विशेषकर तब, जब उनके अपने धर्मग्रंथों में भी व्यापक रूप से पुनरुक्ति विद्यमान है। यदि वे केवल अपने ही ऋग्वेद का अध्ययन करें, तो उन्हें ज्ञात होगा कि उसमें अनेक स्थलों पर मंत्रों की पुनरुक्ति पाई जाती है। इतना ही नहीं, अथर्ववेद और यजुर्वेद के अनेक मंत्र पहले से ही ऋग्वेद में पाई जाती है। इन दोहराए गए मंत्रों की संख्या इतनी अधिक है कि तौरात, ज़बूर, इंजील और क़ुरआन में इतनी व्यापक पुनरुक्ति देखने को नहीं मिलती। यदि पंडित ने प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड की पुस्तक 'The Rig-Veda Repetitions' पढा होता तो संभवतः है कि वे इस प्रकार की आपत्ति करने का साहस न करते।

इसी प्रकार, यह तथ्य भी पूर्णतः स्पष्ट है कि पवित्र क़ुरआन में किसी प्रकार का कोई विरोधाभास नहीं पाया जाता।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

122. और देखेगा तू पहाड़ों को अनुमान करता है तू उन को जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलों की, कारीगरी अल्लाह की जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को, निश्चय वह खबरदार है उस वस्तु के कि करते हो। 27: 88 क़ुरआन.

समीक्षकः- बादलों के समान पहाड़ का चलना कुरान बनाने वालों के देश में होता होगा; अन्यत्र नहीं। और खुदा की ख़बरदारी तो शैतान बाग़ी को न पकड़ने और न दण्ड देने से ही विदित होती है कि जिस ने एक बाग़ी को भी अब तक न

पकड़ पाया; न दण्ड दिया। इस से अधिक असावधानी क्या होगी।

उत्तर:

प्रलय में धरती और पर्वतों की स्थिति

पंडित द्वारा उठाई जाने वाली आपत्तियाँ प्रायः अपने वास्तविक संदर्भ से हटाकर प्रस्तुत की जाती हैं, ताकि लोगों के मन में भ्रम उत्पन्न किया जा सके। यहाँ जिस आयत का उल्लेख है, वह सामान्य परिस्थितियों का नहीं, बल्कि प्रलय के उस भीषण दृश्य का वर्णन करती है, जब सम्पूर्ण सृष्टि का ढाँचा पूरी तरह बिखर जाएगा।

यह आयत स्पष्ट करती है कि उस दिन धरती की क्या दशा होगी — वे पहाड़, जो हमें अटल और अडिग दिखते हैं, अपनी नींव से उखड़ जाएँगे। जो पर्वत आज स्थिर और अचल प्रतीत होते हैं, वे स्पष्ट हमें सरकते हुए दिखेंगे और वे चूर-चूर होकर बिखर जाएँगे एवं बादलों की भाँति हवा में उड़ते नज़र आएँगे।

प्रलय का यह दृश्य ईश्वर की उस असीम शक्ति को प्रकट करता है, जो मनुष्य की सीमित समझ से कहीं परे है। जब पहाड़ जैसी कठोर, दृढ़ और विशाल वस्तुएँ भी इस अवस्था को प्राप्त होंगी, तो साधारण मनुष्य की क्या स्थिति होगी! यह आयत मनुष्य को उस अंतिम दिन की भयावहता से सचेत करते हुए ईश्वर की महाशक्ति के सामने नम्रता, विनम्रता और आज्ञाकारिता का संदेश देती है।

इसी प्रकार, आयत में प्रयुक्त "खबरदार" शब्द का तात्पर्य है — पूरी जानकारी रखना, भली-भाँति किसी चीज़ से अवगत होना। अर्थात ईश्वर तुम्हारे प्रत्येक कर्म से पूर्णतः परिचित है, चाहे वे प्रकट हों या गुप्त। इसलिए यह कभी नहीं समझना चाहिए कि मनुष्य के किसी कार्य की जानकारी ईश्वर को नहीं है; बल्कि वह तो मनुष्य के हृदयों के भेद तक से पूरी तरह अवगत है।

जहाँ तक शैतान के संदर्भ का प्रश्न है, इस विषय पर पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। इसके लिए क्रमांक 11, 12, 71, और 105 को देखा जा सकता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह क़सस

123. बस मुष्ट मारा उस को मूसा ने, बस पूरी की आयु उस की। कहा ऐ रब मेरे, निश्चय मैंने अन्याय किया जान अपनी को, बस क्षमा कर मुझ को, बस क्षमा कर दिया उस को, निश्चय वह क्षमा करने वाला दयालु है। और मालिक तेरा उत्पन्न करता है, जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है। 28: 15-16-68 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब अन्य भी देखिये मुसलमान और ईसाइयों के पैग़म्बर और खुदा कि मूसा पैग़म्बर मनुष्य की हत्या किया करे और खुदा क्षमा किया करे। ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं? क्या अपनी इच्छा ही से जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है? क्या उस ने अपनी इच्छा ही से एक को राजा दूसरे को कङ्गाल और एक को विद्वान् दूसरे को मूर्खादि किया है? यदि ऐसा है तो न कुरान सत्य और न अन्यायकारी होने से यह खुदा ही हो सकता है।

उत्तर:

हज़रत मूसा के प्रहार से एक फिरौनी कि मृत्यु और पंडित का निराधार आरोप

न्याय का सिद्धांत तो यही सिखाता है कि किसी घटना का विश्लेषण उसके ऐतिहासिक एवं सामाजिक संदर्भ से अलग करके नहीं किया जा सकता। किंतु यह समझ से परे है कि पंडित के यहाँ न्याय की कौनसी परिभाषा चलती है जिसके आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है।

हज़रत मूसा (अ.) का जन्म एक ऐसे भीषण संकटकाल में हुआ था, जब फिरौन की सत्ता इस्राइलियों के नवजात पुत्रों का सुनियोजित और व्यवस्थित संहार कर रही थी। ऐसे समय में एक माँ की सहज बुद्धि एवं ईश्वरीय मार्गदर्शन से मूसा (अ.) को एक टोकरी में रखकर नदी में प्रवाहित किया गया। ईश्वरीय योजना के अंतर्गत वही टोकरी फिरौन के महल के तट पर जा लगी, और इस प्रकार मूसा (अ.) उसी सत्ता के संरक्षण में पले-बढ़े, जिसकी क्रूरता उनके अपने समुदाय पर कहर बनकर टूट रही थी।

यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि वे उस सम्राज्य द्वारा किए जा रहे दमन, अन्याय और शोषण की व्यवस्था से भली-भांति परिचित थे। क़ुरआन में वर्णित घटना, जब मूसा (अ.) ने नगर में एक फिरौनी व्यक्ति को एक कमज़ोर एवं मज़लूम इस्राइली को बेरहमी से पीटते देखा — यह कोई साधारण व्यक्तिगत विवाद नहीं था, बल्कि एक तानाशाही व्यवस्था द्वारा एक पीड़ित समुदाय पर होने वाले रोज़मर्रा के अत्याचार की एक झलक मात्र थी — तो मूसा (अ.) के ह्रदय में अन्याय के विरुद्ध आक्रोश उमड़ पड़ी और पीड़ित की रक्षा की तीव्र भावना उत्पन्न हुई, जिसने उन्हें हस्तक्षेप करने पर विवश कर दिया। अतः यह घटना किसी व्यक्तिगत द्वेष या स्वार्थ से प्रेरित हिंसा नहीं, बल्कि अत्याचार के विरुद्ध एक नैतिक हस्तक्षेप थी।

हज़रत मूसा का उद्देश्य उस व्यक्ति की हत्या करना नहीं था, बल्कि अत्याचारी को रोकना और पीड़ित की रक्षा करना था। दर्भाग्यवश, उनके प्रहार से उस व्यक्ति की मृत्यु हो गई। क़ुरआन इस घटना का वर्णन भी इसी रूप में करता है। अतः यह न तो पूर्व-नियोजित हत्या थी, और न ही किसी दुर्भावनापूर्ण हिंसा का परिणाम, बल्कि एक दुर्घटनाजन्य मृत्यु (Accidental Death) थी। नैतिकता और कानून — दोनों ही दृष्टियों से इन स्थितियों में दोष और उत्तरदायित्व का स्तर भिन्न होता है। किसी व्यक्ति के चरित्र का मूल्यांकन केवल उसके कृत्य से नहीं, बल्कि उस कृत्य के प्रति उसकी प्रतिक्रिया से किया जाता है। जैसे ही मूसा (अ.) को अपनी भूल का आभास हुआ, उन्होंने तुरंत उसे स्वीकार किया — "निश्चिय ही मैंने अपने ऊपर अत्याचार किया।" यह कथन एक ईश्वरीय दूत की सच्चाई, विनम्रता और आत्ममंथन को उजागर करता है। उन्होंने अपने पश्चाताप (तौबा) को केवल आंतरिक तक सीमित न रखकर सीधे ईश्वर के समक्ष क्षमा याचना की। यह उस विश्वास को दर्शाता है कि ईश्वर मनुष्य की नीयत परिस्थितियों और ह्रदय की दशा को पूर्णतः जानता है।

चुनांचे, हज़रत मूसा (अ.) के इस घटना को हत्या के रूप में प्रस्तुत करना न केवल ऐतिहासिक तथ्यों के साथ अन्याय है, बल्कि यह स्पष्ट दर्शाता है कि ऐसा आरोप पूर्वाग्रह और दुर्भावना पर आधारित है।

जीवन में स्थितियाँ सामाजिक-आर्थिक कारकों से प्रभावित होती हैं, पुनर्जन्म के फल से नहीं

ईश्वर की मशीयत (इच्छा) का उत्तर हम पहले ही क्रमांक 41 में दे चुके है। और पंडित का यह मानना है कि संसार में जो

कुछ भी घटित हो रहा है, वह पुनर्जन्म के कर्मों का परिणाम है। उनके अनुसार कोई राजा है और कोई गरीब, यह सब पूर्वजन्म के कर्मों के कारण ही निर्धारित होता है। किंतु हमारा मानना है कि जन्म के समय कोई भी व्यक्ति न राजा होता है और न ही गरीब। यह स्थिति तो व्यक्ति के माता-पिता के परिश्रम, उनके द्वारा लिए गए निर्णयों, तथा समाज और सत्ता द्वारा बनाए गए नियमों और नीतियों का परिणाम होती है। शासक वर्ग के अत्याचार, असमान नीतियाँ और संसाधनों का असंतुलित वितरण ही किसी को धनवान और किसी को निर्धन बना देता है।

यदि सब कुछ वास्तव में पुनर्जन्म से ही निर्धारित होता, तो कोई गरीब व्यक्ति अपनी कठोर मेहनत, बुद्धिमत्ता और सही निर्णयों के बल पर धनी या शासक कभी नहीं बन पाता। इसी प्रकार कोई राजा या धनवान व्यक्ति अपनी गलत नीतियों, आलस्य या अहंकार के कारण अपना सब कुछ खोकर गरीब भी नहीं बन सकता था। किंतु इतिहास और वर्तमान — दोनों इस तथ्य के साक्षी हैं कि परिस्थितियाँ मनुष्य के कर्मों और सामाजिक ढाँचे से बदलती हैं, न कि किसी पूर्वजन्म के भाग्य से। जिस प्रकार कोई व्यक्ति जन्म से विद्वान या अशिक्षित नहीं होता, उसी प्रकार कोई भी जन्म से राजा या गरीब नहीं होता। मनुष्य अपने अनुभवों, शिक्षा, परिश्रम और सामाजिक परिस्थितियों से बनता है। समाज की संरचना और सरकार की नीतियाँ ही कुछ लोगों को विशेषाधिकार संपन्न बनाती हैं, जबकि दूसरों को वंचित रखती हैं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अनकबूत

124. और आज्ञा दी हम ने मनुष्य को साथ मा बाप के भलाई करना और जो झगड़ा करें तुझ से दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तु को, कि नहीं वास्ते तेरे साथ उस के ज्ञान, बस मत कहा मान उन दोनों का, तर्फ मेरी है। और अवश्य भेजा हम ने नूह को तर्फ कौम उस के कि बस रहा बीच उन के हज़ार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम। 29: 8-14 क़ुरआन.

समीक्षक:- माता-पिता की सेवा करना अच्छा ही है जो खुदा के साथ शरीक करने के लिये कहे तो उन का कहना न मानना यह भी ठीक है परन्तु यदि माता पिता मिथ्याभाषणादि करने की आज्ञा देवें तो क्या मान लेना चाहिये? इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी बुरी है। क्या नूह आदि पैग़म्बरों ही को खुदा संसार में भेजता है तो अन्य जीवों को कौन भेजता है? यदि सब को वही भेजता है तो सभी पैग़म्बर क्यों नहीं? और जो प्रथम मनुष्यों की हज़ार वर्ष की आयु होती थी तो अब क्यों नहीं होती? इसलिये यह बात ठीक नहीं।

उत्तर:

यदि वालिदैन असत्य या अविश्वासपूर्ण आचरण का आदेश दें, तो क्या किया जाए

पवित्र क़ुरआन की एक अनोखी एवं अद्भुत विशेषता यह भी है कि वह अपनी अनेक आयतों की व्याख्या स्वयं ही विभिन्न स्थानों पर प्रस्तुत कर देता है। इसी संदर्भ में सूरह लुक़मान की पन्द्रवी आयत बहुत महत्वपूर्ण है, जिसमें ईश्वर का स्पष्ट निर्देश है कि यदि माता-पिता तुम्हें उसके साथ शिर्क (अनेकेश्वरवाद) के लिए बाध्य करें, तो एक मुसलमान का कर्तव्य है कि वह इस आदेश का पालन न करे।

इस आयत में चिंतन का मुख्य बिंदु यह है कि ईश्वरीय आदेश को माता-पिता के आदेश से सर्वोपरि स्थान दिया गया है।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जब तक माता-पिता का आदेश ईश्वर के आदेश के अनुरूप हो, तब तक उनका पालन अनिवार्य है। किंतु जहाँ माता-पिता का आदेश ईश्वर की आज्ञा के सीधे विपरीत या विरोध में हो, तब वहाँ एक ईमान वाले (भक्त) के लिए ईश्वर की आज्ञा का पालन ही प्राथमिक एवं अनिवार्य होगा।

इस आयत में एक गहन सूक्ष्मता यह भी निहित है कि आस्था के मामले में अडिग रहते हुए भी माता-पिता के प्रति सम्मान और सेवा का भाव बनाए रखना है। यही इस आयत की सुंदरता एवं संतुलन है। आयत स्पष्ट करती है कि भले ही वे अविश्वासी (कुफ़्र) की स्थिति में हों, फिर भी सांसारिक व्यवहार के स्तर पर मुसलमान का कर्तव्य है कि उनके साथ 'एहसान' (श्रेष्ठ व्यवहार, दया और भलाई) का आचरण करो। परंतु अंतिम सत्य एवं मार्गदर्शन का अनुसरण केवल उसी राह का करना चाहिए जो ईश्वर कहें। संक्षेप में, आस्था के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं, लेकिन सांसारिक व्यवहार यानी सेवा के स्तर पर कोई कमी नहीं।

अतः, पंडित का यह कथन कि क़ुरआन की यह शिक्षा आधी अच्छी और आधी बुरी है, वास्तव में क़ुरआन की गहनता तथा उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए सूक्ष्म संतुलन को न समझ पाने का परिणाम है।

हज़रत नूह का पैग़म्बर के रूप में भेजा जाना

ईश्वर द्वारा हज़रत नूह को भेजे जाने का अभिप्राय यह है कि उन्हें उनके समुदाय के लिए एक पैग़म्बर के रूप में नियुक्त किया गया। यह एक अत्यंत स्पष्ट और सरल बात है। यदि कोई व्यक्ति इतनी सरल बात को समझने में असफल है, तो वास्तव में वह इस पवित्र ग्रंथ की अभिव्यक्ति-शैली (असलूब) को ग्रहण करने में उसकी अपनी अक्षमता को दर्शाता है।

सभी मनुष्यों को पैग़म्बर क्यों नहीं बनाया गया, और हज़रत नूह की लंबी आयु

'सभी मनुष्यों को पैग़म्बर क्यों नहीं बनाया गया?' इसका उत्तर अत्यंत सहज है कि ईश्वर सर्वज्ञ है। वह अपने असीम ज्ञान से प्रत्येक मनुष्य के हृदय, स्वभाव, चिरित्र और क्षमताओं से पूर्णतः परिचित है। वही यह भली-भाँति जानता है कि कौन व्यक्ति उसके दिव्य संदेश को ग्रहण करने, से लोगों तक पहुँचाने और मानवता के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करने की योग्यता रखता है। इसलिए ईश्वर मानवजाति ही में से सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का चयन करके उन्हें पैग़म्बर के पद से विभूषित करता है।

वास्तव में, यह प्रश्न अपने-आप ही में निराधार है — विशेषकर तब, जब पंडित जी के अपने मत में ऋषि का अवधारणा विद्यमान है। यदि उनके सिद्धांत के अनुसार समस्त मानवजाति की उत्पत्ति ईश्वर द्वारा ही मानी जाती है, तो यह पूछना कि 'सभी मनुष्य ऋषि क्यों नहीं है?' स्वतः ही अर्थहीन हो जाता है।

पंडित जी के लिए पैग़म्बर नूह की लंबी आयु अविश्वसनीय हो सकती है, किंतु उनकी अपनी परंपरा में चार सौ वर्ष की आयु प्राप्त करना सामान्य माना गया है (ऋ.भाष्य भूमिका, विषयसूची-वेदसंज्ञा विचार पृ. 65 और स.प. तृतीय समुल्लास, पृ. 46-47)। इस प्रकार का दोहरापन कहाँ से वे लाते हैं, यह निर्णय तो पाठक स्वयं करेंगे। हमारा उद्देश्य मात्र तथ्यों को उनके सामने रखना एवं विवेक से विचार के लिए प्रेरित करना है।

यह सही है कि लंबी आयु कुछ लोगों को अविश्वनीय लग सकती है, परंतु ईश्वर की सृष्टि में अद्‌भुत घटनाओं एवं चीज़ों की कोई कमी नहीं है। यदि मनुष्य इसी संसार में चारों ओर दृष्टि डालें, तो उन्हें ईश्वर की सृष्टि और उसकी शक्ति के अद्‌भुत

उदाहरण सहज ही दिखाई देंगे। उसकी कुदरत के करिश्में असंख्य रूपों में विद्यमान हैं।

निःसन्देह, अधिकांश घटनाएँ एक निश्चित प्रारूप में घटित होती हैं। परंतु इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उस प्रारूप से भिन्न कोई घटना घटित ही नहीं हो सकती। जो व्यक्ति ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास रखता है, वह यह कभी नहीं सोच सकता कि किसी मनुष्य को लंबी आयु प्रदान करना उस सृष्टा के लिए असंभव है। वास्तविकता तो यह है कि यदि मनुष्य स्वयं चाहे तो एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता; परंतु यदि ईश्वर की इच्छा हो तो वह जितने समय तक चाहे, उसे जीवित रख सकता है, क्योंकि जीवन और मृत्यु दोनों का स्रष्टा और स्वामी केवल वही है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह रूम

125. अल्लाह पहिली बार करता है उत्पत्ति, फिर दूसरी बार करेगा उस को, फिर उसी की ओर फेरे जाओगे। और जिस दिन वर्षा अर्थात् खड़ी होगी कयामत निराश होंगे पापी। बस जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे बस वे बीच बाग़ के सिंगार किये जावेंगे। और जो भेज दें हम एक बाव, बस देखें उसी खेती को पीली हुई। इसी प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर दिलों उन लोगों के कि नहीं जानते। 30: 11-12-15-51-59 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि अल्लाह दो बार उत्पत्ति करता है तीसरी बार नहीं तो उत्पत्ति की आदि और दूसरी बार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा? और एक तथा दो बार उत्पत्ति के पश्चात् उस का सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ हो जायगा। यदि न्याय करने के दिन पापी लोग निराश हों तो अच्छी बात है परन्तु इस का प्रयोजन यह तो कहीं नहीं है कि मुसलमानों के सिवाय सब पापी समझ कर निराश किये जायें? क्योंकि कुरान में कई स्थानों में पापियों से औरों का ही प्रयोजन है। यदि बगीचे में रखना और श्रृंगार पहिराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है तो इस संसार के तुल्य हुआ और वहाँ माली और सुनार भी होंगे अथवा खुदा ही माली और सुनार आदि का काम करता होगा। यदि किसी को कम गहना मिलता होगा तो चोरी भी होती होगी और बहिश्त से चोरी करने वालों को दोज़ख में भी डालता होगा। यदि ऐसा होता होगा तो सदा बहिश्त में रहेंगे यह बात झूठ हो जायगी। जो किसानों की खेती पर भी खुदा की दृष्टि है सो यह विद्या खेती करने के अनुभव ही से होती है। और यदि माना जाय कि खुदा ने अपनी विद्या से सब बात जान ली है तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है। यदि अल्लाह ने जीवों के दिलों पर मोहर लगा पाप कराया तो उस पाप का भागी वही होवे जीव नहीं हो सकते। जैसे जय पराजय सेनाधीश का होता है वैसे यह सब पाप खुदा ही को प्राप्त होवे।

उत्तर:

ईश्वर पुनर्जीवित करने में सक्षम, निष्क्रियता की भ्रांति

आयत में कोई संख्यात्मक गिनती (जैसे एक, दो, तीन) का उल्लेख नहीं है, जैसा कि पंडित ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आयत का मूल भाव यह स्पष्ट करता है कि जिस सहजता एवं सामर्थ्य के साथ ईश्वर ने तुम्हें पहली बार अस्तित्व प्रदान किया है, उसी सामर्थ्य से वह तुम्हें दुबारा जीवित करने में भी समर्थ है। दूसरे शब्दों में, आयत का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि तुम्हारी मृत्यु के पश्चात् ईश्वर तुम्हें पुनर्जीवित करने में असमर्थ नहीं है; बल्कि वह तुम्हारे एक-एक अंश को यथावत् पुनः

संयोजित कर सकने की असीम शक्ति रखता है। यह आयत उस भ्रांत विचारधारा का खंडन करती है जो यह मानती है कि शरीर के नष्ट हो जाने के बाद ईश्वर उसे पुनः नहीं रच सकता। इसी संदर्भ में कुछ लोगों का यह भी मानना है कि यदि किसी शव को जला दिया जाए और उसकी राख आदि को विभिन्न स्थानों पर बिखेर दिया जाए, तो ईश्वर उन्हें कभी एकत्रित नहीं कर पाएगा। उनकी मूलभूत त्रुटि यह है कि वे ईश्वर को भी मनुष्य की भांति सीमित शक्ति वाला समझ बैठते हैं। वे सोचते है कि जो कार्य मनुष्य के लिए असंभव है, वह ईश्वर के लिए भी असंभव है। उन्हें यह समझ नहीं कि कोई कार्य मनुष्य के लिए केवल उसकी सीमित शक्ति और साधनों के कारण ही असंभव होता है। जबकि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और उसकी शक्ति असीम है; उसपर मानवीय सीमाएँ लागू नहीं होती।

इसी प्रकार, ईश्वर का निष्क्रिय या निकम्मा होने की भ्रांति भी उन्हीं लोगों के मन में जन्म लेती है, जो यह मानते हैं कि ईश्वर समय के प्रभाव में बंधा हुआ है। पंडित के मतानुसार, प्रलय के समय ईश्वर निष्क्रिय होकर लगभग चार अरब वर्षों तक सोया रहता है (क्रमांक 19 देखों)। किंतु इस्लामी दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है; हम मुसलमान ईश्वर को समय की सीमाओं से परे मानते हैं — अर्थात उस पर समय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

स्वर्ग की नेमतों में समानता केवल नाम तक सीमित है; आर्यों की स्वर्ग-कल्पना और उसकी नेमतें

पंडित जी, चाहे पापी मुसलमान हो या काफ़िर — न्याय के दिन अपने-अपने पापों के कारण दोनों ही निराशा से घिरे होंगे। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि काफ़िरों की निराशा मुसलमानों की तुलना में अधिक होगी। इसका कारण यह है कि उन्होंने सत्य को अस्वीकार किया और ईश्वर के साथ दूसरों को साझीदार ठहराया (शिर्क किया), जो सबसे बड़ा पाप है। इसी कारण न्याय के दिन उनकी हताशा अधिक गहरा होगा।

आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत कि पुण्य कर्मों का फल इसी संसार में महलों, फलों दूध-दही की प्रचुरता के रूप में मिलता है और यही स्वर्ग है — तो इसपर विचार करना आवश्यक है। इस सांसारिक जीवन की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसमें हानि का पलहु न हों। उदाहरण के तौर पर, यदि दूध को ईश्वर की ओर से पुण्य कर्मों का फल समझें, तो उसके अधिक सेवन से बदहजमी और रोग क्यों उत्पन्न होते हैं? यही नहीं, आर्य समाज द्वारा वर्णित तथाकथित "स्वर्गीय सुख" किसी न किसी रूप में कष्ट, हानि और दुःख का भी कारण बनते हैं। वास्तविक पुण्य-फल तो ऐसा होना चाहिए जिसके उपभोग या उपयोग से किसी भी प्रकार की हानि न हो। इसे एक उदाहरण से समझें — मान लीजिए कि पिछले जन्म के किसी अत्यंत श्रेष्ठ कर्म के बदले इस जन्म में किसी व्यक्ति को तीन दिन तक प्रतिदिन दस-दस सेर दूध, मनभर दही या प्रचुर मात्रा में शहद प्राप्त होता है। व्यवहारिक रूप से मनुष्य इतनी कम अवधि में इन सबका समुचित उपयोग नहीं कर सकता। परिणामस्वरूप, ये वस्तुएँ न केवल उसके लिए निरर्थक सिद्ध होंगी, बल्कि बोझ और हानि का कारण भी बन जाएगी। इससे स्पष्ट है कि इस संसार की सीमित, नाशवान और दोषपूर्ण वस्तुओं को स्वर्ग की समृद्धि (नेमत) घोषित करना अज्ञानता से अधिक कुछ नहीं। वास्तविकता यह है कि वेदों सहित सभी ईश्वरीय ग्रंथों में स्वर्ग की अवधारणा एक ऐसे पारलौकिक लोक के रूप में की गई है जहाँ दुःख का सर्वथा अभाव है — ठीक उसी प्रकार, जैसा कि पवित्र क़ुरआन में वर्णित है।

पंडित दयानन्द की मूल भूल यह है कि उन्होंने स्वर्ग को इसी भौतिक जगत तक सीमित कर दिया और भवनों, नगरों तथा

सांसारिक समृद्धि को ही स्वर्ग मान लिया। जबकि स्वर्ग की वास्तविक परिभाषा यह है कि जहाँ दुःख, भय, रोग, ईर्ष्या और अभाव का नामोनिशान तक नहीं। विचारणीय तथ्य एक यह भी है कि आर्यावर्त से कहीं अधिक सुंदर, खुशहाल और समृद्धि नगर विश्व के अन्य देशों में पाए जाते हैं, और वहाँ के निवासी भी कई अधिक सुखी, उन्नति और सुरक्षित जीवन जीते हैं। इसके विपरीत तथाकथित वेद-प्रचार क्षेत्र में भुखमरी, निर्धनता और सामाजिक संकट इतने गहरे हैं कि उनके प्रभाव से उबरने में अभी अनेक वर्ष लगेंगे।

इसी प्रसंग में पंडित जी ने स्वर्ग में चोरी की संभावना पर भी आपत्ति व्यक्त की है, जो स्वाभाविक है, क्योंकि स्वर्ग जैसे पवित्र स्थान में दुराचार की कल्पना ही नहीं कि जा सकती। किंतु पंडित द्वारा प्रस्तावित इस सांसारिक स्वर्ग में चोरी, हत्या, ईर्ष्या, हिंसा और अन्य सभी प्रकार के अपराध निरंतर घटित होते रहते हैं। यहाँ तक कि जेवरात और धन जैसे सुख के साधन भी अक्सर भय और दुःख का कारण बन जाते है। इसी संदर्भ में एक और भी गंभीर प्रश्न सामने आता है। वेदों में मनुष्यों द्वारा परमात्मा से प्रार्थना की गई है — "है परमेश्वर! हमारे प्रिय भोगों को मत चोरा और चुरवावो — ऋग्वेद (1.104.8)।" मगर मरता क्या न करता। लोगों की मेहनत से उगाई गई फसलें बर्बाद क्यों हो जाया करती है? यह अब जा कर पता चला कि परमात्मा को शायद कृषि का ज्ञान नहीं था; यदि होता तो स्वयं परिश्रम करके अन्न उत्पन्न करता और मनुष्य की आजीविका को इस तरह अनिश्चित न करता। लोगों के पुनर्जन्म के पापों का दंड देने हेतु उनकी लगाई गई फसलों को बर्बाद कर देना, यह ईश्वर द्वारा मनुष्य को डराना है, और ईश्वर के अहंकार को दर्शाता है।

इस्लाम के अनुसार यदि भय का तत्व मनुष्य के सुधार और कल्याण के लिए है, तो उसमें कोई दोष नहीं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे एक बच्चे को बुरें कार्य से रोकने के लिए पहले चेतावनी और भय का सहारा लिया जाता है, ताकि वह उस बुराई से बचे और सही मार्ग पर अग्रसर हो।

मोहर लगाने का उत्तर पूर्व में कई स्थानों पर विस्तार से दिया जा चुका है, अतः उसे यहाँ दोहराना आवश्यक नहीं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह लुकमान

126. ये आयतें हैं किताब हिक्मत वाले की। उत्पन्न किया आसमानों को बिना सुतून अर्थात् खम्भे के देखते हो तुम उस को और डाले बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे। क्या नहीं देखा तूने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है दिन को बीच रात के। क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दर्या के साथ निआमतों अल्लाह के, ताकि दिखलावे तुम को निशानियां अपनी। 31: 2-10-29-31 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह जी वाह! हिक्मतवाली किताब! कि जिस में सर्वथा विद्या से विरुद्ध आकाश की उत्पत्ति और उस में खम्भे लगाने की शंका और पृथिवी को स्थिर रखने के लिये पहाड़ रखना। थोड़ी सी विद्या वाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता और हिक्मत देखो कि जहाँ दिन है वहाँ रात नहीं और जहाँ रात है वहाँ दिन नहीं। उस को एक दूसरे में प्रवेश कराना लिखता है यह बड़े अविद्वानों की बात है। इसलिये यह कुरान विद्या की पुस्तक नहीं हो सकती। क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नौका मनुष्य और क्रिया कौशलादि से चलती हैं वा खुदा की कृपा से? यदि लोहे वा पत्थरों की नौका बना कर

समुद्र में चलावें तो खुदा की निशानी डूब जाय वा नहीं? इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वर का बनाया हुआ हो सकता है।

उत्तर:

परमेश्वर के सिर से आकाश की उत्पत्ति तथा पर्वतों का कील की भांति गाड़ा

वाह पंडित जी! आपकी विद्वत्ता के सामने बुद्धिमत्ता की बात करना सचमुच भैंस के आगे बीन बजाने के समान है।
यदि आप आकाश के उत्पति होने की बात को अस्वीकार करते हैं, तो क्या फिर आपके परमेश्वर को सिर-कटा हुआ मान लिया जाए? क्योंकि पुरुष सूक्त में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है —
नाभ्याः आसीत् अन्तरिक्षम्। शीर्ष्णः द्यौः सम् अवर्तत। पत्ऽभ्याम् भूमिः दिशः श्रोत्रात् तथा लोकान् अकल्पयन्। (ऋग्वेद 10.90.14)
ऋग्वेद के इस मंत्र में यह बताया गया है कि उस विराट पुरुष के नाभि से अंतरिक्ष, सिर से आकाश, पैरों से पृथ्वी और कानों से दिशाओं की उत्पत्ति हुई है।
पर्वतों को पृथ्वी में कील की तरह गाड़ना और बिना स्तंभों के आकाश को थामने का उत्तर पूर्व में दिया जा चुका है (क्रमांक 96 और 112 देखों)।

दिन-रात का परिवर्तन

अब पंडित जी की मोटी बुद्धि का एक और नमूना देखिए — वे रात का दिन में और दिन का रात में प्रवेश होने की बात को अविद्या करार देते हैं, जबकि यह एक अत्यंत सरल और स्वीकृत वैज्ञानिक तथ्य है। पृथ्वी के अपनी घुरी पर घूमने के कारण ही दिन और रात का क्रम बनता है। पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने होता है वहाँ दिन होता है, और जो भाग सूर्य से विपरीत दिशा में होता है वहाँ रात। यदि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती ही न होती, तो दिन-रात का यह चक्र संभव नहीं होता।
इसके विपरीत, वैदिक व्याख्याओं में इसे देव और असुर के युद्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वयं पंडित जी ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका (विषय — देवासुर संग्राम, पृ. 234-235) में निघण्टु के हवाले से लिखा है — "दिन का नाम देव है और रात्रि का नाम असुर। दोनों का परस्पर युद्ध चलता रहता है।"
अब विचार कीजिए — क्या सचमुच कोई गंभीर विद्वान प्राकृतिक घटनाओं की ऐसी व्याख्या को सत्य मान सकता है?

जल में नौका का चलना — ईश्वर की निशानी

जहाँ तक पानी पर नौका के चलने का प्रश्न है, यह निःसन्देह ईश्वर की महान निशानियों में से एक है। किंतु जिसकी समझ और दृष्टि पर अज्ञान का परदा पड़ा हो, वह इस सत्य को कभी ग्रहण नहीं कर सकता।
वास्तविकता यह है कि मनुष्य तभी समुद्र में नौका चला सका जब ईश्वर ने उत्प्लावन बल (Buoyancy) जैसे प्राकृतिक नियम स्थापित किए। यदि यह नियम अस्तित्व में न होता, तो मनुष्य की कोई भी तकनीक या कौशल निष्फल सिद्ध होता। यह कहना मनुष्य के प्रयासों को अस्वीकार करना नहीं है, बल्कि यह स्पष्ट करना है कि मनुष्य नियमों का अविष्कार नहीं करता, बल्कि उन्हें खोजता है। नियम पहले से मौजूद होते हैं — ईश्वर द्वारा स्थापित।

आज आधुनिक विज्ञान के माध्यम से हम देखते हैं कि लोहा जैसी भारी धातु से बनी विशाल जलयान और पनडुब्बियाँ भी समुद्र में तैरती हैं। यह सब इसलिए संभव है क्योंकि मनुष्य ने ईश्वर-निर्मित उन प्राकृतिक नियमों को समझा और उनका उपयोग करना सीखा। यदि पंडित जी हमारे युग में होते, तो अवश्य हम उन्हें प्रत्यक्ष रूप से दिखा पाते कि कैसे लोहा भी पानी पर तैर सकता है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अस-सजदा

127. तदबीर करता है काम की आसमान से तर्फ पृथिवी की फिर चढ़ जाता है तर्फ उस की बीच एक दिन के कि है अवधि उसकी सहस्त्र वर्ष उन वर्षों से कि गिनते हो तुम। यह है जानने वाला गैब का और प्रत्यक्ष का ग़ालिब दयालु। फिर पुष्ट किया उस को और फूंका बीच रूह अपनी से। कह कब्ज करेगा तुम को फरिश्ता मौत का वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे। और जो चाहते हम अवश्य देते हम हर एक जीव को शिक्षा उस की, परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओर से कि अवश्य भरूँगा मैं दोज़ख को जिनों से और आदमियों से इकट्ठे। 32: 5-6-9-11-13 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब ठीक सिद्ध हो गया कि मुसलमानों का खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। क्योंकि जो व्यापक होता तो एकदेश से प्रबन्ध करना और उतरना चढ़ना नहीं हो सकता। यदि खुदा फ़रिश्ते को भेजता है तो भी आप एकदेशी हो गया। आप आसमान पर टंगा बैठा है और फ़रिशतों को दौड़ाता है। यदि फ़रिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें वा किसी मुर्दे को छोड़ जायें तो खुदा को क्या मालूम हो सकता है? मालूम तो उस को हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो, सो तो है ही नहीं; होता तो फरिश्तों के भेजने तथा कई लोगों की कई प्रकार से परीक्षा लेने का क्या काम था? और एक हजार वर्षों में तथा आने जाने प्रबन्ध करने से सर्वशक्तिमान् भी नहीं। यदि मौत का फ़रिश्ता है तो उस फ़रिश्ते का मारने वाला कौन सा मृत्यु है? यदि वह नित्य है तो अमरपन में खुदा के बराबर शरीक हुआ। एक फ़रिश्ता एक समय में दोज़ख भरने के लिये जीवों को शिक्षा नहीं कर सकता और उन को विना पाप किये अपनी मर्जी से दोज़ख भर के उन को दुःख देकर तमाशा देखता है तो वह खुदा पापी अन्यायकारी और दयाहीन है! ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों न वह विद्वान् और ईश्वरकृत और जो दया न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं हो सकता।

उत्तर:

इस्लामी दृष्टिकोण — ईश्वर स्थान एवं सीमाओं से परे

हमारा यह स्पष्ट मत है कि ईश्वर स्थान एवं भौतिक सीमाओं से परे है। इस संदर्भ में क़ुरआन की निम्नलिखित आयतें देखी जा सकती है —

"और (हे नबी) जब आपसे मेरे बन्दे मेरे विषय में पूछें, तो (कह दें) निश्चय ही मैं अत्यंत निकट हूँ; मैं पुकारने वाले कि पुकार सुनता हूँ, जब भी वह मुझे पुकारता है।" सूरह बकरा (2:186)

"पूर्व और पश्चिम सब ईश्वर ही का है; अतः तुम जिधर भी मुख करोगे, ईश्वर की ही ओर मुख होगा।" सूरह बकरा (2:115)

"वही है जिसने आकाशों और धरती को छः दिनों में रचा, फिर अर्श पर करार हुआ। वह जानता है जो कुछ धरती में प्रवेश

करता है और जो कुछ उससे निकलता है, और जो आकाश से उतरता है और जो उसमें चढ़ता है। और वह तुम्हारे साथ है, तुम चाहे जहाँ भी हो। और तुम जो कुछ कर रहे हो, ईश्वर उसे देख रहा है।" सूरह हदीद (57:4)

इन आयतों से स्पष्ट है कि इस्लामी दृष्टिकोण में ईश्वर को किसी विशेष स्थान, दिशा या भौतिक सीमा में सीमित नहीं किया गया है।

वेदों में ईश्वर की स्थानिक अवधारणा

इसके विपरीत, वेदों में स्पष्ट वर्णन मिलता है कि ईश्वर तीसरे आकाश में एक सिंहासन पर विराजमान है, जिसे चार देवताओं ने मिलकर थाम रखा है — अथर्ववेद (15.3.1-3) पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी और ऋग्वेद (9.86.27) आर्यमुनि।

फ़रिश्तों की अवज्ञा और रिश्वत की धारणा का खंडन

फ़रिश्तों द्वारा रिश्वत लेकर इश्वरीय कार्य को प्रभावित करना असंभव है, क्योंकि कुरआन स्पष्ट करता है कि फ़रिश्ते ईश्वर की अवज्ञा नहीं करते; जो उन्हें आदेश दिया जाता है, उसका वे पालन करते हैं — सूरह तहरीम (66:6)। फिर भी यदि तर्क की दृष्टि से क्षणभर के लिए यह मान लिया जाए कि फ़रिश्ते ऐसा कोई कार्य कर भी दें, तो ईश्वर के सर्वज्ञ होने के कारण वह न केवल इस अपराध से अवगत होगा, बल्कि उसे पहले से ही जानता होगा। ऐसी स्थिति में, वे फ़रिश्ते भी दंड के भागी होंगे। यह धारणा वैसे स्वयं में ही असंगत और तर्कहीन है।

ज्ञान और सर्ववयापकता का संबंध

इसी क्रम में, यह मान्यता भी दोषपूर्ण है कि किसी वस्तु का पूर्ण ज्ञान रखने के लिए सर्वव्यापी होना अनिवार्य शर्त है। यदि पंडित जी हमारे युग में होते, तो उन्हें कैमरा, उपग्रह (सैटेलाइट) और अन्य आधुनिक तकनीकों से परिचित कराया जा सकता था। इन साधनों के माध्यम से मनुष्य एक ही स्थान पर रहते हुए दूर-दराज की घटनाओं का प्रत्यक्ष और सजीव ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जब सीमित और अल्पज्ञ मनुष्य तकनीक की सहायता से बिना सर्वत्र उपस्थित हुए ज्ञान प्राप्त कर सकता है, तो सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ ईश्वर के लिए — यदि उसे एकदेशी के रूप में यह मान भी लिया जाए — सम्पूर्ण ब्रह्मांड का ज्ञान रखना कैसे असंभव है?

अतः यह सिद्ध होता है कि किसी वस्तु का ज्ञान रखने के लिए उसका सर्वव्यापक होना कोई पूर्वशर्त नहीं है।

मलक-उल-मौत की अवधारणा तथा तौहीद और शिर्क के मध्य का अंतर

मलक-उल-मौत, जिसे सनातन परंपरा में यमदूत के नाम से जाना जाता है, स्वयं किसी को मृत्यु देने का स्वतंत्र अधिकार नहीं रखता। समस्त सृष्टि के प्रत्येक प्राणी का जीवन और मरण सर्वशक्तिमान ईश्वर के अधीन है। मलक-उल-मौत मात्र एक नियुक्त दूत है, जो ईश्वर की आज्ञा के अनुसार अपना दायित्व निभाता है।

इसी तर्क को आगे बढ़ाने पर एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस्लामी मान्यता के अनुसार परलोक में, जहाँ मृत्यु का अस्तित्व ही नहीं होगा, वहाँ मृत्यु के फ़रिश्ते की आवश्यकता क्या रह जाएगी? इसका उत्तर स्पष्ट और तार्किक यह है कि उस अवस्था में उसे इस विशेष दायित्व से मुक्त कर दिया जाएगा। चूँकि जीवन और मृत्यु का अंतिम निर्णय रब्बुल-आलमीन के हाथ में है, अतः जब वह स्वयं मृत्यु के नियम को समाप्त कर देगा, तो उसके लिए नियुक्त फ़रिश्ते का यह कार्य भी स्वतः समाप्त हो

जाएगा।

शिर्क के विषय में पहले भी विस्तार से चर्चा की जा चुकी है, किंतू पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ संक्षेप में कुछ मूल बात को समझना आवश्यक है कि फरिश्ता न तो नित्य है — जैसे आर्य मत में प्रकृति और जीवात्मा को माना जाता है — और न ही उसका अमरत्व उसका स्वाभाविक गुण है। सृष्टि के जीवों में अमरत्व का गुण ईश्वर की देन है।

यहाँ मुख्य भेद यह है कि ईश्वर के गुण शाश्वत और किसी पर निर्भर नहीं, जबकि सृष्टि में पाए जाने वाले सभी गुण ईश्वर की कृपा पर आश्रित हैं। जब दोनों के गुणों की प्रकृति और स्रोत में यह मूलभूत अंतर है, तो शिर्क का कोई आधार शेष नहीं रह जाता। क़ुरआन में अनेक स्थानों पर उन लोगों का खंडन किया गया है जो ईश्वर के साथ अन्य तत्वों को उसके विशेष गुणों में भागीदार ठहराते थे। उदाहरण के तौर पर, आर्य समाज का सिद्धांत है कि ईश्वर की भाँति जीवात्मा, प्रकृति, काल और आकाश भी नित्य, अजन्मा और शाश्वत हैं। इस्लाम ने ऐसे विश्वासों को, जहाँ सृष्ट को सृष्टिकर्ता के समकक्ष खड़ा किया जाता है, शिर्क की संज्ञा दी है।

वैदिक ईश्वर की कठोरता तथा कर्म और प्रतिफल का इस्लामी सिद्धांत

निःसन्देह, हम अपने ईश्वर को ऐसा नहीं मानते जो मनुष्यों को जबरदस्ती किसी मार्ग पर चलाए। ईश्वर केवल उसी को मार्गदर्शन देता है जो स्वयं सत्य का मार्ग अपनाना चाहता है। किंतु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यदि आर्यों का ईश्वर सृष्टि के आरंभ में ही मनुष्यों को शिक्षा देने वाला था, तो क्या वह सभी को आर्य बना सका? यदि नहीं, तो क्या यह माना जाए कि उसने लोगों को सुधारने के बजाए उन्हें बिगाड़ने का कार्य किया? क्या यह न्यायसंगत है कि करोड़ो जीवों को बिना आर्य बनाए कीड़े-मकोड़े की योनियों में धकेल दिया जाए? और क्या यह दयालुता का चरित्र है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को कोई छोटी से भूल के कारण कीड़ा-मकोड़ा, सुअर या कुत्ता बना दिया जाए, और फिर उनकी दुर्दशा को निर्विकार भाव से देखता रहे?

जो स्वयं को करुणामय और दयालु कहलवाता है, यदि उसका आचरण इस प्रकार का है और फिर भी लोग उसे ईश्वर कहते हैं, तो निश्चय ही उनकी बुद्धि पर तरस आता है। वह ईश्वर जो अपने महानतम ऋषि की एक मामूली सी भूल को क्षमा न कर सके, क्या वकाई वह ईश्वर कहलाने के योग्य है? उस ईश्वर से तो हमारे पंडित जी भले निकले जो स्वयं को विष देने वाले व्यक्ति को भी क्षमा कर दिए थे। एक सामान्य आर्य भी अपने परिवारजनों की हर छोटी-बड़ी भूल या गलतियों पर उनके पीछे लठ लेकर नहीं पड़ जाता। फिर क्या ईश्वर में वे गुण नहीं होने चाहिए जो एक आदर्श ऋषि, पिता या मनुष्य में होते है? जो ग्रंथ ईश्वर को इतना कठोर, निर्दय और क्रोधी चित्रित करे, वह न तो ईश्वरीय वाणी हो सकता है और न ही किसी परिपक्व विचारक का उचित वचन।

इसके विपरीत, पवित्र क़ुरआन में ईश्वर का चित्रण पूर्णतः न्यायपूर्ण और दयालु है। इस्लाम के अनुसार ईश्वर किसी पर ज़रा भी अत्याचार नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही कर्मों का फल मिलता है। अतः क़ुरआन पर यह आरोप लगाना कि वह बिना किसी पाप के लोगों को दंडित करने की शिक्षा देता है, पूर्णतः निराधार और असत्य है।

क़ुरआन स्पष्ट रूप रूप से कहता है —

"और तुम्हारी स्थिति में जो भी अवनति या विपत्ति आती है, वह तुम्हारे अपने हाथों कमाई हुई होती है; और (इस पर भी) वह तुम्हारे बहुत-से अपराध क्षमा कर देता है।" सूरह अश-शूरा (42:30)

तथा एक अन्य स्थान पर —

"जो कोई बुराई कमाएगा, उसे उसी के अनुरूप प्रतिफल मिलेगा और उस पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जाएगा।" सूरह बकरा (2:281)

वास्तव में, पवित्र क़ुरआन में ईश्वर यह स्पष्ट करता है कि दुर्भाग्य एवं यातना मनुष्य के स्वयं किए हुए कर्मों का परिणाम है, न कि ईश्वरीय इच्छा की कोई मनमानी सज़ा। अतः ईश्वर का न्याय पूर्णतः कर्म-आधारित, निष्पक्ष एवं न्यायसंगत है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अहज़ाब

128. कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुम को जो भागो तुम मृत्यु वा कत्ल से। ऐ बीबियो नबी की! जो कोई आवे तुम में से निर्लज्जता प्रत्यक्ष के, दुगुणा किया जायेगा वास्ते उसके अज़ाब और है यह ऊपर अल्लाह के सहल। 33: 16-30 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह मुहम्मद साहेब ने इसलिये लिखा लिखवाया होगा कि लड़ाई में कोई न भागे, हमारा विजय होवे, मरने से भी न डरे, ऐश्वर्य बढ़े, मज़हब बढ़ा लेवें? और यदि बीबी निर्लज्जता से न आवे तो क्या पैग़म्बर साहेब निर्लज्ज हो कर आवें? बीबियों पर अज़ाब हो और पैग़म्बर साहेब पर अज़ाब न होवे। यह किस घर का न्याय है?

उत्तर:

अल्लाह के रसूल ﷺ पर लगाए गए आरोप निराधार एवं असत्य हैं

मनुस्मृति (7:94-95) में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि युद्ध क्षेत्र से पीठ दिखाकर भागने वाला या भयवश पलायन करते समय शत्रु द्वारा मारा जाने वाला योद्धा राजा की ओर से दंड, क्रोध, अपमान और कठोर व्यवहार का पात्र बनता है। ऐसे व्यक्ति से उसके वर्तमान जीवन की सुख-सुविधाएँ और सामाजिक प्रतिष्ठा छीन ली जाती हैं, और धर्मपालन न करने के कारण उसके पुनर्जन्म के फल भी नष्ट हो जाते हैं (स.प. षष्ठम समुल्लास)।

पंडित के शब्दों में कहें तो मनु ने यह इसलिए लिखवाया होगा ताकि युद्ध में कोई सैनिक भागे नहीं, और डटकर लड़ते हुए मृत्यु से भयभीत न होकर विजय को प्राप्त करे। इससे राज्य की समृद्धि (एश्वर्य और धन) भी बढ़ेगी तथा धर्म की भी वृद्धि होगी — जैसा की सत्यार्थप्रकाश के षष्ठम समुल्लास (पृ. 127) में मनु के हवाले से लिखा है — "और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्मप्रचार, विद्यार्थियों और वेदमार्गोपदेशकों पर व्यय करे।"

आपत्ति के परिपेक्ष्य में देखें तो पंडित दयानन्द का कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर को यह शिक्षा देनी चाहिए थी कि शत्रु के सामने कायरता दिखाओ, और भय से खरगोश की तरह दुबक जाओ, ताकि तुम्हारा अपमान ही सम्मान बन जाए। लेकिन पंडित जिस आपत्ति को उठा रहा हैं, वह उनके अपने ही मत के अनुरूप नहीं; यदि वे ऐसा मानते तो षष्ठम समुल्लास में मनु और वेद के हवाले से राजधर्म और युद्ध-नियम न बता रहे होते।

अतः अल्लाह के रसूल ﷺ पर लगाया गया यह आरोप न केवल निराधार और असत्य है, बल्कि ऐतिहासिक तथा तार्किक —

दोनों दृष्टियों से असंगत भी है। युद्ध के अनेक कारण और परिस्थितियाँ हो सकती हैं, जिनका इस्लामी दृष्टिकोण से विवेचन पूर्ववर्ती उत्तरों में विस्तार से किया जा चुका है।

यह आरोप पूर्णतः पूर्वाग्रह से प्रेरित है और इसका कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। एक सन्यासी और धर्मोपदेशक से ऐसी असंयमित और तथ्यहीन आलोचना अपेक्षित नहीं कि जा सकती।

पैग़म्बर ﷺ की पत्नियों से संबंधित आयत का वास्तविक आशय

इसके बाद पंडित साहेब ने एक बार फिर तथ्यों को पुनः विकृत करते हुए यह कथन कहते है — "यदि बीवी निर्लज्जता से न आए तो क्या पैग़म्बर होकर आए?" — जबकि संबंधित आयत का आशय बिल्कुल स्पष्ट और सीधा यह है कि यदि पैग़म्बर ﷺ के पत्नियों में से शालीनता की सीमाओं का उल्लंघन करती है, तो उसके लिए दंड भी सामान्य से दुगुना होगा। यह आदेश इसलिए दिया गया ताकि पैग़म्बर का परिवार संपूर्ण उम्मत के लिए एक आदर्श प्रतिमान (Model) बन सके। एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए यह आवश्यक था कि नबी ﷺ का घराना पवित्रता, शिष्टाचार और चरित्र के उच्चतम मानकों पर खरा उतरे। इसी उद्देश्य से उनकी पत्नियों को यह विशेष निर्देश दिया गया कि वे अपने आचरण द्वारा पूरे समुदाय के लिए एक जीवंत आदर्श प्रस्तुत करें।

यह आयत वास्तव में पारदर्शिता और उच्चतर जिम्मेदारी का संदेश देती है। आश्चर्य इस बात का है कि एक पंडित जो सन्यासी भी है; नैतिकता और धर्म का प्रतीक होते हुए; इस्लाम के इन उच्च आदर्शों को समझने के स्थान पर उल्टे-सीधे आरोप लगाने को ही अपना धर्म समझ रहा है।

पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ का संपूर्ण जीवन सादगी, त्याग, पवित्रता और नैतिक उत्कृष्टता की अनुपम मिसाल है। ईश्वर की ओर से उनपर असाधारण और अत्यंत कठोर ज़िम्मेदारियाँ थीं, जिनका निर्वहन उन्होंने पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से किया। अतः उनके संदर्भ में अज़ाब या दंड की बात करना नितांत अप्रासंगिक है, क्योंकि वे स्वयं उन सभी अवगुणों से सर्वथा सुरक्षित थे जिनसे संबंधित चेतावनियाँ दी गई है। फिर भी, यदि तर्क के स्तर पर एक काल्पनिक स्थिति मान ली जाए — जो न वास्तविक है और न संभव — तो इस्लाम यह स्पष्ट कर देता है कि ईशदूत का पद व्यक्ति को ईश्वरीय नियमों से ऊपर नहीं रखता, बल्कि उसके लिए जवाबदेही और अधिक कठोर हो जाती है। इस सिद्धांत को क़ुरआन में अनेक स्थानों पर प्रतिपादित किया गया है (जैसे — सूरह बकरा 2:145)।

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

129. और अटकी रहो बीच घरों अपने के, आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूल की; सिवाय इसके नहीं। बस जब अदा कर ली जैद ने हाज़ित उस से, ब्याह दिया हम ने तुझ से उस को ताकि न होवे ऊपर ईमान वालों के तंगी बीच बीबियों से ले पालकों उन के के, जब अदा कर लें उन से हाजित और है आज्ञा खुदा की की गई। नहीं है ऊपर नबी के कुछ तंगी बीच उस वस्तु के। नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्द का। और हलाल की स्त्री ईमानवाली जो देवे बिना महर के जान अपनी वास्ते नबी के। ढील देवे तू जिस को चाहे उन में से और जगह देवे तर्फ अपनी जिस को चाहे, नहीं पाप ऊपर तेरे। ऐ लोगो! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैग़म्बर के। 33: 33-36-37-40-50-51-53 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह बडे अन्याय की बात है कि स्त्री घर में कैद के समान रहे और पुरुष खुल्ले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा? इसी अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेषकर सयलानी और विषयी होते हैं। अल्लाह और रसूल की एक अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न-भिन्न विरुद्ध? यदि एक है तो दोनों की आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न-भिन्न विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी झूठी? एक खुदा दूसरा शैतान हो जायगा? और शरीक भी होगा? वाह कुरान का खुदा और पैग़म्बर तथा कुरान को! जिस को दूसरे का मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो (लेपालक) बेटे की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी; अपनी स्त्री क्यों कर लेते? और फिर ऐसी बातें करने वाले का खुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। मनुष्यों में जो जङ्गली भी होगा वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो जैद (लेपालक) बेटा किस का था? और क्यों लिखा? यह उसी मतलब की बात है कि जिस से बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैग़म्बर साहेब न बचे, अन्य से क्योंकर बचे होंगे? ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होना कभी नहीं छूट सकता। क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर निकाह करना चाहे तो भी हलाल है? और यह महा अधर्म की बात है कि नबी तो जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्री लोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड सकें! जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार दृष्टि से प्रवेश न करें तो वैसे पैग़म्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें। क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निशङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें? भला! कौन ऐसा हृदय का अन्धा है कि जो इस कुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब को पैग़म्बर और कुरानोक्त ईश्वर को परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अर्ब देशनिवासी आदि मनुष्यों ने मान लिया!

उत्तर:

इस्लाम में स्त्रियों का बाहर निकलना मना नहीं

यह आपत्ति पवित्र क़ुरआन की आयतों को उसके सही ऐतिहासिक एवं शब्दिक संदर्भों से काटकर पेश करने का एक असफल प्रयास है। पंडित ने जानबूझकर आयत का केवल एक अंश उठाया और उसका मनमाना अर्थ निकालकर लोगों को भ्रमित करने का प्रयास किया।

पवित्र क़ुरआन में कहीं भी स्त्रियों को घर में कैद रखने, अर्थात ताज़ी हवा लेने या संसार देखने से मना नहीं किया। जिस आयत को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जा रहा है, वह अपने पूर्ण रूप में यह शिक्षा देती है — "अपने घरों में ठहरी रहा करो, अज्ञानता के पहले युग की स्त्रियों की तरह श्रृंगार का प्रदर्शन करती हुई न फिरो।" — इस निर्देश को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक संदर्भ को जानना आवश्यक है। अज्ञानता के युग (जाहिलियत) में अरब समाज में यह प्रचलन था कि अनेक स्त्रियाँ अत्यंत भड़काऊ और खुले वस्त्रों में केवल पुरुषों का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से सार्वजनिक रूप से घूमती थीं। क़ुरआन ने इस सामाजिक विकृति को समाप्त करते हुए मुस्लिम स्त्रियों को गरिमा, आत्म-सम्मान और नैतिक संतुलन के साथ जीवन जीने की शिक्षा दी।

यह आयत स्त्रियों के घर से बाहर निकलने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाती, बल्कि सार्वजनिक जीवन में शालीनता, मर्यादा और आत्म-सुरक्षा के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसका उद्देश्य स्त्रियों को दुर्व्यवहार और बुरी नज़रों से बचाना तथा उन्हें एक पवित्र और संतुलित जीवनशैली की ओर उन्मुख करना है — न कि उन्हें समाज से काट देना।

आर्य लड़कों में कामुक प्रवृत्तियाँ

इसी प्रकार यह आरोप कि मुसलमानों के लड़के कामुक (विषयी) होते हैं, वास्तव में पंडित के मन में यह विचार इसलिए आया क्योंकि उन्होंने अपने ही समुदाय के लड़कों में ऐसी प्रवृत्ति देखी होगी।

अब बेचारा धरता नहीं तो क्या करता, उस छेद को किसी तरह भरता।

सुनिए!

अथर्ववेद (14.2.38–39) में कहा गया है —

"हे पोषक पति! उस अतिशय कल्याण करनेहारी पत्नी को प्रेरणा कर, जिसमें मनुष्य लोग वीर्य बोवें। जो हमारी कामना करती हुई दोनों जांघों को फैलावे, और जिसमें कामना करते हुए हम लोग उपस्थेन्द्रिय का प्रहरण करें। हे पति! तू जांघ के ऊपर आ, हाथ का सहारा दे, और प्रसन्नचित्त होकर तू पत्नी को चिपटा ले।"

इस मंत्र को पढ़ने के बाद कोई भी सहज रूप से समझ सकता है कि इस प्रकार की शिक्षा समाज पर किस प्रकार का प्रभाव डाल सकता है। यही कारण है कि गुरुकुलों में, जहाँ लड़के-लड़कियों को संस्कृत में वेदों का सीधा अध्ययन कराया जाता है, वहाँ उनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही विषयी सोच और आवारागर्दी की ओर झुक जाती है। वे निरंतर मंत्रों में वर्णित नुस्खों को आज़माने की मानसिकता में उलझे रहते हैं। इस मानसिक स्थिति का अनुमान हम पंडित दयानन्द के निर्देशों से भी लगा सकते हैं। सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास, पृष्ठ 40 में वे लिखते हैं — "लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेजें।" पंडित दयानन्द पाठशालाओं की व्यवस्था इतनी कठोर बताते हैं कि लड़कियों की पाठशाला में केवल अध्यापिकाएँ हों और लड़कों की पाठशाला में केवल अध्यापक। यह नियम इतना कठोर है कि पाँच वर्ष तक के छोटे बच्चे भी एक-दूसरे की पाठशालाओं में जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते।

आप स्वयं विचार करें — जब वेद मंत्रों के अध्ययन के बाद मनोवृत्ति में इतनी उत्तेजना उत्पन्न होने की आशंका हो कि पाँच वर्ष के बच्चों तक को सुरक्षित न माना जाए, तो समस्या किस विचारधारा में निहित है?

यह स्थिति केवल गुरुकुलों तक सीमित नहीं है। यही मंत्र विवाह समारोहों में पंडितों द्वारा ऊँचे स्वर में बार-बार पढ़े जाते हैं। अब कल्पना कीजिए — यदि किसी समाज में संस्कृत बोलचाल की भाषा हो, विवाह समारोह में स्त्री-पुरुष एकत्र हों और उसी समय ऐसे मंत्र ऊँची आवाज़ में पढ़े जाएँ, तो उपस्थित लोगों की मानसिक अवस्था पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? मन में किस प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होगी?

हर इल्ज़ाम की आवाज़ में, छुपा इक़रार मिलता गया।
जो औरों पर फेंका गया, वही खुद पर उतरता गया।

ईश्वर एवं रसूल की आज्ञाओं के पालन की अवधारणा

इस्लाम की एक आधारभूत मान्यता यह है कि ईश्वर और उसके दूत मुहम्मद ﷺ के आदेश कभी भी परस्पर विरोधी नहीं हो सकते। पवित्र क़ुरआन स्वयं इस सिद्धांत की पुष्टि करता है — "और न वह (मुहम्मद) अपनी इच्छा से कोई बात कहते हैं। वह तो केवल वह्य (प्रकाशना) है, जो उनकी ओर भेजी जाती है।" सूरह नजम (53:3-4)

इन आयतों से स्पष्ट है कि पैग़म्बर ﷺ का कथन और आदेश मूलतः ईश्वरीय मार्गदर्शन का ही प्रतिबिंब होता है। इस्लामी परिपेक्ष्य में, रसूल की प्राथमिक दायित्व ईश्वर के संदेश को उसके मूल रूप में मानवजाति तक पहुँचाना है। अतः जब क़ुरआन में रसूल की आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया गया है, तो इसका तात्पर्य यही है कि मनुष्य उनके द्वारा प्रस्तुत ईश्वरीय आदेशों को मानें, उनकी व्याख्या और व्यावहारिक अनुप्रयोग को स्वीकार करें तथा ईश्वरीय शरीयत के आधार पर किए गए उनके निर्णयों का अनुसरण करें। उदाहरण के तौर पर — क़ुरआन ईश्वर का अंतिम और अपरिवर्तनीय संविधान है। इसमें जीवन के मूल सिद्धांत, आदेश एवं निषेध वर्णित हैं। जिस प्रकार कोई संविधान स्वतः कार्यान्वित नहीं होता, बल्कि उसकी व्याख्या करने और विशिष्ट मामलों में लागू करने के लिए एक न्यायाधीश की आवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ की भूमिका है। वे क़ुरआन रूपी संविधान के सर्वोच्च वयाख्याकार और कार्यान्वयनकर्ता हैं।

पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ के कथन, कार्य और स्वीकृतियाँ (जिन्हें सुन्नत कहा जाता है) ऐसे न्यायिक निर्णयों और व्यावहारिक मिसालों के समान हैं, जो संविधान के सिद्धांतों को जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में कैसे लागू किया जाए, यह स्पष्ट करते हैं। उदाहरण के तौर पर — क़ुरआन (संविधान) कहता है — नमाज़ स्थापित करो। पैग़म्बर की भूमिका यह दिखाना है कि नमाज़ कैसे पढ़ी जाए — उसके स्तंभ (रुक्न), उच्चारण, समय और शर्तें क्या हैं। उन्होंने इसकी व्याख्या की और इसे व्यवहार में लागू किया।

इस प्रकार मुहम्मद ﷺ द्वारा नमाज़ का तरीका बताना, वास्तव में क़ुरआन (ईश्वर) के आदेश का पालन करना ही है। अतः उनके इस तरीके को अपनाना पैग़म्बर के आदेश का पालन है। इस तरह, रसूल की आज्ञा का पालन ईश्वर की आज्ञा से पृथक नहीं, बल्कि उसी का अविभाज्य अंग एवं व्यावहारिक रूप है।

शिर्क जैसे विषय पर पूर्व में पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, अतः उसे यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं।

लेपालक बनाने की प्रथा तथा उसकी पत्नी से विवाह से संबंधित आपत्ति

पवित्र क़ुरआन में ईश्वर का स्पष्ट एवं अटल कथन है: "और ईश्वर ने तुम्हारे लेपालक (Adopted) को तुम्हारे पुत्र नहीं बनाया है। यह तो तुम्हारे अपने मुँह की बात है। और ईश्वर तो सत्य कहता है और वही सही मार्ग दिखाता है। उन्हें उनके (वास्तविक) पिताओं के नाम से पुकारो। यही ईश्वर के यहाँ न्यायसंगत है..." सूरह अहज़ाब (33:4-5)

इस पवित्र आयत से स्पष्ट है कि इस्लाम अनाथों की देखभाल और पालन-पोषण की भावना पर आधारित दत्तक ग्रहण (Adoption) की मूल अवधारणा का विरोधी नहीं है। बल्कि उस विशिष्ट सामाजिक परंपरा या प्रथा को निरस्त करता है जिसमें एक लेपालक को वास्तविक पुत्र का पूर्ण कानूनी दर्जा देकर उसे पैतृक नाम और विरासत का अधिकारी बना दिया जाता था। यही कारण था कि दुनिया के महानतम सुधारक, हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा ﷺ ने अपने प्रिय हज़रत ज़ैद (रज़ि.) को

कभी भी अपना पुत्र नहीं बनाया। समाज में प्रचलित प्रेम और सम्मान के कारण कुछ लोगों को यह भ्रम हो गया था कि ज़ैद (रज़ि.) आपके पुत्र हैं।

अतः पंडित द्वारा लगाया गया आरोप महज़ मुहम्मद ﷺ की पवित्रतम शख्सियत पर बिना वजह निकृष्ट प्रहार और मुसलमानों के दिल को ठेस पहुँचाने का एक घटिया प्रयास है।

शांति और आशीर्वाद हो उस महान पैग़म्बर पर, जिन्होंने हज़रत ज़ैद (रज़ि.) के 'मुँहबोले बेटे' (Mouth-borne son) होने की उस ग़लतफ़हमी को, एक ईश्वरीय आदेश का पालन करते हुए, उनकी तलाकशुदा पत्नी हज़रत ज़ैनब बिंत ए-जहश (रज़ि.) से विवाह करके सदैव के लिए समाप्त कर दिया। वास्तव में, यह आप ﷺ द्वारा चलाई गई एक सामाजिक क्रांति का सूत्रपात था, जिसने न केवल लेपालक को पुत्र मानने की निराधार परंपरा को जड़ से उखाड़ फेंका, बल्कि 'नियोग' जैसी अमानवीय प्रथाओं का भी अंत किया, जिसमें बेटियों की मौजूदगी में किसी पराई स्त्री से उत्पन्न हुए लड़के को वारिस बना दिया जाता है। नारी जाति पर मर्द-ए-कामिल, इमामुल मुरसलीन ﷺ का यह अतुलनीय एहसान है, जिसकी मिसाल विश्व इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

यहाँ एक विचारने योग्य तथ्य यह भी है कि हज़रत ज़ैनब (रज़ि.) जो नबी के क़बीले से ही थीं, उनका विवाह हज़रत ज़ैद (रज़ि.) से स्वयं मुहम्मद ﷺ ने ही करवाया था। यदि पंडित का यह आरोप सही होता, तो क्या नबी-ए-करीम ﷺ स्वयं उनसे अपने विवाह का प्रस्ताव नहीं रख सकते थे? इसी प्रकार, यदि पंडित का आरोप सही होता, तो शफ़ीक़-ए-उम्मत और रहमतुल्लिल आलमीन ﷺ बार-बार हज़रत ज़ैद (रज़ि.) को उन्हें अपनी पत्नी के साथ सामांजस्य बनाकर रहने का आग्रह और समझाइश क्यों देते?

पाठकों, निष्कर्ष यह है कि यह विवाह एक ईश्वरीय आदेश का पालन और एक विकृत सामाजिक प्रथा को समाप्त करने का ऐतिहासिक कदम था, जिसे ख़ातिमुन नबिय्यीन ﷺ ने अपने पवित्र जीवन का एक भाग बनाकर अंजाम दिया। यह एक सुविचारित सामाजिक सुधार था, जिसने विवाह, रिश्तों और विरासत की स्पष्ट एवं न्यायसंगत सीमाएँ निर्धारित कर दीं और मानवता को एक शाश्वत मार्गदर्शन प्रदान किया।

नबी ﷺ के पिता न होने से संबंधित निराधार प्रश्न

पंडित ने आपत्ति के आड़ में जो अभद्र, अशोभनीय और तथ्यहीन टिप्पणियाँ की हैं, उसके लिए केवल क्षमा याचना ही पर्याप्त नहीं। इसी उन्मादपूर्ण और अतिरेक सोच का परिचय देते हुए वे प्रश्न उठाते है कि यदि नबी ﷺ किसी के पिता नहीं थे, तो ज़ैद (रज़ि.) किसके पुत्र थे? विचारिण्य तथ्य यह है कि इससे पहले स्वयं पंडित ने पैग़म्बर ﷺ द्वारा अपने लेपालक की पत्नी के साथ विवाह करने पर आपत्ति कर चुके हैं (जिसका उत्तर पहले दिया जा चुका है), और अब वह हज़रत ज़ैद बिन हरिसा (रज़ि.) को नबी का वास्तविक पुत्र बताकर एक निराधार संदेह पैदा कर रहे हैं।

हज़रत ज़ैद चाहे जिसके भी पुत्र रहे हों, वे न तो नबी के वास्तविक पुत्र थे, न ही मुँहबोले पुत्र, और न ही क़ुरआन ने उन्हें कभी नबी का वास्ताविक या दत्तक पुत्र कहा है। बल्कि क़ुरआन ने लेपालक को वास्तविक पुत्र के समान मानने की प्रचलित निराधार प्रथा का अंत करते हुए स्पष्ट रूप से कहा है कि यह तरीका उचित नहीं है।

हज़रत ज़ैद (रज़ि.) हरिसा के पुत्र थे, जिनका जन्म नज्द में हुआ था। बचपन में उनका अपहरण कर लिया गया और उन्हें दास के रूप में बेच दिया गया। बाद में पैग़म्बर-ए-इस्लाम हज़रत मुहम्मद ﷺ ने उन्हें खरीदकर आज़ाद कर दिया। यह ऐतिहासिक तथ्य इतना स्पष्ट एवं प्रसिद्ध होते हुए भी यह पूछने कि यदि नबी किसी के पिता नहीं थे, तो ज़ैद (रज़ि.) पुत्र किसके थे? एक समीक्षक की अज्ञानता एवं जानकारी के अभाव को दर्शाता है — यह हुई पहली बात। दूसरी बात यह है कि — जब ऐसे प्रश्न तथ्यों की स्पष्ट उपलब्धता के बावजूद उठाए जा रहे हैं, तो यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह जानबूझकर तथ्यों की उपेक्षा करके एक भ्रमपूर्ण वातावरण निर्मित किया जा रहा है, ताकि लोगों को गुमराह किया जा सके। स्वयं आपत्ति में भी पंडित ने हज़रत ज़ैद को लेपालक शब्द कोष्ठक में लिखा है, जो सिद्ध करता है कि पंडित को भी वास्तविकता का ज्ञान था। इसके बावजूद ऐसा प्रश्न उठाना केवल तथ्यों को छिपाकर एक झूठी भ्रांति फैलाने और जनसाधारण को धोखा देने का प्रयास है।

नबी ﷺ की पत्नियों के अधिकार और कर्तव्य

इसी क्रम में वे यह प्रश्न भी उठाते हैं कि यदि कोई पराई स्त्री नबी से विवाह करना चाहे तो क्या वह हलाल है? अब इन्हें कौन समझाए कि विवाह सदैव एक पराई स्त्री से ही होता है; विवाह से पूर्व वह उसकी पत्नी कैसे हो सकती है? एक और आधारहीन आपत्ति यह भी पंडित द्वारा उठाई गई कि "नबी जिस स्त्री को चाहे छोड़ दें, जबकि उनकी स्त्रियां चाहे अपराधी भी हों उन्हें कभी न छोड़ सकें।" यह आरोप पूर्ण रूप से निराधार है और पवित्र क़ुरआन की स्पष्ट आयतों की अनदेखी पर आधारित है।

इसी विषय पर पवित्र क़ुरआन की सूरह अहज़ाब (33:28) में ईश्वर अपने दूत को स्पष्ट निर्देश देता है —

"ऐ नबी! अपनी पत्नियों से कह दो: यदि तुम सांसारिक जीवन और उसकी शोभा चाहती हो, तो आओ, मैं तुम्हें कुछ देकर सुंदर ढंग से विदा कर दूं।" (33:28)

यह आयत स्वयं इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि नबी ﷺ की पत्नियों के पास एक खुला और सम्मानजनक विकल्प मौजूद था। यदि वे किसी कारणवश नबी ﷺ के साथ जीवन व्यतीत करना न चाहें, तो नबी ﷺ को यह आदेश दिया गया कि वे उन्हें उदारता के साथ विदा करें।

ऐसे स्पष्ट, ईश्वरीय आदेश के होते हुए यह दावा करना — क्या किसी विवेकशील और होशमंद रहने वाले व्यक्ति का कार्य हो सकता है?

घर में प्रवेश की शिष्टाचार और नबी ﷺ का आदर्श

ईश्वर का स्पष्ट आदेश है —

"ऐ ईमान वालो! अपने सिवा दूसरों के घरों में प्रवेश न करो, जब तक कि अनुमति न लो और घर वालों को सलाम न कर लो।" सूरह नूर (24:27)

पैग़म्बर वह होता है जो सर्वप्रथम ईश्वर की आज्ञा का सबसे अधिक पालन करने वाला और दूसरों के लिए आदर्श प्रस्तुत करने वाला होता है। हज़रत मुहम्मद ﷺ ने अपने पूरे जीवन में कभी भी किसी के घर में बिना अनुमति प्रवेश नहीं किया।

जब आप अपने सहाबा या किसी अन्य व्यक्ति के घर जाते, तो दरवाज़े पर खड़े होकर पहले सलाम करते और फिर अनुमति माँगते। यदि अनुमति नहीं मिलती, तो वापस लौट जाते। यही आपकी सुन्नत (शिष्टाचार) थी। हदीसों में वर्णन है कि नबी ﷺ जब किसी के दरवाज़े पर खड़े होते, तो सीधे सामने नहीं, बल्कि दरवाज़े के दाएँ या बाएँ ओर मुँह करके खड़े होते थे। यह तरीका इसलिए अपनाते थे ताकि अचानक दरवाजा खुलने पर घर के भीतर की स्थिति सीधे नज़र न आए, विशेष रूप से स्त्रियों के संदर्भ में, ताकि वे बिना संकोच के बाहर भी आ सकें (सुन्न अबी दाऊद — 5186)। कई प्रमाणिक हदीसों से ज्ञात होता है कि ईश्वर के रसूल ﷺ ने तीन बार तक अनुमति माँगने का तरीका सिखाया और फ़रमाया कि यदि अनुमति मिल जाए तो प्रवेश करो, अन्यथा वापस लौट जाओ (बुखारी — 6245; मुस्लिम — 2153, 5631)।

अब विचार कीजिए — जो व्यक्ति स्वयं दूसरों से अधिक ईश्वर के प्रति समर्पित और आज्ञाकारी हो, जो दरवाज़े पर खड़े होकर बार-बार सलाम करे और अनुमति माँगे, और अपने साथियों को भी यही शिष्टाचार सिखाए, क्या वो किसी के घर में अनाधिकृत रूप से प्रवेश कर सकता है?

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

130. नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूल को, यह कि निकाह करो बीबियों उस की को पीछे उस के कभी, निश्चय यह है समीप अल्लाह के बड़ा पाप। निश्चय जो लोग कि दुःख देते हैं अल्लाह को और रसूल उस के को, लानत की है उन को अल्लाह ने। और वे लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानों को और मुसलमान औरतों को विना इस के, बुरा किया है उन्होंने बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् झूठ और प्रत्यक्ष पाप। लानत मारे, जहाँ पाये जावें पकड़े जावें कतल किये जावें खूब मारा जाना। ऐ रब हमारे, दे उन को द्विगुणा अज़ाब से और लानत से बड़ी लानत कर। 33: 53-57-58-61-68 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह! क्या खुदा अपनी खुदाई को धर्म के साथ दिखला रहा है? जैसे रसूल को दुःख देने का निषेध करना तो ठीक है परन्तु दूसरे को दुःख देने में रसूल को भी रोकना योग्य था सों क्यों न रोका? क्या किसी के दुःख देने से अल्लाह भी दुःखी हो जाता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। क्या अल्लाह और रसूल को दुःख देने का निषेध करने से यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिस को चाहें दुःख देवें? अन्य सब को दुःख देना चाहिये? जैसे मुसलमानों और मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो इन से अन्य मनुष्यो को दुःख देना भी अवश्य बुरा है। जो ऐसा न माने तो उस की यह बात भी पक्षपात की है। वाह ग़दर मचाने वाले खुदा और नबी! जैसे ये निर्दयी संसार में हैं वैसे और बहुत थोड़े होंगे। जैसा यह कि अन्य लोग जहाँ पाये जावें, मारे जावें पकड़े जावें, लिखा है वैसी ही मुसलमानों पर कोई आज्ञा देवे तो मुसलमानों को यह बात बुरी लगेगी वा नहीं? वाह क्या हिंसक पैग़म्बर आदि हैं कि जो परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से दूसरों को दुगुण दुःख देने के लिये प्रार्थना करना लिखा है। यह भी पक्षपात मतलबसिन्धुपन और महा अधर्म की बात है। इसी से अब तक भी मुसलमान लोगों में से बहुत से शठ लोग ऐसा ही कर्म करने में नहीं डरते। यह ठीक है कि सुशिक्षा के विना मनुष्य पशु के समान रहता है।

उत्तर:

ईश्वर को दुःख पहुँचाना एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति

इस्लाम में ईश्वर को हर प्रकार की कमी एवं दोष से मुक्त माना गया है। उसकी सत्ता मानवीय सीमाओं — जैसे शारीरिक पीड़ा या भावनात्मक उथल-पुथल या उतार-चढ़ाव से सर्वथा पवित्र है। अतः ईश्वर को दुःख पहुँचाना एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति है, इस रूपक का वास्तविक आशय है — ईश्वरीय व्यवस्था की अवहेलना करना।

जब कोई व्यक्ति ईश्वर के आदेशों, नैतिक सीमाओं और धर्म के मार्ग का स्पष्ट उल्लंघन करता है, तो वह उस सर्वोच्च व्यवस्था को चुनौती देता है, जिसका रचयिता ईश्वर ने किया है। इसी संदर्भ में इस प्रकार की अवज्ञा को ईश्वर को दुःख पहुँचाना कहा गया है। यह अभिव्यक्ति उसी प्रकार है जैसे हम कहते है — भ्रष्टाचार से राष्ट्र को चोट पहुँचती है। कोई भी विवेकशील व्यक्ति इसका यह अर्थ नहीं निकलेगा कि भ्रष्टाचार कोई वस्तु है जो राष्ट्र नामक शरीर पर प्रहार कर रहा है। बल्कि इसका तात्पर्य यह होता है कि राष्ट्र की प्रतिष्ठा, उसकी व्यवस्था और उसकी अखंडता को क्षति पहुँच रही है।

अतः इस्लाम में ईश्वर; व्यवस्था का सर्वोच्च स्रोत है, और रसूल उसके मार्गदर्शन के सर्वश्रेष्ठ मानवीय प्रतिनिधि एवं वयाख्याकर हैं। इसलिए दोनों के प्रति अवज्ञा को अत्यंत गंभीर माना गया है, क्योंकि यह वास्तव में ईश्वरीय मार्गदर्शन को अस्वीकार करने के समान है।

पंडित का आरोप संदर्भ-विहीन और क़ुरआन की मूल शिक्षाओं के विरुद्ध

पंडित का यह आरोप कि 'रसूल और मुसलमानों को दुःख देने से रोकना तो ठीक है, परंतु दूसरों को दुःख देने से रसूल और मुसलमानों को भी रोकना चाहिए था, सो क्यों नहीं रोका गया?' — प्रथम तो नबी पर यह आरोप मूल रूप से असत्य पर आधारित है। इसी प्रकार आरोप को पढ़कर ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पंडित को संबंधित आयत के संदर्भ का तनिक भी ज्ञान नहीं था। अन्यथा ऐसी निराधार एवं असंगत आपत्तियाँ नहीं उठा रहे होते।

वास्तव में, यह आयत एक विशिष्ट घटना के संदर्भ में अवतरित हुई थी। घटना यह थी कि पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ के घर कुछ अतिथि शिष्टाचार की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए बहुत देर तक बातचीत में लगे रहे, जिससे नबी ﷺ को कष्ट पहुँचा। एक नबी का समय अत्यंत मूल्यवान होता है, जो मानवता के मार्गदर्शन में व्यतीत होता है। इसी कारण आयत के माध्यम से समाजिक शिष्टाचार और निजी मर्यादा के महत्वपूर्ण नियम स्थापित किए गए। यह आयत विशेष रूप से मुसलमानों के आपसी व्यवहार में शिष्टाचार स्थापित करने के लिए थी, न कि यह संकेत देने के लिए कि काफ़िरो को दुःख देना जायज़ है। इसकी तुलना ऐसे की जा सकती है, जैसे किसी देश में अपने नागरिकों के लिए विशेष नियम बनाए जाए, तो इसका मतलब यह नहीं कि विदेशियों के साथ अन्याय करना वैध है।

पवित्र क़ुरआन का नैतिक ढाँचा केवल मुसलमानों तक सीमित नहीं है; यह सार्वभौमिक न्याय और मानवीय दया पर आधारित है। उदाहरण के तौर पर —

"ऐ ईमान लाने वालों! ईश्वर के लिए न्याय पर दृढ़ रहने वाले और सच्चाई के साथ गवाही देने वाला बनो। किसी समुदाय की शत्रुता तुम्हें इस बात पर उकसा न दे कि तुम न्याय न करो। न्याय करो, वही ईश्वर से डरने (तक़वा) की बात है।" सूरह

माइदा (5:8)

यह आयत स्पष्ट रूप से बताती है कि न्याय करना ईमान का अभिन्न अंग है और यह शत्रुओं के साथ भी अनिवार्य है। यह आयत किसी भी पक्षपात के आरोप का सीधा उत्तर और खंडन है।

इसी प्रकार, पवित्र क़ुरआन में एक अन्य स्थान पर भी कहा गया है —

"ईश्वर तुम्हें उन लोगों के साथ सद्व्वहार और न्याय करने से नहीं रोकता, जिन्होंने तुमसे धर्म के मामले में नहीं लड़ा और न ही तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला। निःसंदेह ईश्वर न्याय करने वालों से प्रेम करता है।" सूरह मुम्तहिना (60:8)

यह आयत गैर-आक्रामक काफ़िरों के साथ भलाई और न्याय को न केवल अनुमति देती है, बल्कि प्रोत्साहित भी करती है। इस्लाम में हिंसा या कठोरता का प्रवाधान केवल आत्मरक्षा, अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष और अपराधियों के लिए निर्धारित है, न कि शांतिपूर्ण काफ़िरो के विरुद्ध।

अतः पंडित का यह आरोप न केवल संदर्भ-विहीन है, बल्कि पवित्र क़ुरआन की शिक्षाओं के मूल स्वरूप के भी सर्वथा विपरीत है।

प्रार्थना काफ़िरों की है, मुसलमानों की नहीं

इस हास्यपद आपत्ति को भी देखिए — पंडित अपने ही भाई-बंधुओ द्वारा किए गए निवेदनों को मुसलमानों का समझ रहे है। हे दयानन्दियों! ज़रा होश के नाखून लो और ध्यानपूर्वक सुनो की यह आयत वास्तव में क्या कहती है।

आयत उस दिन का चित्रण करती है — जब नर्क में डाले गए काफ़िर अपने रब के सामने गिड़गिड़ाएंगे और कहँगे —

"हे हमारे पालनहार! हमने तेरे रसूल की बात मानने के बजाए अपने सरदारों, अपने बड़े-बुजुर्गों और कथित विद्ववानों का अंधानुकरण किया। हमने अपनी बुद्धि और विवेक को एक ओर रख दिया और यह मानते रहे कि यही लोग हमें सही मार्ग दिखा रहे हैं। किंतु आज जब सच्चाई हमारे सामने खुली, तो हमें ज्ञात हुआ कि ये लोग स्वयं ही पथभ्रष्ट थे और इन्होंने हमें भी सीधे मार्ग से भटका दिया।"

अपनी इसी पीड़ा और पश्चाताप के साथ वे आगे कहँगे —

"हे हमारे रब! जिन्होंने हमें गुमराह किया, उन्हें दुगुना दंड दिया जाए, क्योंकि उनका अपराध भी दुगुना है — एक तो वे स्वयं भटके हुए थे और दूसरे उन्होंने दूसरों को भी भटकाया।"

यानी, यह प्रार्थना नर्क में पड़े काफ़िरों द्वारा की जा रही है, न कि मुसलमानों द्वारा। यह आयत मानव स्वभाव की उस गंभीर कमज़ोरी की ओर संकेत करती है, जब वह तर्क, विवेक और आत्मचिंतन को त्याग कर केवल अंधानुकरण को ही अपना मार्ग बना लेता है, और स्वयं सोचने-समझने की क्षमता को निष्क्रिय कर देता है।

तो हे दयानन्दी भाइयों और बहनों!

क्यों न तुम भी अपनी बुद्धि और ह्रदय का प्रयोग करो? इतनी स्पष्ट त्रुटियों और ठोस तर्क सामने आ जाने के बाद भी सत्य से आँखें मूँद कर रखना किस विवेक का प्रमाण है? याद रखो — इस्लाम का द्वार सदैव तुम्हारे लिए खुला है।

आवश्यकता केवल इतनी है कि तुम खुले दिल, निर्मल मन और निष्पक्ष सोच के साथ सत्य की ओर कदम बढ़ाओ।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह फातिर

131. और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओं को बस उठाती हैं बादलों को, बस हांक लेते हैं तर्फ शहर मुर्दे की, बस जीवित किया हम ने साथ उस के पृथिवी को पीछे मृत्यु उस की के, इसी प्रकार कबरों में से निकालना है। जिस ने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनी से, नहीं लगती हम को बीच उस के मेहनत और नहीं लगती बीच उस के माँदगी। 35: 9-35 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह क्या फिलासफ़ी खुदा की है। भेजता है वायु को, वह उठाता फिरता है बद्दलों को! और खुदा उस से मुर्दों को जिलाता फिरता है! यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर एक सा होता रहता है। जो घर होंगे वे विना बनावट के नहीं हो सकते और जो बनावट का है वह सदा नहीं रह सकता। जिस के शरीर है वह परिश्रम के विना दुःखी होता और शरीर वाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता। जो एक स्त्री से समागम करता है वह विना रोग के नहीं बचता तो जो बहुत स्त्रियों से विषयभोग करता है उस की क्या ही दुर्दशा होती होगी? इसलिये मुसलमानों का रहना बहिश्त में भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता।

उत्तर:

पंडित की बौद्धिक सीमा और ईश्वर की कार्यप्रणाली

पंडित को यदि दर्शन की समझ नहीं, तो यह उसकी अपनी बौद्धिक समझ का दोष है। पंडित का यह मानना कि ईश्वर का कार्य सदैव एकसमान होता रहना चाहिए, तो यह दृष्टिकोण सीमित मानवीय बुद्धि पर आधारित है।

निःसन्देह, ईश्वर ने इस संसार को एक सुनिश्चित व्यवस्था के अंतर्गत संचालित किया है, ताकि मनुष्य उसे समझ सके और उसमें जीवन यापना कर सके। परंतु यह मान लेना कि ईश्वर केवल इन्हीं नियमों तक सीमित है और उन्हीं के दायरे में रहकर कार्य कर सकता है, तो वास्तव में ईश्वर को उसकी ही बनाई व्यवस्था का अधीनस्थ बना देना है। यह भूल जाना कि वह नियमों का निर्माता है — न कि उनका पालनकर्ता — मानव अहंकार का परिचायक है। नियम उसके अदेश से अस्तित्व में आते हैं; वह नियमों के अधीन नहीं होता। बस इसी गहन सत्य को स्पष्ट करने के लिए पवित्र क़ुरआन ने एक अत्यंत सुंदर दृष्टांत प्रस्तुत किया है। हवाओं का चलना, वष्प (बादलों) का ऊपर उठना और उनका गर्जना — ये सब ईश्वर की उस असीम शक्ति की ओर संकेत करती है। इनके माध्यम से मनुष्य यह समझ सकता है कि जिस प्रकार वह बंजर, सुखी एवं मृत-सी धरती को वर्षा से सिंचित कर पुनर्जीवित और हरा-भरा कर देता है, ठीक उसी प्रकार मृत्यु के बाद जीवन का संचार करना उसके लिए उतना ही सहज और सरल है।

यह आयत स्पष्ट रूप से पंडित जैसे संकीर्ण बुद्धि वाले लोगों को ही झकझोरने का कार्य करती है। आयत उन्हें अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है और प्रश्न करती है — क्या वे नहीं देखते कि यह धरती प्रतिदिन पुनर्जीवन का प्रमाण प्रस्तुत कर रही है? इस नियम को रचने वाला कौन है? जो सृष्टिकर्ता मृतप्राय धरती में पुनः से हरियाली की लहर दौड़ा

सकता है, क्या वह मानव को पुनर्जीवित नहीं कर सकता?

स्वर्ग संबंधी उठाई गई शंकाओं का समाधान हमने अपने पूर्व के उत्तर में ही दे दिया है; आवश्यकता केवल उन्हें गंभीरता और समझदारी (Open mindedness) से पढ़ने की है। मूल भाव यह है कि स्वर्ग का कार्य-तंत्र इस संसार के कार्य-तंत्र से मौलिक रूप से भिन्न है। जैसे अलग-अलग ऑपरेटिंग सिस्टम वाले कंप्यूटरों में सॉफ्टवेयर अलग ढंग से कार्य करते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग की भिन्न व्यवस्था में नियम, घटनाएँ और अनुभव भी उसी के अनुरूप होंगे — जिनकी कल्पना हम इस संसार के आधार पर नहीं कर सकते।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह यासीन

132. कसम है कुरान दृढ़ की। निश्चय तू भेजे हुओं से है। ऊपर मार्ग सीधे के। उतारा है ग़ालिब दयावान् ने। 36: 2-3-4-5 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये। यह कुरान खुदा का बनाया होता तो वह इस की सौगन्द क्यों खाता? यदि नबी खुदा का भेजा होता तो (लेपालक) बेटे की स्त्री पर मोहित क्यों होता? यह कथनमात्र है कि कुरान के मानने वाले सीधे मार्ग पर हैं। क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिस में सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपात रहित न्याय धर्म का आचरण करना आदि हैं और इन से विपरीत का त्याग करना। सो न कुरान में न मुसलमानों में और न इन के खुदा में ऐसा स्वभाव है। यदि सब पर प्रबल पैग़म्बर मुहम्मद साहेब होते तो सब से अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते? इसलिये जैसे कुंजड़ी अपने बेरों को खट्टा नहीं बतलाती वैसी यह बात भी है।

उत्तर:

ईश्वर की कसम और क़ुरआन की महत्ता

उचित तो यह होता पंडित जी वेदों से कोई ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करते जिसमें ईश्वर अपनी सृष्टि से भिन्न किसी वस्तु की कसम खाता हो, किंतु ऐसा कोई उदाहरण या इससे अलग कोई उदाहरण वेदों में उपलब्ध नहीं।

कसम का उद्देश्य केवल किसी कथन या तथ्य की पुष्टि करना मात्र नहीं होता, बल्कि किसी विषय के महत्व और उसकी महानता को भी स्पष्ट करना होता है। अतः जब ईश्वर पवित्र क़ुरआन की कसम लेता है, तो इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि यह ग्रंथ ज्ञान, हिक्मत और मार्गदर्शन से परिपूर्ण है, तथा मानवता के लिए पूर्ण जीवन-पद्धति प्रस्तुत करता है।

ईश्वर और नबी ﷺ पर निराधार आरोप

पंडित ने एक बार फिर पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ पर निराधार और असत्य आरोप लगाने का दुस्साहस किया है। ऐसे आरोपों का खंडन पूर्ववर्ती उत्तरों में स्पष्ट रूप से किया जा चुका है। जैसे — यदि नबी ﷺ के मन में वैसा कोई अनुचित इरादा होता, तो सबसे पहले वे स्वयं हज़रत ज़ैद के लिए हज़रत ज़ैनब से विवाह का प्रस्ताव क्यों रखते? इतना ही नहीं, जब-जब हज़रत ज़ैद ने तलाक़ देने का इरादा व्यक्त किया, तब-तब नबी ﷺ ने उन्हें तलाक़ न देने की सख़्त हिदायत क्यों दी? ये तथ्य स्वयं इस बात का प्रमाण हैं कि पंडित द्वारा लगाए गए सभी आरोप न केवल तथ्यहीन हैं, बल्कि सत्य से कोसों दूर हैं।

इस प्रकार, ईश्वर और उसके दूत पर लगाए गए पंडित के सभी आरोप निराधार, असत्य और दुर्भावनापूर्ण हैं, जिनका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं है।

आर्य मत में धर्म के नाम पर झूठ का समर्थन

अपने मत को — चाहे वह कितना ही अतार्किक क्यों न हो — बिना किसी प्रश्न के स्वीकार कर लेना; अपने बाप-दादा की परम्पराओं पर — चाहे वे कितनी ही बुद्धि और तर्क विरोधी क्यों न हों — अंधानुकरण करते रहना; बल्कि धर्म के नाम पर असत्य को मानना, असत्य बोलना और असत्य पर आचरण को उचित एवं श्रेयस्कर समझा जाता हो — यह उसी मानसिकता का मूल स्वरूप है। उदाहरण के तौर पर, हम स्वयं देखते है कि पंडित स्वयं शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत को गलत ठहराते हैं, किंतु जैनियों के खण्डन के लिए उसी सिद्धांत को अच्छा बताया (स.प.-एकादशसमुल्लास, पृ. 235-236 और 241)। इसी प्रकार, अन्य धर्मों के खण्डन और वैदिक मत के समर्थन में इन्होंने इतने असत्य कथन किए हैं कि उन सबका यहाँ विस्तार से उल्लेख करना कठिन है। बस इतना ही कहना पर्याप्त है कि इतनी निर्लज्जता और निरंतरता से झूठ का सहारा लेने वाला कोई तथाकथित विद्वान शायद पूरी मानव इतिहास की एक सदी में भी पैदा नहीं हुआ होगा।

इस्लाम के सीधे मार्ग पर होने का प्रमाण

इस्लाम और मुसलमानों के सीधे मार्ग पर होने का प्रमाण यह है कि वह सभी ईश्वरीय ग्रंथों की पुष्टि करते है। दूसरी ओर अन्य सभी मत केवल अपने-आप को सीधे मार्ग पर होने की पुष्टि करते हैं। अतः इस्लाम की सत्यता सभी धर्मों की सर्वसम्मत सकारात्मक गवाही का नाम है। और यह एक ऐसी अकाट्य और निर्विवाद प्रमाण है, जो मात्र इस्लाम और मुसलमानों में पाई जाती है। इस्लाम, पवित्र क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद ﷺ में सभी अच्छाइयाँ मौजूद है। यदि पंडित को यह नज़र नही आया तो किसी का क्या दोष!

अंधा यदि सूरज को न देख पाए तो इसमें सूरज का क्या दोष!

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

133. और फूंका जावेगा बीच सूर के बस नागहां व कबरों में से तर्फ मालिक अपने की दौड़ेंगे। और गवाही देंगे पांव उन के साथ उस वस्तु के थे कमाते। सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उस की जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु को यह कि कहता वास्ते उस के कि 'हो जा', बस हो जाता है। 36: 51-65-82 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब सुनिये ऊटपटांग बातें! पग कभी गवाही दे सकते हैं? खुदा के सिवाय उस समय कौन था जिस को आज्ञा दी? किस ने सुनी? और कौन बन गया? यदि न थी तो यह बात भूठी और जो थी तो वह बात जो सिवाय खुदा के कुछ चीज नहीं थी और खुदा ने सब कुछ बना दिया-वह झूठी।

उत्तर:

हमारे कथन में बड़बोलापन नहीं, अन्यथा ये शब्द-बाण बिना हृदय की छानबीन किए ही निशाना भेद डालते।

पग आदि गवाहियों का उत्तर क्रमांक 116 पर देखें, और 'कुन-फ़या-कुन' का उत्तर 28 पर।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह साफ्फात

134. फिराया जावेगा उनके ऊपर पियाला शराब शुद्ध का। सफेद मज़ा देने वाली वास्ते पीने वालों के। समीप उन के बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियाँ, सुन्दर आंखों वालियां। मानो कि वे अण्डे हैं छिपाये हुए। क्या बस हम नहीं मरेंगे। और अवश्य लूत निश्चय पैग़म्बरों से था। जब कि मुक्ति दी हम ने उस को और लोगों उस के को सब को। परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहने वालों में है। फिर मारा हम ने औरों को। 37: 45-46-48-49-56-133-134-135-136 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्यों जी! यहां तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इन के स्वर्ग में तो नदियां की नदियां बहती हैं। इतना अच्छा है कि यहां तो किसी प्रकार मद्य पीना छुड़ाया परन्तु यहां के बदले वहाँ उन के स्वर्ग में बड़ी खराबी है! मारे स्त्रियों के वहाँ किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा! और बड़े-बड़े रोग भी होते होंगे! यदि शरीर वाले होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीर वाले न होंगे तो भोग विलास ही न कर सकेंगे। फिर उन के स्वर्ग में जाना व्यर्थ है। यदि लूत को पैग़म्बर मानते हो तो जो बाइबल में लिखा है कि उस से उस की लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये इस बात को भी मानते हो वा नहीं? जो मानते हो तो ऐसे को पैग़म्बर मानना व्यर्थ है। और जो ऐसे और ऐसे के सङ्गियों को खुदा मुक्ति देता है तो वह खुदा भी वैसा ही है। क्योंकि बुढ़िया की कहानी कहने वाला और पक्षपात से दूसरों को मारने वाला खुदा कभी नहीं हो सकता। ऐसा खुदा मुसलमानों ही के घर में रह सकता है; अन्यत्र नहीं।

उत्तर:

संसार में शराब के हराम होने की अवधारणा एवं स्वर्ग में शराब का अर्थ

संसार में प्रचलित शराब (मदिरा) को हराम (वर्जित) घोषित करने के मूलतः दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम कारण उसके सेवन से होने वाली शारीरिक हानि। द्वितीय कारण यह है कि यह मनुष्य की बुद्धि (अक्ल) पर पर्दा डाल देती है, जिसके परिणामस्वरूप वह मदहोशी की स्थिति में अनेक अनुचित कार्य कर बैठता है तथा उसे अपने कर्म-अकर्म का होश नहीं रहता।

पवित्र क़ुरआन में स्वर्ग की जिस शराब का वर्णन हमें मिलता है — जिसका उल्लेख पंडित ने नहीं किया और लोगों से छिपा लिया (सूरह साफ्फात, 37:47) — "वह पूर्णतः पवित्र, निर्मल और पीने वालों के लिए अत्यंत स्वादिष्ट है। उसमें न तो कोई हानि है और न ही उसे पीने से मदहोशी या नशा उत्पन्न होता है।"

अरबी भाषा में शराब शब्द "शुरुब" धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ 'पेय' है। रोचक तथ्य तो यह है कि "शरबत" शब्द भी इसी मूल से उत्पन्न हुआ है, जो एक सुखद एवं मीठे पेय को दर्शाता है। अतः स्पष्ट है कि जिस जन्नती पेय का पवित्र क़ुरआन में उल्लेख है, यदि उसकी कोई समान प्रकृति वाली वस्तु — चाहे वह किसी स्रोत, नदी, या अन्य रूप में — इस संसार में भी प्राप्त हो, तो वह हलाल (वैध) ही होगी। ठीक उसी प्रकार जैसे दूध, पानी, शहद, घी आदि पेय पदार्थ हलाल हैं।

पार्थिव शरीर से संबंधित प्रश्न का उत्तर आप क्रमांक 12 में देख सकते हैं। शेष स्वर्ग संबंधी प्रश्नों के उत्तर पहले ही अनेक स्थानों पर अनेक बार प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

बाइबिल में हज़रत लूत (अ.) से संबंधित वर्णित और क़ौम पर दंड का कारण

बाइबिल में हज़रत लूत (अ.) के संबंध में जो कुछ वर्णित है, उसके लिए ईसाई जिम्मेदार हैं न कि हम। जिस प्रकार पुराणों में लिखी गई बातों के लिए आर्यों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, उसी प्रकार बाइबिल के प्रत्येक विवरण का दायित्व भी हम पर नहीं है।

पवित्र क़ुरआन में हज़रत लूत (अ.) की पत्नी का प्रसंग एक स्पष्ट शिक्षा देता है — किसी पुण्यात्मा का संबंधी मात्र होने से कोई व्यक्ति अपने बुरें कर्मों के परिणाम से नहीं बच सकता। ईश्वर के यहाँ निर्णय रिश्तों के आधार पर नहीं, बल्कि कर्मों के आधार पर होता है। अतः अच्छे कर्म के बिना न तो स्वर्ग संभंव है, न ही दंड से छुटकारा।

इसी प्रकार, हज़रत लूत (अ.) की समुदाय को उनके अपराधों के लिए दिया गया दंड किसी पक्षपात का परिणाम नहीं, बल्कि न्याय था। क्या आपने इस्लाम के ईश्वर को आर्यों के ईश्वर की तरह समझ लिया है, जो आर्यों के द्वेष की वजह से दूसरे समूह के लोगों को मरवाता और उनका माल लुटवाता हो और अन्याय करता फिरता हो? कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे पक्षपाती ईश्वर की कल्पना भी नहीं कर सकता, उसे स्वीकार करना तो दूर की बात है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह साद

135. बहिश्तें हैं सदा रहने की खुले हुए हैं दर उन के वास्ते उन के। तकिये किये हुए बीच उन के मंगावेंगे बीच इस के मेवे और पीने की वस्तु। और समीप होंगी उनके, नीचे रखने वालियां दृष्टि और दूसरों से समायु। बस सिज़दा किया फ़रिश्तों ने सब ने। परन्तु शैतान ने न माना अभिमान किया और था काफ़िरों से। ऐ शैतान किस वस्तु ने रोका तुझ को यह कि सिज़दा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के, क्या अभिमान किया तूने वा था तू बड़े अधिकार वालों से। कहा कि मैं अच्छा हूँ उस वस्तु से, उत्पन्न किया तूने मुझ को आग से, उस को मट्टी से। कहा बस निकल इन आसमानों में से, बस निश्चय तू चलाया गया है। निश्चय ऊपर तेरे लानत है मेरी दिन जज़ा तक। कहा ऐ मालिक मेरे, ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे। कहा कि बस निश्चय तू ढील दिये गयों से है। उस दिन समय ज्ञात तक। कहा कि बस कसम प्रतिष्ठा तेरी की, अवश्य गुमराह करूंगा उन को मैं इकट्ठे। 38: 50-51-52-73-74-75-76-77-78-79-80-81-82 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि वहाँ जैसे कि कुरान में बाग़ बगीचे नहरें मकानादि लिखे हैं वैसे हैं तो वे न सदा से थे न सदा रह सकते हैं। क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था, अवश्यभावी वियोग के अन्त में न रहेगा। जब वह बहिश्त ही न रहेगा तो उस में रहने वाले सदा क्योंकर रह सकते हैं? क्योंकि लिखा है कि गद्दी, तकिये, मेवे और पीने के पदार्थ वहाँ मिलेंगे। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मजहब चला उस समय अर्ब देश विशेष धनाढ्य न था। इसीलिये मुहम्मद साहेब ने तकिये आदि की कथा सुना कर गरीबों को अपने मत में फंसा लिया। और जहाँ स्त्रियां हैं। वहाँ निरन्तर सुख कहां? वे स्त्रियां वहाँ कहां से आई हैं? अथवा बहिश्त की रहने वाली हैं? यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहने वाली हैं तो कयामत के पूर्व क्या करती थीं? क्या निकम्मी अपनी उमर को बहा रही थीं?

अब देखिये खुदा का तेज कि जिस का हुक्म अन्य सब फ़रिश्तों ने माना और आदम साहेब को नमस्कार किया और शैतान

ने न माना! खुदा ने शैतान से पूछा कहा कि मैंने उस को अपने दोनों हाथों से बनाया, तू अभिमान मत कर। इस से सिद्ध होता है कि कुरान का खुदा दो हाथ वाला मनुष्य था। इसलिए वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता। और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूँ, इस पर खुदा ने गुस्सा क्यों किया? क्या आसमान ही में खुदा का घर है; पृथिवी में नहीं? तो काबे को खुदा का घर प्रथम क्यों लिखा?

भला! परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है। इस से स्पष्ट विदित हुआ कि कुरान का खुदा बहिश्त का जिम्मेदार था। खुदा ने उस को लानत धिक्कार दिया और कैद कर लिया और शैतान ने कहा कि हे मालिक! मुझ को कयामत तक छोड़ दे। खुदा ने खुशामद से कयामत के दिन तक छोड़ दिया। जब शैतान छूटा तो खुदा से कहता है कि अब मैं खूब बहकाऊंगा और गदर मचाऊंगा। तब खुदा ने कहा कि जितनों को तू बहकावेगा मैं उन को दोज़ख में डाल दूंगा और तुझ को भी।

अब सज्जन लोगो विचारिये! कि शैतान को बहकाने वाला खुदा है वा आप से वह बहका? यदि खुदा ने बहकाया तो वह शैतान का शैतान ठहरा। यदि शैतान स्वयं बहका तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे; शैतान की जरूरत नहीं। और जिस से इस शैतान बाग़ी को खुदा ने खुला छोड़ दिया, इस से विदित हुआ कि वह भी शैतान का शरीक अधर्म कराने में हुआ। यदि स्वयं चोरी करा के दण्ड देवे तो उस के अन्याय का कुछ भी पारावार नहीं।

उत्तर:

पवित्र क़ुरआन में स्वर्ग की अवधारणा और उसकी वास्तविकता

स्वर्ग के विषय में यह बात बार-बार स्पष्ट की गई है कि वहाँ की वस्तुएँ और स्थितियाँ हमारी सांसारिक कल्पना से पूर्णतः भिन्न एवं असीम रूप से उत्तम होंगी। वह एक अलौकिक एवं अद्भुत स्थान है, जिसकी वास्तविकता इस धरती की किसी भी अनुभूति से परे है। हाँ, मानवीय समझ के स्तर को ध्यान में रखते हुए पवित्र क़ुरआन में दूध, शहद सुनहरे महल जैसी परिचित उपमाओं का प्रयोग अवश्य किया गया है, किंतु ये केवल नाम की समानता मात्र है। स्वर्ग की वस्तुओं का सार, उनकी सुंदरता और गुणवत्ता हमारी सीमित बुद्धि के परे है। ये उदाहरण मनुष्य को परलोक के अनंत वैभव और सुख का एक सहज बोध कराने के लिए दिए गए हैं।

स्वर्ग और उसमें व्याप्त वस्तु या जीवन अविनाशी

पंडित जी, आपका यह दार्शनिक विचार कि "प्रत्येक उत्पन्न वस्तु का अंत अवश्य है," एक संकुचित दृष्टिकोण को प्रकट करता है, बल्कि तर्क की कसौटी पर भी टिकता हुआ प्रतीत नहीं होता। अतः हमारे अनुसार यह सिद्धांत मिथ्या है। हमारा स्पष्ट मत इस विषय पर यह है कि जो वस्तु एक बार सृष्ट हो गई, वह सदैव के लिए अवशिष्ट रह सकती है और उनका विनाश अनिवार्य नहीं है। इसका तर्क यह है कि जिस प्रकार सृष्टि करना एक क्रिया है, उसी प्रकार विनाश करना भी एक क्रिया है। ये दोनों ही क्रियाएँ एक सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता (ईश्वर) पर आश्रित हैं। जिस प्रकार उसकी सृष्टि-क्रिया के अभाव में कोई वस्तु अस्तित्व में नहीं आ सकती, ठीक उसी प्रकार उसकी विनाश-क्रिया के बिना कोई सृष्ट वस्तु नष्ट भी नहीं हो सकती। अतः, यदि वह कर्ता अपनी सृष्टि के पश्चात् विनाश का नियम लागू ही न करे, तो वह सृष्टि अनंत काल तक बनी रह

सकती है। परलोक या स्वर्ग के संदर्भ में हमारा दृढ़ सिद्धांत यही है कि ईश्वर उस विशिष्ट सृष्टि पर विनाश का नियम लागू ही नहीं करेगा।

पंडित ने ईश्वरीय धर्म के इस स्पष्ट एवं तर्कसंगत दर्शन को अनदेखा कर, उस नास्तिकवादी सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है, जो यह मानता है कि प्रत्येक वस्तु बिना ईश्वर के, स्वतः उत्पन्न तथा स्वतः विनष्ट हो सकती है। साथ ही, पंडित ने ईश्वर से भिन्न दो सत्ताओं एवं उनके गुणों को अनादि मानकर, उक्त भौतिकवादी सिद्धांत को बल प्रदान किया है।

पश्न तो यह है कि यदि ईश्वर किसी वस्तु को अनंत रूप से स्थिर रखना चाहे और वह ऐसा करने में असमर्थ हो, तो फिर उसकी सर्वशक्तिमता का अर्थ ही क्या रह जाता है?

वैदिक धर्म में सांसारिक सुख और मोक्ष का लालच

पंडित द्वारा हज़रत मुहम्मद ﷺ के प्रति की गई टिप्पणी न केवल अत्यंत खेदजनक है, बल्कि घोर निंदनीय भी है। वेद और उपनिषदों ने भी आपके मत के अनुसार सांसारिक स्वर्ग के सुखों तथा मोक्ष का लालच देकर लोगों को फँसाया है। काश, आप दूसरों पर आरोप लगाने से पूर्व स्वयं अपने विचारों का आत्मनिरीक्षण कर लिया करते!

शेष सभी आरोप, जो मुहम्मद ﷺ से संबंधित हैं, पूर्णतः काल्पनिक, निराधार तथा मिथ्या हैं, और इन्हें किसी भी ऐतिहासिक प्रमाण से सिद्ध नहीं किया जा सकता।

सन्यासी की स्त्री-विरोधी मानसिकता

स्त्रियों के प्रति इस घृणा को देखिए! कहते हैं कि — जहाँ स्त्रियाँ होती हैं, वहाँ निरन्तर सुख कहाँ?" यह सोच स्पष्ट रूप से स्त्री-विरोधी है। आख़िर, स्वर्ग में स्त्रियों की उपस्थिति से इतनी नफरत क्यों?

वास्तव में, पंडित की मूल समस्या यह है कि इनके विचार में यदि पुरुष और स्त्री स्वर्ग में साथ रहेंगे, तो वहाँ भी उन्हें रोग और दुःख उत्पन्न होंगे — यह तर्क पूर्व की समीक्षा में दिया गया है — और यह रोग इनके अनुसार पुरुष-स्त्री संबंधों से उत्पन्न होते है। भले ही यह तर्क पूरी तरह निराधार हो, लेकिन बहस को विराम देने के लिए यदि हम इसे मान भी लें, तो इसका सीधा उत्तर यह है कि स्वर्ग केवल सुख का स्थान है। वहाँ केवल वही नियम लागू होंगे, जिसमें आनंद की प्राप्ति हो। इसलिए, वहाँ दुःख या रोग की कल्पना करना ही व्यर्थ है। अन्यथा, कोई और कारण है ही नहीं कि पुरुष स्वर्ग में जाएँ और स्त्रियों को वहाँ जाने से रोका जाए।

इसके अतिरिक्त, एक और मूर्खतापूर्ण तथा द्वेषपूर्ण मानसिकता देखिए — उस दुःख का पूरा दोष स्त्रियों के सर पर मढ़ दिया। वास्तव में, यह दोष ऐसे ही नहीं मढ़ा गया है, बल्कि तथाकथित ब्रह्मचारी विचारधारा के कारण, सन्यासियों के स्त्रियों के बारे में विचार पूर्णतः घृणा के पात्र होते है।

मानवों और जिन्नों (शैतान) को स्वतंत्रता और स्वेच्छा प्रदान की गई

निःसन्देह शैतान ने ईश्वर के आदेश का उल्लंघन करते हुए हज़रत आदम (अ.) को सिर नहीं झुकाया। ठीक इसी प्रकार, आप भी उन अनेक पैग़म्बरों के प्रति अस्वीकार और अभद्र टिप्पणी (ईश्वर के आदेश का उल्लंघन) करने वालों में शामिल हैं, जिन पर ईश्वर ने अपना प्रकाशना अवतरित किया। किंतु, ईश्वर ने न तो शैतान का गला घोंटा, न अपका टिटवा दबाया, और

न उन जैनियों अथवा नास्तिकों का ही सर्वनाश किया, जो वेदों को मूर्खों की वाणी मानते हैं।

वास्तव में, परमेश्वर ने मनुष्यों को जिस प्रकार स्वेच्छापूर्वक कर्म करने की स्वतंत्रता दी है, उसी प्रकार की स्वतंत्रता उसने जिन्नों को भी प्रदान की है। उन्हें आदेश का पालन करने अथवा उसकी अवहेलना करने का पूर्ण अधिकार एवं स्वायत्तता प्राप्त है। इस कृत्य से स्वयं ईश्वर को न तो लाभ पहुँचाया जा सकता है, और न ही हानि। बल्कि इसका लाभ या हानि मनुष्यों और जिन्नों को ही प्राप्त होती है। शेष इस विषय पर उत्तर पूर्व में कई स्थानों — जैसे क्रमांक 11, 12, 71, 105 और 110 — पर दिया जा चुका है, अतः उसी बात को बार-बार दोहराने की आवश्यकता नहीं।

क़ाबातुल्लाह को ईश्वर का घर कहने का संदर्भ समझने के लिए उत्तर क्रमांक 93 और 100 देखें, जहाँ वस्तु को ईश्वर से जोड़ने का विवरण दिया गया है।

वेद में ईश्वर के हाथ आदि अंगों का वर्णन

निःसन्देह, ईश्वर के दो हाथ हैं। विश्व की विभिन्न भाषाओं में — 'हाथ उठाना', 'सिर पर हाथ रखना', 'हाथ चूमना', 'दायाँ हाथ बैठाना', 'दो-दो हाथ करना', 'हाथ फैलना', या 'हाथ बढाना' — जैसे सैकड़ों मुहावरे प्रचलित हैं। ये सभी रूपक या लाक्षिणक अर्थ रखते हैं, जो किसी व्यक्ति के अधिकार, शक्ति, सम्मान, सहायता या प्रेम को व्यक्त करता हैं, न कि मांस चमड़े के वास्तविक हाथ का बोध कराता है।

अरबी भाषा तथा पवित्र क़ुरआन में 'हाथ' (यद) शब्द शक्ति और सामर्थ्य के लिए भी उपयोग हुए है। उदाहरण के तौर पर — "उस व्यक्ति को क्षमा कर दे जिसके हाथ में निकाह की गाँठ है" (सूरह बकरा, 2:237)। स्पष्ट है कि यहाँ हाथ से अभिप्राय अधिकार और शक्ति से है, न कि कोई भौतिक अंग से।

इसी प्रकार, जब क़ुरआन में यह कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपने हाथों से बनाया, तो उसका आशय यह है कि ईश्वर ने मनुष्य की रचना पूर्ण सामर्थ्य एवं कुशलता से बनाया है, उसे बाह्य एवं आंतरिक पूर्णताओं से सुसज्जित किया है, तथा उसे विशिष्ट गरिमा व सम्मान प्रदान किया है। यह हाथ ईश्वर की सृष्टि करने की असीम शक्ति और उसकी अनंत कृपा का प्रतीक हैं।

यह विचारणीय है कि जब क़ुरआन में ईश्वर के लिए हाथ जैसे प्रतीकात्मक शब्द आते हैं, तो पंडित तुरंत यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि क़ुरआन का ईश्वर शरीरधारी होने से सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान कभी नहीं हो सकता। किंतु यह अत्यंत रोचक है कि वेद में ईश्वर के मुख, नेत्र, हाथ, त्वचा, जीभ और उदर जैसे अंगों का उल्लेख स्पष्ट रूप से उपलब्ध होते हुए भी ईश्वर के सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमानता पर कोई संदेह नही किया। उदाहरण के तौर पर, अथर्ववेद (11.2.5-6) "हे पशुपते! जीवों के स्वामी! परमात्मा! तेरे मुख, नेत्र, त्वचा हे, चक्षुएँ, त्वचा, जीभ आदि सभी अंगों को नमस्कार है।" पंडित जयदेव शर्मा सज्जनों को अब यह अवश्य विचार करना चाहिए कि बार-बार शैतान के कथन को सत्य मान लेना शैतान के अनुयायियों का कार्य हो सकता है या ईश्वरभक्तों का? किंतु आश्चर्य यह है कि पंडित जी के विचार में ईश्वर की अवज्ञा करने वाला एवं शैतान का अनुसरण करने वाला मनुष्य ही श्रेष्ठ ठहरता है।

इसी प्रकार, "फ़ाख़रुज मिन्हा" का अर्थ केवल किसी स्थान से निष्कासन मात्र नहीं है, बल्कि अरबी भाषा में इसका अर्थ उस

अवस्था या दशा से बहिष्कृत करना भी है, जिसमें वह पूर्व में स्थित था — अर्थात ईश्वर की दया, कृपा और अनुग्रह से वंचित कर देना, तथा उसकी छत्रछाया से निकाल बाहर करना। यह आदेश उस जीव के संदर्भ में है, जहाँ वह पहले विद्यमान था। जब ईश्वर का स्थान ही निर्धारित नहीं है, तो उसके विषय में स्थान-आधारित अनुमान लगाना मूर्खों का काम हो सकता है, बुद्धिमानों का नहीं। निःसन्देह, ईश्वर स्थान एवं मकान से परे और पवित्र है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह जुमर

136. अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे, निश्चय वह है क्षमा करने वाला दयालु। और पृथिवी सारी मूठी में है उस की दिन कयामत के और आसमान लपेटे हुए हैं बीच दाहिने हाथ उसके के। और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपने के और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैग़म्बरों को और गवाहों को और फैसला किया जावेगा। 39: 53-67-69 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और अन्य बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुँचावेगा। यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे तो अपराध ही अपराध जगत् में छा जावे। क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाश वाला है? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं? और कौन लिखता है? यदि पैग़म्बरों और गवाहों के भरोसे खुदा न्याय करता है तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है। यदि वह अन्याय नहीं करता न्याय ही करता है तो कर्मों के अनुसार करता होगा। वे कर्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्मों के हो सकते हैं तो फिर क्षमा करना, दिलों पर ताला लगाना और शिक्षा न करना, शैतान से बहकवाना, दौरा सुपुर्द रखना केवल अन्याय है।

उत्तर:

पापों की क्षमा एवं प्रायश्चित से संबंधित उत्तरों के लिए कृपया क्रमांक 2, 5, 15, 25, 50, 58, 80, 91, 111 तथा 118 देखें।
यद्यपि वेदों में ईश्वर के लिए 'अग्नि' शब्द का प्रयोग किया गया है, तथापि क़ुरआन में ईश्वर के संदर्भ में 'नूर' (प्रकाश) शब्द किस अर्थ और संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है — इसका विस्तृत विवेचन क्रमांक 116 में देखा जा सकता है।

कर्मों के संरक्षण का स्थान

प्रत्येक व्यक्ति के कर्म उसकी आत्मा पर अंकित (नक़्श) एवं संरक्षित रहते हैं। जैसा कि पूर्व में बताया गया है, नबियों की गवाही अथवा कर्मपत्र ईश्वर के लिए नहीं, बल्कि व्यक्तियों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए हैं, ताकि उन पर दलील पूरी की जा सकें और न्याय स्थापित हो सके। विस्तृत जानकारी के लिए क्रमांक 59 और 104 देखें।

दौरासुपुर्द और कर्मों का तत्काल दंड क्यों नहीं

दिलों पर मुहर लगना, सही मार्ग न पाना और शैतान के बहकावे में आ जाना — ये सब मनुष्य की अपनी कमजोरियों और उसके कर्मों का परिणाम है।

मृत्यु के बाद शव को प्रलय तक रखने (दौरासुपुर्द) के संदर्भ में — जिससे पंडित जी के विचार में मृत व्यक्ति को कष्ट होता है

— इसका उत्तर यह है कि मृत्यु के बाद समय का बोध कराने वाली मानवीय चेतना एवं इन्द्रियाँ समाप्त हो जाती हैं, अतः मृत व्यक्ति को कोई होश नहीं रहता।

तुरंत दंड मिलने का अर्थ होगा — सुधार का कोई अवसर न देना। इसलिए ईश्वर, जो अत्यंत कृपालु और दयालु है, जो अपनी दया व कृपा से तुरंत किसी को सज़ा नहीं देता, बल्कि सुधरने का अवसर देता है।

किंतु पंडितजी, पर आप क्यो "दाता दान करे और भंडारे का कलेजा फटे" की कहावत के जैसा जल-भून रहे है?

विस्तृत उत्तरों के लिए क्रमांक 5, 87, 5, 43, 45, 71, 105, 110, 18 देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह मोमिन

137. उतारना किताब का अल्लाह ग़ालिब जानने वाले की ओर से है। क्षमा करने वाला पापों का और स्वीकार करने वाला तोबाः का। 40: 2-3 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाह के नाम से इस पुस्तक को मान लेवें कि जिस में थोड़ा सा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्य के साथ मिलकर बिगड़ा सा है। इसीलिये कुरान और कुरान का खुदा और इस को मानने वाले पाप बढ़ाने हारे और पाप करने कराने वाले हैं। क्योंकि पाप का क्षमा करना अत्यन्त अधर्म है। किन्तु इसी से मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करने में कम डरते हैं।

उत्तर:

पवित्र क़ुरआन पूर्ण रूप से ईश्वर का वचन

पवित्र क़ुरआन का ईश्वरीय वचन होना पूर्णतः सत्य एवं यथार्थ है। इस सत्य को स्वीकार न कर पाने का कारण पंडित के चित्त में वैदिक गपोड़ की अमिट छाप है। वास्तविकता तो यह है कि सत्य और असत्य एक साथ एक ही स्थान पर निवास नहीं कर सकते। जैसे अंधकारप्रिय चमगादड़ सूर्य के प्रकाश से दूर भागते है, वैसे ही जो मन मिथ्या का आदि हो जाता है, वह कठोर प्रकाशमय सत्य को सहज ग्रहण नहीं कर पाते।

विश्व इतिहास का एक महत्वपूर्ण सत्य यह है कि क़ुरआन की शिक्षाओं ने अरब प्रायद्वीप में फैली सामाजिक अनैतिकता, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक कुरीतियों को मूल से उखाड़ फेंका।

किंतु पंडितजी के विचाराधार में तो वेदों के माननेवाले आर्यावर्त में अछूतों एवं शूद्रों पर किए गए अकथ्य अत्याचार, जैन तथा बौद्ध अनुयायियों के संहार, एवं निर्दोष पीड़ितों तथा स्त्रियों को जीवित अग्नि में समर्पित कर देने के भयावह व्यवहार वाले; आर्य ही ईश्वर से अधिक भय वाले, सभ्य, शिष्ट और शांतिप्रिय है। वाह री विडंबना!

पापों की क्षमा के प्रश्न का उत्तर इससे पूर्व अनेक बार दिया जा चुका है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह हा-मीम अस्सज्दा

138. बस नियत किया उस को सात आसमान बीच दो दिन के, और डाल दिया बीच हम ने उस के काम उस का। यहां तक

कि जब जावेंगे उस के पास साक्षी देंगे ऊपर उन के कान उन के और आंखें उन की और चमड़े उन के कर्म से। और कहेंगे वास्ते चमड़े अपने के क्यों साक्षी दी तू ने ऊपर हमारे, कहेंगे कि बुलाया है हम को अल्लाह ने जिस ने बुलाया हर वस्तु को। अवश्य जिलाने वाला है मुर्दों को। 41: 12, 20, 21, 39 कुरआन.

समीक्षक:- वाह जी वाह मुसलमानो। तुम्हारा खुदा जिस को तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो वह सात आसमानों को दो दिन में बना सका? और जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्र में सब को बना सकता है। भला कान, आंख और चमड़े को ईश्वर ने जड़ बनाया है वे साक्षी कैसे दे सकेंगे? यदि साक्षी दिलावे तो उस ने प्रथम जड़ क्यों बनाये? और अपना पूर्वापर काम नियमविरुद्ध क्यों किया? एक इस से भी बढ़ कर मिथ्या बात यह कि जब जीवों पर साक्षी दी तब वे जीव अपने-अपने चमड़े से पूछने लगे कि तूने हमारे पर साक्षी क्यों दी? चमड़ा बोलेगा खुदा ने दिलायी मैं क्या करूं! भला यह बात कभी हो सकती है? जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का मुख मैंने देखा, यदि पुत्र है तो बन्ध्या क्यों? जो बन्ध्या है तो उस के पुत्र ही होना असम्भव है। इसी प्रकार की यह भी मिथ्या बात है। यदि वह मुर्दों को जिलाता है तो प्रथम मारा ही क्यों? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं? यदि नहीं हो सकता तो मुर्देपन को बुरा क्यों समझता है? और कयामत की रात तक मृतक जीव किस मुसलमान के घर में रहेंगे? और दौरासुपुर्द खुदा ने विना अपराध क्यों रक्खा? शीघ्र न्याय क्यों न किया? ऐसी-ऐसी बातों से ईश्वरता में बट्टा लगता है।

उत्तर:

वेदों में सृष्टि-रचना कितने समय में हुई

कुन-फयकून के विस्तृत विवेचन के लिए क्रमांक 72 और 90 देखें। पंडित दयानन्द, जो स्वयं ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानते हैं; वेदों से — जिन्हें वे ज्ञान और विज्ञान की परम पुस्तक कहते हैं — यह प्रमाण देने में असमर्थ रहे कि विराट ईश्वर ने नक्षत्रों, ग्रहों और अन्य आकाशीय पिंडों की रचना कितने समय में की।

यदि वेद की बात की जाए तो वेदों के पुरुष सूक्त के अनुसार तो स्थिति और भी विचित्र है — जहाँ विराट पुरुष की नाक, कान, आँख, मुख, मन आदि के अंगों से सूर्य, चन्द्रमा और आकाश जैसे खगोलीय पिंडों की उत्पत्ति बताई गई है। क्या यह सब क्षणभर में घटित हो गया? आँख निकली और सूर्य बन गया, मन से चन्द्रमा गढ़ लिया गया, और सिर कटते ही आकाश अस्तित्व में आ गया? यदि ऐसा ही हुआ, तो यह सृष्टि-रचना का एक अत्यंत अद्भुत और कहें तो अकल्पनीय-दर्शन है, जिसे खगोलशास्त्र या वैज्ञानिक चिंतन में रखना चाहिए!

प्रकृति का कोई कण मौन नहीं है; प्रत्येक कण अपनी भाषा में ईश्वर की गवाही देता है

पंडित जी को मनुष्य की आँख, कान और त्वचा के साक्षी होने पर आश्चर्य हो रहा है, जबकि वास्तविकता यह है कि संसार का प्रत्येक वस्तु अपने कार्यों, गुणों और अनेक परिणामों के माध्यम से निरंतर गवाही देती हुई स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्रकृति का कोई भी कण मौन नहीं है; हर वस्तु अपने अस्तित्व और कार्य-व्यवहार से सत्य को प्रकट कर रही है। इस विषय पर विस्तृत उत्तर पहले ही दिया जा चुका है — कृपया क्रमांक 114 देखें।

पुनर्जन्म की आवश्यकता — संसार चक्र

इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार, ईश्वर मनुष्य को मृत्यु देकर पुनर्जीवित इसलिए करता है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों का पूर्ण परिणाम (प्रतिफल या दंड) प्राप्त हो सके। जैसा कि पवित्र क़ुरआन में स्पष्ट कहा गया है — "ताकि प्रत्यके व्यक्ति को उसके किए का बदला दिया जाए, जो कुछ उसने किया है।" सूरह ताहा (20:15) अर्थात् मृत्यु के बाद पुनर्जीवन और न्याय इस्लामी ईश्वर-संकल्पना का अनिवार्य अंग है।

परंतु, यदि वैदिक अवधारणा के अनुसार ईश्वर इसी संसार में पाप-पुण्य का फल देता है, तो फिर वह मनुष्य को मृत्यु ही क्यों देता है? यदि दंड या सुख देना ही उद्देश्य है, तो उसी शरीर के साथ, उसी जीवन में दे सकता है। मनुष्य को मारकर, शरीर को नष्ट करके, उसे शिशु रूप में धरती पर पुनः उत्पन्न करने की क्या आवश्यकता है?

इसी प्रकार, क्यों एक पूर्णतः बना-बनाया संसार समाप्त किया जाता है, और फिर उसी आत्मा को नए शरीर में बाँधकर पुनः जन्म के चक्कर में डाल दिया जाता है?

निर्थक तंज और ईश्वर द्वारा तुरंत न्याय न करना एक स्थापित तथ्य है

प्रलय तक कोई भी मृत शरीर किसी मुसलमान के घर में नहीं रहता। यह कथन किसी ठोस आपत्ति से अधिक मात्र एक तंज है, जो पूर्णतः निरर्थक है।

ईश्वर तुरंत न्याय नहीं करता — यह एक स्थापित और सर्वमान्य तथ्य है। इस प्रश्न का कोई संतोषजनक उत्तर पंडित दयानन्द नहीं दे सकते। शेष उत्तर के लिए क्रमांक 105 देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अश्-शूरा

139. वास्ते उस के कुंजियां हैं आसमानों की और पृथिवी की, खोलता है भोजन जिस के वास्ते चाहता है और तंग करता है। उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिस को चाहे बेटियां और देता है जिस को चाहे बेटे। वा मिला देता है उन को बेटे और बेटियाँ और कर देता है जिस को चाहे बाँझ। और नहीं है शक्ति किसी आदमी को कि बात करे उस से अल्लाह परन्तु जी में डालने कर वा पीछे परदे के से वा भेजे फ़रिश्ते पैग़ाम लाने वाला। 42: 12, 49, 50, 51 क़ुरआन.

समीक्षक:- खुदा के पास कुञ्जियों का भण्डार भरा होगा। क्योंकि सब ठिकाने के ताले खोलने होते होंगे! यह लड़कपन की बात है। क्या जिस को चाहता है उस को विना पुण्य कर्म के ऐश्वर्य देता है? और विना पाप के तंग करता है? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है। अब देखिये कुरान बनाने वाले की चतुराई! कि जिस से स्त्रीजन भी मोहित हो के फसें। यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है तो दूसरे खुदा को भी उत्पन्न कर सकता है वा नहीं? यदि नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई। भला मनुष्यों को तो जिस को चाहे बेटे बेटियां खुदा देता है परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिन के बहुत बेटा बेटियां होती हैं कौन देता है? और स्त्री पुरुष के समागम विना क्यों नहीं देता? किसी को अपनी इच्छा से बांझ रख के दुःख क्यों देता है? वाह! क्या खुदा तेजस्वी है कि उस के सामने कोई बात ही नहीं कर सकता। परन्तु उसने पहिले कहा है कि पर्दा डाल के बात कर सकता है वा फ़रिश्ते लोग खुदा से बात करते हैं अथवा पैग़म्बर। जो ऐसी बात है तो फ़रिश्ते और

पैग़म्बर खूब अपना मतलब करते होंगे! यदि कोई कहे खुदा सर्वज्ञ सर्वव्यापक है तो परदे से बात करना अथवा डाक के तुल्य खबर मंगा के जानना लिखना व्यर्थ है। और जो ऐसा ही है तो वह खुदा ही नहीं किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा। इसलिये यह कुरान ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता।

उत्तर:

रिज़्क़ की तंगी और समृद्धि

निःसंदेह, आसमानों और धरती के समस्त ख़ज़ानों की कुंजियाँ ईश्वर के ही हाथ में हैं

जब ईश्वर ही आसमानों और धरती का स्वामी है, तो यह स्वाभाविक है कि उनमें निहित समस्त ख़ज़ानों का वास्तविक स्वामी भी वही है। इस तथ्य पर संदेह तो केवल वही कर सकता है जो ईश्वर के अस्तित्व को ही नकारता है।

आयत में चाबियाँ शब्द का प्रयोग लाक्षिणक अर्थ में हुआ है — अर्थात् सम्पूर्ण अधिकार और नियंत्रण। जैसे हम कहते हैं — "उसकी चाबी मेरे हाथ में है", अर्थात् वह व्यक्ति पूर्णतः मेरे नियंत्रण में है।

इतनी स्पष्ट और सीधी-सरल बात को न समझ पाना वास्तव में जड़बुद्धिता का प्रमाण है।

यह उत्तर तो पूर्व में भी दिया जा चुका है, किंतु फिर से सुन लें। आर्य मतानुसार रिज़्क़ की प्राप्ति अथवा अभाव, पूर्वकर्म का फल माने जाते हैं। किंतु इस्लामी दृष्टिकोण है कि यह वर्तमान; भविष्य की व्यवस्था के अनुसार है — कि देखा जाए, कौन लोग धन पाकर ईश्वर का गुणगान करता है, उसका कृतज्ञ रहता है और उसमें दूसरों को भागीदार बनाता है; और कौन व्यक्ति तंगहाली में भी ईमानदारी का मार्ग नहीं छोड़ता तथा ईश्वर में अटूट विश्वास रखता है।

एक व्यक्ति को धन देकर परखा जाता है कि वह कितना कृतज्ञ है। दूसरे को गरीबी देकर यह जाँच होती है कि वह ईश्वर पर कितना अविचल भरोसा रखता है और उसके आदेशों को किस प्रकार पालन करता है। जैसे किसी की धर्मपरायणता धन के माध्यम से परखी जाती है, वैसे ही दूसरे की गरीबी के माध्यम से। दोनों का उद्देश्य एक ही है — यह जानना कि वे ईश्वरीय आदेशों का पालन करते हैं या नहीं।

उदाहरण के तौर पर, मान लीजिए कि धन गरीबी से उत्तम वस्तु मानी जाती है, किंतु धन एवं शक्ति के बल पर अहंकार एवं अत्याचार की संभावना बढ़ जाती है। वहीं दूसरी ओर, गरीबी — जो सन्यासी का आभूषण है — मुक्ति की सीढ़ी बन सकती है। एक व्यक्ति सांसारिक धन के बल पर यज्ञ और दान-पुण्य करता है, तो दूसरा धन का त्याग करके सीधे ईश्वर से प्रेम का संबंध जोड़ता है।

अपने धर्म के आधार पर बताइए, इन दोनों में श्रेष्ठ कौन है?

संतान के प्रत्येक रूप के प्रति कृतज्ञता और स्वीकार्यता का संदेश

ईश्वर वही उत्पन्न करता है जो वह चाहता है। इस स्पष्ट और सरल सत्य को छोड़कर एक निरर्थक बहस खड़ी करना कि क्या ईश्वर अपने समान किसी दूसरे ईश्वर को उत्पन्न कर सकता है या नहीं — न तो संबंधित आयत का विषय है और न ही यह इस्लामी शिक्षा। ऐसी बहसें ही मूल संदेश से ध्यान भटकाने का काम करती हैं।

जिस आयत पर आपत्ति की जा रही है, उसमें अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ईश्वर जिसे चाहता है पुत्री देता है, जिसे

चाहता है पुत्र देता है, और जिसे चाहता है पुत्र-पुत्री दोनों देता है। इस आयत का मूल उद्देश्य यह बताना है कि पुत्र और पुत्री — दोनों ही ईश्वर की देन हैं और दोनों को समान रूप से उसकी कृपा समझकर स्वीकार करना चाहिए। इसका केंद्रीय संदेश लिंग-आधारित भेदभाव को समाप्त करना और संतान के हर रूप के प्रति कृतज्ञता का भाव उत्पन्न करना है। दुर्भाग्यवश, जैसे ही पवित्र क़ुरआन स्त्री के अधिकार और सम्मान की बात करता है, पंडित को असहनीय लगने लगती है। वास्तव में, समस्या आयत में नहीं, बल्कि उस मानसिकता में है जो स्त्री विरोधी है।

वास्तविकता यह है कि वैदिक धर्म में पुत्र को जो प्राथमिकता दी गई है, वह पुत्री को नहीं दी गई। यदि प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं को एक ओर भी रख दिया जाए, तब भी पंडित द्वारा लिखी गई पुस्तक संस्कारविधि में 'पुंसवनम्' — अर्थात पुत्र-प्राप्ति के लिए किए जाने वाले यज्ञ — का उल्लेख (पृष्ठ 37-39) और वेदों में बार-बार दस-दस पुत्रों की कामना करना, किंतु पुत्री के लिए ऐसी किसी प्रार्थना का अभाव का दिखना। यह तथ्य अपने आप में इस बात का प्रमाण है कि वैदिक धर्म में स्त्री को वह स्थान और सम्मान नहीं दिया गया, जिसकी वह अधिकारी है।

इसके अतिरिक्त, ऐसे यज्ञों का करना वैज्ञानिक दृष्टि से निरर्थक हैं। संतान का होना या न होना, और उसका लिंग निर्धारण — यह सब प्राकृतिक नियमों के अधीन है। इस संदर्भ में पवित्र क़ुरआन की शिक्षा पूर्णतः यथार्थवादी और संतुलित है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि ईश्वर जिसे चाहता है पुत्री देता है, जिसे चाहता है पुत्र देता है, और जिसे चाहता है दोनों देता है। निःसंदेह वही सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है।

इस्लाम — जो एक ईश्वरीय धर्म है — संतान के लिंग के मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। वह पुत्र और पुत्री — दोनों को ईश्वर की नेमत मानता है और मनुष्य को यह शिक्षा देता है कि वह ईश्वर के निर्णय पर संतोष रखे।

पुनर्जन्म सिद्धांत एक अतार्किक अवधारणा

मुर्गी, मछली, सुअर आदि प्राणियों में नर और मादा का भेद किसने किया? इसका स्पष्ट उत्तर पवित्र क़ुरआन में निहित है: "यख़लुकु मा यशा अल्लाह" — अर्थात, ईश्वर जो चाहता है, पैदा करता है। इस एक वाक्य में अनेक गहन सत्य समाए हुए हैं। यह न केवल सृष्टि की उत्पत्ति के प्रश्न का उत्तर देता है, बल्कि इसमें शिर्क और पुनर्जन्म जैसे सिद्धांतों का स्पष्ट खंडन भी निहित है।

इसके विपरीत, आर्य धर्म के ग्रंथों में वर्णित पुनर्जन्म का सिद्धांत विचारणीय हैं। (मनु-स्मृति, 12:42-44) मनु जी कहते है कि जो व्यक्ति निम्नस्तर का पापी होता है, वह वृक्ष, किट-मकोड़े या कछुएँ-मछली के रूप में जन्म लेता है; मध्यस्तर का पापी हाथी, घोड़ा या सुअर के रूप में; और उत्तमस्तर का महापापी मुर्गा-मुर्गी या सुंदर पक्षी के रूप में जन्म लेते हैं। इस दृष्टि से देखें तो यह सारा संसार, उसकी समस्त विविधता और रौनक़, मनुष्यों के पापों का परिणाम है। एक व्यंग्यात्मक निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि मनुष्य पाप न करे तो न गाय-बैल हों, न दूध-दही, न मुर्गी-अंडा और न ही फल-सब्ज़ियाँ — क्योंकि ये सब तो विभिन्न योनियों में जन्मे पापी प्राणी ही हैं, गोया संसार की समस्त विविधता शैतान की मेहरबानी से है।

आर्य परंपरा में वर्णित स्वर्ग की कल्पना — जहाँ गाय, बैल, दूध-दही, मक्खन, सुंदर वस्त्र और घोड़ों की भरमार है — वह सब भी पाप अर्थात शैतान की शैतानियत का ही परिणाम है। फिर तो आर्यों को सुबह-सवेरा उठकर यह प्रार्थना करनी

चाहिए: हे शैतान! तुम्हारे बिना यह सुंदर संसार, ये उपयोगी पशु, ये स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ और ये आवश्यक वस्तुएँ अस्तित्व में ही न आ पातीं। तुम्हारी कृपा से ही गायों के झुंड, दूध-घी की बहुतायत, मोती-रेशम और सवारी के घोड़े उपलब्ध हैं। तुम ही हमारे वास्तविक उपास्य और दाता हो। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। हे अग्नि से उत्पन्न शैतान (अग्नि देवता)! हमारी स्त्रियों और पुरुषों को और अधिक पाप करने की प्रेरणा दो, ताकि संसार की यह रौनक़ और भी बढ़े, और बनी रहें!"

ईश्वरीय संवाद और फ़रिश्ते तथा देवदूतों (पैग़म्बर) की निष्कलुषता

आयत यह नही कहती कि चूँकि ईश्वर तेजस्वी है इसलिए मनुष्य उससे संवाद नहीं कर सकता, बल्कि आयत स्पष्ट रूप से यह बताती है कि ईश्वर मनुष्यों से संवाद या ज्ञान तीन भिन्न-भिन्न माध्यमों से प्रदान करता है —

1. दिल में इल्हाम (अन्तरप्रेरणा) के माध्यम से — अर्थात सीधे हृदय में डाल देना, जैसा कि आर्य भी स्वीकार करते हैं।

2. स्वप्न या परदे में — जैसा हज़रत यूसुफ (अ.) को स्वप्न में ग्यारह सितारों का सज्दा दिखाई देना, और हज़रत मूसा (अ.) से परदे में संवाद होना — अर्थात वक्ता की आवाज़ सुनाई तो दे लेकिन वक्ता दिखाई न दें।

3. किसी फ़रिश्ते या देवदूत के माध्यम से — यह विश्वास न केवल इस्लाम में है, बल्कि यहूदी, ईसाई, पारसी तथा अन्य सभी ईश्वरीय धर्मों में पाया जाता है कि ईश्वर अपने भक्तों से संवाद फ़रिश्ते या देवदूतों के द्वारा करता है।

इसी संदर्भ में यह कहना कि फ़रिश्ते और नबी अपने स्वार्थ सिद्ध करते होंगे — वास्तव में इस्लाम से अपरिचित होने का स्पष्ट प्रमाण है। क्योंकि क़ुरआन कहता है "बल अबाद मुकर्रमून — ला यासून अमरल्लाह व हम यफअलून मा यु'मरून" — अर्थात वे ईश्वर के सम्मानित, पापरहित और पवित्र बन्दे हैं, जो उसकी अवज्ञा नहीं करते और वही करते हैं जिसका उन्हें आदेश दिया जाता है।

यह भी अत्यंत विचित्र तर्क है कि यदि ईश्वर अपने किसी बन्दे या अपनी ही बनाई हुई किसी सृष्टि से कोई कार्य ले तो वह सर्वज्ञ या सर्वशक्तिमान नहीं रह जाता। जबकि वास्तव में अपनी शक्तियों के माध्यम से कार्य कराना, आदेश देना और व्यवस्था चलाना — न तो उसकी सर्वज्ञता को कम करता है और न ही उसकी सर्वशक्तिमत्ता को। यह बात न केवल इस्लामी विचारधारा में, बल्कि वेदों और अन्य धर्मग्रंथों में भी स्वीकार की गई है। उदाहरण के तौर पर — ईश्वर के आदेश से अग्नि देवता जलाती है, वायु देवता अपने कार्य में संलग्न रहती है, सूर्य देवता उसी के आदेश से चलता है, इन्द्र देवता बादलों को उठाकर वर्षा करता है, और फिर उसी ईश्वर ने अग्नि, वायु, अंगिरा और आदित्य जैसे देवताओं (दिव्य गुणों से युक्त) पर वेदों का प्रकाशन किया। जिसे पंडित जी आपके ही पूर्वज चार्वाक मूर्खों और ठगों की वाणी मानते हैं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अज़-ज़ुख़रुफ़

140. और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के। 43: 63 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि ईसा भी भेजा हुआ खुदा का है तो उस के उपदेश से विरुद्ध कुरान खुदा ने क्यों बनाया? और कुरान से विरुद्ध इञ्जील क्यों की? इसीलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं।

उत्तर:

समस्त ग्रंथों और नबियों की वास्तविक शिक्षा ईश्वरीय थी

ईसा (अ.) की शिक्षाएँ और पवित्र क़ुरआन की शिक्षाएँ कभी एक-दूसरे के विपरीत या विरोधी नहीं थीं, बल्कि सभी नबियों की शिक्षाएँ — यहाँ तक कि भारत के प्राचीन ऋषियों की शिक्षाएँ भी — मूल रूप से क़ुरआन के विपरीत नहीं थीं। जो अंतर आज हमें दिखाई देता है, वह केवल पादरियों और पंडितों द्वारा की गई मिलावट, शब्दों के अर्थों में तोड़-मरोड़ तथा समय के साथ हुई संशोधन, विकृत एवं परिवर्तन के कारण है।

सत्य तो यह है कि प्रारंभ में सभी पूर्व ग्रंथ ईश्वरीय मार्गदर्शन के रूप में प्रस्तुत किए गए थे, परंतु समय के साथ उनमें मानवीय हस्तक्षेप होता चला गया। उदाहरण के तौर पर, ऋग्वेद का एक लिपि (नुस्खा) शाकल संहिता दूसरे लिपि बाष्कल संहिता के कुछ सूक्तों तथा खिल (अतिरिक्त) मंत्रों की मौजूदगी या अनुपस्थिति के कारण उनमें काफी भिन्नता है। अथर्ववेद की शौनक संहिता और पैप्पलाद संहिता एक दूसरे से स्पष्ट विरोधाभास प्रकट करती है। इस प्रकार, ये सभी वेद अपनी-अपनी ढफली और अपना-अपना राग बन चुके है। इन अंतर्विरोधी और परिवर्तनों से यह कदापि ईश्वरीय वचन नहीं हो सकते।

पूर्व में दिए गए उत्तरों को भी देखें — 5 और 22।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह धूखान

141. पकड़ो उस को बस घसीटो उस को बीचों बीच दोजख के। इसी प्रकार रहेंगे और व्याह देंगे उन को साथ गोरियों अच्छी आंखों वालियों के। 44: 47, 54 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह! क्या खुदा न्यायकारी होकर प्राणियों को पकड़ाता और घसीटवाता है? जब मुसलमानों का खुदा ही ऐसा है तो उस के उपासक मुसलमान अनाथ निर्बलों को पकड़ें घसीटें तो इस में क्या आश्चर्य है? और वह संसारी मनुष्यों के समान विवाह भी कराता है, जानो कि मुसलमानों का पुरोहित ही है।

उत्तर:

वैदिक ईश्वर का पापियों के साथ आचरण

इस्लामी दृष्टिकोण से, ईश्वर पापियों और अपराधियों को दंड देता है — उन्हें पकड़ता है और नरक की अग्नि में घसीटवाता और जलाता है। इसमें किसी तरह का कोई समस्या नहीं है, बल्कि यह न्यायसंगत है। वास्तव में इसमें हमारा और आर्य समाजियों का तो कोई मतभेद ही नहीं। अंतर केवल स्थान का है — आर्य मत इसे इसी संसार मे घटित मानती है — जैसे सुवर, कुत्ता, गधा, बंदर, किट-मकोड आदि की योनियों में — जबकि इस्लाम इसे परलोक से जोड़ता है। जिन गरीब दस्यु, राक्षसों, जैनियों, बौद्धों और नास्तिकों को आर्यों ने पकड़ा, घसीटा और जिंदा जला दिया — क्या उन्हें यह दंड ईश्वर की अनुमति के बिना मिली? या उन्हें जो भी दुःख और पीड़ा सहनी पड़ी, वह ईश्वर के अनुमति के बिना उन्हें सहनी पड़ी?

जो व्यक्ति कमज़ोरों और मज़लूमों पर अत्याचार करता है, वह ईश्वर के दंड का भागी है, चाहें वह मुसलमान ही क्यों न हों।

पंडित को शायद स्मरण नहीं कि यह कार्य तो आर्यों का ही रहा है अछूतों के साथ और आज भी है।

वैदिक ईश्वर की पुरोहिताई

निःसंदेह, जो लोग सद्कर्म करते हैं, स्वर्ग में ईश्वर उन्हें पवित्र और योग्य जीवनसाथी के साथ जोड़ता है। आयत में ईश्वर के पुरोहित या स्वयं विवाह पढ़ाने जैसी कोई बात नहीं।

अलबत्ता ऋग्वेद के प्रथम ही मंत्र (1.1.1) में कहा गया है —

"अग्निम् ईळे पुरोहितम्"

अर्थात मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ, जो पुरोहित हैं।

पंडित जी क्या वैदिक ईश्वर संसारी मनुष्य के समान है?

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह मुहम्मद

142. बस जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफ़िर हुए बस मारो गर्दनें उन की यहां तक कि जब चूर कर दो उन को बस दृढ़ करो कैद करना। और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से, जिस ने निकाल दिया तुझ को मारा हम ने उन को, बस न कोई हुआ सहाय देने वाला उन का। तारीफ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार, बीच उस के नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की, और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मज़ा उन का, और नहरें हैं शराब की मजा देने वाली वास्ते पीने वालों के और नहरें हैं शहद साफ किये गये की और वास्ते उन के बीच उस के मेवे हैं प्रत्येक प्रकार से दान मालिक उन के से। 47: 4, 13, 15 क़ुरआन.

समीक्षक:- इसी से यह कुरान खुदा और मुसलमान गदर मचाने, सब को दुःख देने और अपना मतलब साधने वाले दयाहीन हैं। जैसा यहां लिखा है वैसा ही दूसरा कोई दूसरे मत वाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख जैसा कि अन्य को देते हैं हो वा नहीं? और खुदा बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहेब को निकाल दिया उनको खुदा ने मारा। भला! जिसमें शुद्ध पानी, दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं वह संसार से अधिक हो सकता है? और दूध की नहरें कभी हो सकती हैं? क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है। इसीलिये बुद्धिमान् लोग कुरान के मत को नहीं मानते।

उत्तर:

युद्ध में शत्रुओं से व्यवहार

युद्ध और जिहाद (संघर्ष) के विषय में उत्तर पूर्व में अनेक बार दिए जा चुके हैं। पूर्व में भी देखा गया है कि किस प्रकार पंडित ने लोगों को भ्रामित करने के उद्देश्य से क़ुरआन की आयतों का केवल एक अंश उद्धृत किया और शेष भागों को जानबूझकर छोड़ दिया। यहाँ भी वही प्रवृत्ति दोहराई। यह न केवल शर्मनाक कृत्य है, बल्कि संन्यासियत का अर्थी निकालने के समान है।

पूरी आयत का सही मर्म इस प्रकार है —

"और जब तुम उनसे युद्ध में आमने-सामने हो जाओ, तो उनकी गर्दनें मारो; यहाँ तक कि जब तुम उन पर पूरी तरह प्रभावी

(ग़ालिब) हो जाओ, तो उन्हें मज़बूती से कैदी बना लो। फिर उसके बाद या तो उपकार करते हुए (बिना कुछ लिए) उन्हें छोड़ दो, या फिर मुक्ति-धन (फ़िदया) लेकर, यहाँ तक कि युद्ध अपने हथियार रख दे (युद्ध समाप्त हो जाए)।"

इस आयत से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह आदेश केवल सक्रिय युद्ध-भूमि के संदर्भ में है। इसके बावजूद, इसमें करुणा, संयम और मानवता का स्पष्ट ध्यान रखा गया है। आदेश यह नहीं है कि विजय के बाद भी हत्या जारी रखी जाए, बल्कि इसके विपरीत — जैसे ही शत्रु पराजित हो जाए, तो उन्हें क़त्ल करने के बजाए; बंदी बनाया जाए। इसके बाद या तो उपकार स्वरूप उन्हें मुक्त कर दिया जाए, या यदि उनके अपराध और हानि अत्यंत गंभीर हों, जिसकी वजह से तुम उनपर एहसान नहीं कर पा रहे हो तो फ़िदया लेकर उन्हें रिहा किया जाए। चारों वेद में इस प्रकार का मानवीय और नैतिक युद्ध-सिद्धांत खोजने पर भी नहीं मिलता; बल्कि उलट शत्रुओं को अमानवीय ढंग से पीड़ा देकर मारने का उल्लेख मिलता हैं (जैसा कि यजुर्वेद में वर्णित है)। इसके विपरीत, क़ुरआन युद्ध में भी नैतिक सीमाएं निर्धारित करता है।

जहाँ तक यह आरोप है कि "जिनलोगों ने मुहम्मद ﷺ को उनके वतन से निकाला, उन्हें ख़ुदा ने नष्ट कर दिया", तो सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि मक्का के काफ़िरों ने केवल मुस्लिम पुरुषों की हत्या ही नहीं कि थी, बल्कि नव-मुस्लिम स्त्रियों को भी अत्यंत अमानवीय और अपमानजनक तरीकों से शहीद किया था। इसके अतीरिक्त, उन्होंने स्वयं पैग़म्बर ﷺ की हत्या की साजिशें रची, जो आपकी हिजरत के कारण असफल रही।

ऐसी निर्दयी और क्रूर अपराधियों को यदि दंड दिया जाता, तो वह न्याय के विरुद्ध नहीं होता। किंतु इसके बावजूद, जब विजय के अवसर पर वे आप ﷺ के सामने असहाय खड़े थे, तो आपने उन्हें क़त्ल नहीं किया, बल्कि उनकी सारी क्रूरता और अत्याचारों को क्षमा करते हुए फ़रमाया —

"आज के दिन तुम पर कोई मलामत नहीं।"

यह क्षमाशीलता और करुणा का ऐसा उदाहरण है, जिसकी मिसाल विश्व इतिहास में दुर्लभ है।

इसी प्रकार, आयत में किसी बस्ती के नष्ट किए जाने का उल्लेख है, वह मुहम्मद ﷺ की बस्ती के विषय में नहीं है। आयत स्पष्ट रूप से कहती है —

"और कितनी ही बस्तियाँ ऐसी थीं जो उस बस्ती से, जिसने तुम्हें निकाला, शक्ति में कहीं अधिक थीं। हमने उन्हें नष्ट कर दिया और उनका कोई सहायक न था।"

वास्तव में यहाँ तुलना की जा रही है — उन शक्तिशाली समुदायों से, जो मक्का वालों से भी अधिक सामर्थ्यवान थीं, किंतु फिर भी अपने अत्याचारों और अन्याय के कारण विनष्ट कर दी गईं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पंडित न केवल आयतों को अधूरा प्रस्तुत करता है, बल्कि क़ुरआन की भाषा और संदर्भ को समझने में भी असफल है।

स्वर्ग की नेमतें

स्वर्ग की नेमतें इस संसार की नेमतों से इस बात में कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं कि वहाँ का पानी और दूध कभी खराब नहीं होते। जैसा कि आयत में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि वहाँ ऐसे पानी की नहरें होंगी जो कभी दूषित नहीं होंगी, और ऐसे दूध की नहरें

होंगी जिनका स्वाद कभी नहीं खराब होंगी। वहाँ की हर वस्तु पूर्णतः शुद्ध और हानिरहित होगी। स्वर्ग की शराब में आनंद तो होगा, लेकिन उसमें न तो विनाश होगा, न बेहोशी और न ही खुमारी। वह स्वास्थ्य के लिए किसी भी प्रकार से हानिकारक नहीं होगी, बल्कि शांति और सुख का कारण बनेगी।

यही कारण है कि स्वर्ग की नेमतें इस संसार की सीमित और नश्वर नेमतों से सर्वथा भिन्न और श्रेष्ठ हैं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह वाक़िया

143. जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर। और उड़ाये जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर। बस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े-टुकड़े। बस साहब दाहनी ओर वाले क्या हैं साहब दाहनी ओर के। और बाईं ओर वाले क्या हैं बाईं ओर के। ऊपर पलङ्ग सोने के तारों से बुने हुए हैं। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने-सामने। और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले। साथ आबखोरों के और आफताबों के और प्यालों के शराब साफ से। नहीं माथा दुखाये जावेंगे उस से और न विरुद्ध बोलेंगे। और मेवे उस किस्म से कि पसन्द करें। और गोश्त जानवर पक्षियों के उस किस्म से कि पसन्द करें। और वास्ते उन के औरतें हैं अच्छी आंखों वाली। मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की। और बिछौने बड़े। निश्चय हम ने उत्पन्न किया है औरतों को एक प्रकार का उत्पन्न करना है। बस किया है हम ने उन को कुमारी। सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां। बस भरने वाले हो उस से पेटों को। बस कसम खाता हूँ मैं साथ गिरने तारों के। 56: 4, 6, 8, 9, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 34, 35, 36, 37, 53, 75 क़ुरआन.

समीक्षक:- अब देखिये कुरान बनाने वाले की लीला को! भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है उस समय भी हिलती रहेगी। इस से यह सिद्ध होता है कि कुरान बनाने वाला पृथिवी को स्थिर जानता था! भला पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा? यदि भुनगे हो जावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उन का दूसरा जन्म क्यों नहीं? वाह जी! जो खुदा शरीरधारी न होता तो उस के दाहिनी ओर और बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते? जब वहाँ पलङ्ग सोने के तारों से बुने हुए हैं तो बढ़ई सुनार भी वहाँ रहते होंगे और खटमल काटते होंगे जो उन को रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे। क्या वे तकिये लगाकर निकम्मे बहिश्त में बैठे ही रहते हैं वा कुछ काम किया करते हैं? यदि बैठे ही रहते होंगे तो उन को अन्न पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मेहनत मज़दूरी यहां करते हैं वैसे ही वहाँ परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर यहां से वहाँ बहिश्त में विशेष क्या है? कुछ भी नहीं। यदि वहाँ लड़के सदा रहते हैं तो उन के माँ बाप भी रहते होंगे और सासू श्वसुर भी रहते होंगे तब तो बड़ा भारी शहर बसता होगा फिर मल मूत्रादि के बढ़ने से रोग भी बहुत से होते होंगे क्योंकि जब मेवे खावेंगे, गिलासों में पानी पीवेंगे और प्यालों से मद्य पीवेंगे न उन का सिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे तो अनेक प्रकार के दुःख, पक्षी, जानवर वहाँ होंगे, हत्या होगी और हाड़ जहाँ तहां बिखरे रहेंगे और कसाइयों की दुकानें भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा कि वह अरब देश से भी बढ़ कर दीखती है!!! और जो मद्य मांस पी खा के उन्मत्त होते हैं इसी लिये अच्छी-अच्छी स्त्रियां और लौंडे भी वहाँ अवश्य रहने चाहिये नहीं तो ऐसे नशेबाजों के शिर में गरमी चढ़ के प्रमत्त हो जावें। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषों के बैठने सोने के

लिये बिछौने बड़े-बड़े चाहिये। जब खुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लड़कों को भी उत्पन्न करता है। भला! कुमारियों का तो विवाह जो यहां से उम्मीदवार हो कर गये हैं उन के साथ खुदा ने लिखा पर उन सदा रहने वाले लड़कों का भी किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मीदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये जावेंगे? इस की व्यवस्था कुछ भी न लिखी। यह खुदा में बड़ी भूल क्यों हुई? यदि बराबर अवस्था वाली सुहागिन स्त्रियाँ पतियों को पा के बहिश्त में रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु दूना ढाई गुना चाहिये, यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा है। और नरक वाले सिंहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खा के पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोज़ख में होंगे तो कांटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पीयेंगे इत्यादि दुःख दोज़ख में पावेंगे। कसम का खाना प्रायः झूठों का काम है; सच्चों का नहीं। यदि खुदा ही कसम खाता है तो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता।

उत्तर:

धरती का काँपना और चौदहवीं सदी के ऋषि की अज्ञानता

पंडित ने तो अज्ञानता की चरम सीमा को भी पार कर दिया है। वे क़ुरआन की आयत “इज़ा रुज्जतिल-अर्दु रज्जन्” को पृथ्वी के घूमने के विरुद्ध समझते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि 'रुज्जत' और 'रज्जन्' — का अर्थ स्वयं उद्धृत भी किया है, जो भूकंप से पृथ्वी का काँपना, हिलना या अस्त-व्यस्त होना है।

वास्तव में आयत प्रलय के समय आने वाले भयंकर भूकंप का वर्णन कर रही है, जब धरती के चारों ओर तबाही का मंजर होगा। यह आयत किसी वर्तमान या भूतकालीन घटना की नहीं, बल्कि भविष्य में घटित होने वाली प्रलय की अवस्था का उल्लेख करती है (इस बात का उल्लेख हम अपने पूर्व उत्तर में भी कर चुके हैं — देखों 118 और 122)।

पंडित ने शायद पवित्र क़ुरआन के अवतरण करने वाले (ईश्वर) को भी वेद के प्राइमरी फेल छात्र की तरह समझ लिया, जो बहुत सफाई से गाता है —

द्यावापृथिवी इति। पर्वतासः। अनु। व्रताय। निमिताऽइव। तस्थुः॥

अर्थात — यह सम्पूर्ण द्युलोक व पृथ्वीलोक तथा पर्वत भी आपके निर्देश से अपने-अपने स्थान हैं...। (ऋग्वेद 3.30.4 — पंडित हरिशरण सिद्धान्तालंकार)

यदि पंडित दयानन्द के अनुसार धरती का काँपना और हिलना पृथ्वी के घूमने के विरुद्ध है, तो यही भाव वेदों के मंत्र में भी स्पष्ट रूप से मौजूद है। देखों — ऋग्वेद (4.17.2) जयदेव शर्मा

तव। त्विषः। जनिमन्। रेजत। द्यौः। रेजत्। भूमिः। भियसा। स्वस्य। मन्योः। ऋघायन्त। सुऽभ्वः। पर्वतासः। आर्दन्। धन्वानि। सरयन्ते। आपः ॥

उक्त मंत्र में कहा गया है कि इन्द्र के प्रताप या चमक से द्युलोक और क्रोध के भय से पृथ्वी काँप उठती है।

लो जी! वेद का दाता प्राइमरी फेल निकला।

टिप्पणी: इस मंत्र में प्रयुक्त 'रेजत' वही शब्द है जिसका भाव अरबी शब्द 'रुज्जत' (काँपना, हिलना) के समान है।

पहाड़ों का उड़ना

(पूर्व में भी इस प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है, क्रमांक 122 देखों) जहाँ तक पहाड़ों के उड़ने का प्रश्न है, तो इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि वे उसी प्रकार उड़ेंगे जैसे धूल उड़ती है। स्वयं आयत में यह बात साफ तौर पर कही गई है, किंतु पंडित ने लोगों को भ्रमित करने के उद्देश्य से उसे जानबूझकर छोड़ दिया।

क़ुरआन कहता है —

"और पहाड़ों को पीसकर चुरा-चुरा कर दिया जाएगा।" (56:5)

यही बात अगली आयत (56:6) में और अधिक स्पष्ट की गई है, जहाँ कहा गया है कि वे इतने बारीक हो जाएँगे कि हवा उन्हें उड़ा ले जाएँगे।

अतः यह कहना कि पहाड़ों को पक्षियों-कीड़ों की भाँति उड़ाया जाएगा, पंडित का यह झूठ है। वास्तव में, उनका उड़ना कण-कण में बिखर जाने के अर्थ में है, न कि सजीव प्राणियों की तरह पंखों से उड़ने के अर्थ में।

दाएँ-बाएँ हाथ वाले और स्वर्ग की अतुलिय सुख-साम्रगी

ईश्वर के दाएँ और बाएँ पर खड़े होने का कोई उल्लेख पवित्र क़ुरआन में नहीं है; यह पंडित का एक और निराधार आरोप है। संबंधित आयत में दाएँ और बाएँ शब्द मनुष्य के संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं, न कि ईश्वर के संदर्भ में। इसी प्रकार, आयत में दाएँ और बाएँ हाथ से अभिप्राय नेक और बुरें लोगों से है।

स्वर्गिक नेमतों के विषय में पंडित जी की भ्रांति बनी हुई है। उन्होंने स्वर्ग की अनुपम नेमतों की तुलना सांसारिक सुख-सामग्री से कर डाली है, और उन्हें बनाने के लिए सुनार, बढ़ई आदि की आवश्यकता होने का भ्रम पाले हुए हैं।

स्वर्ग से संबंधित विषय पर उत्तर पहले भी कई बार दिया जा चुका है, अतः बार-बार इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

स्वर्ग में स्त्रियों का समान आयु का होना

आयत कहती है — "प्रेम या इश्क़ दर्शाने वाली, और आयु में समान।" स्वर्ग में स्त्रियों का पुरुषों के समान आयु का होना कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। आयु का अंतर — चाहे वह अधिक हो, कम हो या समान — केवल इस सांसारिक जीवन का नियम है, न कि परलोक या स्वर्ग का।

नरक में दंड और कष्टों का वर्णन

जिस प्रकार स्वर्ग की नेमतों की प्रकृति और गुणवत्ता इस संसार की नेमतों से सर्वथा भिन्न है, उसी प्रकार नरक का दंड या उसकी तीव्रता भी इस संसार के दुःखों से पृथक एवं असीम कठोर है।

कसम से अभिप्राय

पंडित दयानन्द की यह लँगड़ी दलील भी अत्यंत खोखली और तर्कहीन है। अब चूँकि आर्य समाजी लोग झूठी कसमें खाते हैं, अथवा जिस प्रकार स्वयं दयानन्द ने ईश्वर का नाम लेकर बार-बार असत्य कथन कहे हैं, तो क्या इससे यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि हर क़सम खाने वाला व्यक्ति अनिवार्यतः झूठा ही होता है — चाहे वह स्वयं ईश्वर ही क्यों न हो?

वैसे पूर्व (क्रमांक 102 देखों) में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि क़सम का वास्तविक अर्थ यहाँ गवाही और साक्ष्य से है।

पंडित द्वारा प्रस्तुत आपत्ति में असंगत प्रश्नों और निराधार आरोप तथा झूठ

पंडित द्वारा प्रस्तुत आपत्ति में असंगत प्रश्नों और निराधार आरोपों की भरमार कर दी गई है। इनमें से अधिकांश बिंदुओं पर ध्यान दीजिए कि किस प्रकार एक ही आपत्ति में अनेक ऐसे दावे गढ़े गए हैं, जिनका पवित्र क़ुरआन से दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं है —

1. क़ुरआन का रचयिता पृथ्वी को स्थिर मानता था, जबकि क़ुरआन में गतिशील खगोलीय पिंडों का स्पष्ट उल्लेख वर्णन है।
2. ईश्वर को शरीरधारी बताने का निराधार आरोप।
3. पर्वतों को पक्षियों की तरह उड़ाए जाने का असंगत दावा।
4. पर्वतों के पुनर्जन्म में कीड़े-मकोड़े बनने जैसी काल्पनिक बात।
5. यह झूठ कि ईश्वर के दाएँ-बाएँ लोग खड़े होंगे।
6. स्वर्ग में बढ़ई और सुनार की उपस्थिति का पूर्णतः मनगढ़ंत दावा।
7. स्वर्गवासियों को खटमल काटने जैसी हास्यास्पद कल्पना।
8. स्वर्गवासियों को निष्क्रिय और निकम्मा बैठे हुए बताने का आरोप।
9. भोजन से अपच होने का निराधार दावा।
10. स्वर्ग में लड़कों के माता-पिता और ससुराल वालों के होने की कल्पना।
11. स्वर्गवासियों के रोगी होकर मृत्यु को प्राप्त होने का भ्रम।
12. स्वर्ग में जानवरों की क़ुर्बानी का झूठा आरोप।
13. मांस और शराब के सेवन से मदहोश होने का निराधार दावा।
14. स्वर्ग में कसाइयों की दुकानों के होने की बात।
15. कुंवारे पुरुषों के लिए ईश्वर द्वारा किसी भी प्रकार की व्यवस्था न होने का असंगत कथन।
16. स्वर्ग में नशेबाज़ों को गर्मी चढ़ने जैसी निरर्थक बातें।
17. कुंवारी स्त्रियों के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था न होने जैसी आधारहीन टिप्पणी।
18. ईश्वर के भूल जाने जैसा अत्यंत आपत्तिजनक और अर्थहीन आरोप।

यह स्पष्ट रूप से ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त में से कोई भी बिंदु न तो पवित्र क़ुरआन में वर्णित है और न ही उसकी प्रामाणिक व्याख्याओं में पाया जाता है। ये सभी दावे तो पंडित द्वारा स्वयं गढ़े गए हैं अथवा जानबूझकर लोगों को भ्रमित करने के लिए गढ़ा गया झूठ हैं।

एक ही आपत्ति में इतने अधिक अप्रासंगिक और असत्य को प्रस्तुत करने का उद्देश्य केवल पवित्र क़ुरआन के प्रति लोगों के मन में भ्रम और शंका का उत्पन्न करना है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह सफ़्फ़

144. निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के। 61: 4 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह ठीक है। ऐसी-ऐसी बातों का उपदेश करके विचारे अर्ब देशवासियों को सब से लड़ा के शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मज़हब का झण्डा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसे की कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते। जो मनुष्य जाति में विरोध बढ़ावे वही सब को दुःखदाता होता है।

उत्तर:

इस्लामी सिद्धांत का उद्देश्य शांति की स्थापना है, और आर्यों का उद्देश्य उपद्रव और अशांति फैलाना है

इस्लाम में युद्ध का आधार केवल उन्हीं लोगों से संघर्ष करना है जो आक्रमणकारी हों, जिन्होंने युद्ध छेड़ा हो, या फिर उन अत्याचारग्रस्त और सताए हुए लोगों को उनके उत्पीड़कों से मुक्त कराने के लिए संघर्ष करना आवश्यक हो। ऐसे ही संघर्ष को "जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह" (ईश्वर का मार्ग में संघर्ष) कहा जाता है। इस विषय पर पूर्व में भी विस्तार से चर्चा की जा चुकी है (क्रमांक 32 देखों)।

इस्लाम का यह सिद्धांत विश्व में फ़साद को समाप्त कर शांति और न्याय को स्थापित करना हैं। इसके विपरीत, जो लोग इन सिद्धांतों के शत्रु हैं, वे निश्चित रूप से फ़सादी (उपद्रवी) हैं (क्रमांक 37 देखों)। ऐसा कोई ईश्वर, धर्म या विचारधारा; जो न्याय, शांति और उत्पीड़कों की रक्षा के विरुद्ध हो, उसे कोई भी समझदार और विवेकशील व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह तहरीम

145. ऐ नबी क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है खुदा ने तेरे लिये, चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनी की, और अल्लाह क्षमा करने वाला दयालु है। जल्दी है मालिक उस का जो वह तुम को छोड़ दे तो यह है कि उस को तुम से अच्छी मुसलमान और ईमान वालियां बीबियां बदल दे सेवा करने वालियां तोबाः करने वालियां भक्ति करने वालियां रोज़ा रखने वालियां पुरुष देखी हुई और बिन देखी हुई। 66: 1, 5 क़ुरआन.

समीक्षक:- ध्यान देकर देखना चाहिये कि खुदा क्या हुआ मुहम्मद साहेब के घर का भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करने वाला भृत्य ठहरा!! प्रथम आयत पर दो कहानियां हैं एक तो यह कि मुहम्मद साहेब को शहद का शर्बत प्रिय था। उन की कई बीबियां थीं उन में से एक के घर पीने में देर लगी तो दूसरियों को असह्य प्रतीत हुआ उन के कहने सुनने के पीछे मुहम्मद साहेब सौगन्ध खा गये कि हम न पीवेंगे। दूसरी यह कि उनकी कई बीबियों में से एक की बारी थी। उसके यहां रात्री को गये तो वह न थी; अपने बाप के यहां गई थी। मुहम्मद साहेब ने एक लौंडी अर्थात् दासी को बुला कर पवित्र किया। जब बीबी को इस की खबर मिली तो अप्रसन्न हो गई। तब मुहम्मद साहेब ने सौगन्ध खाई कि मैं ऐसा न करूँगा। और बीबी से भी कह दिया तुम किसी से यह बात मत कहना। बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूँगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबी से जा कहा। इस पर यह आयत खुदा ने उतारी जिस वस्तु को हम ने तेरे पर हलाल किया उस को तू हराम क्यों करता है?' बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला कहीं खुदा भी किसी के घर का निमटेरा करता फिरता है? और मुहम्मद साहेब के तो आचरण इन बातों से प्रकट

ही हैं क्योंकि जो अनेक स्त्रियों को रक्खे वह ईश्वर का भक्त वा पैग़म्बर कैसे हो सके? और जो एक स्त्री का पक्षपात से अपमान करे और दूसरी का मान्य करे वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं और जो बहुत सी स्त्रियों से भी सन्तुष्ट न होकर बाँदियों के साथ फंसे उस की लज्जा, भय और धर्म कहां से रहे? किसी ने कहा है कि-

'कामातुराणां न भयं न लज्जा'।

जो कामी मनुष्य हैं उन को अधर्म से भय वा लज्जा नहीं होती। और इन का खुदा भी मुहम्मद साहेब की स्त्रियों और पैग़म्बर के झगड़े का फैसला करने में जानो सरपंच बना है। अब बुद्धिमान् लोग विचार लें कि यह कुरान विद्वान् वा ईश्वरकृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धु का बनाया? स्पष्ट विदित हो जाएगा और दूसरी आयत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहेब से उन की कोई बीबी अप्रसन्न हो गई होगी, उस पर खुदा ने यह आयत उतार कर उस को धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहेब तुझे छोड़ देंगे तो उन को उन का खुदा तुझ से अच्छी बीबियां देगा कि जो पुरुष से न मिली हों। जिस मनुष्य को तनिक सी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि ये खुदा वुदा के काम हैं वा अपना प्रयोजन सिद्धि के! ऐसी-ऐसी बातों से ठीक सिद्ध है कि खुदा कोई नहीं कहता था केवल देशकाल देखकर अपने प्रयोजन सिद्ध होने के लिए खुदा की तर्फ़ से मुहम्मद साहेब कह देते थे। जो लोग खुदा ही की तर्फ लगाते हैं उन को हम सब क्या, सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि खुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेब के लिये बीबियां लाने वाला नाई ठहरा!!!

उत्तर:

नबी का आचरण समस्त मानवता के लिए आदर्श

पैग़म्बरों की विश्व सूची में केवल पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ ही ऐसे नबी हैं, जिन्हें वास्तविक अर्थों में ऐतिहासिक नबी कहा जा सकता है। उनके जीवन के प्रत्येक विवरण — चाहे वह सार्वजनिक हो या निजी — उनके साथियों (सहाबा) और अनुयायियों ने अत्यंत सावधानी से सुरक्षित रखने का प्रयास किया। इसका एक प्रमुख कारण उनका स्वयं का यह निर्देश था — "जो कुछ तुम मुझे करते देखो, उसे (अन्य) लोगों तक पहुँचाओ।" इस आदेश के पीछे एक गहन शैक्षणिक सत्य निहित है — मनुष्य के लिए केवल लिखित या सैद्धांतिक शिक्षा ही पर्याप्त नहीं होते। यह देखना भी अनिवार्य होता है कि क्या उन सिद्धांतों को व्यवहार में उतारना संभव है? और यदि हाँ, तो उन्हें जीवन में किस प्रकार आकार दिया जा सकता है? एक नबी या रसूल की महत्वपूर्ण भूमिका यही होती है कि वह ईश्वरीय शिक्षाओं को अपने आचरण में इस प्रकार प्रकट करे कि वह समस्त मानवता के लिए एक जीवंत, व्यावहारिक आदर्श बन जाए।

पैग़म्बर ﷺ के इसी व्यावहारिक आदर्श को उनके साथियों और अनुयायियों ने अपनी स्मृतियों और लेखन के माध्यम से संजोया। जिस प्रकार उनके सार्वजनिक जीवन, नेतृत्व और शिक्षाओं के सैकड़ों विश्वसनीय रावियों व इतिहासकारों ने वर्णन किया है, उसी प्रकार उनके पारिवारिक एवं गृहस्थ जीवन का सजीव चित्रण भी उनकी पत्नियों ने किया। एक पूर्ण धर्म केवल सार्वजनिक जीवन तक सीमित नहीं रहता; वह उसके घर की चारदीवारी के भीतर का भी मार्गदर्शन करता है। पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ का संपूर्ण जीवनचरित्र इसी पूर्णता का प्रतीक है।

इसके विपरीत, वैदिक ऋषियों के बारे में हमें केवल इतना ज्ञात है कि उनके अनेक पत्नियाँ थी, परंतु उनके घरेलू जीवन में

पत्नियों के साथ उनका व्यवहार कैसा था — जो धर्म का एक आवश्यक अंग है — यह संसार में किसी को ज्ञात नहीं। धर्म और संसार के बीच ऐसा संतुलित और व्यावहारिक ढाँचा, इतनी विस्तृत और प्रमाणिक जानकारी के साथ, पैग़म्बर ﷺ के अतीरिक्त कहीं और नहीं मिलता।

इस्लाम ने मानव को संसार से प्रेम करने से नहीं रोका, किंतु साथ ही यह त्याग की एक अनुपम शिक्षा भी देता है। यह त्याग ईश्वर और धर्म के मार्ग में हर प्रिय वस्तु को छोड़ देने का सामर्थ्य प्रदान करती है। विवेच्य आयतों के संदर्भ में, पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ का प्रेम दो आयामी था। एक ओर आप ईश्वरीय शिक्षा के अनुसार उसकी सृष्टि से प्रेम करते थे, जिसमें आपकी पत्नियाँ भी शामिल थीं। और दूसरी ओर ईश्वर के प्रति आपका अत्यंत गहरा लगाव और अनुराग था। इन दोनों प्रेमों के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत कठिन कार्य है। यही कारण है कि इस संतुलित मार्ग के समक्ष केवल सन्यास, ब्रह्मचर्य या एकांतवाद (रहबानीयत) जैसी साधनाओं की कोई विशेष वास्तविकता शेष नहीं रह जाती। पत्नी और बच्चों से सदा के लिए विरक्त हो जाना अपेक्षाकृत सरल हो सकता है, किंतु उनके साथ रहते हुए भी रात का एक बड़ा भाग ईश्वर की इबादत में व्यतीत करना, और दिन के निश्चित समय पर सभी सांसारिक व्यस्तताओं से विरक्त होकर पूर्णतः ईश्वर के समक्ष उपस्थित होना — एक कठिनतम चुनौती है। अतः पंडित दयानन्द का यह कथन कि "किसी के घरेलू जीवन के संदर्भ में निर्देश देना मानो उसके घर के आंतरिक प्रबंधक का कार्य है, ईश्वर का नहीं," — पूर्ण धर्म की परिभाषा से अनभिज्ञता दर्शाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि एक व्यक्ति के कई व्यकित्व हो सकते हैं — परिवार के साथ, कार्यस्थल पर, मित्रों के बीच या विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में उसका व्यवहार भिन्न हो सकता है। एक पूर्ण व्यक्ति वही है जो इन सभी परिस्थितियों में नैतिकता और शालीनता के मानदंडों पर दृढ़ रहता है। इसी प्रकार, एक पूर्ण धर्म केवल बाहरी जीवन या कुछ नैतिक उपदेशों तक सीमित नहीं होता; बल्कि वह घर की निजी चारदीवारी के भीतर के जीवन पर भी प्रकाश डालता है और मार्गदर्शन करता है। इसलिए पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ को आदेश दिया गया "और अपने घरवालों को नमाज़ का आदेश देते रहो और तुम भी उस पर दृढ़ से टिके रहो।" (सूरह ताहा, 20:132) नमाज़, जो ईश्वरीय आदेशों की स्वीकृति और पालन का प्रतीक है, पुरुष और स्त्री दोनों पर अनिवार्य है। पैग़म्बर ﷺ की पत्नियाँ भी इस नियम से अपवाद नहीं थीं; केवल नबी की पत्नी होने के कारण वे जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकती थीं।

पंडित को जिस वास्तविक ठोकर का सामना करना पड़ा, वह रिवायतों की गलत समझ पर है। मुसलमानों का यह कभी दावा नहीं रहा है कि क़ुरआन की व्याख्या (तफ़सीर) में उद्धृत प्रत्येक रिवायत पूर्णतः सही है (यह दृष्टिकोण तो स्वयं पंडित दयानन्द अपने धार्मिक ग्रंथों के प्रति नहीं रखते)। और पंडित ने स्वयं चौदहवे समुल्लास के आरंभ में यह स्पष्ट किया था कि उनकी टिका केवल पवित्र क़ुरआन के आधार पर होगी, क्योंकि वही सभी मुसलमानों के लिए सर्वमान्य है। किंतु अब उन्होंने अपनी आलोचना का आधार (जिनसे वे स्वयं पूर्णतः परिचित नहीं) हदीस की रिवायतों को बना लिया है। इससे यह आभास होता है कि वे पवित्र क़ुरआन पर सीधे आपत्ति नहीं उठा सकते थे, अतः उसके नाम का उपयोग करके हदीस पर प्रहार किया। इस प्रकार उनका स्वयं का कथन भंग होता है।

उपरोक्त भूमिका के बाद, अब पंडित के मूल प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं।

शहद से संबंधित घटना और उससे मिलने वाला एक अद्‌भुत शिक्षा

शहद से संबंधित घटना एक अद्‌भुत शिक्षाप्रद उदाहरण प्रस्तुत करती है, और यही सबसे प्रमाणिक विवरण है। घटना इस प्रकार है कि पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ की पत्नी को आपके पवित्र मुख से आने वाली शहद की सुगंध अप्रिय लगी। ध्यान रहे, कुछ प्रकार के शहद में तीक्ष्ण गंध होती है, और कई बार व्यक्तिगत रुचि या संवेदनशीलता के कारण कोई सुगंध किसी को नापसंद हो सकती है, खासकर सूक्ष्म अनुभूति रखने वाली स्त्रियों को। उन्होंने यह नापसंदगी पैग़म्बर ﷺ के समक्ष व्यक्त कर दी। पैग़म्बर ﷺ ने अपनी पत्नी की भावनाओं और अनुभूति का आदर करते हुए, उन्हें प्रसन्न रखने के नेक उद्देश्य से, यह संकल्प ले लिया कि अब वे शहद का सेवन नहीं करेंगे। सामान्य दृष्टि से देखें तो यह एक पति का अपनी पत्नी के प्रति स्नेह और सम्मान से उपजा हुआ सराहनीय व्यवहार था। किंतु, पैग़म्बर ﷺ की भूमिका केवल एक पति तक सीमित नहीं थी। वे ईश्वर के अंतिम पैग़म्बर थे और उनका प्रत्येक कार्य एवं निर्णय पूरी मानवजाति के लिए एक आदर्श (उस्वतुन हसनह) बन जाता। इसलिए, व्यक्तिगत पसंद-नापसंद या प्रियजनों को खुश करने के लिए ऐसा कोई कदम उचित नहीं था, जिससे यह आभास हो कि ईश्वर द्वारा प्रदत्त हलाल (वैध) वस्तुओं को भी हराम (अवैध) ठहराया जा सकता है। ऐसा करना एक ग़लत उदहारण स्थापित कर सकता था। जैसा कि यहूदियों के एक समुदाय का उदाहरण प्रासंगिक है, जिन्होंने पैग़म्बर याक़ूब (अ.) की किसी व्यक्तिगत कारण को आधार बनाकर ऊँट के मांस को ही पूर्णतः हराम घोषित कर दिया था। यदि पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ का यह संकल्प बना रहता, तो संभावना थी कि भावी मुसलमान भी शहद को ही त्याग देते। इस संभावित भ्रम को रोकने के लिए ईश्वर ने तुरंत मार्गदर्शन प्रदान किया और पैग़म्बर ﷺ को अपना यह संकल्प तोड़ने का निर्देश दिया।

गृहस्त जीवन में पति-पत्नी के कर्तव्य

पवित्र क़ुरआन में इस बात को स्पष्ट नहीं किया गया है कि वह कौन-सी बात थी, जो पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ ने अपनी एक पत्नी को गुप्त रूप से बताई थी और उन्हें यह सख़्त निर्देश दिया था कि वह इसे अन्य पत्नियों से साझा न करें। हालाँकि, कुछ विद्वानों ने सबसे प्रमाणिक हदीसों के आधार पर इसका विवरण देने का प्रयास किया है और इन आयतों के अवतरण का कारण बताया है। उनके अनुसार, यह रहस्य यह था कि पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ ने कहा था कि "मैं भविष्य में शहद नहीं पियूँगा, और तुम किसी अन्य (पत्नी) को यह मत बताना कि मैं ने शहद न पीने का निश्चय किया है।" परंतु यह स्पष्ट है कि क़ुरआन की आयत में स्वयं उस रहस्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। चूँकि यह एक रहस्य थी, इसलिए यह आयत अवतरित होने के बाद उम्महतुल मोमिनीन (र.) ने इसे कभी प्रकट नहीं किया।

इस आयत का वास्तविक उद्देश्य और मानवजाति के लिए इससे प्राप्त शिक्षा यह है कि गृहस्थ जीवन में जब पति अपनी पत्नी या पत्नी अपने पति को कोई गोपनीय बात बताए, तो पति-पत्नी का कर्तव्य है कि वह उस विश्वास को भंग न करे और उस रहस्य को किसी अन्य के सामने प्रकट न करे। यह पारिवारिक विश्वास एवं आपसी भरोसे की महत्ता को दर्शाता है जो गृहस्त जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है और संबंधों में गोपनीयता के महत्व की शिक्षा देता है।

सन्यासी द्वारा की गई असम्मानजनक टिप्पणियाँ और मुहम्मद ﷺ की पत्नियों का पवित्र एवं आदर्श चरित्र

पंडित दयानन्द द्वारा हज़रत मुहम्मद ﷺ के बारे में की गई असम्मानजनक टिप्पिनयाँ — जैसे कि "बहुत-सी-स्त्री वाला

पैग़म्बर नहीं हो सकता" — पूरी तरह से न केवल निंदनीय और निरर्थक है, बल्कि तर्कहीन भी है। पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ की पत्नियाँ समस्त मुसलमानों की आध्यात्मिक माताएँ थीं, और उनका प्रमुख कर्तव्य था कि वे गृहस्थ जीवन के आदर्शों से मुसलमानों को अवगत कराएँ। इन पत्नियों का चरित्र ईमान, आज्ञाकारिता, पवित्रता और निरंतर आत्म-सुधार का आदर्श था। वे सभी ईश्वरभक्त, सत्यनिष्ठ तथा धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करने वाली थीं। स्पष्ट है कि ऐसी पवित्र नारियों के चरित्र पर उनके पति — यानी पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ — के आदर्शों का ही प्रभाव था। और यदि पत्नियाँ इतनी उच्चकोटि की ईश्वरभक्त थीं, तो स्वयं पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ की आध्यात्मिक उत्कृष्टता का स्तर कितना ऊँचा रहा होगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

यदि एक पत्नी वाला ऋषि हो सकता है तो बहुत-सी पत्नियों वाला पैग़म्बर क्यों नहीं

पंडित का यह तर्क कि "बहुत-सी-पत्नियों वाला व्यक्ति पैग़म्बर नहीं हो सकता" अपने-आप में दोषपूर्ण है। क्योंकि, यदि बहुपत्नित्व को आध्यात्मिकता के मार्ग में बाधक माना जाए, तो यह आक्षेप तो एक पत्नी वाले व्यक्ति के विरुद्ध भी उसी तर्क से लगाया जा सकता है। हम जानते है कि वैदिक ऋषि-मुनि भी विवाहित थे, और यह धारणा कि वैदिक परंपरा में ऋषि-मुनि, और वैदिक काल में लोगों कि केवल एकपत्नीक होती थी, ऐतिहासिक रूप से सटीक नहीं है। आर्ष ग्रंथों ही में अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं, जैसे —

बृहदारण्यक उपनिषद (2.4.1 एवं 4.5.1) में ऋषि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियों — मैत्रेयी और कात्यायनी — का स्पष्ट उल्लेख है।

शतपथ ब्राह्मण (9.4.1.6) में "पुरुष के अनेक पत्नियाँ होती हैं" जैसा कथन मिलता है।

ऐतरेय ब्राह्मण (7.3) में राजा हरिश्चंद्र की सौ पत्नियों का स्पष्ट वर्णन है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में भी बहुपत्नित्व एक स्वीकृत परंपरा थी। पैग़म्बर मुहम्मद ﷺ का सम्पूर्ण जीवन ईश्वर की गहन उपासना एवं सेवा में समर्पित था। वे रात का बड़ा भाग ईश्वर की उपासना (इबादत) में व्यतीत करते थे — इतना कि खड़े-खड़े उनके पवित्र पैरों में सूजन आ जाती थी। पंडित दयानन्द की दृष्टि में केवल दो समय की संध्या करने वाला व्यक्ति तो ईश्वरभक्त हो सकता है, लेकिन जो व्यक्ति दिन में पाँच बार नियमित प्रार्थना करता है, आधी रात को जागकर ईश्वर-स्मरण में लीन रहता है, वह व्यक्ति ईश्वरभक्त नहीं हो सकता। यह विचार केवल द्वेष से ग्रसित आर्यों के खोपड़ी ही में आ सकती है।

वेदों में एक से अधिक पत्नियों का संकेत मिलता है, साथ ही एक स्त्री के कई पति का वर्णन किया गया है

वेदों में न केवल एक से अधिक पत्नी का वर्णन मिलता है — जिसका आर्यों ने स्वयं भाष्य किया है — बल्कि एक स्त्री के कई कथित पति का भी प्रचलन था। शायद ये लोग पंडित जी के विचार में अत्यधिक धार्मिक और ईश्वरभक्त लोग हैं।

देखों, एक से अधिक पत्नी और पति का प्रमाण —

ऋग्वेद (1.62.11) "चाहती हुई पत्नियाँ, चाहते हुए पति को जैसे आलिंगन करती हैं, उसी प्रकार हे सब बलों के स्वामिन् प्रभो! बुद्धि की परिपूर्णता वाले पुरुष आपका स्पर्श करते हैं।" पंडित हरिशरण सिद्धान्तालंकार

इस मंत्र में एक से अधिक पत्नियों की भूमिका का संकेत मिलता है।

अथर्ववेद (14.2.18) "हे पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्री तू इस गृहाश्रम में पशुओं के कल्याण करने हारि अच्छे प्रकार धर्म-नियम में चलने रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त उत्तम पुत्र पौत्रादि से सहित शूरवीर पुत्रो को जनने देवर की कामना करने वाली और सुख देने हारि पति व देवर को प्राप्त हो के इस गृहस्थ सम्बन्धी अग्निहोत्री को सेवन किया कर। (स.प. चतुर्थसमुल्लास, पृ.99) दयानन्द सरस्वती

इस मंत्र में यह भी उल्लेख है कि स्त्री अपने पति के छोटे भाई (देवर) की कामना करती है, और निरुक्त में देवर शब्द का अर्थ दूसरा पति बताया गया है। यह भी स्पष्ट है कि पति का छोटा भाई (देवर) एक ही हो ज़रूरी नहीं। हो सकता है कि एक व्यक्ति के कई छोटे भाई हो वह सब बड़े भाई की पत्नी के देवर अर्थात पति कहलाएँगे और वह पत्नी वेद के निर्देश के अनुसार सब देवरों को चाहने वाली होगी और इनसे सन्तान (पुत्र) इच्छुक होगी, तो न केवल सगे भाई इस सिद्धांत के अनुसार भाभी के साझेदार पति होते थे, बल्कि विभिन्न जातियों के कई पति भी एक स्त्री के हो सकते थे।

ईश्वर का घरेलू विषयों में हस्तक्षेप

अब संक्षेप में इन प्रश्नों का भी उत्तर सुनिए कि वैदिक ईश्वर जी लोगों के घर के मामलों में दखल देकर भृत्य और नाई ठहरा या नहीं।

आर्यों का ईश्वर वेद में कहता है —

"हे विवाहित स्त्री-पुरुषों! तुम दोनों किस स्थान में रात्रि को, और कहाँ दिन में, और कहाँ भोजनादि की अभिप्राप्ति करते हो? और कहाँ वास करते हो? तुम दोनों का शयनाश्रम कौन-सा है? जैसे विधवा और देवर (दूसरा पति) का नियोग (मिलाप/संभोग) हो जाने पर व्यवहार होता है, जैसे वर के प्रति वधु सहस्थान बनाती है, ऐसे विवाहित स्त्री-पुरुषों! तुम्हारा व्यवहार हो।" ऋग्वेद (10.40.2) पंडित ब्रह्ममुनि परिव्राजक

विवाहित जोड़े और देवर, भाभी के मिलन और आनंद की स्थिति का यह व्यक्तिगत विवरण पूछने या लेने के लिए दरबान महाशय को क्या आवश्यकता पड़ी है?

और सुनो —

"हे विधवा नारि! तू इस मृत को छोड़कर जीवित पति को प्राप्त हो, विवाह में जिसने तेरा हाथ पकड़ा था, उस पति की और अपनी सन्तान को उत्पन्न कर, तू इस प्रकार सुख सम्पन्न हो।" ऋग्वेद (10.18.8) पंडित ब्रह्ममुनि परिव्राजक

पंडित दयानन्द जी का वेदों का नाई जी।

और सुनो —

"हे वधु! गृहस्थ में पति को न सताने वाली, देवरों को न कष्टदेने वाली, मंगल करने वाली के लिए सुंदर नियमों वाली बड़े तेजवाली हो। श्रेष्ठ प्रजाओं रखने वाली, वीरों को उत्पन्न करने वाली, देवरों से प्रीति करने वाली, सुखयुक्त गृहस्थ सम्बन्धी इस अग्नि को सेवन कर।" अथर्ववेद (14.2.18) पंडित क्षेमकरण दास

यजुर्वेद (19.88) "हे मनुष्यो! जैसे रस ग्रहण किया जाता है, वह वाणी के समान स्त्री इस पति के सुंदर अवयवों से विभक्त

शिर के साथ शिर करे तथा मुख के समीप पवित्र मुख करे। इसी प्रकार गृहाश्रम के व्यवहार में व्याप्त स्त्री-पुरुष दोनों ही वर्त्तें तथा जो इस रोग से रक्षक वैद्य और बालक के समान वास करने का हेतु पुरुष उपस्थेन्द्रिय (पुरुष गुप्तांग) को बल से करनेहारा होता है, वह शांति करने के समान वर्त्तमान में सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे, उस सब को यथावत् करे।" दयानन्द सरस्वती

वेदों के ईश्वर जी के नए-नए रूप; कभी द्वारपाल, कभी नाई तो कभी कामशास्त्री...

●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●●

146. ऐ नबी झगड़ा कर काफ़िरों और गुप्त शत्रुओं से और सख़्ती कर ऊपर उन के। 66: 9 क़ुरआन.

समीक्षक:- देखिये मुसलमानों के खुदा की लीला! अन्य मत वालों से लड़ने के लिये पैग़म्बर और मुसलमानों को उचकाता है इसीलिये मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं। परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिस से ये लोग उपद्रव करना छोड़ के सब से मित्रता से वर्त्तें।

उत्तर:

नबी के काल में मुनाफिकों से युद्ध नहीं कि गई

जिहाद का अर्थ तो पूर्व (क्रमांक 73) में भी स्पष्ट किया जा चुका है। इस आयत में काफ़िरों और मुनाफिकों (गुप्त शत्रुओं) के विरुद्ध जिहाद करने का अर्थ उनसे युद्ध करना नहीं, बल्कि उनके मुकाबले दृढ़ता से खड़े रहना अर्थात उनके द्वारा फैलाई जाने वाली अराजकता के विरुद्ध संघर्ष करना है। यह तो एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ईश्वर के दूत हज़रत मुहम्मद ﷺ ने मुनाफिकों से कोई युद्ध नहीं किया। यदि आयत में जिहाद का अर्थ केवल युद्ध होता और यह आदेश आप ﷺ को दिया गया होता, तो आप ﷺ निश्चित रूप से उनसे युद्ध करते। आयत में उन पर सख़्ती करने का आशय भी यही है कि यदि वे अराजकता फैलाने का प्रयास करें, तो उनके विरुद्ध दृढ़ता से करवाई की जाए, ताकि उनके मंसूबे सफल न हो सकें और शांति बनी रहे।

इसके इलावा, यदि यह मान भी लिया जाए कि इस आयत में जिहाद से तात्पर्य युद्ध है, तो भी इसमें निंदनीय जैसा कुछ नहीं है। क्योंकि इस्लाम में युद्ध का आधार केवल आक्रमण का प्रतिरोध, अत्याचार से मुक्ति या उत्पीड़ितों की सहायता के लिए निर्धारित है, और यह उन्हीं से लड़ने की अनुमति देता है जो मुसलमानों से युद्ध करते हैं। पूरे पवित्र क़ुरआन में कहीं भी उन लोगों से लड़ने का आदेश नहीं दिया गया है, जो मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध नहीं करते।

वेदों में शत्रुओं के साथ युद्ध करने का आदेश

इसके अतीरिक्त, पंडित दयानन्द सरस्वती के मत में युद्ध को महिमामंडित किया गया है और शत्रुओं के विनाश तथा उनके धन पर अधिकार की प्रेरणा दी गई है। जैसे —

"हे स्वाभिमान वाले! अग्नि के समान तेजस्वी! हमारा सेनानायक हुआ, हे सहनशील आमंत्रित किया हुआ हमारी ओर हो, शत्रुओं को बाधित कर शत्रुओं को मार कर उनका धन बाँट दे। बल का प्रदर्शन करता हुआ शत्रुओं को विनष्ट कर।" ऋग्वेद (10.84.2) ब्रह्ममुनि परिव्राजक

"हे सेनानायक! तू बहुत शत्रुओं का भी अकेला अभिभव करनेवाला है प्रेरित किया हुआ, प्रत्येक सैनिक प्रजा को उत्साहित करता है, तू अच्छिन्न तेजवाला है। हम तुझे योक्ता-प्रेरक से प्रेरित हुए विजय के लिए तेजस्वी नाद को कड़ते हैं।" ऋग्वेद (10.84.4) ब्रह्ममुनि परिव्राजक

इन मंत्रों में सेनापति की प्रशंसा करके उसे और उसकी सेना को युद्ध के लिए उकसाया गया है, साथ ही शत्रुओं के धन पर कब्ज़ा करने की बात कही गई है। इससे पूर्व भी वैदिक संग्राम में बताया जा चुका है कि वेद के मंत्रों में शत्रु का अर्थ केवल वे नहीं है जो आर्यों के विरोधी हो, बल्कि इसका अर्थ उनसे भी हैं जिनके आर्य लोग विरोधी हों। देखिए यजुर्वेद (20:19) "जो हमारा द्वेष करें, और जिसका हम द्वेष करें, उनके लिए ये सब (औषधि/दवा या अन्न) सब शत्रुओं के समान हों।"

यजुर्वेद में पंडित ने स्वयं आर्यों को युद्ध की तैयारी, टोप और बंदूक बनाने तथा फौज तैयार करने के सैकड़ों मंत्रों का भाष्य कर रखा हैं। चुनाँचे लिखा है —

"हे तेजधारी सभा के स्वामी! आप राजधर्म के बीच उन्नति प्राप्त कीजिए। धर्मात्मा पुरुषों के लिए सुखों का विस्तार कीजिए। हे तीव्र दंड देने वाले राजपुरुष! धर्म के द्वेषी शत्रुओं को निरंतर जलाएं। हे सम्यक् तेजधारी जन! जो हमारे शत्रु को उत्साही करता है, उसको नीची दशा में करके सूखे काष्ठ के समान जलाएं।" यजुर्वेद (13.12), पंडित दयानन्द सरस्वती।

ऋग्वेद भाष्य-भूमिका पृष्ठ 188 पर दयानन्द साहेब लिखते हैं —

"राजा का बल युद्ध करना है, इसके बिना धन और सुख की प्राप्ति संभव नहीं। युद्ध ही महाधन है, क्योंकि बिना संग्राम के प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य नहीं मिलता।"

वैदिक शिक्षा के होते हुए संसार में शांति नामुमकिन

इस प्रकार की आक्रामक शिक्षाएँ किसी भी धार्मिक ग्रंथों में नहीं पाई जाती। इस शिक्षा से प्रेरित होकर क्रोध और लालच से भरे आर्यों ने प्राचीन काल में गरीब जैनियों और बौद्धों को, मुसलमान के आने से पूर्व तथा अंग्रेज़ी साम्राज्य में मुसलमानों को, और आज़ाद भारत में दंगों के माध्यम से मुसलमानों, सिखों तथा ईसाइयों को जिंदा जलाया।

आज़ाद भारत के शांतिप्रिय समुदायों — मुसलमानों, ईसाइयों, सिखों, जैनियों और बौद्धों — को यह समझ लेना चाहिए कि जब तक अग्नि के इन पुजारियों और वेदों का प्रभाव संसार में मौजूद है, आर्य कभी भी उपद्रव और हिंसा से बाज़ नहीं आएंगे।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह हाक्काह

147. फट जावेगा आसमान, बस वह उस दिन सुस्त होगा। और फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उस के के; और उठावेंगे तख्त मालिक तेरे का ऊपर अपने उस दिन आठ जन। उस दिन सामने लाये जाओगे तुम, न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई। बस जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपने के. बस कहेगा लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा। और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बांये हाथ अपने के, बस कहेगा हाथ न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना। 69: 16, 17, 18, 19, 25 क़ुरआन.

समीक्षक:- वाह क्या फ़िलासफ़ी और न्याय की बात है! भला आकाश भी कभी फट सकता है? क्या वह वस्त्र के समान है

जो फट जावे? यदि ऊपर के लोक को आसमान कहते हैं तो यह बात विद्या से विरुद्ध है। अब कुरान का खुदा शरीरधारी होने में कुछ संदिग्ध न रहा। क्योंकि तख्त पर बैठना, आठ कहारों से उठवाना विना मूर्तिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता? और सामने वा पीछे भी आना-जाना मूर्तिमान् ही का हो सकता है। जब वह मूर्तिमान् है तो एकदेशी होने से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कभी नहीं जान सकता। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुण्यात्माओं के दाहिने हाथ में पत्र देना, बचवाना, बहिश्त में भेजना और पापात्माओं के बायें हाथ में कर्मपत्र का देना, नरक में भेजना, कर्मपत्र बांच के न्याय करना! भला यह व्यवहार सर्वज्ञ का हो सकता है? कदापि नहीं। यह सब लीला लड़केपन की है।

उत्तर:

आसमान के फटने का अर्थ

आसमान या आकाश के फटने का अर्थ, जैसा कि पूर्व (क्रमांक 118) में समझाया गया है कि ब्रह्मांड की मूल ऊर्जा अथवा शक्ति का समाप्त हो जाना है। इससे सृष्टि का संतुलन में विघ्न उत्पन्न होगा। ईश्वरीय व्यवस्था के नियम टूटने लगेंगे और प्रचलित प्राकृतिक क्रम का अंत हो जाएगा। अर्थात, वे सारे नियम जो अब तक लगातार चलते आ रहे थे, प्रलय के समय कार्य नहीं करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि ग्रह, नक्षत्र, तारे तथा अन्य ब्रह्मांडीय संरचनाएँ बिखर जाएँगी, टूट-फुट जाएँगी अथवा नष्ट हो जाएँगी।

यह तो आर्यों के आस्था के अनुसार भी है कि आकाश या आसमान एक-समय नहीं था फिर उत्पन्न हुई, और भविष्य में एक ऐसा समय भी आएगा जब यह सब कुछ नही रहेगा। ध्यान रहें पंडित जी, केवल कपड़े ही नहीं फटते; कण तक फट सकते हैं, और आपकी अज्ञानता की पराकाष्ठा देखकर लोगों के दिल भी फट सकते हैं, यद्यपि वे कागज़ और कपड़े के नहीं बने होते।

अर्श का अर्थ और ईश्वर के साकार होने का खंडन

पहले भी यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अर्श से अभिप्राय — शासन, सत्ता एवं प्रबंधन के अधिकार से है, न कि लकड़ी, लोहे, सोने-चाँदी से बना कोई भौतिक सिंहासन से। ईश्वरीय व्यवस्था को कार्यान्वित करने का दायित्व जिन पर है, आपकी मान्यतानुसार वे तैंतीस देवता हैं। जबकि इस आयत में केवल आठ फ़रिश्तों का उल्लेख है, जिन्हें आप आठ वसुओं के रूप में भी समझ सकते थे। यदि 33 देवताओं की मध्यस्थता से विश्व का संचालन करने से वैदिक ईश्वर का मूर्तिमान होना सिद्ध नहीं होता, तो आठ फ़रिश्तों — जिन्हें ईश्वर ने अपने आदेशों के क्रियान्वयन हेतु नियुक्त किया है — से उसका साकार होना कैसे सिद्ध हो जाता है? आयत में कहीं भी ईश्वर के साकार होने का कोई उल्लेख नहीं है।

दूसरी ओर, सिंहासन को तीसरे द्युलोक पर आपके ईश्वर को देवताओं ने उठा रखा है — देखों अथर्ववेद (15.3.1-3) के अनुसार पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी का भाष्य और ऋग्वेद (9.86.27) के अनुसार आर्यमुनि का भाष्य —

"वह (परमात्मा) वर्ष भर तक ऊँचा खड़ा रहा, उससे देवता बोले - हे व्रात्य! क्यों अब तू खड़ा है? वह (परमात्मा) बोला — सिंहासन मेरे लिए मिलकर आप धरें। उस व्रात्य के लिये सिंहासन उन्होंने मिलकर रखा (क्षेमकरण)। जो परमात्मा द्युलोक

(आसमान) के तीसरे पृष्ट पर विराजमान है।"

पंडित के तर्क के अनुसार ही अब वेद का ईश्वर भी शरीरधारी होने में कोई संदेह शेष नहीं रहता, क्योंकि सिंहासन पर बैठना, देवताओं से बात करना, और आसमान के तीसरे पृष्ट पर स्थित होना उसके एकदेशी होने को दर्शाता है। जब वह मूर्तिमान और एकदेशी है तो वह सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता।

दाएँ और बाएँ कर्मपत्र से आशय

यह बात पहले भी (क्रमांक 59 में) स्पष्ट की जा चुकी है कि ईश्वर को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, किंतु मनुष्य को है। इसी संदर्भ में दाएँ और बाएँ हाथ का उल्लेख इस सत्य को स्पष्ट करता है कि मनुष्य ने क्या प्राप्त किया और उसने क्या कमाया है। अतः दाहिने हाथ वाले वे लोग हैं जिन्होंने संसार में ईश्वर को स्वीकार किया, उसके बताए हुए धर्म का पालन किया और नेक जीवन जिया। जब उन्हें अपना कर्मपत्र दिखाया जाएगा, तो वे उसे देखते ही अत्यंत प्रसन्न हो उठेंगे, उछल पड़ेंगे और अपने शुभ परिणाम दूसरों को भी बताएँगे। इसी प्रकार, बाएँ हाथ वालों से तात्पर्य वे लोग हैं, जिन्होंने ईश्वर को अस्वीकार किया, उसके धर्म से मुँह फेर लिया और अवज्ञा की। जब उन्हें अपना कर्म पत्र दिखाया जाएगा, तो वे पछतावे से सिर को पीटते हुए कहेंगे, काश! मुझे यह कर्मपत्र कभी दिखाया ही नहीं जाता! काश मुझे पता ही नहीं चलता कि मेरा हिसाब क्या है!

इतनी सरल और स्पष्ट धारणा यदि एक धर्मगुरु भी समझ नहीं पा रहा है, तो यह निश्चय ही उसके लिए लज्जा का विषय है। शेष उत्तर 104 और 106 पर भी देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह मआरिज्ज

148. चढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तर्फ उस की वह अज़ाब होगा बीच उस दिन के कि है परिमाण उस का पचास हजार वर्ष। जब कि निकलेंगे कबरों में से दौड़ते हुए मानो कि वह बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं। 70: 4, 43 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि पचास हजार वर्ष दिन का परिमाण है तो पचास हजार वर्ष की रात्रि क्यों नहीं? यदि उतनी बड़ी रात्रि नहीं है तो उतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता। क्या पचास हजार वर्षों तक खुदा फ़रिश्ते और कर्मपत्र वाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे? यदि ऐसा है तो सब रोगी हो कर पुनः मर ही जायेंगे। क्या कबरों से निकल कर खुदा की कचहरी की ओर दौड़ेंगे? उन के पास सम्मन कबरों में क्योंकर पहुँचेंगे? और उन बिचारों को जो कि पुण्यात्मा वा पापात्मा हैं। इतने समय तक सभी को कबरों में दौरेसुपुर्द कैद क्यों रक्खा? और आजकल खुदा की कचहरी बन्ध होगी और खुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे? अथवा क्या काम करते होंगे। अपने-अपने स्थानों में बैठे इधर-उधर घूमते, सोते, नाच तमाशा देखते व ऐश आराम करते होंगे। ऐसा अन्धेर किसी के राज्य में न होगा। ऐसी-ऐसी बातों को सिवाय जङ्गलियों के दूसरा कौन मानेगा?

उत्तर:

पचास हज़ार वर्ष, एक हज़ार वर्ष और लाखों वर्षों जैसी अवधियाँ प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ

जिस प्रकार बूढ़े तोते को नई अक्षर सीखना कठिन है, उसी प्रकार पंडित को धर्म की बात समझाना। इससे पूर्व भी हम यह

स्पष्ट कर चुके हैं कि पवित्र क़ुरआन में यौम शब्द का प्रयोग विशेष रूप से किसी घटना, कालखंड या ऐसे दिवसों के लिए किया गया है, जिनमें दिन और रात दोनों सिम्मलित होते है। आर्य शिक्षाओं में भी ब्रह्मा के एक दिन और एक रात की अवधि अरबों वर्षों की बताई गई है। यदि यह अवधारणा आर्यों के दृष्टिकोण में स्वीकार्य है, तो फिर ईश्वर के एक दिन को पचास हज़ार वर्षों के बराबर क्यों नहीं माना जा सकता?

आयत का आशय यह है कि ईश्वर का एक दिन मनुष्य के पचास हज़ार वर्षों के समान है। कहीं कोई दिन हज़ार वर्षों के बराबर बताया गया है, तो कहीं लाखों वर्षों के। ये सभी अवधियाँ प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हुई है, जिनका उद्देश्य उस घटना की व्यापकता, अवधि और महत्व को समझाना है — न कि मानवीय समय गणना में उसे सीमित करना।

सन्यासी का पवित्र क़ुरआन पर एक और बड़ा झूठ

यह पंडित का एक और बहुत बड़ा झूठ और लोगों को भ्रमित करने का एक असफल प्रयास मात्र है। आयत संख्या 4 को आयत संख्या 43 के साथ जोड़ दिया, और बीच की आयतों के विषयों को छोड़कर यह मनगढ़त विषय गढ़ दिया कि ईश्वर, फ़रिश्ते और कर्मपत्र पचास हज़ार वर्षों तक खड़े रहेंगे, इत्यादि-इत्यादि।

"शेष आपत्तियों के उत्तर के लिए क्रमांक 18, 46, 92, 104, 135 और 136 देखें

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह नूह

149. निश्चय उत्पन्न किया तुम को कई प्रकार से। क्या नहीं देखा तुम ने कैसे उत्पन्न किया अल्लाह ने सात आसमानों को ऊपर तले। और किया चांद को बीच उन के प्रकाशक और किया सूर्य को दीपक। 71: 14,15,16 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि जीवों को खुदा ने उत्पन्न किया है तो वे नित्य अमर कभी नहीं रह सकते? फिर बहिश्त में सदा क्योंकर रह सकेंगे? जो उत्पन्न होता है वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है। आसमान को ऊपर तले कैसे बना सकता है? क्योंकि वह निराकार और विभू पदार्थ है। यदि दूसरी चीज का नाम आकाश रखते हो तो भी उस का आकाश नाम रखना व्यर्थ है। यदि ऊपर तले आसमानों को बनाया है तो उन सब के बीच में चांद सूर्य्य कभी नहीं रह सकते। जो बीच में रक्खा जाय तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रकाशित हो दूसरे से लेकर सब में अन्धकार रहना चाहिये। ऐसा नहीं दीखता, इस लिये यह बात सर्वथा मिथ्या है।

उत्तर:

पवित्र क़ुरआन में मनुष्य की सृष्टि की क्रमिक प्रक्रिया का संकेत

इस आयत में आत्माओं (जीवों) की उत्पत्ति या अनुत्पत्ति का कोई उल्लेख नहीं है। "क़द ख़लक़कुम अत्वारन" का अभिप्राय यह है कि ईश्वर ने तुम्हें विभिन्न अवस्थाओं अथवा चरणों से गुज़ारते हुए रचा है। वस्तुतः यह आयत मानव सृष्टि की क्रमिक प्रक्रिया की ओर संकेत करती है, जिसे आधुनिक शब्दों में भ्रूणविज्ञान (Embryology) कहा जाता है।

जहाँ तक यह आपत्ति है कि जो वस्तु उत्पन्न हुई है, वह अनिवार्य रूप से नष्ट होगी, तो इस विषय पर विस्तृत और तर्कसंगत उत्तर क्रमांक 135 में देखा जा सकता है।

आसमान या आकाश के विभिन्न स्तर एवं परतें

अरबी शब्दकोश एवं इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार आसमान या आकाश; धरती और पृथ्वी के ऊपर विस्तृत क्षेत्र या लोक को कहते हैं। पवित्र क़ुरआन में आसमान के अनेक स्तर बताए गए हैं, और प्रत्येक का अपना विशिष्ट स्वरूप एवं प्रभाव है। किसी स्तर पर हम पक्षियों को उड़ते हुए देखते हैं, किसी स्तर से वर्षा होती है, किसी स्तर पर सूर्य और चंद्रमा स्थित हैं, और किसी स्तर पर उल्काएँ तथा चमकते हुए तारे पाए जाते हैं। क़ुरआन पृथ्वी के ऊपर स्थित इन्हीं आकाशों के सात स्तरों का उल्लेख करता है, जो ब्रह्मांड की एक सुव्यवस्थित एवं बहुस्तरीय संरचना की ओर संकेत करता है।

अब पंडित दयानन्द द्वारा उठाई गई एक और आपत्ति पर विचार करें। उनका कहना है कि "यदि सूर्य और चंद्रमा को आसमानों के बीच रखा जाए, तो उनके प्रकाश से केवल ऊपर या नीचे की दिशा ही प्रकाशित होनी चाहिए, जबकि शेष दिशाओं में अंधकार रहना चाहिए। किंतु वास्तविकता इसके विपरीत दिखाई देती है।" पहली दृष्टि में देखा जाए तो यह तर्क बुद्धिसंगत प्रतीत होता है, परंतु गहन से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह एक सतही कल्पना पर आधारित है।

यदि हम आसमानों या आकाश को स्फटिक (क्रिस्टल) जैसी पारदर्शी वस्तु मान लें, तो क्या उस स्थिति में प्रकाश केवल एक दिशा तक ही सीमित रहेगा? या फिर वह चारों ओर समान रूप से फैल जाएगा? स्पष्ट है कि जब माध्यम पारदर्शी होता है, तो प्रकाश किसी एक दिशा में बंधा नहीं रहता, बल्कि सभी दिशाओं में समान रूप से प्रसारित होता है।

इस प्रकार यह आपत्ति स्वयं अपने भीतर ही दुर्बल सिद्ध हो जाती है। क़ुरआन द्वारा वर्णित आसमानों की अवधारणा न तो तर्क के विरुद्ध है और न ही विज्ञानसम्मत सिद्धांतों से असंगत।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह जिन्न

150. यह कि मसजिदें वास्ते अल्लाह के हैं, बस मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को। 72: 18 क़ुरआन.

समीक्षकः- यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग 'लाइलाह इल्लिलाः मुहम्मर्रसूलल्लाः' इस कलमे में खुदा के साथ मुहम्मद साहेब को क्यों पुकारते हैं? यह बात कुरान से विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते तो इस कुरान की बात को झूठ करते हैं। जब मसजिदें खुदा के घर हैं तो मुसलमान महाबुत्परस्त हुए। क्योंकि जैसे पुराणी, जैनी छोटी सी मूर्ति को ईश्वर का घर मानने से बुत्परस्त ठहरते हैं; ये लोग क्यों नहीं?

उत्तर:

मस्जिद उपासना स्थल और मुशरिक आर्य

यह विचारणीय है कि जो व्यक्ति ईश्वर को तैंतीस देवताओं से ऊपर मानकर उसे चौंतीसावाँ देवता कहता हो, और तीन वस्तुओं को ईश्वर के समान अनादि स्वीकार करता हो, तो ऐसे मुशरिक व्यक्ति से विवेकपूर्ण समझ की उपेक्षा करना व्यर्थ ही सिद्ध होता है।

मुसलमानों का कलिमा तो स्पष्ट रूप से यह घोषणा करता है कि "ईश्वर का कोई साझेदार नहीं और मुहम्मद ﷺ ईश्वर के रसूल और दूत हैं, न कि उसके किसी भी प्रकार के साझीदार।

इसी प्रकार, निःसंदेह मस्जिद ईश्वर का घर है, अर्थात वह स्थल या स्थान जहाँ विशुद्ध रूप से उसी एक ईश्वर की इबादत की जाती है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि उपासना केवल और केवल उसी एक सत्ता के लिए समर्पित है; उसमें किसी अन्य को साझीदार नहीं ठहराया जा सकता। अतः इबादत के रूप में भी यदि किसी को पुकारा जाएगा तो उसी एक सत्ता को ही पुकारा जाएगा, अन्य किसी और को नहीं।

अब आर्यों की उल्टी खोपड़ी का क्या उपचार (इलाज), जो इतनी सरल और सूक्ष्म बात भी समझ में नही आती। इस्लाम में शिर्क को सबसे बड़ा पाप माना गया है, क्योंकि यह बुद्धि और विवेक को धूमिल कर देता है, और इसका एक स्पष्ट उदाहरण हमें इन मुशरिक आर्यों में देखने को मिलता है, जिससे लोगों को शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता है।

शिर्क से संबंधित विस्तृत उत्तर आप क्रमांक 24, 55, 62, 64 और 31 में भी देख सकते हैं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह क़ियामह (प्रलय)

151. इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चांद। 75: 9 कुरआन.

समीक्षक:- भला सूर्य्य चांद कभी इकट्ठे हो सकते हैं? देखिये! यह कितनी बेसमझ की बात है। और सूर्य्य चन्द्र ही के इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन था? अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है? ऐसी-ऐसी असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं? बिना अविद्वानों के अन्य किसी की भी नहीं होतीं।

उत्तर:

सूर्य और चंद्रमा के एकत्र हो जाने का अर्थ

आयत में प्रलय (भविष्य) में होने वाली विश्व-व्यवस्था के विखंडित होने का एक संक्षिप्त संकेत दिया गया है। इस आयत में सूर्य और चंद्रमा के एकत्र हो जाने से अभिप्राय यह है कि दोनों एक ही अवस्था में आ जाएँगे। जैसा कि इससे ठीक पूर्व की ही आयत में कहा गया है — "“व ख़सफ़ अल-क़मरु”, अर्थात चंद्रमा का प्रकाश समाप्त हो जाएगा। स्पष्ट है कि जबतक सूर्य प्रकाशित है, चाँद निष्प्रभ नहीं हो सकता, क्योंकि चंद्रमा सूर्य की रौशनी से ही चमकता है। पवित्र क़ुरआन कहता है कि सूर्य भी एक समय चंद्रमा की तरह निष्प्रभ कर दिया जाएगा। इस प्रकार यह दोनों एक ही अवस्था में आ जाएँगे। और यह बात वर्तमान विज्ञान के सिद्धांत के बिल्कुल अनुरूप है। यदि पंडित हमारी आधुनिक शताब्दी में वेद भाष्य लिख रहा होता, तो जिस प्रकार उसने बंदूक, तोप और गोले जैसी आधुनिक वस्तुओं को असंभव बताकर अस्वीकार नहीं किया, उसी प्रकार वह इस वैज्ञानिक तथ्य को भी अपने वेद भाष्य में सम्मिलित करता — न कि उसे असंभव बताता।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह दहर

152. और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले, जब देखेगा तू उन को, अनुमान करेगा तू उन को मोती बिखरे हुए। और पहनाये जावेंगे कंगन चाँदी के और पिलावेगा उन को रब उन का शराब पवित्र। 76: 19, 21 कुरआन.

समीक्षक:- क्यों जी मोती के वर्ण से लड़के किस लिये वहाँ रक्खे जाते हैं? क्या जवान लोग सेवा वा स्त्री जन उनको तृप्त नहीं

कर सकतीं? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्ट जन करते हैं उस का मूल यही कुरान का वचन हो! और बहिश्त में स्वामी सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से दुःख तथा पक्षपात क्यों है? और जब खुदा ही उनको मद्य पिलावेगा तो वह भी उन का सेवकवत् ठहरेगा, फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी? और वहाँ बहिश्त में स्त्री पुरुष का समागम और गर्भस्थिति और लड़केबाले भी होते हैं वा नहीं? यदि नहीं होते तो उन का विषयसेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये? और विना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे? यदि जन्मे तो उन को बिना ईमान लाने और खुदा की भक्ति करने से बहिश्त मुफ्त मिल गया। किन्हीं बिचारों को ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्म के सुख मिल जाय इस से दूसरा बड़ा अन्याय कौन सा होगा?

उत्तर:

सन्यासी नहीं, बल्कि सत्यानाशी और स्वर्ग के गिलमान

यह बात सही है कि कुछ लोग अपनी विकृत मनोवृत्ति के कारण पवित्र विषयों को भी अश्लील एवं घटिया अर्थों में व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं। ऐसे लोग न केवल अपने सोच में स्तरहीन होते हैं, बल्कि उसे सार्वजनिक रूप से व्यक्त करने में भी संकोच नहीं करते। इतिहास में इस प्रकार के व्यक्तियों के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनकी सोच और अभिव्यक्ति दोनों ही स्तरहीन रही हैं। कहा जाता है कि भारत में एक शायर हुआ करता था, जिसकी पहचान अश्लील और आपत्तिजनक शायरी के कारण ही बनी हुई थी। किसी व्यक्ति ने यह सोचकर उसकी परीक्षा लेने का निश्चय किया कि संभवतः वह परिस्थितियों के कारण या लोगों की रुचि के अनुरूप ऐसा किया करता है। लोगों ने विचार किया कि यदि उसे किसी महान व्यक्तित्व पर शेर पढ़ने को कहा जाए, तो वह शालीन रचना करेगा। इसी उद्देश्य से लोगों ने उससे हज़रत अली (र.) के सम्मान में कोई शेर सुनाने का अनुरोध किया। उसने बिना किसी संकोच के तुरंत यह शेर पढ़ दिया:

"जिस वक्त था नारा मारा हैदर-ए-करार ने,
खेत हग-हग भर दिए थे लश्कर-ए-कुफ्फार ने।"

यह देखकर स्पष्ट हो गया कि वह व्यक्ति हज़रत अली (र.) जैसी महान और आदरणीय हस्ती का वर्णन (प्रशंसा) करते हुए भी अशुद्ध और अशोभनीय शब्दों का प्रयोग किये बिना नहीं रह सका। इससे यह सिद्ध होता है कि समस्या परिस्थितियों की नहीं, बल्कि मानसिकता की है।

इसी प्रकार, पंडित दयानन्द की शैली में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। उन्होंने पवित्र क़ुरआन की कई आयतों की व्याख्या करते समय उनके वास्तविक अर्थ और संदर्भ को छोड़कर विकृत अर्थ प्रस्तुत किये।

पवित्र क़ुरआन में जिन 'गिलमान' (स्वर्गिक युवा सेवकों) का उल्लेख हुआ है, उनका किसी भी प्रकार की अनैतिक या आपत्तिजनक कल्पना से संबंध नहीं हैं। इस्लाम के अनुसार ये वे बच्चे हैं जो अल्पायु में ही दुनिया से चले गए — चाहे वे मोमिनों की संतान हों या गैर-मोमिनों की। इस्लामी मान्यता के अनुसार ऐसे शिशु स्वर्ग में स्थान पाने वाले होते हैं। यदि उनके माता-पिता मोमिन हों तो वे उनसे स्वर्ग में पुनः मिलेंगे। इस्लाम की दृष्टि में ऐसे बच्चों (फ़रिश्तों) का संसार में आना उनके माता-पिता के लिए एक परीक्षा का रूप है।

स्वर्ग में मोमिनों के आपसी संबंध तथा ईश्वर के साक़ी बनने की धारणा का खंडन

स्वर्ग में निवास करने वाले मोमिनों के बीच कोई ऐसा संबंध नहीं होगा जिसमें कोई दूसरों का सेवक या स्वामी बने। वहाँ सभी आनंद, सम्मान और स्नेहपूर्ण भाईचारे की स्थिति में रहेंगे। इसी प्रकार, यह धारणा कि ईश्वर स्वयं साक़ी (पेय प्रदान करने वाला) या मोमिनों का सेवक बन जाएगा, इस्लाम के मौलिक सिद्धांतों के पूर्ण विरुद्ध है।

क़ुरआन में कहा गया है कि "उनका रब उन्हें पिलाएगा" — यह कथन ईश्वर की असीम कृपा और मोमिनों के प्रति उसके विशेष सम्मान को प्रतीकात्मक भाषा में व्यक्त करता है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर अपनी दया और कृपा से विश्वासियों को आनंद, संतुष्टि और उत्तम प्रतिदान (जैसे पेय) प्रदान करेगा। उदाहरण के तौर पर, स्वर्ग का वर्णन करते हुए कहा गया है:

"और (ईश्वर कहेगा) पीते रहो आनंद से उन पेयों को और खूब खाओ..., निःसंदेह सत्कर्म करने वालों को हम ऐसा ही प्रतिफल देते है।" (सूरह मर्सलात, 77:43-44)

यह ईश्वर की कृपा और देने की शक्ति को दर्शाता है, न कि किसी सेवक की तरह कार्य करने को। इसे ऐसे समझा जा सकता है जैसे कोई राजा अपने अतिथि का सत्कार करता है; इसमें सेवा का भाव सम्मान देने का होता है, अधीनता का नहीं। वास्तव में, सेवक वह होता है जो आदेश का पालन करता है, जबकि ईश्वर स्वयं किसी के आदेश का पालन करने वाला नहीं है। वह सर्वोच्च और स्वतंत्र है, केवल अपनी इच्छा से दया और उपकार करता है। यदि उपकार करने वाले को ही सेवक मान लिया जाए, तो क्या प्रेम से अपने बच्चों की देखभाल करने वाले माता-पिता को भी उनके सेवक कहा जाएगा?

स्वर्ग में प्रत्येक पवित्र इच्छा पूरी होगी

पवित्र क़ुरआन में स्वर्ग के विषय में स्त्रियों को गर्भ ठहरना, संतान का जन्म होना और स्त्री-पुरुष का समागम — इन बातों का सीधा और स्पष्ट वर्णन पवित्र क़ुरआन में नहीं मिलता। हाँ, क़ुरआन एक स्थान पर मोमिनों की पवित्र इच्छाओं को पूरा होने की बात करता है — सूरह फुस्सिलत (41:31) में कहा गया है:

"वहाँ तुम्हारे लिए वह सब कुछ होगा जो तुम्हारा जी चाहे, और जो कुछ तुम माँगोगे वह भी मिलेगा।"

यह आयत स्पष्ट करती है कि स्वर्ग में हर पवित्र इच्छा पूर्ण होगी, जिसमें शुद्ध आनंद और प्रेम भी सम्मिलित है। यदि मोमिन स्वर्ग में संतान की इच्छा करेगा, तो गर्भ ठहरना, प्रसव और उससे जुड़ी सारी प्रक्रिया एक पल में, बिना किसी कष्ट या दर्द के संपन्न हो जाएगी। ईश्वर के लिए यह असंभव नहीं।

स्वर्ग की नेमत ईश्वर की असीम कृपा एवं अनुग्रह

जहाँ तक पंडित का यह प्रश्न है की "वह जीव कहा से आएगा?", तो इसका उत्तर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि स्वर्ग के सभी आनंद और प्रतिफल उन सत्कर्मों का परिणाम हैं, जिन्होंने संसार में ईमान और सत्कर्म के साथ जीवन व्यतीत किया है। पंडित ने मुसलमानों के स्वर्ग की अवधारणा को, आर्यों के स्वर्ग और मुक्ति की तरह एक किराए का टट्टू समझ लिया है — मानो कोई व्यक्ति पैसे देकर टट्टू पर सवार हुआ, कुछ समय आनंद लिया और किराया समाप्त होते ही नीचे उतार दिया। इस्लाम में स्वर्ग की अवधारणा ऐसा नहीं है। हमारे निकट, स्वर्ग ईश्वर की असीम कृपा और अनुग्रह से प्राप्त होता है। यह केवल कर्मों का मुआवज़ा या बदला नहीं है, बल्कि नेक कर्म ईश्वरीय अनुग्रह को आकर्षित करने का साधन हैं। नेक कार्य

अपने भीतर ही अपना फल रखता हैं — नेकी केवल नेकी के लिए और अपना कर्तव्य समझकर की जाती है। केवल स्वर्ग पाने की लालसा से कोई मुसलमान नेकी नहीं करता। इसलिए असली वैदिक धर्म और इस्लाम, दोनों में ही सफलता (या मुक्ति) स्थायी है, सीमित अवधि की नहीं। समय-सीमित स्वर्ग की यह कल्पना केवल पंडित जी आपको ही सूझी है, किसी और को नहीं।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह नबा

153. बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार। और प्याले हैं भरे हुए। जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ बांध कर। 78: 26, 34, 38 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि कर्मानुसार फल दिया जाता तो सदा बहिश्त में रहने वाले हूरें फरिश्ते और मोती के सदृश लड़कों को कौन कर्म के अनुसार सदा के लिये बहिश्त मिला? जब प्याले भर-भर शराब पीयेंगे तो मस्त हो कर क्यों न लड़ेंगे रूह नाम यहां एक फरिश्ते का है जो सब फरिश्तों से बड़ा है! क्या खुदा रूह तथा अन्य फरिश्तों को पंक्तिबद्ध खड़े कर के पलटन बांधेगा? क्या पलटन से सब जीवों को सजा दिलावेगा? और खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा? यदि कयामत तक खुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शैतान को पकड़ ले तो उस का राज्य निष्कण्टक हो जाय। इस का नाम खुदाई है।

उत्तर:

फ़रिश्तों, हूरों और गिलमानों की प्रकृति और कर्म सिद्धांत

पंडित जी! फ़रिश्तों, हूरों और गिलमानों कि मूल प्रकृति व स्वभाव ही आज्ञाकारिता का है। वे अपनी संरचना के अनुसार कभी भी ईश्वर के आदेश की अवज्ञा नहीं करते। ऐसे में, उन पर कर्म-सिद्धांत के लागू करने की बात तर्कसंगत नहीं ठहरती। क्योंकि कर्म-सिद्धांत का मूल आधार स्वेच्छा, चयन की स्वतंत्रता और नैतिक उत्तरदायित्व से है। यह सिद्धांत केवल उन प्राणियों पर लागू होता है जिन्हें स्वतंत्र इच्छा के साथ रचा गया है और जिन्हें कर्तव्यबद्ध तथा परीक्षा के अधीन रखा गया है — जैसे मनुष्य और जिन्न। जहाँ स्वेच्छा ही नहीं है, वहाँ कर्म और उसके फल की अवधारणा स्वतः ही अप्रासंगिक हो जाती है। इसलिए उन प्राणियों को कर्म के नियम को आरोपित करना, जिनकी संरचना ही भिन्न है और जो केवल आज्ञापालन और सेवा के लिए सृजित हैं, एक श्रेणीगत भ्रम है। अतः पंडित की यह आपत्ति मूल रूप से लघु, दुर्बल और तर्कहीन है।

स्वर्ग के पेय सभी दोषों से रहित

स्वर्ग में प्राप्त होने वाले पवित्र प्याले (शराब) के विषय में स्वयं पवित्र क़ुरआन ने उसकी विशेषता स्पष्ट कर दी है, और इससे पंडित का आक्षेप स्वतः ही निराधार सिद्ध हो जाता है। पवित्र क़ुरआन में है —

"ला यस्मऊना फीहा लग़्वन वला किज़्बा" (सूरह नबा, 78:35)

अर्थात — "वे वहाँ न कोई बेहूदा (लग़्व) बात सुनेंगे और न कोई झूठ या झूठी बात-चीत।"

यह आयत स्पष्ट रूप से यह बताती है कि स्वर्ग में किसी भी प्रकार की असभ्यता, अनुचित आचरण, व्यर्थ या अनैतिक गतिविधि नहीं होगी। न ही कोई झूठ, न फ़साद और न ही किसी प्रकार का झगड़ा। संसार की शराब की मुख्य विशेषता यही

हैं कि वह नशा पैदा करती है, जिससे व्यक्ति बेहूदा बातें करता है, झगड़े करता है, गाली-गलौज और अनैतिक व्यवहार में लिप्त हो जाता है। परंतु स्वर्ग का शराब इन सभी दोषों से पूर्णतः रहित है।

पवित्र क़ुरआन में कई स्थानों पर इसकी विशेषताएँ स्पष्ट की हैं कि वह न नशा उत्पन्न करती है, न सिरदर्द देती है और न ही किसी प्रकार की हानि पहुँचाती है (सूरह साफ्फात 37:47, सूरह वाक़िआ 56:19, सूरह तूर 52:23 और हमारा उत्तर क्रमांक 134 देखें)।

अफ़सोस कि बात तो यह है कि आपकी आदत कहीं आ कर रुकती नहीं। जब क़ुरआन में साफ-साफ लिखा है कि स्वर्ग में न लग़्व होगा, न झूठ और न फ़साद, तो फिर वहाँ शराब पीकर लड़ाई-झगड़ा होने का प्रश्न ही कहाँ से उत्पन्न होता है?

रूह और मलाइका का कतार में खड़ा होना

आत्माओं और फ़रिश्तों का कतार में खड़ा होना, मुसलमानों के लिए स्वर्गीय प्राप्ति और प्रगति की तैयारी के समान है। आयत में रूह (आत्मा) से तात्पर्य ईमानवाले मुसलमानों की आत्माओं से है, जबकि मलाइका (फ़रिश्ते) प्रगति और शुभ-समाचार सुनाने के लिए उपस्थित रहेंगे। चूँकि मुसलमानों के आध्यात्मिक स्तर भिन्न-भिन्न होंगे, इसलिए उनकी मार्गदर्शन के लिए नियुक्त फ़रिश्ते भी विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। आयत में पलटन बना कर किसी प्रकार के दंड देने का कोई वर्णन नहीं। यह पंडित का सरासर झूठ और निराधार आरोप है।

वैदिक ईश्वर के मानवीय गुण

हमारा ईश्वर न तो मनुष्य के समान खड़ा रहता है, न ही थककर बैठता है। किंतु आपके ग्रंथ में परमात्मा के विषय में ऐसा वर्णन मिलता है —

"वह वर्ष भर तक खड़ा ही रहा। देवताओं ने उससे कहा — हे व्रात्य प्रजापते! तू क्यों खड़े हो? वह बोला — मेरे लिए बैठने की चौकी या पीढ़ा या आसन ले आओ।" — अथर्ववेद (15.3.1-2), पंडित जयदेव शर्मा।

स्पष्ट है कि इस प्रकार का ईश्वर हमारा नहीं हो सकता, यह आपकी आस्था का विषय हो सकता है, परंतु हमारा नहीं।

मनुष्य नुमा शैतान के आगे वैदिक ईश्वर असमर्थ

रही बात शैतान की — भारतवर्ष में असुर, राक्षस और अनार्य समुदायों की संख्या दिन-प्रितदिन बढ़ती ही चली गई। यदि संसार भर की तुलना करें तो आर्यों के ईश्वर को म्लेच्छ खुलेआम मुँह चिढ़ा रहे हैं सदियों से, किंतु आर्यों का ईश्वर उसका प्रतिकार करने में असमर्थ है। इस विषय पर विस्तृत चर्चा पहले ही कई स्थानों पर की जा चुकी है।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह तकवीर

154. जब कि सूर्य लपेटा जावे। और जब कि तारे गदले हो जावें। और जब कि पहाड़ चलाये जावें। और जब आसमान की खाल उतारी जावे। 81: 1, 2, 3, 11 क़ुरआन.

समीक्षक:- यह बड़ी बेसमझ की बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे? और पहाड़ जड़ होने से कैसे चलेंगे? और आकाश को क्या पशु समझा कि उस की खाल निकाली जावेगी? यह बड़ी बेसमझ और

जंगलीपन की बात है।

उत्तर:

जब सूर्य को लपेट दिया जाएगा

आयत में प्रलय के समय घटित होने वाले भयावह दृश्यों का उल्लेख इस उद्देश्य से किया गया है कि मनुष्य ग़फ़लत की नींद से जागे और उसे यह बोध हो कि न तो उसका जीवन अमर है और न ही यह सृष्टि शाश्वत। यह संसार, जिसकी स्थिरता का भ्रम मनुष्य को घेरे रहता है, वास्तव में एक निश्चित अंत की ओर बढ़ रहा है।

सौरमंडल में सूर्य के महत्व से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। उसकी किरणें क्षण भर में अंधकार में डूबी हुई दुनिया को प्रकाश से भर देती हैं। उसकी तपिश से लोक-लोकांतर तप उठते हैं और उसी की ऊर्जा से धरती पर जीवन फलता-फूलता है। किंतु प्रलय के समय वही सूर्य, जो प्रकाश का सबसे महान स्रोत है, अपनी प्रकाश फैलाने वाली किरणों से वंचित कर दिया जाएगा। ऐसा प्रतीत होगा मानो उसकी किरणें समेट ली गई हों, या उन्हें जंजीरों में जकड़ दिया गया हो। जो स्वयं प्रकाश का स्रोत है, वही प्रकाशहीनता की ओर अग्रसर हो जाएगा।

जब सूर्य ही अंधकार की ओर मुड़ जाएगा, तो उस समय फैलने वाला अंधकार कितना गहरा, कितना भयावह होगा — इसकी कल्पना मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

यह वर्णन सूरह क़ियामह (75:7–9) की व्याख्या से जुड़ा है, जहाँ ईश्वर कहता है —

“फिर जब निगाहें चकाचौंध हो जाएँगी,

और चाँद बेनूर हो जाएगा,

और सूर्य तथा चंद्रमा को एक साथ मिला दिया जाएगा।”

पवित्र क़ुरआन ने प्रलय के इन मंज़रों को अत्यंत संक्षिप्त, किंतु गहरे प्रभाव के साथ प्रस्तुत किया है। यह वर्णन इस सत्य की ओर संकेत करता है कि जिस जीवन-व्यवस्था को मनुष्य अटल समझ बैठा है, वह वास्तव में एक निश्चित और अपरिहार्य अंत की ओर अग्रसर है।

दुर्भाग्य यह है कि न पंडित को पहले की आयत का सही अर्थ समझ में आया था और न अब इस आयत की गहराई का बोध है। यदि वह किसी विद्वान की संगत में बैठा होता, तो संभवतः ऐसी आधारहीन और ऊटपटाँग आपत्ति उठाने का साहस न करता।

जब सितारे बिखर जाएँगे या बेनूर हो जाएँगे

प्रस्तुत आयत "व इज़न् नुजूमुन्कदरत" के दो प्रमुख अर्थ हैं। पहला अर्थ, तारों एवं ग्रहों के चक्रण-कक्षाओं से भटककर, आपस में टकराकर या बिखरकर नष्ट हो जाना। दूसरा अर्थ, तग़य्युर (परिवर्तन) से सम्बद्ध है। "इन्कदारत" शब्द सफ़ाई और चमक का विलोम है, जो मैला-कुचैला और अंधकार को दर्शाता है। इन दोनों अर्थों को सामने रखकर देखें तो अर्थ बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है कि आयत एक ऐसी सर्वव्यापी प्रलय-घटना की ओर संकेत कर रही है, जब तारे और ग्रह अपनी चमक और सुव्यवस्था खो देंगे, उनका अस्तित्व विघटित हो जाएगा और वे प्रकाशहीन हो जाएँगे।

वर्तमान ब्रह्मांडीय व्यवस्था में सभी खगोलीय पिंड गुरुत्वाकर्षण जैसे सूक्ष्म एवं शक्तिशाली नियमों से बँधे हुए हैं। यही नियम उन्हें अपनी-अपनी निश्चित कक्षाओं में बाँधे रखते हैं, आपस में टकराने से रोकते हैं और एक सुव्यवस्थित संतुलन बनाए रखते हैं। प्रस्तुत आयत के अनुसार, प्रलय के उस क्षण में ये सारी बंदिशें या बल-नियम शिथिल हो जाएँगे। जो व्यवस्था उन्हें बाँधे हुए है, वह समाप्त हो जाएगी। उसका परिणाम यह होगा कि समस्त तारे एवं ग्रह अपनी कक्षाओं से भटकेंगे, उनका पतन और विनाश होगा, और अंततः उनका प्रकाश भी विलुप्त हो जाएगा। पंडित के अनुसार ये सब बातें बेसमझी की है। पहाड़ या पर्वत से संबंधित उत्तर के लिए क्रमांक 143 और 122 देखें।

जब आसमान का खाल उतार दिया जाएगा

प्रस्तुत आयत में "कश्त" शब्द का अर्थ खाल या छिलका उतारना है। यह मुहावरा अरबी शब्द "कश्तुन्नाक़ह" से लिया गया है, जिसका अर्थ ऊँटनी की खाल उतारना होता है। सामान्य रूप से यह एक रूपक (अलंकार) के तौर पर प्रयुक्त हुआ है, जिसका आशय किसी छिपी हुई वस्तु से पर्दा हटाना या उसकी वास्तविकता को उजागर करना है — ठीक उसी प्रकार जैसे खाल या छिलका उतर जाने के बाद भीतर की वस्तु प्रत्यक्ष हो जाती है।

चूँकि "आसमान" शब्द व्यापक रूप से ऊपर फैले हुए क्षेत्र या लोक के लिए प्रयुक्त होता है, अतः इस आयत का अभिप्राय यह है कि प्रलय के समय वह सब कुछ, जो अभी हमारी दृष्टि से ओझल या छिपा हुआ है, पूर्ण रूप से प्रकट कर दिया जाएगा। मानो सत्य पर पड़ा हुआ पर्दा हटा दिया गया हो और उसे सीधे प्रत्यक्ष देखा जा सके।

वर्तमान में हमें आसमान में केवल बादल, धूल-गुबार, खाली आकाश, चंद्रमा, सूर्य और तारे ही दिखाई देते हैं। किंतु आयत कहती है कि प्रलय के समय ब्रह्मांडीय व्यवस्था, उसके गूढ़ और गहरे नियम, छुपे हुए रहस्य तथा ईश्वर के कुदरत के निशान — सभी कुछ पूरी स्पष्टता के साथ उजागर हो जाएंगे। उस समय छिपी हुई सारी वास्तविकताएं और गुणात्मक सत्य एकदम खुलकर सामने आ जाएँगे।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह इन्फ़ितार

155. और जब कि आसमान फट जावे। और जब तारे झड़ जावें। और जब दर्या चीरे जावें। और जब कबरें जिला कर उठाई जावें। 82: 1, 2, 3, 4 कुरआन.

समीक्षक:- वाह जी कुरान के बनाने वाले फ़िलासफर! आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा? और तारों को कैसे झाड़ सकेगा? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा? और कबरें क्या मुरदे हैं जो जिला सकेगा? ये सब बातें लड़कों के सदृश हैं।

उत्तर:

समुद्र चिर या बहा दिए जाएँगे

आसमान के फटने की व्याख्या पहले ही क्रमांक 147 और 118 में की जा चुकी है। तारों के झड़ने का अर्थ क्रमांक 154 में स्पष्ट किया गया है कि इससे तात्पर्य उनका निश्चित कक्षा से भटक जाना अथवा प्रकाशहीन हो जाना ही है।

जब समुद्र चिर दिए जाएँगे, तो इस आयत के दो संभावित अर्थ हैं, जो भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की ओर संकेत

करते हैं। पहला अर्थ यह है कि समुद्र का जलस्तर इतना अधिक बढ़ जाएगा कि वह धरती को अपने में समा लेगा। यह बात आज के वैज्ञानिक तथ्य — जैसे ग्लोबल वार्मिंग के कारण बर्फ की पर्वतों का पिघलना तथा समुद्र के जलस्तर में निरंतर वृद्धि — से पूर्णतः सामंजस्य रखती है। दूसरा अर्थ यह है कि प्रलय के समय इतना भीषण भूकंप आएगा जो किसी एक क्षेत्र तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण पृथ्वी को हिला देगा। उसके परिणामस्वरूप धरती की सतह फट जाएगी और उसके गर्भ से निकलने वाला गर्म लावा ऐसे फैलेगा मानो समुद्र के दो भागों में विभाजित कर दिया गया हो। संक्षेप में, ये सभी भविष्यवाणियाँ प्रलय-काल से संबंधित है।

प्रलय में मृतकों का पुनर्जीवित हो उठना

कब्रें जिला कर उठाई जाएँगी — इसका सीधा अर्थ मृतकों का पुनर्जीवित होना है। यहाँ एक प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। शायद पंडित जी अपना ही कथन भूल चुके हैं, जो उन्होंने ऋग्वेद भाष्य-भूमिका में कहा है कि जहाँ-जहाँ अर्थ असंभव हो, वहाँ-वहाँ लक्षणा होती है। आसमान का फटना, तारों का झड़ना अथवा खाल उतार देना — ये सब रूपक है। अब यदि पंडित को फिलॉसफी का ज्ञान ही नहीं है, तो इसमें क़ुरआन का क्या दोष?

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह बुरूज

156. कसम है आसमान बुर्जों वाले की। किन्तु वह कुरान है बड़ा। बीच लौह महफूज के (अर्थात् सुरक्षित तख्ती पर लिखा हुआ)। 85: 1, 21, 22 क़ुरआन.

समीक्षक:- इस कुरान के बनाने वाले ने भूगोल खगोल कुछ भी नहीं पढ़ा था नहीं तो आकाश को किले के समान बुर्जा वाला क्यों कहता? यदि मेषादि राशियों को बुर्ज कहता है तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं? इसलिये ये बुर्ज नहीं हैं किन्तु सब तारे लोक हैं। क्या वह कुरान खुदा के पास है? यदि यह कुरान उस का किया है तो वह भी विद्या और युक्ति से विरुद्ध अविद्या से अधिक भरा होगा।

उत्तर:

पवित्र क़ुरआन में बुरूज का अर्थ

"बुरूज" शब्द बुर्ज की बहुवचन है, जिसका शाब्दिक अर्थ है — क़िला, मज़बूत महल, ऊँची प्राचीर, अथवा कोई प्रभावशाली एवं अटल संरचना। यह शब्द भी रूपक और प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जो दृढ़ता, स्थायित्व और अडिगता का बोध कराता है।

पवित्र क़ुरआन में बुरूज से तात्पर्य वह विशालकाय खगोलीय संरचनाएँ हैं — चाहें वे सितारे, ग्रह और अन्य आकाशीय पिंड हो, या वे मंजिलें (कक्षाएँ/मार्ग) जिनमें यह पिंड अपनी परिक्रमा करते हैं। जब कोई आकाशीय पिंड अपनी निर्धारित कक्षा में घूमता है, तो उस पूरे व्यवस्थित मार्ग को भी बुरूज कहा गया है।

ये बुरूज न केवल आकाश की बाहरी शोभा और सितारों की चमक-दमक की ओर ही संकेत नहीं करते, बल्कि ब्रह्मांड के अंतर्निहित सुदृढ़ नियमन, उसकी अटूट व्यवस्था और सृष्टिकर्ता की अद्‌भुत और असीम शक्ति (कुदरत) की ओर भी स्पष्ट

रूप से इंगित करते हैं। ये बुरूज हमें याद दिलाते हैं कि ब्रह्मांड का प्रत्येक अंश, हर ग्रह-नक्षत्र और उनकी गति का नियम, एक अद्वितीय एवं परिपूर्ण डिज़ाइन का हिस्सा है — जिसमें कोई त्रुटि, कोई कमी नहीं है। सब कुछ सटीक गणना के अनुरूप संचालित है, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई विशाल किला सदियों से अपने स्थान पर अडिग खड़ा रहता है।

इस प्रकार, पवित्र क़ुरआन ने कभी भी विद्या के विरुद्ध कोई बात नहीं कही; बल्कि अविद्या और अज्ञान पंडित की अपनी बुद्धि और समझ का परिणाम है जो क़ुरआन की इस गहन हिकमत को न समझ सका।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह तारिक़

157. निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर। और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर। 86: 15-16 क़ुरआन.

समीक्षक:- मकर कहते हैं ठगपन को, क्या खुदा भी ठग है? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाब झूठ है? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे तो क्या भले आदमी को चाहिए कि उस के घर में जा के चोरी करे! वाह! वाह जी!! कुरान के बनाने वाले।

उत्तर:

विस्तृत उत्तर क्रमांक 52, 63 एवं 80 पर देखें।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह फ़ज्र

158. और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पंक्ति बांध के। और लाया जावेगा उस दिन दोज़ख को। 89: 22-23 क़ुरआन.

समीक्षक:- कहो जी! जैसे कोटवाल वा सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पंक्ति बांध फिरा करे वैसा ही इन का खुदा है? क्या दोज़ख को घड़ा सा समझा है कि जिस को उठा के जहाँ चाहे वहाँ ले जावे। यदि इतना छोटा सा है तो असंख्य कैदी उस में कैसे समा सकेंगे?

उत्तर:

ईश्वर का आना वस्तुतः उसकी सर्वोच्च सत्ता का प्रकटीकरण है

ईश्वर के आने से तात्पर्य उसकी न्याय-व्यवस्था और प्रभुत्व के उस प्रत्यक्ष प्रकटीकरण से है, जो वर्तमान में मनुष्यों की दृष्टि से अदृश्य है। प्रलय के समय यह प्रभुत्व पूर्ण रूप से और स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाएगा। अतः ईश्वर का आना मनुष्य की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान गमन करना, या किसी स्थान को छोड़कर अन्य स्थान पर उपस्थित अथवा अनुपस्थित होना नहीं है; बल्कि इसका अर्थ उसकी सर्वोच्च सत्ता का प्रत्यक्ष प्रकाशन है। उस दिन फ़रिश्ते पंक्ति-दर-पंक्ति खड़े होकर ईश्वर के अमर और अटल आदेशों को लागू करेंगे, और संपूर्ण सृष्टि उसके न्याय के अधीन होगी।

ईश्वर का सामर्थ्य समस्त सृष्टि पर प्रभावी है

यह कितना मूर्खतापूर्ण तर्क है कि चूँकि नर्क को लाए जाने का उल्लेख है, इसलिए वह किसी हंडिया या कड़ाही जैसी कोई

छोटी-सी वस्तु होगी। क्या ईश्वर के लिए किसी विशाल वस्तु को लाना कोई कठिन कार्य है? धरती, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, असंख्य तारे — यहाँ तक कि सिग्नस जैसे विराट तारामंडल, जिनके सामने हमारा सूर्य भी नगण्य प्रतीत होता है — सब उसी के आदेश से संचालित हो रहे हैं और अनजानी दिशाओं में गतिमान हैं। पूरा ब्रह्मांड उसकी शक्ति से संचालित है। ऐसी स्थिति में यदि नर्क इन सब वस्तुओं से विशाल भी हो, तो क्या ईश्वर के सामर्थ्य के सामने कोई भार या सीमा रखती है? कदापि नहीं।

वैदिक ईश्वर की दुर्बलता तथा मुक्ति-घर में तंग व्यवस्था

वास्तव में, पंडित का इस विषय पर आश्चर्य करना उसके तथाकथित ईश्वर-बोध का परिणाम है। उनका ईश्वर इतना कमजोर, अल्पसामर्थ्य और लगभग निकम्मा है कि वह मुक्ति-गृह को पर्याप्त विशाल बनाने की क्षमता ही नहीं रखता। शायद इसी कारण वह आत्माओं की भीड़ से भयभीत होकर किसी को सदा की मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता। ईश्वर जी द्वारा निर्मित मुक्ति घर न हुआ किसी कंजूस बनिया का गोशाला हो गया।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह शम्स

159. बस कहा था वास्ते उन के पैग़म्बर खुदा के ने, रक्षा करो ऊंटनी खुदा की को, और पानी पिलाना उस के को। बस झुठलाया उस को, बस पांव काटे उस के, बस मरी डाली ऊपर उन के, रब उन के ने। 91: 13, 14 क़ुरआन.

समीक्षक:- क्या खुदा भी ऊंटनी पर चढ़ के सैल किया करता है? नहीं तो किस लिये रक्खी? और विना कयामत के अपना नियम तोड़ उन पर मरी रोग क्यों डाला? यदि डाला तो उन को दण्ड किया, फिर कयामत की रात में न्याय और उस रात का होना भूठ समझा जायगा? फिर इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट, ऊंटनी के सिवाय दूसरी सवारी कम होती है। इस से सिद्ध होता है कि किसी अरब देशी ने कुरान बनाया है।

उत्तर:

नाक़तुल्लाह का अर्थ और सन्यासी का छल

यह आपत्ति बच्चों जैसी है; अंतर केवल इतना है कि इसे छलपूर्वक विद्वता की टोपी पहना दी गई है। वास्तविकता यह है कि पवित्र क़ुरआन में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि ऊँटनी ईश्वर की सवारी है। अरबी भाषा में नाक़तुल्लाह का सही अर्थ है — वह ऊँटनी जो ईश्वर की ओर से एक निशानी के रूप में नियुक्त किया गया हो (विस्तृत विवरण के लिए देखें उत्तर क्रमांक 93, 100 और 120)। मूल रूप से यह आपत्ति अरबी भाषा की बुनियादी समझ और तार्किक सोच दोनों के अभाव का परिणाम है। यह ठीक उसी प्रकार का निरर्थक प्रश्न है जैसे भारत को माँ भारती या भारत माता कहा जाए, और कोई विद्वान व्यक्ति यह पूछ बैठे कि "क्या तुम यह कहना चाह रहे हो कि यह देश वास्तव में एक स्त्री है?"

संसार में और परलोक में सज़ा

कौन-सा नियम तोड़ा गया, पंडित जी? क्या पवित्र क़ुरआन में कहीं यह लिखा है कि ईश्वर संसार में कभी दंड नहीं देता? वास्तविकता यह है कि ईश्वर ने कोई कार्य अपने सुन्नत के विरुद्ध नहीं किया — पवित्र क़ुरआन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया

है कि ईश्वर संसार में भी दंड देता है (सूरह इस्राइल, 17:8)।

अब दुनिया और परलोक में सज़ा के विषय पर विचार करें। पंडित जी, आप स्वयं इस जन्म में पापों की सज़ा मानते हैं, और फिर अगले जन्म में भी योनि बदलकर दंड भुगतना मानते हैं। साथ ही इस दुनिया में पुण्य के बदले सांसारिक सुख (स्वर्ग) और अंततः मुक्ति प्राप्त करना भी मानते हैं। तो फिर यह दोहरी सज़ा और पुरस्कार का क्या अर्थ है?

हमारे विचार में, वे पाप जिनके न रोकने से संसार की व्यवस्था बिगड़ने का अंदेशा होता है, उनकी सज़ा का एक भाग इसी संसार में मिलता है। परंतु यह केवल आंशिक दंड है। पाप का पूर्ण प्रतिफल तो प्रलय के बाद, अर्थात परलोक में ही प्राप्त होगा।

वैदिक दार्शनिक का हास्यास्पद तर्क

यह तर्क पढ़कर हँसी आती है। यदि क़ुरआन में ऊँट-ऊँटनी का उल्लेख होने से यह साबित हो जाता है कि क़ुरआन अरबवासियों ने स्वयं रचा है, तो वेदों में गंगा, यमुना और सरस्वती जैसी नदियों का बार-बार और विशेष महत्व से उल्लेख होना यह साबित नहीं करता कि वेद आर्यों ने रचा है?

ईश्वरीय वाणी सदैव मनुष्य से उसके समय, स्थान और परिवेश के उदाहरण से समझाती है या संवाद करती है, ताकि उस वाणी के पहले सुनने वाले लोग (प्राथमिक संबोधित लोग) उसे आसानी से ग्रहण कर सकें और फिर दूसरों तक उसी तरह पहुँचा सकें। यदि क़ुरआन या वेदों में “कंगारू” या “पेंगुइन” जैसे प्राणियों का उल्लेख होता, तो उस काल के लोग न तो उसे समझ पाते और न ही उससे कोई अर्थ ग्रहण कर पाते। तब शायद यही कहा जाता कि यह ग्रंथ शायद ऑस्ट्रेलिया या अंटार्कटिका में रचा गया है!

वाह, क्या शानदार अनुमान है! ऊँटनी से अरब मूल सिद्ध हो गया, तो गंगा, यमुना, सरस्वती आदि से क्या सिद्ध होता है?

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह अलक़

160. यों जो न रुकेगा अवश्य घसीटेंगे उस को हम साथ बालों माथे के। वह माथा कि झूठा है और अपराधी। हम बुलावेंगे फ़रिश्ते दोज़ख के को। 96: 15, 16, 18 क़ुरआन.

समीक्षक:- इस नीच चपरासियों के काम घसीटने से भी खुदा न बचा। भला माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है? सिवाय जीव के, भला यह कभी खुदा हो सकता है कि जैसे जेलखाने के दरोगा को बुलावा भेजे।

उत्तर:

ईश्वर का माथे से बालों से घसीटना एक रूपकात्मक अभिव्यक्ति

पंडित की यह आपत्ति भी, हमेशा की तरह शाब्दिक अर्थ तक ही सीमित है। जबकि पवित्र क़ुरआन ने यहाँ बलाग़त और रूपक का सुन्दर प्रयोग किया है।

अरबी भाषा के मुहावरे में "नासिया" (माथा) मनुष्य के नेतृत्व, गर्व, इरादे और निर्णय का प्रतीक है। ठीक वैसे ही जैसे हमारी भाषा में भी यह कहा जाता है कि "इसके दिमाग में कचरा है।" क्या सचमुच दिमाग में कचरा होता है? नहीं। यह व्यक्ति के

दूषित विचारों और इरादों की ओर संकेत करता है, क्योंकि मस्तिष्क ही निर्णय और संकल्प का केंद्र होता है।
इसी प्रकार, "माथे के बालों से घसीटना" भी एक रूपक है, जो अपमान, पराजय और कठोर दंड का प्रतीक है। इसका उद्देश्य शाब्दिक चित्रण करना नहीं, बल्कि अपराधी की दुर्दशा और उसके अपमान को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करना है। ईश्वर स्वयं किसी को हाथ से पकड़कर घसीटता नहीं; यह अभिव्यक्ति दंड की गंभीरता और कठोरता को दर्शाने के लिए प्रतीकात्मक शैली में कही गई है। क़ुरआन में ऐसी अलंकारिक अभिव्यक्तियाँ मनुष्य को चेताने, उसे आत्ममंथन के लिए प्रेरित करने और पाप से दूर रहने का संदेश देने के लिए प्रयुक्त हुई है।
एक और महत्वपूर्ण विचारणीय बिंदु यह है कि पंडित के निकट एक चपरासी का कार्य करने वाला व्यक्ति "नीच" है। जहाँ तक नर्क के फ़रिश्तों की बात है, तो चाहे वे नर्क का दरोगा हों या स्वर्ग के रक्षक, अपनी ही रचना की हुई सृष्टि से काम लेना ईश्वर के लिए कोई दोष सिद्ध नहीं करता।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

सूरह क़दर

161. निश्चय उतारा हम ने कुरान को बीच रात क़दर के। और क्या जाने तू क्या है रात क़दर की? उतरते हैं फ़रिश्ते और पवित्रात्मा बीच उस के, साथ आज्ञा मालिक अपने के वास्ते हर काम के। 97: 1, 2 4 क़ुरआन.

समीक्षक:- यदि एक ही रात में कुरान उतारा तो वह आयत अर्थात् उस समय में उतरी और धीरे-धीरे उतारा यह बात सत्य क्योंकर हो सकेगी? और रात्री अन्धेरी है इस में क्या पूछना है? हम लिख आये हैं ऊपर नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फ़रिश्ते और पवित्रात्मा खुदा के हुक्म से संसार का प्रबन्ध करने के लिये आते हैं। इस से स्पष्ट हुआ कि खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है। अब तक देखा था कि खुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बर तीन की कथा है। अब एक पवित्रात्मा चौथा निकल पड़ा! अब न जाने यह चौथा पवित्रात्मा क्या है? यह तो ईसाइयों के मत अर्थात् पिता पुत्र और पवित्रात्मा तीन के मानने से चौथा भी बढ़ गया। यदि कहो कि हम इन तीनों को खुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो, परन्तु जब पवित्रात्मा पृथक् है तो खुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बर को पवित्रात्मा कहना चाहिये वा नहीं? यदि पवित्रात्मा है तो एक ही का नाम पवित्रात्मा क्यों? और घोड़े आदि जानवर, रात दिन और कुरान आदि की खुदा कसमें खाता है। कसमें खाना भले लोगों का काम नहीं।

उत्तर:

क़द्र की रात में क़ुरआन अवतरण का अर्थ तथा ईश्वर का किसी स्थान पर स्थित होना भ्रम

यह प्रश्न पहली नज़र में किसी अबोध बालक का प्रतीत होता है, किंतु जैसा कि स्पष्ट है कि यह प्रश्न हमारे पंडित जी का है, तो यहाँ अबोधता नहीं, अपरिपक्वता झलक रही है।
यदि क़द्र की रात में पवित्र क़ुरआन के अवतरण के अर्थ के विषय में किसी मुसलमान से ही पूछ लिया होता, तो यह मूर्खतापूर्ण प्रश्न आपको करना नहीं पड़ता। पवित्र क़ुरआन हो, वेद हों या अन्य कोई दूसरी धार्मिक ग्रंथ — उसके किसी भी अंश या भाग को उसी नाम से पुकारा जाता है, जैसे पूरी पुस्तक को। जैसे कि यदि पंडित जी किसी से पूछें — "क्या आज आपने वेद का पाठ किया?" तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि उसने सम्पूर्ण वेद पढ़ लिया? अथवा उसका कुछ अंश? इसी

प्रकार, क्या हवन-यज्ञ में वेद नहीं पढ़े जाते? क्या सम्पूर्ण वेद पढ़ा जाता है? नहीं, बल्कि उसका एक भाग ही पाठ होता है। कितनी सीधी और सरल बात है। परंतु बूढ़े तोते कब किसी की सुनते हैं? उन्हें तो बस अपनी ही टें-टें में आनंद आता है, दूसरे के तर्क को सुनने-समझने में नहीं। आयत का स्पष्ट अर्थ यह है कि पवित्र क़ुरआन का एक अंश क़द्र की रात अवतरित हुआ, या इसी रात में क़ुरआन का अवतरण प्रारंभ हुआ। पर यह आपका भ्रम है कि ईश्वर किसी विशेष स्थान पर स्थित हैं और वहाँ से फ़रिश्ते आते-जाते हैं — वास्तव में, यह आपकी मूर्खता को दर्शाता है — विस्तृत विवरण के लिए क्रमांक 98 देखें।

क़द्र की रात हज़ार महीनों से बेहतर

लैला-तुल-क़द्र का महत्व तो इसी सुरह की तीसरी आयत (97:3) में स्पष्ट रूप से कहा गया है, जिसे पंडित जी ने जानबूझकर छोड़ दिया —

"क़द्र की रात हज़ार महीनों से बेहतर है।"

इसका अर्थ है कि इस पवित्र रात में की गई इबादत (उपासना) हज़ार महीनों की रातों में की गई इबादत से कहीं अधिक श्रेष्ठ और पुण्यदायी होती है। यह श्रेष्ठता इसलिए हैं क्योंकि इसी पवित्र रात में पुरी मानवता के लिए मार्गदर्शन के रूप में पवित्र क़ुरआन का अवतरण शुरू हुआ था। इसी प्रकार, हज़ार महीनों से बेहतर होने की तुलना भी एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, जो इस रात की अनुपम महत्ता और इसमें किए गए सद्कर्मों के अतुलनीय पुण्य को व्यक्त करती है।

मलाइका और आयत में रूह से आशय

आयत में रूह से आशय हज़रत जिब्राइल (अ.) है। सूरह अश-शुआरा (26:193) में कहा गया है —

"नज़ल बिहिर रूहुल अमीन"

अर्थात, इस क़ुरआन को रूहुल अमीन ले कर उतरे।

यहाँ भी स्पष्ट रूप से जिब्राइल (अ.) को रूह के नाम से संबोधित किया गया है। फ़रिश्तों में शामिल होने के बावजूद जिब्राइल (अ.) का अलग से वर्णन उनके सम्मान, प्रतिष्ठा और संदर्भ की स्पष्टता के लिए किया गया है। इसी प्रकार का उल्लेख सूरह बकरा (2:98) में भी मिलता है, जहाँ जिब्राइल और मिकाइल (अ.) का नाम लेकर उनकी स्थिति बताई गई है। सूरह अल-क़द्र (97:4) में "तनज़्ज़लुल मलाइकतु वर रूहु" का अर्थ यही है कि इस रात में आने वाले वर्ष के सारे प्रबंध फ़रिश्तों को सौंप दिए जाते हैं, और वे आदेशानुसार धरती पर फैल जाते हैं। यह ठीक वैसा ही है जैसे आर्यों के यहाँ ईश्वर धरती के सारे प्रबंध 33 देवताओं के माध्यम से संचालित कराता है।

अब समझ नहीं आता कि पंडित ने यहाँ ईसाइयों की "तस्लीस" (त्रिएक) सिद्धांत को अचानक से कहाँ से जोड़ दिया! यह तुलना बिल्कुल असंगत है, क्योंकि क़ुरआन में रूह का संदर्भ किसी तस्लीस अवधारणा से है ही नहीं।

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

अंतिम भूमिका

ईश्वर की कृपा से हम पंडित दयानन्द द्वारा क़ुरआन पर उठाई गई आपत्तियों का उचित एवं तर्कपूर्ण उत्तर देकर उनका निवारण कर चुके हैं। जहाँ तक उनका यह दावा है कि पवित्र क़ुरआन ईश्वरीय वाणी नहीं है, तो यह अरबी भाषा और उसके मुहावरों से अपरिचितता, तथा इस्लाम और क़ुरआन के प्रति अज्ञानता रखने वाले व्यक्ति का मत है, जिसकी वास्तविकता इन आपत्तियों से ही स्पष्ट हो चुकी है और उनका संतोषजनक उत्तर भी दिया जा चुका है।

जिस व्यक्ति को यह भी ज्ञात न हो कि "सूर्य का लपेटा जाना" एक सामान्य मुहावरा है, "माथे को बाल से घसीटना" अपमान का प्रतीक है, और इस प्रकार के अनेक क़ुरआनी रूपक — जो प्रत्येक भाषा में भी पाए जाते हैं — का केवल शाब्दिक अर्थ लेकर क़ुरआन जैसी उच्चकोटि की विद्वतापूर्ण पुस्तक — जिससे अरबी भाषा के बड़े-बड़े विद्वान शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं — का उपहास उड़ाता हो; पैग़बर-ए-इस्लाम ﷺ जैसे पवित्र उच्च चरित्रवान व्यक्ति पर तरह-तरह के झूठे और अश्लील आरोप लगाता हो; जिसकी ज़ुबान ईश्वर के प्रति भी अभद्र टिप्पणी करने से नहीं चूकती; और जो सभी पैग़ंबरों के अनुयायियों, उनकी पवित्र शिक्षाओं, उनके विद्वानों और संतों का अपमान करता है — इस प्रकार सभी समुदायों में वैमनस्य फैलाकर देश की शांति और सद्भाव को नष्ट करने का प्रयास करता है — ऐसे व्यक्ति की मानसकिता का अंदाज़ा स्वयं ही लगाया जा सकता है। और बुद्धिजीवियों की दृष्टि में ऐसे व्यक्ति के विचारों का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

ईश्वर ऐसे शांति-विरोधी के कुप्रभाव से लोगों और देश की रक्षा करें। आज एक सदी से अधिक समय बीत चुका है, पर पंडित की यह पुस्तक अभी भी लोगों के मन में विद्वेष और फुट डालने का कारण बनी हुई है। वास्तव में, ऐसी अपवित्र पुस्तक — जो समाज में विभाजन और तनाव को उत्पन्न करती हो, उसे शीध्रता से नष्ट कर उसके प्रभाव को समाप्त कर देना ही देश की शांति, भारत राष्ट्र की एकता एवं अखंडता, तथा मातृभूमि की प्रगति के लिए आवश्यक है। हम प्रार्थना करते हैं कि देश के नेतृवकर्ता और बुद्धिजीवी वर्ग इस विषय की गंभीरता को समझेंगे तथा सामाजिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता और मातृभूमि की उन्नति के लिए सकारात्मक और समन्वयकारी के लिए उचित कदम उठाएंगे।
इसी प्रकार वेदों को ईश्वरीय मानने वाले यदि मेरे द्वारा प्रस्तुत वैदिक प्रमाण को झूठा ठहराते हैं या संस्कृत भाषा से अनभिज्ञता का आरोप लगाकर मुझे गलत सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, और इसी आधार पर यह निष्कर्ष निकालतें है कि मुझे वेदों की आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं — तो इस तर्क की वैधता पर प्रश्न उठता है। यदि इस तर्क को सही मान लिया जाए, तो पंडित दयानन्द सरस्वती को क्या अधिकार था कि उन्होंने क़ुरआन पर आलोचना की? यह एक स्थापित तथ्य है कि पंडित दयानन्द अरबी, फ़ारसी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी भाषाओं से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। उनके समय में क़ुरआन फ़ारसी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी में उपलब्ध था, किंतु हिंदी में उसका कोई अनुवाद नहीं था। पंडित दयानन्द हिंदी, गुजराती और संस्कृत के अतीरिक्त अन्य भाषाओं से सर्वथा अपरिचित थे। यदि वेद-अनुयायियों का उक्त तर्क स्वीकार कर लिया जाए, तो पंडित दयानन्द की स्थिति अत्यंत दुर्बल हो जाती है, क्योंकि तब तो उन्हें क़ुरआन और गुरु-ग्रंथ साहिब के संदर्भ में एक शब्द भी नहीं लिखना चाहिए था। किंतु पंडित दयानन्द, चाहे उनमें कितनी कमियाँ रही हों, कुछ विवेकशील व्यक्ति थे और इस प्रकार

के अतार्किक आक्षेपों को महत्व नहीं देते थे। जिस प्रकार उन्होंने पवित्र क़ुरआन के अनुवाद को सामने रखकर उसकी आलोचना की और अपनी राय व्यक्त की, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह पंडित दयानन्द तथा अन्य आर्य भाष्यकारों के वेद-भाष्यों को आधार बनाकर वेदों के विषय में अपनी राय प्रकट कर सकता है और वेद पर आलोचना कर सकता है।

पंडित दयानन्द ने क़ुरआन की आलोचना करने से पूर्व ही स्पष्ट कर दिया था कि यदि कोई यह कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है, तो उसे चाहिए कि वह पहले मौलवियों द्वारा किए गए अनुवाद का खंडन करे, फिर ही इस विषय में टिप्पणी करे। इसी सिद्धांत के अनुसार, यदि कोई पंडित दयानन्द एवं अन्य आर्य भाष्यकारों के भाष्य को प्रमाणिक मानकर, उन्हीं के आधार पर वैदिक शिक्षाओं पर कुछ लिखता है या उन्हें प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करता है, तो उसका लेखन और प्रमाण तब तक निराधार या गलत सिद्ध नहीं हो सकता, जब तक उन भाष्यों को गलत सिद्ध न कर दिया जाए। साथ ही, पंडित दयानन्द के साथ-साथ उन भाष्यकारों पर भी वही फतवा (आरोप) लगना चाहिए, जो पंडित दयानन्द ने महीधर आदि पूर्ववर्ती वयाख्याकारों पर लगाए थे।

संभवतः कोई भी समाजी आर्य भाष्यकारों पर ऐसा आरोप लगाने का साहस नहीं करेगा, क्योंकि वे वेदों को ईश्वरीय वचन मानने वाले थे और उसके प्रति हृदय में अनन्य श्रद्धा रखते थे। अतः यह मानना कठिन है कि वेदों की व्याख्या करते समय उन्होंने दुर्भावना से कार्य लिया होगा या पर्याप्त सावधानी न बरती होगी।

—अब्दुल रहमान....